संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ४१

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के विचार सूत्रों का संग्रह

दिव्य वाणी

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

दिव्य वाणी

[आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के विचार सूत्रों का संग्रह]

संस्करण	:	२८ जून, २०१७ (आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)
आवृत्ति	:	११००
वेबसाइट	:	www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर एफ, इन्डस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा, भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

कृति	**संकलक**	
सागर बूँद समाय	मुनि समतासागर	१-९०
परमार्थ देशना	मुनि कुन्थुसागर	९१-२६०
संकलन	एक साधिका	२६१-४४४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामत: मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम

लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वासें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्यश्री के पूर्व में किए गए प्रवचनों में जो विशेष सुभाषित रूप में विशेष उक्तियाँ कही गईं हैं, उनका संकलन इस कृति में किया गया है। आचार्य परमेष्ठी के प्रत्येक वचन अनुभवपूरित दिव्य वचन हैं, मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाले साधकों को तथा सभी सुधी जनों को प्रत्येक विषय पर आचार्य गुरुदेव के चिंतन उपलब्ध हों, इस हेतु इस कृति को प्रकाशित किया जा रहा है। एतदर्थ संघस्थ मुनिराजों एवं आर्यिका माताजी ने जो परिश्रम एवं समय दान देकर गुरुभक्ति प्रकट की है। उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

सागर बूँद समाय

पीयूष वाणी वर्षा
आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

संकलन
मुनि समतासागर

दीप स्तम्भ

प्रस्तुत पुस्तक 'सागर बूँद समाय' आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के विचार-सूत्रों का संग्रह है। इस कृति की रचना के पीछे एक विशेष ध्येय है और वह यह कि पाठक इसे पढ़कर समझें कि मानव-जीवन के उत्कर्ष का अधिष्ठान क्या है। मुनि श्री समतासागरजी ने इस श्रम साध्य कार्य को बड़े कौशल से सम्पन्न किया है।

मैं पूरी पुस्तक को देख गया, बड़ी लोकोपयोगी कृति है। इसके विचार जहाँ व्यक्ति के उत्थान की प्रेरणा देते हैं, वहाँ समाज के प्रति कर्तव्य का बोध भी जगाते हैं। इसके सभी अध्याय सार्थक हैं। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें विचारों की कहीं भी उलझन नहीं है। वह अत्यन्त सरल-सुबोध लय में अपनी बात कहती है। बात इसी से सहज ही गले उतर जाती है।

मानव-जीवन बड़ा सरल है, पर मनुष्य जटिल बना देता है। वस्तुतः वह जीवन के धर्म और जीवन के मर्म को समझता नहीं, इसी से उसे मंजिल दिखाई नहीं देती और वह भटकते-भटकते किसी तरह अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करता है। वह भूल जाता है कि उसमें अपार शक्ति है, अपने अज्ञान से वह प्रभु के दिये वरदान का लाभ नहीं ले पाता। यह पुस्तक मानव की सुप्त चेतना को झकझोरती है, कहती है, इस धरा पर मानव जीवन दुर्लभ है, उसे समझो और उसके एक-एक क्षण का आत्मोन्नति और पर-सेवा के लिये उपयोग करो।

संत की वाणी में संत का जीवन बोलता है, उसकी अनुभूतियाँ बड़ी गहन-गहरी होती हैं, उसका आधार कोरा ज्ञान नहीं होता, साधना होती है। तपकर जिस प्रकार सोना कंचन बन जाता है उसी प्रकार संत की कठोर साधना भी उसके जीवन को आलोकित कर देती है और उसे जगत् के अन्धकार को दूर करने की क्षमता प्रदान करती है। पुस्तक बड़े काम की है, वह जीवन के राजमार्ग को प्रशस्त करती है और उस पर चलने को प्रोत्साहित करती है। ध्यान रहे कि इसके विचार-सागर में जो जितनी गहरी डुबकी लगायेगा, उसे उतने ही मूल्यवान रत्न प्राप्त होंगे।

वर्तमान युग के निविड-अन्धकार में यह पुस्तक दीप-स्तम्भ बनेगी, ऐसी मेरी प्रतीति है। मुझे यह भी विश्वास है कि पुस्तक सभी वर्गों और क्षेत्रों में मनोयोग पूर्वक पढ़ी जायेगी और जो भी इसे पढ़ेंगे वे लाभान्वित हुए बिना नहीं रहेंगे।

मंत्री-सस्ता साहित्य मण्डल **यशपाल जैन**

एन ७७ कर्नाट सर्कल, नई दिल्ली-१

अंतरंग

संतुलित सधे हुए जीवन की तरह महापुरुषों के वचन भी संक्षिप्त, सारगर्भित और सधे हुए रहते हैं। चेतना में गहरा असर डालने वाले उनके ये वचन एकदम सार्थक और प्रयोजन की सिद्धि करने वाले होते हैं। संक्षिप्त सारगर्भित यही वचनावली सूक्तियाँ मानी जाती हैं। जो बात पृष्ठों-पृष्ठों के लेख और विस्तृत व्याख्यान-वार्ताओं में भी नहीं कही जा सकती, वह बात एक सूक्ति कह देती है। बूँद में सागर के समान समायी उसकी अर्थात्मा बहुत ही विशाल होती है। भारतीय साहित्य ऐसी सूक्तियों का भण्डार है। यह साहित्य सिर्फ वचन विलास और मनोरंजक कल्पना-लोक पर ही नहीं टिका बल्कि इसमें वह तथ्य निहित है जो दुविधाग्रस्त जीवन की अंधेरी राहों में सम्यक् ज्योति प्रदान करता है। इसे इसलिये ही साहित्य कहा जाता है कि इसमें आचरण-आदर्शों की सौरभ समाविष्ट रहती है। यह सर्वविदित ही है कि जिसके जीवन-रथ का सारथ्य सत् साहित्य का सजग सारथी कर रहा हो उसे सत् शिव सुन्दर का स्वस्तिक-धाम मिलता ही है।

सृजनधर्मी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व से आज कौन परिचित नहीं है। उनका जीवन सहज है, सरल है, आडम्बर और प्रदर्शन से उनका दूर-दूर तक का सम्बन्ध नहीं है और यही वजह है कि सादगी के सौंदर्य से सुशोभित साधनमुक्त उनकी साधना अमिट छाप छोड़ रही है। प्रशस्त अतिशयवती उनकी यथाजात स्वाधीन चर्या अनगिन जन भावनाओं की आदर और आस्था का केन्द्र बनी हुई है। यदि उनके अन्तःकरण में जिजीविषा कुछ है तो वह सिर्फ इतनी कि आगम और अध्यात्म का मार्ग यथावत रहे। श्रमण संस्कृति निरन्तर वृद्धिंगत हो। हर क्षण हर पल उनका चिन्तन संघ, समाज, साधना, साहित्य और संस्कृति के पञ्च सकारों की धुरी पर घूमता रहता है। सार्वभौमिक चिन्तना के इस व्यक्तित्व ने जहाँ एक ओर आत्म साधना की ऊँचाइयों के स्वर्ण शिखरों को छुआ है तो वहीं सारस्वत् साहित्य के महासागर में भी कम अवगाहन नहीं किया। निरीह, निर्भीक, निरालम्ब और निष्पक्ष उनका जीवन ध्रुवतारे की तरह प्रकाशमान है। अप्रतिम आदर्श है। उनकी वाणी में ओज है, माधुर्य है, प्रवाह है, एकात्मता है और है चुम्बकीय आकर्षण। सूत्र के रूप में संक्षिप्त सारगर्भित बात करना उनकी अपनी मौलिक विशेषता है। उनके प्रवचनों में, शंका समाधान, स्वाध्याय कक्षाओं में, या कि व्याख्यान वार्ता संदेशों में इस तरह की सूत्र संपदा का बाहुल्य रहता है और यही कारण है कि उनके आदेश/निर्देश त्वरित असरदार होते हैं। उनके विचारों में सुलझाव है, दूरदर्शिता है, बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर कुछ रचनात्मक करने की उनकी स्पृहा अद्‌भुत है। मंगलवर्धिनी उनकी मानस-मनीषा में उपजा करुणा-कृपा का भाव युवा पीढ़ी में विरक्ति और विज्ञान

का सघन संस्कार डाल रहा है। यह सच ही है कि उनकी आभा वलय में जो भी पहुँचता है वह वहीं का हो जाता है। ज्यादा क्या कहें, उनका कण भर आशीष और क्षण भर की आत्मीयता ही समूचे जीवन को रूपान्तरित कर देती है। भ्रम और निराशा की तिमिर विच्छुत्ति कर नूतन उत्साह, आशा, साहस और समाधान का आलोक फैलाती है। कर्त्तव्य, संयम, स्वाध्याय, साधना, सदाचार और सद्भाव आदि का बुनियादी पथ दर्शाने वाले उनके विचार कहीं बल और बलिदान की भावना जगाते हैं तो कहीं अभय और आनन्द की अनुभूति कराते हैं। सचमुच ही उनके विचार-वर्तुल में नैराश्य और उदासी को उत्सव में बदल देने की क्षमता है।

मैं गुरुवर श्री की इस विलक्षण प्रतिभा से शुरू से ही प्रभावित रहा और इसीलिये उनके प्रवचनों में समाहित विचार सम्पदा, सूक्ति, सुभाषितों के संकलन की प्रेरणा मुझे मिली। इस संकलन कार्य को मैं समय-समय पर तन्मयता से करता रहा। वर्षों से समेटी सहेजी गई इस सामग्री को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर पाठकों तक पहुँचाने का विचार तो मन में काफी समय से था किन्तु वह संकल्प रूप में परिवर्तित हुआ, आचार्य श्री के रजत मुनिदीक्षा संयमोत्सव वर्ष पर और फिर क्या? प्राणपण से जुट गया इस कार्य में। लगभग ढाई हजार वाक्यांशों की पुरानी सामग्री का पुनः अवलोकन शुरू हुआ और आवश्यकतानुसार परिमार्जित, परिवर्तित करके बारह सौ बाईस वाक्यांशों को पाँच खण्डों (संस्तुति, स्वाध्याय, साधना, धर्म-संस्कृति एवं सत् शिव सुन्दर) में तैंतीस उपशीर्षकों सहित वर्गीकृत किया। इस सृजन-यात्रा में सुधी श्रावक और संघस्थ साधुजनों का जो भी सहयोग रहा, निश्चित ही उसने इस कार्य में गति और गरिमा प्रदान की है। मैं उन सभी की इस सहयोगी भावना के लिये कृतज्ञ हूँ। प्रभु शीतलनाथ भगवान की त्रयकल्याणक स्थली उदयगिरि (विदिशा) से प्रारंभ हुई यह यात्रा मढ़ियाजी (जबलपुर), सागर और अतिशय क्षेत्र बीना बारहा (देवरी) होते हुए अतिशय क्षेत्र रामटेक (नागपुर) से अमरकंटक में जाकर पूर्ण हुई। विदिशा (ग्रीष्मावकाश १९९२) से सर्वोदय तीर्थ अमरकंटक (ग्रीष्मावकाश १९९४) तक इस दो वर्षीय प्रवास में मैं इसे एक अपेक्षित आकृति प्रदान कर पाया।

यह भी एक सुयोग की ही बात थी कि सुधी साहित्यकार यशपाल जी का सान्निध्य बना अमरकंटक में। ''सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर'' के समापन सत्र में वह आये। प्रकृति के मुक्त वातावरण में उन्होंने आचार्य श्री के पास बैठकर विचार-चर्चा एवं गोष्ठियों के रूप में चार दिन तक क्षण-क्षण का उपयोग किया। इस सामीप्य-सान्निध्य से वह आनन्दित थे, अभिभूत थे। कुछ उपयोगी सुझाव मिलें, इस उद्देश्य से मैंने अन्तिम रूप दी जा रही सामग्री उन्हें अवलोकनार्थ दी। जिसे उन्होंने मनोयोगपूर्वक पढ़ा, पढ़कर किञ्चित् सुझावों के साथ उन्हें जो-जैसा लगा उसे लिखकर दिया, जिसका उपयोग ज्यों का त्यों यहाँ भूमिका के रूप में किया गया है। इस पुस्तक के नामकरण को लेकर भी काफी विमर्श के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नाम प्रतीकात्मक हो तो अच्छा रहेगा किन्तु उसमें भी

किसी एक नाम के निर्णय पर पहुँचना कठिन रहा। अन्त में विचार आया कि जिन महर्षि की देशना का यह संकलन है, उसी में से क्यों न कुछ खोजा जाय। अमरकंटक का प्रवास जहाँ साधना की उत्कर्षता का काल रहा, वहाँ साहित्य-सृजन में भी पीछे नहीं। शीत की हिमानी हवायें जहाँ पानी को बर्फ जैसा बना देती हैं, ऐसे में बिना किसी शीत निवारक साधन / सहारे के आचार्य श्री की उत्कृष्ट साधुचर्या चलती रही। यहीं पर आचार्य श्री ने 'सर्वोदय शतक' लिखा, जिसमें एक दोहा इस आशय का लिखा कि-छोटी-छोटी बूँद मिलकर नदी की धारा और फिर सागर बन जाती हैं और वह सागर भी बूँद-बूँद में समाया हुआ रहता है। भाव बहुत गंभीर और दर्शन पक्ष का उद्घाटक लगा, मन ही बस जाते हैं। दोहा है-

बूँद-बूँद के मिलन से जल में गति आ जाय।
सरिता बन, सागर मिले, सागर बूँद समाय॥

और पुस्तक का नाम 'सागर बूँद समाय' सुनिश्चित कर लिया। इस संकलन के संबंध में एक स्पष्टीकरण यह भी है कि इसमें जो भी सामग्री (दोहों को छोड़कर) है, वह सब आचार्य श्री के प्रवचन कक्षा एवं चर्चाओं में सी ही ली गई है, लिखित या अनुवादित काव्य ग्रंथों से नहीं। इतना अवश्य कह सकता हूँ कि संकलित किये गये ये विचार-सूत्र प्रेरणा दीप, प्रकाश पुञ्ज तो बन ही सकते हैं दिशाहारी मानव समाज को। यदि इन्हें पढ़कर कुछ लोग भी जगत् और जीवन से संबंधित पहलुओं को समझने की पहल कर सके तो मैं अपने इस श्रम को सार्थक समझूँगा। इस कार्य को करके मैंने कुछ किया है, मैं ऐसा नहीं मानता पर इतना जरूर जानता हूँ कि इसके माध्यम से मैंने श्रुत पूजा की है, अपनी दिनचर्या में सम्मिलित आचार्य-देशना का अप्रमत्त स्वाध्याय किया है। जिनका दर्शन, स्मरण और सन्निधि ही संकल्प में निरन्तर शक्ति का संचार करती रही, जिनका मूक आशीष ही प्रण में प्राण फूँकता रहा, सच मानिये! मुझ अकिञ्चन एकलव्य में इतनी सामर्थ्य कहाँ थी, पर आचार्यश्री रूपी गुरु द्रोणाचार्य के प्रति समर्पण और साक्षीभाव ही यह सब कुछ करा गया। मैं यह बात भी भली-भाँति जानता हूँ कि विद्या के विचार सागर में से यह संकलन एक बूँद भी नहीं है, मैं भावना करता हूँ कि मुझमें वह क्षमता आये जिससे मैं इस बिन्दुमात्र संकलन को सागर सा रूप दे सकूँ। यदि इस कार्य को मैं सम्पन्न कर सका तो अपने जीवन-यज्ञ का इसे सर्वोत्तम अनुष्ठान समझूँगा। अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि इसमें मेरा कुछ भी नहीं है-गुरुवर की विद्या-वाटिका से कुछ विचार-पुष्प चुनकर जो-जैसा हार बना पाया वह उन्हें ही विनम्र प्रणति सहित श्रद्धा से समर्पित कर रहा हूँ।

मुनि समतासागर

प्रथम खण्ड
संस्तुति

संस्तुति सरिता में अवगाहित आत्माएँ प्रभु परमेष्ठी की भक्ति-आराधना से अपने जन्म-जन्मान्तरों के पापों का प्रक्षालन करती हैं। भक्त और भगवान् के बीच की दूरी पाटने की सामर्थ्य भक्ति में ही है, वास्तव में भक्ति हृदय का गुंजन है, बौराई आम्र मञ्जरियों को देखकर जैसे कोयल बरबस ही गाने लगती है ठीक इसी प्रकार भक्त की भक्ति में आराध्य भी निमित्त बनते हैं। भक्ति, आस्था और विश्वास के सहारे क्या-क्या नहीं हो जाता कुछ ऐसे ही विचार इस संस्तुति खण्ड में संकलित किये गये हैं।

आराध्य/आराधना

१. उपास्य की उपासना उपास्य बनने के लिये ही होती है।
२. उपासना से नहीं किन्तु वासना से उदासीन होना जरूरी है बन्धुओ!
३. स्व-संवेदन रूप आत्मकथा के दरवाजे खोलने के लिये पंच परमेष्ठी की कथा सद्कथा मानी जाती है।
४. प्रभु का अवलम्बन लेकर प्रभु बना जा सकता है।
५. पंच परमेष्ठी की आराधना विषय कषायों से बचने के लिये होती है।
६. पाप से भीति बिना भगवान् से प्रीति नहीं और भगवान् से प्रीति बिना आत्मा की प्रतीति नहीं।
७. भगवान् की वीतरागता देखकर मन आह्लादित हो जाता है और उन जैसा बनने की भावना होती है।
८. जिस प्रकार पहलवान को देखने से पहलवान बनने की और साहूकार को देखकर साहूकार बनने की भावना होती है उसी प्रकार भगवान् को देखकर भगवान् बनने की भावना होती है।
९. अपने मित्र और आत्मीय बन्धु को देखकर जितनी प्रसन्नता होती है उससे भी अधिक प्रसन्नता जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन करने से होनी चाहिए।
१०. पंच परमेष्ठी के अलावा आत्म कल्याण के लिये इस संसार में न कोई मंगलकारी है और न

शरण।

११. जैन दर्शन में व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व पूजा गया है, यही कारण है कि अनादि अनिधन गुणों में स्थित पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।
१२. देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से जिस व्यक्ति ने अपने जीवन को वीतरागता की ओर मोड़ लिया वह एक दिन अवश्य विराम पायेगा।
१३. स्व की ओर आने का रास्ता यदि मिल सकता है तो मात्र देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से ही मिल सकता है अन्य किसी से नहीं।
१४. प्रभु के हृदय की बात जब तक नहीं समझोगे तब तक आप उन जैसे चैतन्य की परिणति को प्राप्त नहीं कर सकते।
१५. जब तक हमारा सम्बन्ध भगवान् से है तभी तक हम भक्त कहलाने के अधिकारी हैं।
१६. हे भगवन्! यह बात सही है कि आप सूर्य के समान हैं और हम दीपक के समान। लेकिन यह बात भी सही है कि सूरज की आरती सूरज से नहीं बल्कि दीपक से ही होती है।
१७. हे प्रभु! द्रव्य दृष्टि से हम और आप समान हैं पर पर्याय दृष्टि से हममें और आपमें बहुत अन्तर है। हीरा, हीरा ही है पर एक खान में पड़ा है और एक शान पर चढ़ा है।
१८. भक्त और भगवान् की दिशा एक ही है यह बात अलग है कि दशा भिन्न-भिन्न हैं।
१९. राग का ही यह प्रतिफल है कि हम भगवान् के समान होकर भी भगवान् जैसा अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।
२०. जिस प्रकार नदी सागर को देखकर ही नहीं किन्तु सागरमय होकर ही सागर बन पाती है, ठीक उसी प्रकार भगवान् को अकेले देखने मात्र से भगवान् नहीं बना जाता किन्तु उन जैसा आचरण करने से भगवान् बना जाता है।
२१. जिन और जन में इतना ही अन्तर है कि एक वैभव के ऊपर बैठा है और एक के ऊपर वैभव बैठा है।
२२. जिसमें रागद्वेष, अहंकार, ममकार आदि नहीं पाये जाते वे ही वास्तव में भगवान् हैं, ईश्वर हैं, वे ही हमारे लिये सुख-शांति के आधार हैं। हमें उन्हीं वीतरागी प्रभु की शरण लेनी चाहिए।
२३. भगवान् की रक्षा कोई नहीं करता बल्कि उनके पास रहने से हम स्वयं अपनी रक्षा कर लेते हैं।
२४. भगवान् की प्रतिमा दर्पण के समान है, उस दर्पण में अपने आपको देखकर अंतरंग पर लगी हुई कालिमा को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
२५. पंचपरमेष्ठी तो निमित्त मात्र हैं, कार्य की सिद्धि के लिये उपादान आप स्वयं हैं। अपनी शक्ति की ओर दृष्टिपात करो उसी से कल्याण होने वाला है।

२६. पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है लेकिन सच्चे देव तो ऐसी अद्भुत पारसमणि हैं जो अपने स्पर्श से लोहे को सोना तो क्या पारसमणि ही बना देते हैं।

२७. जिस प्रकार लौकिक क्षेत्र में आई समस्यायों को पंचायत की साक्षी में सुलझाया जाता है ठीक उसी प्रकार परमार्थ के क्षेत्र में पंचपरमेष्ठी रूपी पंचायत की साक्षीपूर्वक अपनी समस्यायों को सुलझाया जाता है।

२८. देव-शास्त्र-गुरु से आगे बढ़ने का जो मान होता है वह नियम से अनन्तानुबन्धीकषाय का मान है क्योंकि जिनके माध्यम से अपना सम्यग्दर्शन बना हुआ है अब उन्हीं से आगे बढ़ने का मान (अहंकार) कौन करेगा।

२९. पूजा करो, पूर्ण की करो, अनंत की करो। लोक में विख्यात है कि सुखी की पूजा करोगे तो तुम भी सुखी बन जाओगे।

३०. उस लौकिक प्रभु और उसकी भक्ति से क्या प्रयोजन जो सिर्फ संसार को ही दिलाता है। वास्तविक प्रभु और उसकी भक्ति तो वह है जो उसे भी प्रभु-परमात्मा बना दे। भगवान् की पूजन करने से हमें बहुत कुछ उपलब्ध होगा ऐसा भाव नहीं करना यानी फल के प्रति हेयबुद्धि हो, न कि पूजा के प्रति। हाँ! इतनी भावना जरूर भानी चाहिए कि हे भगवन्! जैसे आप स्वस्थ स्वरूपस्थ हुए हैं वैसे ही मैं भी स्वस्थ स्वरूपस्थ हो जाऊँ।

३१. हम अपने परिणामों से ही भगवान् से दूर हैं और परिणामों की निर्मलता से ही उन्हें हम निकट देख सकते हैं।

३२. भक्ति-आराधना सातिशय पुण्य का कारण तो है ही साथ ही साथ परम्परा से मुक्ति का कारण भी है।

३३. भगवान् आयतन ही हैं वह कभी अनायतन नहीं हो सकते, ऐसा नहीं कि व्यवहार नय से तो आयतन और निश्चयनय से अनायतन हैं। भले ही हमारी दृष्टि कैसी हो पर जो साधन सम्यक का कारण है वह कभी किसी भी परिस्थिति में मिथ्यात्व पोषक नहीं हो सकता।

३४. अपार वैभवशाली इन्द्र भी जब समवसरण में जाकर भगवान् के चरणों में झुक जाता है तब मिथ्यादृष्टि देव भी भगवान् की महिमा से प्रभावित हो जाते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर भक्ति गुणगान करने लगते हैं। धन्य है प्रभु की महिमा जिसका वर्णन हम शब्दों में नहीं कर सकते।

३५. अर्थ और परमार्थ की दृष्टि का अन्तर तो देखिये! वही भरत प्रभु आदिनाथ के चरणों में रत्न चढ़ाता है और वही भरत छोटे भैय्या बाहुबली के ऊपर चक्ररत्न चलाता है।

३६. पूज्य और पूजक दोनों एक ही स्थान पर है। फर्क इतना है कि एक सिंहासन पर बैठा है और एक नीचे बैठा है। एक पूज्य है और एक पूजता है, एक व्यवस्था कर रहा है और एक की व्यवस्था हो रही है।

३७. मंदिर और मूर्तियाँ हमारी आस्था-निष्ठा के केन्द्र हैं, जहाँ हम अपनी भक्ति-भावनाओं को प्रदर्शित कर सकते हैं।

३८. मंदिर में जाकर यदि भगवान् से पूछो कि तुम कौन हो तो प्रतिध्वनि आती है कि तुम कौन हो? यदि हम कहें कि आप भगवान् हो तो प्रतिध्वनि सुनाई पड़ेगी कि आप भगवान् हो। इससे बड़ी महिमा मन्दिरों की और क्या हो सकती है।

३९. पूजा के समय चढ़ाये गये द्रव्य के माध्यम से श्रावक का परिग्रह के प्रति राग घटता है।

४०. भगवान् के सामने जाकर चावलादि चढ़ाने का अर्थ ही यही है कि हम त्याग के आदर्श के सामने जाकर त्याग की शिक्षा लेते हैं।

४१. विपत्ति के समय तो कोई भी भगवान् को याद कर सकता है किन्तु सुख के क्षणों में भी जो भगवान् को नहीं भूलता उसके जीवन में विपत्ति आती ही नहीं।

४२. अधिक कुछ स्वाध्याय साधना नहीं होती तो कम से कम निराकुलता से भगवान् का नाम तो लिया करो, यह नाम ही एक न एक दिन संसार से पार करा देगा।

४३. संसारी प्राणी दुनिया की नकल करने में लगा है पर उसे सही-सही नकल करना भी अभी नहीं आता, यदि नकल करना ही है तो भगवान् की नकल करो जो तुम्हें मुक्ति दिलायेगी।

४४. भगवन्! आप कहाँ? और हम संसारी जन कहाँ? फिर भी जिस प्रकार बहुत दूर रहने पर भी सूरज कमलों को खिला देता है ठीक उसी तरह आपका दर्शन-गुणस्मरण भी भव्यजीव रूपी कमलों को आनंदित करा देता है विकसित करा देता है।

४५. चैत्य और चैत्यालय को देखकर हमें जो बोध होता है वह बोध अन्य किसी के माध्यम से नहीं होगा।

४६. भगवान् के मन्दिर में प्रवेश करते ही दुनिया के सारे महल और मकान फीके लगने लगते हैं।

४७. भगवान् की पूजा संसार को दग्ध करने वाली है तथा काम वासना को शांतकर जीवन को पवित्र बनाती है।

४८. भगवान् का दर्शन करते-करते जिस दिन आपके अन्दर का सोया हुआ भगवान् जाग जाये, समझ लो उस दिन दर्शन करना सार्थक हो गया। पैसों से मंदिर और मूर्तियाँ बनाई जा सकती हैं पर भगवान् नहीं, भगवान् तो भावनाओं से ही बनते हैं।

४९. मूर्ति, पाषाण और कला की कीमत हो सकती है पर भगवान् की नहीं, भगवान् तो अनमोल हैं।

५०. हे भगवन् अब हमें प्रसिद्धि की नहीं सिद्धि की जरूरत है।

५१. जिस प्रकार सामान्य रंग और कपड़ों की ध्वजा होकर भी हम उसमें राष्ट्र के प्रति गौरव समान प्रतिष्ठापित कर लेते हैं ठीक इसी प्रकार स्थापना निक्षेप के माध्यम से हम पाषाण निर्मित प्रतिमा

में भी प्राण प्रतिष्ठा द्वारा भगवत्पने का आरोपण कर लेते हैं जिससे हमारी अनन्य भक्ति निष्ठा जुड़ जाती है।

५२. भाव निक्षेप (साक्षात् भगवान्) के अभाव में स्थापना निक्षेप (मूर्तियाँ) ही एक ऐसा साधन है जिससे अपने आराध्य की तन्मयता के साथ आराधना की जा सकती है।

५३. मूर्ति पूजा का अर्थ मात्र धातु या पाषाण पूजा नहीं किन्तु मूर्ति में स्थापित गुणारोपण रूप अपने आराध्य की कल्पना कर उनका गुणगान करना है।

५४. भगवान् ने हमारी खोज नहीं की किन्तु हमने ही भगवान् को खोजा है। अहो! इस विषय बहुल संसार में भगवान् को खोज लेना कम पुरुषार्थ की बात नहीं है।

५५. सरोवर के बीच बैठा हुआ व्यक्ति जिस तरह दावानल से घिरे रहने पर भी उसकी दाह से बच जाता है ठीक उसी तरह भगवान् के मंदिर में पहुँचने पर भक्त पुरुष बाहरी विषय-कषायों के दावानल से भली-भांति बच जाता है।

भक्ति/स्तुति

५६. इधर-उधर की पंचायत में मत रमो किन्तु पंच परमेष्ठी की भक्ति में लीन हो जाओ, वह भक्ति तुम्हारी मुक्ति का कारण बनेगी।

५७. स्तुति करने का प्रयोजन मात्र रागात्मक क्षणों की प्राप्ति नहीं है बल्कि चित्त में शांति-वैराग्य और संयम में वृद्धि भी होनी चाहिए।

५८. भक्ति या गुणानुवाद आन्तरिक भावों के साथ होना चाहिए-वह मात्र दिखावा या प्रदर्शन नहीं हो।

५९. हे रसना! तूने आज तक राग भरे गीत-संगीत में ही रस लिया है अब उसमें रस ना ले। अध्यात्म भरी भक्ति वीतराग विज्ञान में रस ले।

६०. भक्ति, मुक्ति के लिये कारण है और भुक्ति संसार के लिये।

६१. पहले दासोऽहं फिर उदासोऽहं बाद में सोऽहं और अन्त में अहं, भक्त से भगवान् बनने का क्रम यही है।

६२. भक्ति कभी भी हेय बुद्धि से नहीं होती बल्कि उसे तो उपादेय बुद्धि से गद्‌गद् होकर करनी चाहिए।

६३. भक्ति तो ठीक है किन्तु अन्धभक्ति ठीक नहीं। बंधुओ! भक्ति को विवेक की डोर से बाँधे रखना।

६४. सच्चे दिगम्बर गुरुओं की हमें मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी चाहिए, साथ ही इस जिह्वा को यह शिक्षा देनी चाहिए कि हे! रसना जब तक तुझमें शक्ति है तब तक गुरु की महिमा गाती रह, तेरे लिये ये सौभाग्य के क्षण हैं।

६५. हम सभी महान् सौभाग्यशाली हैं जो दिगम्बर गुरुओं के दर्शन मिल रहे हैं, तरस गये वह बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय जैसे विद्वान जिन्हें अपने जीवन काल में दर्शन नहीं मिल पाये। उनके हृदय की पीड़ा भजनों की पंक्तियों में झलकती है, कई जगह लिखा मिलता है – ''कब मिल हैं वे गुरुवर उपकारी.....'' कितनी आस्था-भक्ति थी गुरुओं के प्रति।
६६. पंच परमेष्ठी की भक्ति एवं ध्यान से विशुद्धि बढ़ेगी, संक्लेश घटेगा, वात्सल्य बढ़ेगा।
६७. हम भाग्यवान् हैं कि जिनवाणी आज उपलब्ध है, उस मातेश्वरी के माध्यम से हम कम से कम स्व-पर को समझकर पंच परमेष्ठी की स्तुति भक्ति तो कर सकते हैं।
६८. जिनवाणी की स्तुति करने से जिनदेव की भी स्तुति हो जाती है क्योंकि भगवान् तीर्थंकर द्वारा ही प्रतिपादित सारा तत्त्व जिनवाणी में है।
६९. भक्ति जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तब वाणी मूक हो जाती है कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, ऐसी स्थिति भक्ति भावना के प्रवाह में ही होती है।
७०. इतिहास के प्रसंग और प्रथमानुयोग में ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे स्पष्ट है कि अंततः धर्मात्मा की ही विजय होती है। जिसने भी पवित्र मन से भगवान् की पूजा भक्ति की है उसकी रक्षा देवताओं ने भी की है।
७१. महान् दार्शनिक होते हुए भी आचार्य समन्तभद्र महाराज स्तुति के क्षेत्र में पीछे नहीं रहे। चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति 'स्वयंभूस्तोत्र' लिखने के बाद भी उन्होंने स्तुति के रूप में 'स्तुति विद्या' लिखी। धन्य था उनका जीवन और अद्भुत थी उनकी भगवद् भक्ति।
७२. जैसे हो पृष्ठों के बीच गोंद लगाने पर दोनों पृष्ठ एक हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार भक्त और भगवान् के बीच भक्तिरूपी गोंद लगाने से दोनों एकमेक हो जाते हैं।
७३. आचार्यों ने उपदेश दिया है कि हे! संसारी प्राणी तू क्यों यहाँ वहाँ की बातों में उलझ रहा है। पंच परमेष्ठी की भक्ति कर, भगवान् का गुणगान कर। भक्ति करने से चित्त को शान्ति मिलेगी, अहंकार घटेगा, नर पर्याय सार्थक होगी।
७४. भगवद्भक्त बीहड़ घनघोर जंगल में भी रास्ता पा लेता है और भगवान् को भूल जाने वाला साफ सुथरे रास्ते पर भी भटक जाता है।
७५. स्तुत्य प्रत्यक्ष हो या न हो स्तुति करने वाला तो गुणों का स्मरण कर पवित्र हो जाता है।
७६. प्रभु बनकर नहीं किन्तु लघु बनकर ही प्रभु की भक्ति की जा सकती है।
७७. जिस प्रकार सीपी के योग से तुच्छ जल कण भी महान् मुक्ताफल बन जाते हैं ठीक उसी प्रकार भगवान् के प्रति किया गया अल्प स्तवन भी महत् फल प्रदान करता है।
७८. नाल से जुड़े कमल का जिस प्रकार सूर्य की तेज किरणें भी कुछ बिगाड़ नहीं कर पाती ठीक उसी प्रकार भगवद्भक्ति से जुड़े रहने पर भक्त का संसार में कुछ भी बिगाड़ नहीं होता।

भक्ति-महिमा

७९. भक्ति गंगा की लहर हृदय के भीतर से प्रवाहित होना चाहिए और पहुँचना चाहिए वहाँ जहाँ निस्सीमता हो।

८०. जब तक भक्ति की धारा बाहर की ओर प्रवाहित रहेगी तब तक भगवान् अलग रहेंगे और भक्त अलग रहेगा।

८१. भक्ति का असली रूप पहचान लो, तभी मंजिल तक पहुँचोगे अन्यथा संसार की मरुभूमि में ही भटकते रह जाओगे।

८२. स्तुति में तन्मयता आने पर अतिशय स्वयमेव प्रगट हो जाते हैं।

८३. लोग अतिशय को महत्त्व देते हैं पर अतिशय तो अब भक्तों का है भगवान् का नहीं। भगवान् के अतिशय तो उनके जीवन काल में ही पूरे हो चुके अतः अब अतिशय का होना हमारी विशुद्धता का परिणाम है। सत्य ही है जहाँ हमारा मन भक्ति से भर उठता है वहीं से अतिशय प्रकट होने लगते हैं।

८४. भक्ति करने से जब बाहरी बन्धन ताले-कड़ियाँ टूट सकती हैं तो क्या भीतरी कर्म बन्धन नहीं टूटेंगे?

८५. णमोकार मंत्र का माहात्म्य अद्‌भुत है जिसके श्रवण मात्र से पशु-पक्षियों ने भी सद्‌गति प्राप्त की।

८६. पूजा-भक्ति का माहात्म्य अद्‌भुत है बंधुओ! एक तिर्यंच पर्याय में जन्म लेने वाला क्षुद्र मेंढ़क भी मरकर स्वर्ग के अपार वैभव को क्षणभर में पा लेता है।

८७. भक्त को भगवान् से कुछ याचना नहीं करनी चाहिए। अरे! जिस भक्ति के बल से मुक्ति का साम्राज्य मिल सकता है उससे संसार की तुच्छ सामग्री मांगकर भक्ति को क्यों दूषित करते हो?

८८. भगवान, भगवान ही है दाता नहीं और भक्त, भक्त ही है भिखारी नहीं।

८९. कोई भी भक्त, भगवान् से यह प्रार्थना नहीं करता कि हे! भगवन् आप मेरे मस्तिष्क में विराजमान रहिये बल्कि यही प्रार्थना करता है कि आप मेरे हृदय में विराजमान रहिये। मेरा हृदय आपके चरणों में रहे और आपके चरण मेरे हृदय में सदा-सदा बने रहें।

९०. चाहे आचार्य समंतभद्र हो या आचार्य मानतुंग अथवा आचार्य वादिराज, सभी ने भक्ति का माहात्म्य दिखाया। संकट की उन विषम घड़ियों में जब कोई सहारा नहीं था तब भगवान् की पवित्र भक्ति के बल पर ही धर्म की प्रतिष्ठा कायम की। विद्वेषी राजा और प्रजा को अपनी वीतरागता से प्रभावित कर धर्मानुयायी बनाया।

९१. जब कभी भी धर्म पर, धर्मात्मा पर संकट आये उपसर्ग हुए तब भगवान् की भक्ति के प्रभाव

से ही देवों द्वारा अतिशय, चमत्कार हुए, उपसर्ग टले और धर्म की जय-जयकार हुई।

श्रद्धा/समर्पण

९२. श्रद्धा, बुद्धि से परे है लेकिन उसकी विरोधनी नहीं।

९३. श्रद्धा से अन्धकार में भी जो प्रतीत हो सकता है वह प्रकाश में संभव नहीं, प्रकाश में सुविधा मिल सकती है पर विश्वास नहीं।

९४. श्रद्धा, आस्था और अनुराग से अभिषिक्त मन में ही भक्ति का जन्म होता है।

९५. श्रद्धा का सेतु एक ऐसा सेतु है जो श्रद्धेय और श्रद्धालु की दूरी को पाट देता है।

९६. मांगने से नहीं किन्तु अधिकार श्रद्धा से मिलते हैं।

९७. श्रद्धेय की सम्पदा पर श्रद्धालु का अधिकार सहज ही होता है। विश्वास दिलाया जा सकता है पर रास्ता तो स्वयं को तय करना होगा।

९८. आस्था मस्तिष्क में नहीं हृदय में जमती है अतः हमारी आस्था का केन्द्र ज्ञान सम्पन्न मस्तिष्क नहीं बल्कि भावना सम्पन्न हृदय होता है।

९९. निज आत्मा और परमात्मा पर आस्था-विश्वास की बात ही निराली है, उस समय की भावदशा के प्रभाव से अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि सत्तर कोड़ाकोड़ी-सागर स्थिति वाले मिथ्यात्व को अन्तः कोड़ाकोड़ी कर देता है।

श्वांस-श्वांस

१००. श्वांस-श्वांस में यदि भक्ति और विश्वास जम जाये तो भवसागर से पार होने में देर नहीं।

१०१. स्वार्थ की बूँ आते ही वर्षों का जमा हुआ विश्वास भी खिसकने लगता है।

१०२. प्राचीन मंदिरों में दरवाजे बहुत छोटे बनाये जाते थे, उसका कारण है कि त्रिलोकीनाथ के दरबार में झुककर जाना जरूरी है क्योंकि अहंकार को गलाये बिना भगवद् भक्ति का आनंद आ ही नहीं सकता।

१०३. बुद्धि नहीं, हृदय ही वास्तव में भक्ति भावना तथा समर्पण का केन्द्र है। श्रद्धा की अभिव्यक्ति आचरण के माध्यम से ही होती है।

१०४. श्रद्धा जब गहराती है तब वही समर्पण बन जाती है।

१०५. किसी पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने आपको श्रद्धेय के प्रति सौंप देना ही समर्पण है।

१०६. सीता, अंजना और मैना-सुन्दरी जैसी महान् सतियों का जीवन नारी जगत् के लिये आदर्श है। उनके जीवन में कितनी ही विषम परिस्थितियाँ आईं किन्तु उन्होंने धीरज और साहस को नहीं छोड़ा। जंगलों में भटकते हुए भी धर्म तथा कर्मफल पर अटूट आस्था रखी।

❑ ❑ ❑

द्वितीय खण्ड
स्वाध्याय

स्वाध्याय मन की खुराक है। वह तन को ही नहीं बाह्य जगत् में भागते हुए मन को भी मन्त्र की तरह कीलित कर अन्तर्मुखी करता है। माँ जैसे अपने बेटे को अहित पथ से बचाकर सन्मार्ग में लगाती है, ठीक वैसे ही जिनवाणी माता भव्यात्माओं को सत्पथ पर लगाकर स्वस्थ/संपोषित करती है। भूमिका के अनुसार गुरु निर्देशन में किया गया स्वाध्याय विरागता का फल प्रदान कर, पर्त दर पर्त चेतना का शोधन करता है। आप पायेंगे कि वक्ता श्रोता और ज्ञानी अज्ञानी के स्वरूप सन्दर्भों के साथ-साथ तत्त्व-सिद्धान्त के सरस सीकरों से इस खण्ड को काफी हद तक अभिषिक्त किया गया है।

अनेकान्त/स्याद्वाद

१०७. अनेकान्त वस्तु का धर्म है और स्याद्वाद उसकी कथन पद्धति।

१०८. 'ही' एकान्त का प्रतीक है और 'भी' अनेकांत का। 'ही' में किसी कि अपेक्षा नहीं है जबकि 'भी' पर के अस्तित्त्व को स्वीकार करता है।

१०९. 'ही' देखता है हीन दृष्टि से सबको और 'भी' देखता है समीचीन दृष्टि से सबको।

११०. 'ही' पश्चिमी सभ्यता है 'भी' है भारतीय संस्कृति। भाग्य विधाता रावण था 'ही' का उपासक और राम के भीतर 'भी' बैठा था, यही कारण है कि राम उपास्य हुए हैं और रहेंगे आगे भी।

१११. 'ही' के आसपास बढ़ती सी भीड़ लगती अवश्य किन्तु भीड़ नहीं 'भी' लोकतन्त्र की रीढ़ है।

११२. हमें सबकी बात बिना पूर्वाग्रह के सुनना चाहिए यही तो अनेकान्त का मूल मन्त्र है।

११३. अनेकान्त की सहिष्णुता सभी धर्मों की विषमता का अन्त करती है तथा समझने का मार्ग खोलती है।

११४. अहिंसा धर्म की सुरक्षा के लिए अनेकान्त का आश्रय अनिवार्य है। दूसरों को द्वेष की दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति अनेकान्त का उपासक नहीं बल्कि उपहासक है।

११५. प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आईन्सटाईन के द्वारा खोजा गया 'सापेक्षता का सिद्धान्त' (Theory of Relativity) वस्तुतः जैनदर्शन की ही देन है। इसी सिद्धान्त के माध्यम से वस्तु में अनेक धर्मों की सिद्धि होती है।

११६. जो आगम के आलोक में तत्त्व व्यवस्था देखना चाहते हैं उन्हें अनेकान्त के आलोक में आगम को देखना चाहिए।

११७. भले ही आप अनेकान्त के उपासक हैं लेकिन ये एकांत है कि एकांत में ही अकेले की मुक्ति होगी, वहाँ अनेकान्त नहीं रहेगा।

११८. अनेकान्त का मर्म जानने वाला व्यक्ति तीन काल में भी किसी दार्शनिक से भिड़ेगा नहीं। हाँ... भेंट अवश्य कर सकता है।

११९. कभी निश्चय कभी व्यवहार दोनों हो लेकिन उपसंहार अनेकान्त में ही होना चाहिए। एकांतवाद की बू आने पर हम इन दोनों को नहीं पा सकेंगे।

१२०. स्याद्वाद से एकांतवाद का खंडन और अनेकान्त का मण्डन होता है।

१२१. हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना यही स्याद्वाद का सही फल है। अपना छोड़ना और पर को जोड़ना यह स्याद्वाद का फल नहीं है।

१२२. वाद-विवाद नहीं अपितु निर्विवाद होने के लिए स्याद्वाद और अनेकांत का अवलम्बन लिया गया है।

१२३. वाद् के पीछे एकांत लगाओगे तो गलत हो जायेगा। वाद् के पीछे तो स्यात् लगाओ, स्याद्वाद कहो, अनेकान्त धर्म कहो।

१२४. जैनदर्शन का हृदय है अनेकान्त और अनेकान्त का हृदय है समता। सामने वाला जो कहता है उसे सहर्ष स्वीकार करो। विश्व में ऐसा कोई भी मत नहीं है जो भगवान महावीर की देशना से सर्वथा असम्बद्ध हो।

१२५. दूसरों का विरोध करने की आदत छोड़िये, कोई कुछ कहे उसे सर्वप्रथम मंजूर करो, कैसे करो मंजूर? कि हाँ भाई! आपका कहना भी कथंचित् ठीक है। कथंचित् यह एक ऐसा शब्द है जिसके माध्यम से हम सभी मान्यतायें स्वीकार कर सुन्दर समाधान दे सकते हैं।

१२६. अनेकान्त की प्ररूपणा के लिए सहायक है नयवाद। जो कोई भी नीति है-अनीति है, ध्रुव है-अध्रुव है, जितने भी नयजाल हैं, वे सब नयाश्रित है।

१२७. जैन दर्शन वकालत नहीं करता अपितु जो वकालत करने के लिए विविध तर्कों से लैस (तैयार) होकर संघर्ष की मुद्रा में वकील आते हैं उन्हें साम्य भाव से सुनकर सही-सही जजमेंट (Judgement) देता है निष्पक्ष होकर निर्णय देता है।

१२८. ६ के आगे ३ होने पर ६३ का संबंध बनता है और ३ के आगे ६ होने पर ३६ का आँकड़ा। ३ के आगे होने की स्थिति में अनेकान्तात्मक वस्तु मिट जाती है, स्याद्वाद समाप्त हो जाता है और जब ६ और ३ एक दूसरे की ओर देखते हैं तब मिलन की स्थिति बनती है पीठ

दिखाने की नहीं। स्याद्वादी पीठ नहीं दिखाता किसी को।

१२९. 'ही' से हटकर यदि 'भी' की ओर हमारी दृष्टि जाती है तो समझना कि हमने वीर प्रभु के शासन को समझा। मात्र अपनी लीक पर अड़कर लड़ने का नाम वीर-शासन नहीं है।

१३०. अपने जीवन में आये वैधर्म्य विरोध और वैर आदि को छोड़ो। साम्य साधर्म्य भाव को धारण करो। तभी वीर शासन जयंती मनाना सार्थक होगी।

प्रमाण/नय

१३१. नयों में मत उलझो, नय तो मार्ग है मार्ग में सुख की अनुभूति नहीं।

१३२. नय मार्ग ही है, अब चाहे निश्चय हो या व्यवहार, इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने कहा है कि नय पक्षपात से अतिक्रान्त हुए बिना साधक को समयसार का आनंद आ ही नहीं सकता।

१३३. प्रमाण और नय में उतना ही अन्तर है जितना कि दृष्टि और दृष्टिकोण में।

१३४. अपनी दृष्टि तक सीमित रहते हुए भी दूसरों की दृष्टि पर प्रहार नहीं करना नय है।

१३५. जिस प्रकार दो नयनों के माध्यम से मार्ग का ज्ञान होता है उसी प्रकार निश्चय एवं व्यवहार इन दोनों नयों के माध्यम से मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है।

१३६. जैसे दोनों कूल परस्पर प्रतिकूल होकर भी नदी के लिए अनुकूल है ठीक उसी तरह व्यवहार नय और निश्चय नय परस्पर एक दूसरे के प्रतिकूल होकर भी आत्मा के प्रमाणरूप ज्ञान के लिए अनुकूल है।

१३७. व्यवहार और परमार्थ दोनों को जानों किन्तु अपेक्षा बनाकर परमार्थ को मुख्य और व्यवहार को गौण जानों।

१३८. कैमरे के माध्यम से बाहरी शक्ल पकड़ में आती है और एक्सरे के माध्यम से भीतरी, क्योंकि अन्तरंग को पकड़ने की शक्ति मात्र एक्सरे में है कैमरे में नहीं। अतः आप एक्सरे के शौकीन बनें कैमरे के नहीं, कैमरा व्यवहार का प्रतीक है और एक्सरे निश्चय का।

१३९. मन की चंचलता से होने वाली झगड़ालू प्रवृत्ति को दूर करने के लिये ही आगम में नयों की व्यवस्था है।

१४०. निश्चय, व्यवहार के बिना नहीं होता और जो व्यवहार होता है वह निश्चय के लिए होता है।

१४१. वह निर्णय सही नहीं है जो व्यवहार की ओर कदम नहीं बढ़ाता और वह व्यवहार भी सही नहीं माना जाता जो निश्चय तक नहीं पहुँच पाता, वो मात्र व्यवहाराभास है।

१४२. निश्चय में यदि दौड़ लगाना चाहते हो तो बदलाहट अनिवार्य है रुकावट नहीं।

१४३. जिस साध्य को सिद्ध करना है उसका लक्ष्य बनाना निर्णय है और जिसके माध्यम से साध्य सिद्ध होता है वह व्यवहार है तथा साध्य की उपलब्धि होना निश्चय है। इस तरह पहले निर्णय

होता है फिर व्यवहार और अन्त में निश्चय। निर्णय को ही निश्चय मानना हमारी आध्यात्मिक भूल है।

१४४. निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों का प्रयोग साधना में उतरे हुए व्यक्ति के लिये ही है, साधना का फल मिलने के बाद भी यदि कोई साधक नयों का प्रयोग करना चाहे तो यह ठीक नहीं। जैसे निचली कक्षा पास किये बगैर यदि विद्यार्थी ऊपर की कक्षा में बैठना चाहता है तो ठीक नहीं और पास होने के बाद भी उसी कक्षा में बैठना चाहे यह भी ठीक नहीं।

वक्ता/श्रोता

१४५. शब्द अर्थ नहीं है वह तो अर्थ की ओर ले जाने वाला संकेत मात्र है।

१४६. परमार्थ अभिव्यक्त होने पर शब्द बौने-निरर्थक से हो जाते हैं, अतः शब्दों के माध्यम से स्वयं जागें और परमार्थ की अभिव्यक्ति कर उसका रसपान करें।

१४७. शब्दों में ऐसा जादू है कि टूटता हुआ दिल जुड़ जाता है और जुड़ता हुआ टूट जाता है।

१४८. निर्भीकता, गम्भीरता व मधुरता से बोला गया शब्द ही प्रभावक होता है।

१४९. शब्दों के माध्यम से मन जितना जितना अर्थ की ओर जाता है उसकी एकाग्रता उतनी ही बढ़ती जाती है।

१५०. शब्दों को फोड़ने का प्रयास करो, उसके माध्यम से अर्थ की यात्रा करो क्योंकि शब्दों में अर्थ भरा है और अर्थ में परमार्थ।

१५१. भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है इसके अतिरिक्त उसका और क्या प्रयोजन है?

१५२. वास्तविक उपदेश वह है जिसके द्वारा हम अपने देश (आत्मा) के पास आ सकें अन्यथा वह उपदेश उपदेश नहीं पर-देश ही समझो।

१५३. पढ़ाने का उद्देश्य मात्र विद्वता की प्रस्तुति ही नहीं अपितु सामने वाले का तत्त्व के प्रति समर्पण भाव लाना ही सही अध्यापन है।

१५४. वक्ता की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता से ही उसके द्वारा कही गई बातों पर विश्वास जमता है।

१५५. अपनी प्रतिष्ठावश अज्ञात विषय के समाधान का साहस वक्ता को कभी नहीं करना चाहिए।

१५६. जो विपक्ष की बात सुनने की क्षमता नहीं रखता और बात-बात में उत्तेजित हो उठता है वह सभा मंच पर बैठने के अयोग्य है।

१५७. जैसे माँ अपने बच्चे को बड़े प्रेम से दूध पिलाती है ठीक वैसी ही मनोदशा होती है बहुश्रुतवान उपाध्याय महाराज की। अपने पास आने वालों को वे बताते हैं सांसारिक क्रियाकलापों से बचने के उपाय। उनका प्रभाव भी पड़ता है क्योंकि वे स्वयं उस प्रक्रिया की साक्षात् प्रतिमूर्ति

होते हैं।

१५८. आचरण के बिना साक्षर मात्र बने रहने से ठीक उसके विपरीत राक्षस बन जाने का भी भय रहता है।

१५९. अक्षरों के ज्ञानी पण्डित अक्षरों का अर्थ भी नहीं समझते। 'क्षर' यानी नाशवान और 'अ' यानी नहीं अर्थात् मैं अजर-अमर अविनाशी हूँ। यह अर्थ है अक्षर का; इसे समझना चाहिए।

१६०. कथन की शैली भले ही लच्छेदार शब्दों से युक्त हो किन्तु वह कथंचित् से रहित है तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं माना जा सकता।

१६१. सिद्धांत कभी भी अपना नहीं होता..... हाँ! उसे अपना जरूर सकते हैं हम। जैसे घर की दुकान हो सकती है पर घर के नाप तौल नहीं हो सकते।

१६२. वक्ता को निर्भीक होने के साथ-साथ निरीह भी होना चाहिए।

१६३. जिस वक्ता की आजीविका श्रोताओं पर आधारित है वह वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन सही-सही नहीं कर सकता।

१६४. जिस प्रकार वातावरण से प्रभावित होकर गिरगिट अपना रंग बदलता रहता है उसी प्रकार आजकल के वक्ता भी स्वार्थ-सिद्धि की वजह से श्रोताओं का माहौल देखकर आगम के अर्थ को बदलते रहते हैं।

१६५. सही वक्ता वह है जो निरीह हो, वीतरागी हो, पक्षपाती न हो, किसी भी प्रकार के प्रलोभनवश आगम को उलट-पुलट करने वाला न हो।

१६६. जिस वक्ता के मन में धन कंचन की आस और पाद-पूजन की प्यास विद्यमान है वह सत्य का उद्घाटक कभी नहीं हो सकता।

१६७. यदि कोई सिद्धान्त का गलत अर्थ निकालता है तो उस समय बिना पूछे ही उसका निराकरण करना चाहिए। यदि उस समय हम समंतभद्राचार्य जैसी गर्जना नहीं करते तो ध्यान रखिये हमारा सम्यग्ज्ञान भी दूषण को प्राप्त होगा।

१६८. आज के श्रोता की स्थिति उस माइक के समान है जो सुनता तो सबसे पहले है किन्तु उस सुने हुए को अपने पास नहीं रखता, तुरंत ही दूसरों तक पहुँचा देता है।

१६९. वक्ता की प्रामाणिकता से वचनों में प्रमाणता आती है, इसलिए उपदेश देने वाले का पद महान् और प्रामाणिक ही होना चाहिए।

१७०. जिस विषय के बारे में हमें पूर्वापर सही-सही ज्ञान नहीं है उस विषय पर हमें नहीं बोलना चाहिए। ऐसी स्थिति में यदि हम बोलते हैं, प्रवचन करते हैं तो बहुत सारे व्यवधान भी आ सकते हैं और यदि इसमें कषाय और आ जाये तब तो बहुत सारे अनर्थ भी हो सकते हैं।

१७१. बोलना तो सरल है पर हर किसी के प्रश्न का जवाब देना उतना सरल नहीं है। अतः सोच समझकर पूर्वापर विचार कर आगम परक जवाब देने की कोशिश करना, भले ही जवाब देने में देर हो जाये पर जल्दबाजी में कुछ भी बोलकर अनर्थ नहीं करना।

१७२. केवल लम्बी-चौड़ी भीड़ के समक्ष प्रवचन देने से ही प्रभावना होने वाली नहीं है बल्कि सही प्रभावना तो अपने मन पर नियन्त्रण करने से होती है।

१७३. किसी को भी उपदेश सुनाना हो तो ध्यान रहे उसे सर्वप्रथम संवेग और निर्वेग का ही उपदेश देना चाहिए ताकि इन दोनों के माध्यम से वह सरलता से समझकर अपना कल्याण कर सके ।

१७४. शास्त्र का प्रयोग अपने लिए है, दूसरे को समझाने के लिए नहीं। दूसरा यदि अपने साथ समझ जाता है तो बात अलग है किन्तु उसको बुला बुलाकर आप उपदेश दोगे तो जिनवाणी का एक दृष्टि से अनादर होगा क्योंकि वह रुचि पूर्वक सुनेगा नहीं अथवा सुनेगा तो उसका दुरुपयोग करेगा इससे आप भी दोषी माने जायेंगे।

जिनवाणी/आगम

१७५. बहुत नहीं बहुत बार पढ़ने से ज्ञान का विकास होता है।

१७६. विनय से पढ़ा गया शास्त्र विस्मृत हो जाने पर भी परभव में केवलज्ञान का कारण बनता है।

१७७. तत्त्व चिंतन एक ऐसा माध्यम है जो सभी चिन्ताओं को मिटाकर जीवन में निखार लाता है।

१७८. समयसार को कंठस्थ करने की जरूरत नहीं बल्कि हृदयस्थ करने की जरूरत है।

१७९. इस प्रचार-प्रसार के युग में कागजी फूलों से ही खुशबू नहीं आने वाली, न ही कागजी दौड़ से हम मंजिल को पा सकते हैं।

१८०. खदान खोदने से सारे के सारे हीरे ही निकलते हैं ऐसा नहीं, बहुत सारा खोदने पर जब कभी एकाध हीरा मिल जाता है इसी प्रकार बार-बार ग्रन्थों का स्वाध्याय करने पर एक अलग ढंग से सोचने का रास्ता बनता है, कुछ न कुछ नया प्राप्त होता है।

१८१. ग्रन्थों का पठन-पाठन मात्र ही कल्याणकारी नहीं है, क्योंकि वह तो शब्द ज्ञान ही है जिसे मूढ़ अज्ञ जन भी कर सकते हैं। किन्तु शब्दों से अर्थ तथा अर्थ से परमार्थ की ओर हमारे ज्ञान की यात्रा होनी चाहिए।

१८२. आप पुराणों को पढ़ना प्रारंभ कर दीजिये और उपन्यासों को लपेटकर रख दीजिये, नहीं तो उपन्यासों के साथ-साथ आपका भी न्यास हो जायेगा।

१८३. उपन्यासों को पढ़कर न आज तक कोई संन्यासी बना है और न ही आगे बनेगा। हाँ....उपन्यास की शैली में यदि हम पुराणों को देखना चाहें पढ़ना चाहें तो यह बात अलग है।

१८४. उपन्यास की शैली से मेरा कोई विरोध नहीं लेकिन भावना, दृष्टि और हमारा उद्देश्य साफ सुथरा

होना चाहिए।

१८५. जिनवाणी का कोई निर्धारित मूल्य नहीं होता, वह तो अनमोल वस्तु है उसके लिये जितना भी देना पड़े कम है।

१८६. कभी भी जिनवाणी के माध्यम से अपनी आजीविका नहीं चलाना। जिससे रत्नत्रय का लाभ होता है उसको क्षणिक व्यवसाय का हेतु बनाना उचित नहीं।

१८७. उस माँ के संस्कार सही संस्कार नहीं हैं जो अपने बेटे को मोह की निद्रा में सुलाती है किन्तु उस जिनवाणी माँ के संस्कार सही संस्कार माने जायेंगे जो हमेशा इस जीव को मोह निद्रा से जगाती है।

१८८. जिनवाणी की सही सेवा यही है कि जो सुपात्र है उसे खोजकर आप स्वाध्याय हेतु दीजिये।

१८९. अगर सम्यग्ज्ञान की रक्षा चाहते हो तो जिनवाणी माँ की भी रक्षा करो।

१९०. वास्तविक विद्वान वही है जो अनादिकालीन दुखों के विमोचन के लिए जिनवाणी की आराधना करते हैं।

१९१. श्रुताराधना रूपी फूल ही समाधि रूपी फल में ढलता है।

१९२. जिनवाणी की सही सेवा तो जिनलिंग धारण करने पर ही संभव है।

१९३. हमें पवित्र जिनवाणी में जनवाणी नहीं मिलाना चाहिए।

१९४. मन मारना यह जिनवाणी को मानना है पर मन के वश होना जिनवाणी की अवमानना है।

१९५. जिनवाणी को उसी स्थान पर सुनाना जहाँ उसका स्वागत हो सके।

१९६. निर्वाण रूप लक्ष्य को बनाकर जिनवाणी की आज्ञा पालने वाला भव्य होता है क्योंकि कहा गया है कि ''निर्वाण पुरुस्कृत:भव्य:'' और निर्वाण रूप पुरस्कार भी वही पाता है जो जिनवाणी की आज्ञा पालता है।

१९७. आप जितने बहुमान आदर और श्रद्धा के साथ जिनवाणी को पढ़ेंगे, आपके परिणाम उतने ही विशुद्ध होंगे, उतना ही आपका क्षयोपशम बढ़ेगा।

१९८. जिनवाणी के विशाल सागर में से यदि एक बूँद का भी पान कर लिया जाये तो यह आत्मा जन्म जन्मान्तरों के आताप को हर सकती है।

१९९. जिनवाणी की गंगा तो बहुत विशाल बह रही है लेकिन उससे क्या? कल्याण तो हमारा उसके घाट पर जाने में है, झुककर पानी पीने में है। एक बार प्यास बुझाकर देखो सारा जीवन तृप्त हो जायेगा।

२००. यह मनरूपी मर्कट यदि उन्मुक्त विचरण करना ही चाहता है तो आत्मार्थी इसे शास्त्रों के बगीचे में विचरण कराये।

२०१. ''आगम चक्खू साहू'' आगम ही साधु के दिव्य नेत्र हैं जिसके माध्यम से ही वह कोई चर्चा या चर्या करता है और उस आगम में प्रामाणिकता वीतरागता से आती है।

२०२. आगम एक माप है तुला है उसे समतुला होना चाहिए। कभी भी उसमें अपनी तरफ से कमी वेशी नहीं करना चाहिए।

२०३. आगम और इतिहास का अवलोकन सूक्ष्म ढँग से कर लेना चाहिए। आगम का आधार भी जवाब रूप में जब कभी नहीं देना किन्तु जो गंभीर और अच्छे ढंग से आगम का पक्ष लेकर समझने वाले हैं उन्हें ही बतलाना चाहिए।

२०४. जब तक इस धरती पर सच्चे शास्त्र हैं तब तक ही हमारी आँखें खुल सकेंगी। बंधुओं! जिनवाणी के अलावा जानकारी के लिये हमारे पास दूसरा साधन है ही क्या?

२०५. आचार्य प्रणीत आगम ग्रन्थों को पढ़कर अपने जीवन को उन्हीं के अनुरूप ढालने का प्रयास करना चाहिए। यही स्वाध्याय का, देव-शास्त्र-गुरु की उपासना का फल है। यदि यह नहीं है तो समझ लो वह सांसारिक उपलब्धि के लिये ही कारण बनेगा।

स्वाध्याय/शिक्षा

२०६. स्वाध्याय मन की खुराक है। वह तन को ही नहीं बाह्य जगत् में भागते हुए मन को भी मन्त्र की तरह कीलित कर अन्तर्मुखी करता है। माँ जैसे अपने बेटे को अहित पथ से बचाकर सन्मार्ग में लगाती है, ठीक वैसे ही जिनवाणी माता भव्यात्माओं को सतपथ पर लगाकर स्वस्थ-संपोषित करती है। भूमिका के अनुसार गुरु निर्देशन में किया गया स्वाध्याय विरागता का फल प्रदान कर, पर्त दर पर्त चेतना का शोधन करता है। आप पायेंगे कि वक्ता-श्रोता और ज्ञानी-अज्ञानी के स्वरूप सन्दर्भों के साथ-साथ तत्त्व-सिद्धांत के सरस सीकरों से इस खण्ड को काफी हद तक अभिषिक्त किया गया है।

२०७. स्वाध्याय का अर्थ मात्र लिखना पढ़ना ही नहीं है बल्कि आलस्य, असावधानी के त्याग का नाम भी स्वाध्याय है।

२०८. जिस व्यक्ति का उपयोग चर्चा और चर्या में हमेशा जागरूक रहता है उसका सही स्वाध्याय माना जाता है।

२०९. बार-बार पढ़ने से ज्ञान में रस आने लगता है यानि ज्ञान अनुभव में आ जाता है और अनुभव ही सबसे बड़ा मन्त्र है।

२१०. यह जगत् ही खुला समयसार है यदि इसे सही-सही समझोगे तो जागृति जरूर आयेगी।

२११. शरीर भी एक खुली किताब का काम कर सकता है यदि चिन्तन की कला है तो।

२१२. विचारों का मूल्य होता है मात्र शब्दों का नहीं।

२१३. वही पढ़ो, वही सीखो, वही करो जिसके उपसंहार में आत्मा सुख-शांति का अनुभव कर सके।

२१४. शिक्षा वही श्रेष्ठ है जो जन्म-मरण का क्षय करती है।

२१५. मन-वचन-काय की चेष्टा का नाम ही कर्मकाण्ड है, अतः कर्मकाण्ड ग्रन्थ को पढ़कर के कर्मकाण्ड (प्रवृत्ति) में कमी आनी चाहिए।

२१६. कुछ पंक्तियों को अंडर लाइन करना और कुछ को अंडर ग्राऊंड कर देना यह स्वाध्याय की पद्धति ठीक नहीं।

२१७. स्वाध्याय करने वाले के पास ध्यान नहीं भी हो किन्तु चर्या जिसके पास है उसके पास हर समय ध्यान है सावधानी रहती है।

२१८. भावश्रुत का साक्षात्कार करने में द्रव्यश्रुत माध्यम बनता है। शब्द से अर्थ की ओर और अर्थ से भाव की ओर बढ़ना ही स्वाध्याय का मूल लक्ष्य है।

२१९. स्वाध्याय, अध्ययन आदि के समय आदान-प्रदान जैसा व्यवहार देखने में आता है किन्तु आदान-प्रदान को गौण कर उपादान की ओर दृष्टि डालना है और पूर्व की धारणाओं को बदलना है। द्रव्य-गुण- पर्याय के कथन का यही प्रयोजन होना चाहिए।

२२०. स्वाध्याय से एक दो दिन में ही आप अपनी प्रतिभा के द्वारा बहुत-सी गलत धारणाओं का समाधान पा जायेंगे लेकिन यह ध्यान रखना कि ग्रन्थ आर्ष प्रणीत (आचार्य प्रणीत) मूल प्राकृत व संस्कृत भाषा के ही हों मुख्य रूप से उन्हीं का स्वाध्याय करना चाहिए।

२२१. उत्तर जल्दी नहीं मिलने पर पाठक को निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि प्रश्न है तो उसका उत्तर अवश्य होगा, प्रश्नकर्त्ता है तो समाधान कर्त्ता है ही।

२२२. स्वाध्याय करते हुए भी जिस व्यक्ति के कदम चारित्र की ओर नहीं बढ़ रहे हैं उसका अर्थ यही है कि उसने स्वाध्याय करना तो सीख लिया किन्तु स्वाध्याय के वास्तविक प्रयोजन को प्राप्त नहीं किया।

२२३. जो व्यक्ति वस्तु तत्त्व को अंधेरे में रखता है वह स्वयं खाली हाथ रह जाता है और दूसरों को भी खाली हाथ ही रखता है।

२२४. गुरुभक्ति से विशुद्ध व्यक्ति ही विशिष्ट ग्रन्थों के अध्ययन की पात्रता रखते हैं।

२२५. स्वाध्याय बीच का आलम्बन है अन्तिम नहीं। स्वाध्याय में रत व्यक्ति स्वाध्याय में रत है स्वभाव में नहीं।

२२६. स्वाध्याय करने की योग्यता (पात्रता) के लिये प्राथमिक भूमिका में सप्त व्यसन का त्याग अनिवार्य है। वैसे सप्तव्यसन व्यवहारिक जीवन और राष्ट्र की उन्नति के लिये भी हानिकारक है। आत्मोन्नति में तो बाधक है ही।

२२७. ''स्वाध्याय परमं तपः'' कहा गया है यह बात ठीक है किन्तु ध्यान रहे तप, व्रत अंगीकार करने के बाद ही आता है। अतः व्रतों (अणुव्रत, महाव्रत) को अंगीकार किये बिना जो पठन-पाठन किया जाता है वह स्वाध्याय भले ही हो पर तप कभी नहीं हो सकता।

२२८. अकेले आहार में ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि जरूरी नहीं है किन्तु ग्रन्थों के स्वाध्याय में भी इनकी शुद्धता जरूरी है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला में इस बात पर बहुत जोर दिया है, यहाँ तक कहा है कि प्रत्याख्यान पूर्वक (कुछ त्याग करके) ही संकल्प सहित स्वाध्याय करना चाहिए।

२२९. स्वाध्याय करने वाले को चाहिए कि वह आगम के किसी भी संदर्भ को शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ आगमार्थ और भावार्थ के माध्यम से समझकर स्वयं की धारणा बनाये एवं जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान करें।

२३०. स्वाध्यायी मुमुक्षु को चाहिए कि वह वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश के क्रम को ध्यान में रखकर क्रमबद्ध स्वाध्याय करें।

२३१. प्रारंभिक चार प्रकार के स्वाध्याय की उपेक्षाकर जो व्यक्ति मात्र धर्मोपदेश में ही लगा रहता है वह व्यक्ति धर्म प्रभावक और तत्त्वज्ञ हो ही नहीं सकता।

२३२. आज कुछ, कल कुछ और परसों कुछ, कभी कोई शास्त्र कभी कोई शास्त्र यह स्वाध्याय की पद्धति नहीं है। भले ही कम ग्रन्थ पढ़ो किन्तु एकाग्रता से व्यवस्थित किया गया अध्ययन ही लाभदायी होता है।

२३३. तीर्थंकर प्रकृति के बंध में हेतुभूत सोलहकारण भावनाओं में एक भावना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेग भी है। इसका मतलब यह नहीं कि सिर्फ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध में कारण है बल्कि अभीक्ष्ण संवेग भावना (निरन्तर वैराग्य की भावना) भी तीर्थंकर प्रकृति के बंध में कारण है।

२३४. प्रथमानुयोग भले ही बहुत राउन्ड लेकर तत्त्व पर आता है किन्तु उसके पठन-पाठन से प्रशम भाव की प्राप्ति होती है, वैराग्य की ओर कदम बढ़ाने में सुविधा होती है। जिन लोगों की यह धारणा बन चुकी है कि प्रथमानुयोग ग्रन्थों में सिर्फ कथा कहानियाँ ही हैं उन्हें रत्नकरण्डक श्रावकाचार के प्रसंग को भली-भाँति पढ़ लेना चाहिए। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने प्रथमानुयोग को बोधि-समाधि का निधान कहा है। वास्तव में शलाका पुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने से कषायें शान्त होती हैं, मार्ग पर बढ़ने का साहस आता है।

२३५. करण शब्द के दो अर्थ हैं एक परिणाम और दूसरा गणित। अनुयोग के प्रसंग में करण का अर्थ गणित ही लिया गया है क्योंकि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने स्वयं कहा है कि जो शास्त्र चतुर्गति, युग परिवर्तन और लोक-अलोक के विभाग आदि का कथन करते हैं वे सब

करणानुयोग के शास्त्र हैं अर्थात् भौगोलिक जानकारी देने वाले शास्त्रों को करणानुयोग में ही गर्भित करना चाहिए। इन शास्त्रों के स्वाध्याय करने से संवेग भाव की प्राप्ति होती है।

२३६. किस ओर चलें? और कैसे चलें? इस निर्णय के बाद भी पथ में पाथेय की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति चरणानुयोग से ही होती है। सागार और अनगार की चर्या का वर्णन करने वाले इन शास्त्रों के पढ़ने से जीवों के प्रति करुणा/अनुकंपा का भाव हृदय में स्वयमेव आता है।

२३७. पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्ष और जीवादिक तत्त्वों का कथन जिन शास्त्रों में है वे सभी शास्त्र द्रव्यानुयोग के ही शास्त्र हैं। इन शास्त्रों के पठन-पाठन से विश्वास मजबूत होता है, आस्तिक्य भाव की प्राप्ति होती है अतः जो व्यक्ति जोर देकर यह कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये मात्र अध्यात्म ग्रन्थों को ही पढ़ना चाहिए उन्हें अभी और अधिक गंभीरता से द्रव्यानुयोग के विषय में चिन्तन करने की जरूरत है।

ज्ञानी/अज्ञानी

२३८. जीवन में ज्ञान का प्रयोजन मात्र क्षयोपशम में वृद्धि नहीं वरन् विवेक में भी वृद्धि हो।

२३९. ज्ञानरूपी दीपक में संयमरूपी चिमनी आवश्यक है अन्यथा वह राग-द्वेष की हवा से बुझ जायेगा।

२४०. दीपक लेकर चलने पर भी चरण तो अन्धकार में ही चलते हैं। जब चरण भी प्रकाशित होंगे तब केवलज्ञान प्रकट होगा।

२४१. प्रयोग (अनुभव) के अभाव में बढ़ा हुआ मात्र शाब्दिक ज्ञान अनुपयोगी, व्यर्थ ही साबित होता है।

२४२. स्वस्थ ज्ञान का नाम ध्यान है और अस्वस्थ ज्ञान का नाम विज्ञान।

२४३. ज्ञान स्वयं में सुखद है किन्तु जब वह मद के रूप में विकृत हो जाता है तब घातक बन जाता है।

२४४. ज्ञान की शोभा विनय, नम्रता से है वस्तुतः विनय में ही ज्ञान सफलीभूत होता है।

२४५. दुनिया का ज्ञान प्राप्त हो गया पर उससे पृथक् होने की कला नहीं आई तो वह बुद्धि किस काम की।

२४६. ज्ञान का आनंद सबको जानने में नहीं किन्तु निज रस के आस्वादन में है।

२४७. बुद्धि बढ़ने के साथ-साथ विशुद्धि भी बढ़नी चाहिए। बुद्धि के बढ़ने पर भी विशुद्धि का नहीं होना आश्चर्य की बात है।

२४८. बुद्धि कच्चे माल की तरह है और विवेक पक्के माल की तरह। बुद्धि की परिपक्व दशा का नाम ही विवेक है।

२४९. ज्ञान का प्रवाह तो नदी के प्रवाह की तरह है उसे सुखाया नहीं जा सकता, बदला जा सकता है। उसे स्वपर हित के लिये उपयोग में लाया जा सकता है।

२५०. पर द्रव्य के आकर्षण का अभाव ही तत्त्वज्ञान का फल है।

२५१. जिसे अपने-पराये का बोध नहीं उसका वह बोध, बोध नहीं बोझ है।

२५२. सम्यग्दर्शन के आठ अंग होते हैं यह प्रायः सभी को ज्ञात है किन्तु यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि सम्यग्ज्ञान के भी आठ अंग होते हैं। यदि इन अंगों का पालन किये बिना कोई स्वाध्याय, तत्त्व चर्चा या उपदेश करता है तो अब आप ही समझिये कि उसके पास कौन-सा ज्ञान है।

२५३. क्षमताओं के विकास के लिये शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है किन्तु जिन्हें स्वयमेव ज्ञान प्राप्त हो जाता है उन्हें शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

२५४. जिसका ज्ञान पञ्चेन्द्रिय विषयों से प्रभावित है वह व्यक्ति मन के माध्यम से विकास के स्थान पर अपनी आत्मा को विनाश की ओर ले जा रहा है।

२५५. ज्ञान के होने पर अनुभूति हो ही जायेगी यह कोई नियम नहीं है क्योंकि अनुभूति का संबंध चारित्र से है। हाँ...... जिस समय अनुभूति होगी उस समय ज्ञान अवश्य ही रहेगा।

२५६. ज्ञान का पदार्थ की ओर ढुलक जाना ही परम आर्त है, पीड़ा है, दुःख है और पदार्थ का ज्ञान में झलक आना ही परमार्थ है क्रीड़ा है सुख है।

२५७. शब्द ज्ञान होने के उपरान्त अब यदि भावों में और अधिक विशुद्धता लाना है तो भावज्ञान की ओर बढ़ना चाहिए।

२५८. शब्द सो बोध नहीं और बोध सो शोध नहीं। शब्दों के पौधों पर बोध के फूल खिलते हैं और बोध के फूलों से शोध के फल मिलते हैं।

२५९. बोध की चरम सीमा होने पर ही शोध हुआ करता है और वह शोध अनुभूति मूलक होता है।

२६०. पाचन क्षमता के अभाव में जिस तरह अकेले घी पीने मात्र से कोई पहलवान नहीं बनता ठीक इसी तरह अध्यात्म ग्रन्थों के स्वाध्याय मात्र से कोई ज्ञानी नहीं बनता।

२६१. ज्ञानी का मद अज्ञानियों के लिये मद का कारण बनता है।

२६२. ज्ञानी भोक्ता पुरुष भोग विलास का दास नहीं होता बल्कि उदास होकर ज्ञान की ओर बढ़ता है।

२६३. ज्ञानी का हमेशा चौबीसों घण्टे स्वाध्याय चलता रहता है क्योंकि उसकी प्रत्येक क्रिया सावधानी पूर्वक होती है।

२६४. आश्चर्य की बात है कि अनेक अज्ञानी मिलकर आज ज्ञानी की परिभाषा बना रहे हैं।

२६५. अज्ञानी को कषाय करने में आनंद आता है और ज्ञानी को कषाय जीतने में आनंद आता है।

२६६. अज्ञानी जन शरीर में ही अटक जाते हैं, रंग-बहिरंग में ही दंग रह जाते हैं। अन्तरंग में उतरते ही नहीं। हे! आत्मन् अब आत्मा के साथ ही मिलन-मिलाप करो, उसी के साथ संबंध करो।

२६७. अज्ञानी जन अन्य परिजनों को ही अहितकारी या शत्रु मानते हैं किन्तु ज्ञानी अपने निजी कर्मों एवं अशुभ भावों को ही अहितकारी मानते हैं।

२६८. क्रोध को जानना और उसे समता के साथ देखते रहना ही एक मात्र ज्ञानी का लक्षण है। जो क्रोध को न जानकर क्रोध करता है वह अज्ञानी है।

२६९. सबसे ज्यादा पश्चाताप करने वाला ज्ञानी होगा, सबसे ज्यादा दुखी ज्ञानी होगा, सबसे अधिक स्वनिंदा करने वाला ज्ञानी होगा क्योंकि यह मेरी अज्ञानता थी जो दूसरों की निंदा कर रहा था।

२७०. ज्ञान को द्रव्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। तब फिर किसी ने ज्ञान दे दिया तो उसकी प्रशंसा और किसी ने ज्ञान में बाधा डाल दी उसकी निंदा करना व्यर्थ है, मात्र भावों को विकल्पमय बनाना है।

२७१. ज्ञेयों के द्वारा यदि ज्ञान में आकुलता हो जाती है तो वह छद्मस्थ का ज्ञान है ऐसा समझना और तीन लोक के संपूर्ण ज्ञेय जिसमें झलक जायें और आकुलता न हो फिर भी सुख का अनुभव करे वही केवलज्ञान है।

२७२. ज्ञानी को शरीर संबंधी दर्द कोई दर्द नहीं पुद्गल के परिणमन का बोध मात्र है।

२७३. जिस प्रकार चक्रवर्ती षट्खंड पर विजय प्राप्त करके भी रहता अयोध्या में ही है। इसी प्रकार हम भले ही द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त कर लें, पर हमें जीव द्रव्य आत्मतत्त्व में ही रमण करना चाहिए।

२७४. जल से बाहर आते ही जैसे मछली तड़फने लगती है इसी प्रकार ज्ञानी बाल जगत् में आते ही तड़फने लगता है। वह तो हमेशा तत्त्व के आनंद में ही डूबा रहता है।

२७५. जैसे माँ अपने बेटे से अनुराग तो रखती है पर अपना कार्य करते वक्त उसे छोड़ देती है भूल जाती है ठीक इसी प्रकार ज्ञानी भी व्यवहार की क्रियायें करता तो है किन्तु अपनी ओर दृष्टि होते ही उसे भी भूल जाता है।

२७६. इस लोक में अनंत जीव हैं और अनंतानंत पुद्गल द्रव्य। इन सबका इतिहास अनंत है भविष्य भी अनंत होगा, ऐसी स्थिति में यह संसारी प्राणी अपने सीमित क्षुद्र ज्ञान से जिसे नहीं पाता उसका विकल्प क्यों करता है? और जिसे जान लेता है उसका गर्व क्यों करता है?

२७७. वह टार्च इसलिये सार्थक नहीं है क्योंकि इधर-उधर तो सबको प्रकाशित करती है पर जलाने वाले को नहीं ठीक इसी प्रकार वह ज्ञान भी ज्यादा सार्थक नहीं माना जाता जो पर पदार्थों की पहचान तो कराता है पर स्वयं की नहीं।

२७८. ज्ञान, संयम में विशुद्धता तथा कर्म निर्जरा का कारण है, अगर ज्ञान होने के उपरांत भी यह सब न हो तो उसका होना न होना बराबर है।

२७९. श्रुतज्ञान की सार्थकता तो तभी मानी जायेगी जब हेय-उपादेय की जानकारी प्राप्त कर हम हेय से बचने एवं उपादेय को ग्रहण करने का प्रयास करेंगे।

२८०. श्रुतज्ञान होने के उपरांत ध्यान के द्वारा उस ज्ञान को ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है जिसके लिये महान् संयम साधना की आवश्यकता पड़ती है। अव्रती के वश का यह काम नहीं है।

२८१. द्रव्यश्रुत एक चाबी की तरह है जिससे मोहरूपी ताले को खोला जा सकता है, किन्तु चाबी मिलने पर ताला खुल ही जाये ये बात नहीं है। उस चाबी का प्रयोग यदि हम किसी दूसरे ताले में करेंगे तो ताला कभी नहीं खुलेगा।

२८२. श्रुतज्ञान के आँगन में अभव्य जीव ग्यारह (ग्यारह अंग) तो बजा सकता है परन्तु बारह बजे (शुद्ध ध्यान समाधि) की धूप का आनंद उसके जीवन में कभी नहीं आता।

२८३. जिसने श्रुत को आत्मसात् नहीं किया वह ग्यारह अंग और नव पूर्व का पाठी होकर भी संसार में भटकता रहता है और जो श्रुत को आत्मसात् कर लेता है वह अन्तर्मुहूर्त में भी सर्वज्ञ बनकर संसार भ्रमण से सदा के लिये छूट जाता है। धन्य है भाव श्रुतज्ञान की महिमा जिसे शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

२८४. ज्ञान में स्थिरता अनुभव की प्रौढ़ता से आती है। अनुभव हीन ज्ञान उस बछड़े की तरह है जो अपनी माँ के आगे उछलकूद करता है, छलांगें लगाता है किन्तु शीघ्र ही थककर मुँह नीचे किये अपनी माँ के पीछे हो जाता है और पुनः पुनः उछल-कूद करता है।

२८५. जैसे सर्कस में दहाड़ता हुआ सिंह भी रिंग मास्टर को खा नहीं सकता ठीक उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव का, दहाड़ते हुए कर्मरूपी सिंह भी कुछ अहित नहीं कर सकते, क्योंकि वह हमेशा सावधान रहता है।

२८६. जिस व्यक्ति को निर्जरा तत्त्व के प्रति बहुमान है वह व्यक्ति सम्यग्दृष्टि होकर आलसी बनकर घर में नहीं बैठेगा, पूजन की बेला नहीं टालेगा और यदि टालता है तो वह सम्यग्दर्शन का पोषक नहीं है।

२८७. सम्यग्दर्शन के साथ अनंत राग का सद्भाव हो ही नहीं सकता क्योंकि अनंत राग अनंतानुबन्धी और मिथ्यात्व का प्रतीक है।

२८८. सराग सम्यग्दर्शन के साथ चिन्तन का जन्म होता है किन्तु वीतराग सम्यग्दर्शन में चिंतन चेतन में लीन हो जाता है। सराग सम्यग्दर्शन में ज्ञान को सम्यक् माना जाता है जबकि वीतराग सम्यग्दर्शन में ज्ञान स्थिर हो जाता है।

२८९. जिस व्यक्ति में साधर्मी भाईयों के प्रति करुणा नहीं, वात्सल्य नहीं, कोई विनय नहीं वह मात्र सम्यग्दृष्टि होने का दंभ कर सकता है, सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता।

२९०. सांसारिक अनेक पाप के कार्य करते हुए भोग को निर्जरा का कारण कहना और भगवान की पूजन-दानादि क्रियाओं को मात्र बंध का कारण बतलाना यह सारा का सारा जैनसिद्धांत का अपलाप है।

२९१. जो व्यक्ति बिल्कुल निर्विकार सम्यग्दृष्टि बन चुका है और जिस व्यक्ति की दृष्टि तत्त्व तक पहुँच गयी है, उसके सामने वह भोग सामग्री है ही नहीं, उसके सामने तो वह जड़ तत्त्व पड़ा है। उस व्यक्ति के लिये कहा गया है कि तू कहीं भी चला जा तेरे लिये सारा संसार ही निर्जरा का कारण बन जायेगा।

२९२. सम्यग्दृष्टि (वीतराग सम्यग्दृष्टि) का भोग निर्जरा का कारण है ऐसा कहा गया है लेकिन ध्यान रखना भोग कभी निर्जरा का कारण नहीं हो सकता। यदि भोग निर्जरा का कारण हो जाये तो क्या त्याग बंध का कारण होगा?

तत्त्व सिद्धान्त

२९३. जिस प्रकार नवनीत दूध का सारभूत रूप है, वैसे ही करणलब्धि सब लब्धियों का सार है।

२९४. प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना-अपना पाप-पुण्य है, अपने द्वारा किये हुए कर्म हैं। कर्मों के अनुरूप ही सारा का सारा संसार चल रहा है किसी अन्य के बलबूते पर नहीं।

२९५. प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्त्व अलग-अलग है और सब स्वाधीन स्वतंत्र हैं। उस स्वाधीन अस्तित्त्व पर हमारा कोई अधिकार नहीं जम सकता। फोटो उतारते समय हमारे जैसे हाव-भाव होते हैं वैसा ही चित्र आता है, इसी तरह हमारे परिणामों के अनुसार ही कर्मास्रव होता है।

२९६. देव, शास्त्र, गुरु कहते ही सर्वज्ञता की ओर दृष्टि न जाकर प्रथम वीतरागता की ओर दृष्टि जानी चाहिए क्योंकि वीतरागता से ही सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है।

२९७. कार्य हो जाने पर कारण की कोई कीमत नहीं रह जाती लेकिन कार्य के पूर्व कारण की उतनी ही कीमत है जितनी कार्य की।

२९८. साध्य के बारे में दुनिया में कभी विसंवाद नहीं होते, विसंवाद होते हैं मात्र साधन में। मंजिल में विसंवाद कभी नहीं होता, विसंवाद होता है मात्र पथ में।

२९९. पथ पहले विचारों में बनते हैं तदनुरूप विचारों के पथ आचरण में आते हैं।

३००. हम उत्सर्ग (मुख्य) मार्ग पर उपसर्ग न करें और न ही अपवाद (गौण) मार्ग का अपवाद।

३०१. एकांत से निमित्त को मुख्य मानकर उसकी ओर ही देखने से उपादान में कमजोरी आती है।

३०२. दृश्य में सुख नहीं दृष्टा में सुख है, ज्ञेय की कीमत नहीं ज्ञाता की कीमत है, भोग्य की नहीं भोक्ता

की कीमत है। अतः हमें ज्ञेय से ज्ञाता और दृश्य से दृष्टा की ओर जाना चाहिए।

३०३. आँखें हों तो दृश्य समाहित हो सकते हैं लेकिन आँखों के अभाव में दृश्यों के ढेर भी लगा दिये जायें तो कुछ नहीं। क्योंकि जहाँ पर दृश्य है और दृष्टि नहीं तो आप सृष्टि का निर्माण भले ही करते चले जाइये, तृप्ति तीन काल में भी मिलने वाली नहीं।

३०४. जो व्यक्ति हित के पथ पर नहीं चलता वह दूसरों का भी हित नहीं कर सकता। हित की बात कर सकता है वह किन्तु हित से मुलाकात नहीं। हित की बात करना अलग है और हित से मुलाकात करना अलग। मुलाकात में साक्षात्कार (अनुभूति) है बात में नहीं।

३०५. वीतरागता आत्मा का स्वभावभूत गुण है उसके बिना हमारा कल्याण नहीं हो सकता।

३०६. सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में भी केवलज्ञान/सर्वज्ञत्त्व नहीं झलकता बल्कि मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में भी भगवान् की वीतरागता झलक जाती है अतः वह भी बिना विरोध के झुक जाता है वीतरागी के चरणों में।

३०७. सर्वज्ञ भगवान् ने विश्व को जाना, विश्व के ज्ञेय रूप तमाम पदार्थों को जाना, देखा किन्तु आनंद की अनुभूति उन्होंने विश्व में नहीं की, अपितु ''निजानंद रसलीन'' यानि सकल ज्ञेय के ज्ञायक होकर भी भगवान् निज आत्मा के आनंद में ही लीन रहते हैं।

३०८. संवेदनशीलता, अनुभव करना आत्मा का लक्षण है। केवलज्ञान आत्मा का लक्षण नहीं वह तो आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव की प्राप्ति उपयोग पर श्रद्धान करने से होती है इसके अलावा उसे पाने का और कोई भी रास्ता नहीं।

३०९. वैज्ञानिक पर वस्तुओं की खोज में ही अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं, वे केवल ज्ञेयों तक ही सीमित है किन्तु ज्ञाता की ओर उनका लक्ष्य नहीं।

३१०. पुण्य से नहीं पुण्य के फल से डरो नियम से मुक्ति पाओगे। क्योंकि पुण्य के फल का भोग आरंभ आदि के बिना नहीं हो सकता और आरंभ आदि में हिंसादि पाप होता ही है।

३११. बचाने के भाव को हम कभी भी हिंसा नहीं कह सकते। यदि बचाने के भाव को हिंसा कहा जाये तो समिति को भी हिंसा कहना पड़ेगा। जो आगम के लिये इष्ट नहीं है।

३१२. संयम कौन-सा तत्त्व है? संवर तत्त्व है। जिनमूर्ति में संवर के दर्शन करते हैं क्योंकि यहाँ संयम है। हम निर्जरा को देखते हैं क्योंकि वीतरागता है। मोक्ष देखते हैं क्योंकि कर्मबंध नहीं है। जो संयम से केवल आस्रव मानता है उसे पोथी ग्रन्थ बंद कर देना चाहिए।

३१३. उदासीन निमित्त को हम अपनी तरफ से जुटा नहीं सकते, उसमें हमारा पुरुषार्थ संभव नहीं किन्तु प्रेरक निमित्त को पुरुषार्थ के बल पर जुटा सकते हैं।

३१४. सिद्धान्त के अनुरूप श्रद्धान बनाओ। तत्त्व को उलट-पलट कर श्रद्धान नहीं करना है। हमें

अपने भावों को तत्त्व सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तित करना है, जैसे रेडियो में सुई के अनुसार स्टेशन नहीं लगती बल्कि स्टेशन के नम्बर के अनुसार सुई को घुमाने पर ही विविध भारती, सीलोन आदि स्टेशन लगती है।

३१५. निर्जरा तत्त्व के उपरान्त कोई पुरुषार्थ नहीं रह जाता। मोक्ष तत्त्व अंतिम नहीं है वह तो फल है। मोक्ष, मार्ग नहीं है मार्ग जो कोई भी है वह संवर और निर्जरा ही है। अब यदि मार्ग में ही स्खलन हो गया, विषमता आ गई तो ध्यान रखना वहाँ मोक्ष नहीं किन्तु मोह मिलेगा।

३१६. जिस प्रकार दही में से नवनीत निकालने के लिये मटकी, मथानी आदिक आवश्यक साधन हो जाते हैं उसी प्रकार शुद्धात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिये यह दिगम्बरत्व और भेदरत्नत्रय रूप साधन अंगीकार करना नितांत अनिवार्य है जिसके माध्यम से ही उस परम साध्य तत्त्व की उपलब्धि होती है।

३१७. जो शाश्वत है उसी का अनुभव किया जा सकता है। जो नश्वर है पकड़ते-पकड़ते ही चला जाने वाला है उसका अनुभव नहीं किया जा सकता। कहने का मतलब है द्रव्य दृष्टि रखकर निर्विकल्प होने की साधना करो, पर्यायों में आसक्त (उलझकर) होकर संकल्प-विकल्प का जाल मत बनाओ।

३१८. जो विश्व को जानने का प्रयास करेगा वह सर्वज्ञ बन नहीं सकता किन्तु जो स्वयं को जानने का प्रयास करेगा वह स्वयं को तो जान ही लेगा साथ ही सर्वज्ञ भी बन जायेगा।

३१९. सर्वज्ञत्व आत्मा का स्वभाव नहीं है यह उसके उज्ज्वल ज्ञान की परिणति मात्र है। अतः व्यवहार नय की अपेक्षा से कहा जाता है कि भगवान सबको जानते हैं किन्तु निश्चयनय से ज्ञेय-ज्ञायक संबंध तो अपना, अपने को, अपने साथ, अपने लिये, अपने से, अपने में जानने-देखने से सिद्ध होता है। ऐसा समयसार का व्याख्यान है।

३२०. आत्मा में जो मूर्तपना आया है वह पुनः अमूर्तता में ढल सकता है, क्योंकि वह संयोगजन्य है, स्वभाव जन्य नहीं। इस प्रकार एक अलग ही तरह का मूर्तपना इस जीव में तैयार हुआ है जिसे न जड़ का कह सकते हैं न चेतन का। ग्रन्थों में इसे चिदाभासी कहा गया है।

३२१. आत्मा वर्तमान में अमूर्त नहीं है किन्तु वीतरागता के माध्यम से वह अमूर्त बन सकती है। कर्म का संबंध आत्मा के साथ अनादिकाल से है और विशेष बात यह है कि मात्र कर्म, कर्म से नहीं बँधा है बल्कि कर्म और आत्मा का एक क्षेत्रावगाह रूप संबंध हुआ है। जिसका विघटन या तो सविपाक निर्जरा के माध्यम से हो सकता है या अविपाक निर्जरा से। मुक्ति की प्राप्ति के लिये हमें अविपाक निर्जरा ही अभीष्ट है।

३२२. पाप चोर है और पुण्य पुलिस। शुद्ध भाव सेठ साहूकार के समान है। साहूकारों को खतरा चोरों से रहता है न कि पुलिस से और चोरों को पुलिस से हमेशा ईर्ष्या रहती है।

३२३. अशुभोपयोग और शुभोपयोग में उतना ही अन्तर है जितना कि सन्ध्या और प्रभात की लाली में। जिसमें संध्या समय की लाली निशा की प्रतीक है, सुलाने वाली है किन्तु प्रभात की लाली ताजगी की प्रतीक है, जगाने वाली है।

३२४. पूजन, दान, स्वाध्याय आदि श्रावक के कर्त्तव्य हैं। इन कर्त्तव्यों के प्रति हेय बुद्धि कभी नहीं लाना, हाँ! कर्तृत्व के प्रति जरूर लाना।

३२५. पुलिस के कारण नहीं, चोर, चोरी के कारण जेल जाता है। देवों के कारण नहीं, सीता की जय जयकार शील के कारण हुई।

३२६. हम सब ब्रह्मा के अंश नहीं हैं किन्तु हम सबमें ब्रह्मा जैसे अंश हैं। भरत जी घर में वैरागी.....यह पद बहुत अच्छा लगता है, हम भी कहते हैं, पर जरा ध्यान तो दो कौन सा भरत घर में वैरागी था? चक्रवर्ती भरत या राम का भैय्या भरत। यह भी एक विचारणीय बात है।

३२७. सम्यग्दर्शन अनुकम्पा की अपेक्षा नवनीत की तरह कोमल है किन्तु सिद्धान्त की अपेक्षा वज्र से भी ज्यादा कठोर है।

३२८. दर्शन विशुद्धि, मात्र सम्यग्दर्शन नहीं है, दृष्टि में निर्मलता होना दर्शन विशुद्धि है और दृष्टि में निर्मलता आती है तत्त्व चिंतन से।

३२९. जिस प्रकार ललाट पर बिन्दी के अभाव में स्त्री का संपूर्ण शृंगार अर्थहीन है, मूर्ति के न होने पर जैसे मंदिर की कोई शोभा नहीं है। उसी प्रकार बिना संवेग के सम्यग्दर्शन कार्यकारी नहीं है। संवेग सम्यग्दृष्टि साधक का अलंकार है।

३३०. कारण में कार्य का दर्शन कभी नहीं होता अतः कारण को कार्य में ढ़ालने का प्रयास करो।

३३१. कार्य समय (काल) के अनुसार नहीं होता किन्तु भावों के अनुसार होता है। यदि समय के अनुसार कार्य हो तो समय असंख्यात है और जीव अनंत, फिर विरोधाभास आयेगा।

३३२. विश्व अनादि-अनिधन एवं स्वयं व्यवस्थित है इसमें परिवर्तन असंभव है अतः इसे हठात् परिवर्तित करने का मन में भाव लाना व्यर्थ है। जो समीचीन रूप से शुद्ध गुण पर्यायों की अनुभूति करता है, उनको जानता है पहचानता है उनमें व्याप्त होकर रहता है, वही अनुभूति आत्मसार है, समयसार है।

३३३. जिस द्रव्य से अशुद्ध पर्यायें निकल रही हैं वह द्रव्य अशुद्ध ही है क्योंकि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि द्रव्य का परिणमन तो शुद्ध हो और उसके परिणाम/पर्यायें अशुद्ध निकलें।

३३४. मात्र पर्याय ही अशुद्ध है ऐसा कहना ठीक नहीं है बल्कि द्रव्य और गुण भी अशुद्ध है अतः पर्याय की ओर दृष्टिपात न करते हुए द्रव्य और गुण को माँजने का प्रयास करो।

३३५. पर्याय दृष्टि को अपनाने से ही उपयोग में पक्षपात की तरंगें उठती हैं।

३३६. उपलब्ध इन्द्रिय विषयों में अरुचि भाव होना तत्त्व प्रतीति की ही पहचान है।

३३७. भावों को प्राञ्जल बनाने के लिये तत्त्व चिन्तन जरूरी है तथा दीनता एवं मान का अभाव आवश्यक है।

३३८. जैसे-जैसे तत्त्व समझ में आता है वैसे-वैसे उसका महत्त्व भी बढ़ता जाता है।

३३९. जीवन का लक्ष्य मात्र तत्त्वचर्चा ही नहीं बल्कि आत्मोपलब्धि भी होना चाहिए।

३४०. जो भाषाविद् नहीं है वह भावविद् भी नहीं ऐसा निर्णय करना गलत है।

३४१. भाषा की परिभाषा बनाई जा सकती है पर भावों की नहीं।

३४२. उत्तम चारित्र और समता आना ही सब शास्त्रों का सार है।

३४३. जनता की भीड़ से अधिक घातक विचारों की भीड़ है।

३४४. तर्क-वितर्क ही नहीं किन्तु सतर्क (सावधान) भी होना चाहिए।

३४५. यह पर है वह पर है फिर भी उसी में जीव तत्पर है, यह सब नाटक मोह का है।

३४६. जमाने के अनुसार हम बदल सकते हैं लेकिन सिद्धान्त नहीं बदल सकते।

३४७. जब मिथ्यात्व का विमोचन होता है तब सत्य की पहचान होती है और जब राग-द्वेष का विमोचन होता है तब उस सत्य की उपलब्धि।

३४८. सभी कलायें व मिथ्याज्ञान प्राप्त करना तो सरल है किन्तु तत्त्व ज्ञान व प्रमाद से रहित होना बहुत ही दुर्लभ है।

३४९. प्रभु की देशना में बाहरी बातें भले ही चलती रहें लेकिन वे सब भीतर के लिये ही चलती हैं।

३५०. बाहर का कोई भी निमित्त भगवान बनने के लिये सिर्फ दिशा-बोध दे सकता है पर बनना हमें ही होगा।

३५१. आज के लोग मंद बुद्धि वाले भी है और वक्र भी। मंद बुद्धि से मतलब जो जाने नहीं और वक्र बुद्धि से अभिप्राय जो माने नहीं। आज का आदमी जानता भी नहीं है और मानता भी नहीं है ऊपर से तानता और है।

३५२. जिस समय वैराग्यमयी ज्ञान किरण आत्मा में उद्भूत होती है उस समय हम समस्त विश्व को भूल जाते हैं और अपने उपादेयभूत आत्म तत्त्व की आरती उतारना प्रारंभ कर देते हैं। वह पावन घड़ी हम सब को कब उपलब्ध होगी।

३५३. नाशा दृष्टि का मतलब क्या? न आशा, नाशा। किसी भी प्रकार की आशा नहीं रही अब, इसी का नाम है नाशा। यदि दृष्टि कहीं अन्यत्र चली गई तो समझिये कि नियम से अभी आशा है और यह आशा हमेशा-हमेशा निराशा में घुलती रही है।

३५४. विरागी की दृष्टि रागी को देखकर भी राग में विरागता का अनुभव करती है और रागी की दृष्टि

विरागता को देखकर विरागता में भी राग का अनुभव करती है। यह किसका दोष है? यह किसका फल है? क्या करें भाई! जिसके पेट में जो है वही तो डकार में आयेगा।

३५५. जिस समय राग-द्वेष उसी समय आस्रव। यह प्रक्रिया अनादिकाल से चल रही है। जब तक यह नहीं रुकेगी तब तक आप बंधन से मुक्त नहीं होंगे। इसलिये नये बंध से डरो, जो कर्म उदय में आ रहा है उससे मत डरो, वह तो जा रहा है।

❑ ❑ ❑

विशेष

१. माँगने वाला परमाणु से भी तुच्छ और न माँगने वाला स्वाभिमानी अनन्त आकाश से भी महान् होता है।

२. साधक को मूक नहीं मौनी बनना चाहिए।

३. अपरिचित अवस्था में पास बैठा शत्रु भी शत्रु रूप नहीं लगता, अपरिचय का आनंद ही कुछ और होता है।

४. साधक समाज से जितना दूर रहता है, समाज की आस्था भी उस त्यागी के प्रति विशेष होती है।

५. शुद्धात्म स्वभाव के संस्कार प्रतिक्षण साधक को स्वयं में डालते रहना चाहिए, लक्ष्यभूत को प्रतिपल गुनगुनाते रहना चाहिए। ये संस्कार ही भविष्य में प्रकट परमात्म-पद को प्रदान करते हैं।

६. स्वार्थ जहाँ से चला जाता है, वहाँ से समर्पण प्रारम्भ हो जाता है।

७. पाप के डर से मर्यादा में रहना चाहिए, इसी का नाम अनुशासन है।

८. हम अपने पर अधिकार न रखकर दुनियाँ पर अधिकार जमाने का भाव करते हैं, यही संसार की जड़ है।

९. जैसी भावना शरीर के प्रति है वैसी ही आत्मा के प्रति हो जावे तो मनोभावना पूर्ण हो जावेगी।

१०. लौह के साथ जैसे अग्नि की पिटाई हो जाती है,वैसे ही इस देह की सौबत में आत्मा की पिटाई हो जाती है। शरीर और आत्मा का अभेद सम्बन्ध हल्दी चूना जैसा है।

तृतीय खण्ड
साधना

साधना; ध्यान, समाधि और निर्वाण की आधारशिला है। मोक्षमार्गी साधक अध्यात्म के सहारे वैराग्य की जिस भाव-भूमि पर खड़ा होता है वहाँ उसे कई बार अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है, ऐसे क्षणों में साम्य रस पायी वह साधक अपने आपको सम्हालता है तथा इष्ट ध्येयभूत साध्य का संवेदन कर पुन: साधना में प्रवर्तने का बल प्राप्त करता है। तप-त्याग, मार्ग-मार्गी और समता-पुरुषार्थ परक वाक्य सूत्र विद्या भारती से जो भी झरे उन्हें समेटकर सहेजा गया है इस साधना खण्ड में।

रत्नत्रय

३५६. रत्नत्रय वह अमूल्य निधि है जिसकी तुलना संसार की समस्त सम्पदा से भी नहीं की जा सकती।

३५७. रत्नत्रय की कीमत, उसकी क्षमता अद्‌भुत है बंधुओ! अन्तर्मुहूर्त हुआ नहीं कि यह जीव केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण भी पा सकता है।

३५८. भव्यत्व की पहचान भले ही सम्यग्दर्शन के साथ हो सकती है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति रत्नत्रय के साथ ही होगी।

३५९. रत्नत्रय ही हमारी अमूल्य निधि है, इसे बचाना है। इसको लूटने के लिये कर्म चोर सर्वत्र घूम रहे हैं। जागते रहो, सो जाओगे तो तुम्हारी निधि लूट जायेगी।

३६०. रत्नत्रय में तपन के बिना चमक नहीं आती अत: उसे भी बारह तपों से तपाना आवश्यक है।

मोक्षमार्ग

३६१. निरीहता और निर्भीकता के बिना हम मोक्षमार्ग पर सही-सही कदम नहीं बढ़ा सकते।

३६२. त्यागी जनों की त्यागवृत्ति देखने से रागी जनों की रागवृत्ति में कमी आती है।

३६३. बाहर में गुणीजनों को देखकर व अन्दर में आत्मस्वभाव को देखने से चारित्र में निखार आता है।

३६४. चाहे श्रावक हो अथवा साधु, वही कार्य करे जो मोक्षमार्ग में शोभा दे।

३६५. उलझे हुए साधुओं की अपेक्षा सुलझे हुए श्रावक श्रेष्ठ हैं और उलझे हुए श्रावकों की अपेक्षा

सुलझे हुए पशु श्रेष्ठ हैं।

३६६. मोक्षमार्ग बहुत सुकुमार है और बहुत कठिन भी। अपने लिये व्रत पालन में कठोर, दृढ़ होना चाहिए और दूसरों के लिये सुकुमार।

३६७. चलना आवश्यक है किन्तु लक्ष्य बनाकर। जब तक लक्ष्य नहीं बनता तब तक चलने को चलना नहीं कहते।

३६८. लक्ष्य बनाकर निरन्तर चलने वाली पतली नदी भी जिस प्रकार एक दिन विशाल सागर का रूप धारण कर लेती है। ठीक उसी प्रकार जिसकी दृष्टि व गति मुक्ति की ओर हो गयी है, वह एक न एक दिन विशाल केवलज्ञान रूप सत्ता को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

३६९. जैसे-जैसे हम राग-द्वेष को कम करते चले जायेंगे वैसे-वैसे अपनी आत्मा के पास पहुँचते जायेंगे।

३७०. पसीना बहाने का नाम मोक्षमार्ग नहीं है वहाँ तो समत्व, समता को धारण करना पड़ता है।

३७१. अहं बुद्धि-मम बुद्धि-तव मम्-तव मम् आदि विकल्पों से विश्राम लेना ही वास्तविक पुरुषार्थ है मोक्षमार्गी का।

३७२. प्रत्येक मोक्षमार्गी के लिये प्रशंसा अथवा निंदा करने वालों के प्रति 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' कहना चाहिए तभी वह जीवन में कुछ पा सकता है।

३७३. मोक्षमार्ग पर चलना बहुत दुर्लभ है। इस मार्ग पर शिथिलता आने में देर नहीं लगती, किन्तु देर है तो एक मात्र इस मार्ग में सफलता पाने में।

३७४. अपने में कमी आना (शिथिलता आना) अलग बात है किन्तु मार्ग को ही वैसा प्रतिपादित करना ठीक नहीं। गलत को गलत, कमी को कमी तो स्वीकार करना ही चाहिए। यदि स्वार्थ या कषाय वश उसे ही मार्ग घोषित कर देते हैं तब निश्चित मानिये वह मिथ्यात्वी अनंत संसारी है।

३७५. मार्ग पर चलते समय यदि कोई बोलने वाला मिल जाता है तो मार्ग तय करना सरल हो जाता है। गुरु निर्ग्रन्थ साधु हमारे मोक्षमार्ग के बोलने वाले साथी हैं। उनके अनुगामी बनने से हमारा मोक्षमार्ग सरल हो जाता है।

३७६. जिसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य की किरण जाग जाती है उसके चरणों में धन, सम्पदा, वैभव आदि सारे भोग्य पदार्थ स्वयमेव झुक जाते हैं।

३७७. मोह की महिमा का अन्त तब तक नहीं हो सकता जब तक स्वभाव की अनभिज्ञता जीवित रहती है।

३७८. मोह के विनाश से ज्ञान का विकास होता है और मोह के विकास से ज्ञान का विनाश।

३७९. अकेले वैराग्य से सब कुछ नहीं होता किन्तु वैराग्य के साथ-साथ विवेक और व्यवहार

कुशलता भी अनिवार्य है।

३८०. अकेले दूसरों का उपदेश सुनकर ही वैराग्य को नहीं सम्हाला जा सकता बल्कि उसे स्थिर रखने के लिये स्व पुरुषार्थ की भी आवश्यकता है।

३८१. वैराग्य की दशा में स्वागत-आभार भी भार सा लगता है।

३८२. वैराग्य के क्षेत्र में प्रचार-प्रसार की आवश्यकता नहीं है वह अपने आप ही हो जाता है।

३८३. वैराग्य की प्रबलता होने पर भी यदि तदनुकूल स्थान न मिले तो उसे स्थिर रखना दुष्कर है।

३८४. आप लोगों को भी वैराग्य होता है किन्तु धर्म से त्याग से, आत्मा से, वैराग्य होता है लेकिन आत्मा में वैराग्य नहीं होता।

३८५. अपरिचित व्यक्ति के पास रहने से वैराग्य वृद्धि को प्राप्त होता है किन्तु जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाता है धीरे-धीरे साधना में कमी आती जाती है।

३८६. आचरण के अभाव में अकेली दृष्टि का कोई महत्त्व नहीं, कोई लाभ नहीं।

३८७. दृष्टि में पहले पथ आता है और बाद में पथ पर पग पड़ते हैं।

३८८. पथ के अथ पर पग पड़ते ही पथ की इति पर स्पन्दन हो जाता है।

३८९. भीतरी आँख जितनी पवित्रता से खुलेगी उतना ही पवित्र पथ देखने में आयेगा। ज्यों ही इसमें दूषण आने लग जायेंगे तो पथ की पवित्रता भी समाप्त हो जायेगी।

३९०. आँखों के द्वारा जिसे हम देखते हैं उसकी पूर्ति चरण करते हैं।

३९१. मंजिल की प्राप्ति मात्र ध्येय बनाने से नहीं, बल्कि कदमों के बढ़ाने से होती है।

३९२. आँखों की पूजा आज तक किसी ने नहीं की, सदा चरणों की पूजा होती है यानि दृष्टि नहीं, आचरण पूज्य होता है।

३९३. आस्था के स्थायी होने पर ही ज्ञान व आचरण वृद्धि को प्राप्त होता है।

३९४. आस्था से वास्ता होने पर शास्ता स्वयं रास्ता देता है साधक को।

३९५. बोलने का ही नहीं बल्कि चुपचाप आचरण का भी प्रभाव पड़ता है।

३९६. बोलना, सोचना, चेष्टा करना मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ नहीं है। किन्तु एक जगह पर शान्त चित्त से बैठकर आत्म ध्यान करना वास्तविक पुरुषार्थ है।

३९७. अध्यात्म और आचरण ही हमारे जीवन का आधार हो।

३९८. भवन को छोड़कर वन की ओर जाना पलायन नहीं बल्कि कल्याण की लाइन (मार्ग) है।

३९९. प्राथमिक दशा में अनुत्तीर्ण होकर उच्चता की चर्चा मात्र करना स्वयं को एवं अन्यों को भ्रम उत्पन्न कराना है।

४००. व्रती के लिये व्रत ही धन सम्पदा है उसकी सुरक्षा में वह दिन-रात लगा रहता है।

४०१. जो समय काटने में लगा है उसका कर्म नहीं कटता किन्तु जो व्रती हैं, कर्म काटने में लगे हैं उनका समय कब कट जाता है पता भी नहीं चलता।

४०२. व्रतियों को व्यक्तियों के नियंत्रण में नहीं किन्तु व्रतों के नियंत्रण में रहना चाहिए।

४०३. व्रत संकल्प लेने के पूर्व जितना उत्साह होता है उतना ही उत्साह उसके निर्वाह करने के लिये भी होना चाहिए।

४०४. बहुधा व्रत नियमों में शिथिलता आने पर नियम, नियम से खंडित हो जाते हैं।

४०५. व्रत रूपी वस्त्रों को साफ-सुधरा करने के लिये प्रतिक्रमण साबुन का काम करता है।

४०६. मूलगुणों या उत्तरगुणों का पालन करते समय हमें सर्वप्रथम निर्दोष व्रतों का पालन करना चाहिए। यदि दोष लग रहे हैं, तो क्यों लग रहे हैं? इस ओर ध्यान देना चाहिए तथा उन कारणों को भी दूर करना चाहिए।

४०७. संकल्प पूर्वक व्रतों का ग्रहण करना साधना का मूल है और तपस्या से सिद्धि उसकी पश्चातवर्तीदशा। फल-फूल, मूल के बिना नहीं लगते यह ठीक है किन्तु मूल में ही नहीं लगते कभी भूलकर भी।

४०८. बंधुओं! जरा ध्यान तो दो! २८ गुण ही मुक्ति के कारण हैं और २८ गुण ही संसार के कारण। मुनि के २८ मूलगुण मुक्ति के कारण हैं और असंयमी अज्ञानी के २८ गुण (पंचेन्द्रिय के विषय २७+१ मन का विषय) ही संसार के कारण हैं।

४०९. जिस तरह चश्में को उसके साथ रखे हुए कपड़े के द्वारा हम बार-बार साफ करते हैं ठीक उसी प्रकार अंगीकृत व्रतों को भी भावनाओं के द्वारा परिमार्जित करते रहना चाहिए।

४१०. दोषों के शोधन के लिये प्रायश्चित का विधान है प्रायश्चित लेना पड़ता है। व्रत में दोष लग जाने पर व्रत ही छोड़ दें ऐसा भाव कभी नहीं करना चाहिए।

४११. अपराध बोध हो जाना भी अपने आप में एक प्रायश्चित है।

४१२. परिणामों को सदा अपने दोषों को छानने में लगाना चाहिए दूसरों के दोषों को देखने में नहीं।

४१३. व्रतों के पालने से लाभ होता है जब ऐसी आस्था है, तो उन्हें ग्रहण कर यथाशक्ति निर्दोष पालन करने का ही प्रयास करना चाहिए।

४१४. तपस्वी बने बिना यशस्वी बनना संभव नहीं।

४१५. चार आना दोष पश्चाताप से नष्ट हो जाता है, चार आना गुरु को बतलाने से, चार आना प्रायश्चित लेने से और शेष बचा हुआ दोष सामायिक में बैठने से समाप्त हो जाता है।

४१६. जैसे वृक्ष की जड़ में कीड़ा लग जाने पर उसका सिंचन और संरक्षण कोई मायना नहीं रखता। ठीक इसी प्रकार शल्य (विकल्प) सहित व्रतों का पालन सार्थक नहीं है। अत: शल्य रूपी कीड़े

को निकालकर वैराग्यरूपी जल से यदि सिंचन किया जाता है तो जीवन में व्रतरूपी वृक्ष नियम से हरा-भरा होगा।

४१७. जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व ही लालिमा युक्त प्रभात बेला आ जाती है। उसी प्रकार हृदय में मुमुक्षुपन की किरण फूटते ही बुभुक्षुपन की सारी ज्वाला शान्त हो जाती है, अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है। सारा का सारा वैभव साम्राज्य जीर्ण-तृण के समान दिखाई देने लगता है।

४१८. जब तक बुद्धि, इन्द्रियों की क्षमता और शरीर ठीक है तभी तक धर्म ध्यान तपस्या आदि कर लेना चाहिए, अन्यथा अन्त में पश्चाताप ही हाथ लगता है। बंधुओ! घर में आग लगने पर कुआँ खुदवाना क्या उचित है?

४१९. उपशम यानि कषायों का शमन भाव ही मुमुक्षु के लिये अजेय और अमोघ शस्त्र हैं। इस शस्त्र के द्वारा दुनिया को नहीं अपनी आत्मा को जीतकर कर्मों को परास्त करना है।

४२०. संसारी प्राणी को मोक्षमार्ग पर चलने के लिये पर्याय की हेयता बताना जरूरी है क्योंकि उसके बिना उसकी दृष्टि पर्याय से हटकर त्रैकालिक द्रव्य तक नहीं पहुँचती।

४२१. कैसा भी कर्म का उदय आ जाये अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल, उसमें भी अन्दर विश्वास तो यह है कि अब नियम से कूल-किनारा मिलेगा। इसी परिणति का नाम श्रामण्य है।

४२२. आदेश देना कठिन कार्य है और उसका पालन कराना उससे भी अधिक कठिन। जो आदेश पालन करने की क्षमता और इच्छा रखता है उसे ही आदेश दिया जाता है और इसी माध्यम से आदेश देने वाले के पद की मर्यादा का निर्वाह हो जाता है।

साध्य/साधन

४२३. अपना उद्देश्य सिद्धि का नहीं, सिद्ध बनने का होना चाहिए।

४२४. संयम और साधना आत्मदर्शन के लिये हो, प्रदर्शन के लिये नहीं। प्रदर्शन करने से दर्शन का मूल्य कम हो जाता है यदि उसके साथ दिग्दर्शन और जुड़ जाये तो उसका मूल्य और भी कम हो जाता है।

४२५. साधन वही है जो साध्य को दिला दे। कारण वही है जो कार्य को सम्पादित करे। औषधि वही है जो रोग को दूर करे। तप वही है जो नर से नारायण बना दे।

४२६. योग साधना के लिये जीवन मिला है, भोग साधना के लिये नहीं। इस शरीर के माध्यम से ही साधना के बल पर अलौकिक आनंद पाया जा सकता है।

४२७. जीवन निश्चित ही संघर्षमय है लेकिन साधक इसे हर्षमय होकर अपनाता है।

४२८. साहस, धैर्य और सहिष्णुता नहीं होने के कारण ही चित्त विक्षिप्त-सा होता है और चित्त का चंचल होना साधक की सबसे बड़ी कमजोरी है।

४२९. इष्टानिष्ट वस्तुओं के संयोग-वियोग हो जाने पर हर्ष-विषाद नहीं करना ही वास्तविक साधना है।

४३०. प्रतिकूलता और अनुकूलता मात्र भावों की देन है।

४३१. मंत्र न ही अच्छा होता है और न ही बुरा। अच्छा बुरा तो अपना मन होता है।

४३२. हमारी साधना में कहाँ पर कमी है? और है तो क्यों? तथा उस कमी की पूर्ति कैसे होगी? ये तीन प्रश्न मन में बार-बार उठना चाहिए ताकि उसे दूर कर आगे बढ़ा जा सके।

४३३. जल के प्रतिकूल प्रवाह में भी कुशल नाविक जिस प्रकार नाव को पार लगा लेता है उसी प्रकार प्रतिकूल अवसरों पर यदि साधक अपने आपको सम्हाल लेता है तो वह बहुत कुशल साधक माना जाता है।

४३४. पुण्य के उदय में समता रखना साधक की सबसे बड़ी परीक्षा है।

४३५. सबसे बड़ा साधक वही है जिसकी साधना गुरु आज्ञा से परोक्ष में भी निर्दोष और उत्साह सहित होती है।

४३६. वास्तविक संन्यासी तो वही है जिसके ममत्व की मृत्यु हो चुकी है।

४३७. जब पुरुष, योगी बन जाता है तो सभी उसके सहयोगी बन जाते हैं।

४३८. यदि आप योगी बनेंगे तो मन आपका सहयोगी बनेगा और यदि आप भोगी बनेंगे तो मन आपको रोगी बना देगा।

४३९. साधक को निराकुल एवं एकाग्र होकर साधना करना चाहिए।

४४०. आचार्यों का उपदेश साधकों के लिये केवल इतना ही है कि वे हाथ से कल्याण का संकेत करें और मुख का प्रसाद बिखेर दें, इससे ज्यादा उन्हें और कुछ नहीं करना है।

४४१. साधक बनो, प्रचारक नहीं।

४४२. उत्कृष्ट साधकों के दर्शन करने पर ही उत्कृष्ट भाव होते हैं।

४४३. साधक को प्रवृत्ति में मूलाचार एवं निवृत्ति में समयसार का अवलम्बन लेना चाहिए।

४४४. इस संसार के दंदफंद को जानकर बचने का प्रयास करो, हे साधु! यहाँ किसी से कुछ मत कहो, गहरी चुप्पी साधो।

४४५. अभी तक मछली की तरह माया के जाल में फँसते रहे हो। अब हे साधक! ज्ञान का कोई ऐसा जाल बनाओ जिसमें माया की ही मछली फँस जाये।

४४६. अज्ञान उतना खतरनाक नहीं है जितना कि प्रमाद।

४४७. ब्रह्मचर्य अकेलेपन का द्योतक है।

४४८. ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं वरन् भोग के साथ एकीकरण और रोग से निवृत्ति है।

सही अर्थों में ब्रह्मचर्य का अर्थ है चेतन का भोग।

४४९. उपसर्ग और परिषह भेदविज्ञान की कसौटी है।

४५०. सावधानी के साथ किया गया थोड़ा-सा भी कार्य अच्छा होता है। जो कोई भी कार्य/साधना हो वह अहिंसा मूलक हो, राग-द्वेष को कम करते हुए हो।

४५१. मन का निराकुल होना साधना की अंतिम अवस्था है। उसी साधना का अभ्यास करना चाहिए। ध्याता और ध्येय जब तक अलग-अलग रहते हैं तब तक ही मन में क्षोभ रहता है।

४५२. मौन साधना वचनशुद्धि एवं सिद्धि का साधन है।

४५३ मौन से गंभीरता आती है स्व कलह समाप्त हो जाती है।

४५४. उस तप को अपनाना चाहिए जिससे इच्छा को थक्का लगे।

४५५. जिस त्याग से जीवन में निर्मलता आती है वही त्याग वास्तव में त्याग कहलाता है जिस त्याग के अनन्तर कलुषता हो वह त्याग नहीं दम्भ है।

४५६. जिसमें सहिष्णुता और धीरता इन दोनों महान् गुणों का अभाव है वे त्यागी होने के पात्र नहीं।

४५७. तृप्ति का कारण त्याग है, पूर्ति नहीं।

४५८. प्रत्येक स्थान पर त्याग का महत्त्व है कोई भी क्षेत्र त्याग के बिना फलफूल नहीं सकता। जैसे बीज का त्याग किये बिना अन्न नहीं, दूध का त्याग किये बिना नवनीत नहीं।

४५९. त्याग और चारित्र के बिना जीवन पतित ही रहेगा, कलंकित ही रहेगा। हमें अपने जीवन को कलंकित नहीं करना बल्कि अलंकृत करना है चारित्र रूपी आभूषणों से।

४६०. जिस प्रकार तपन के बिना वपन किया हुआ बीज नयेपन की ओर नहीं जाता, उसी प्रकार तपाराधना के बिना श्रमण के जीवन में साधना के नये आयाम नहीं खुलते।

४६१. प्रारंभिक दशा में जिस धूप में वनस्पति कुम्हला जाती है किन्तु आगे चलकर उसी धूप में वह हरी-भरी होती है ठीक उसी प्रकार प्रारंभ में साधना कठिन जरूर लगती है किन्तु अभ्यास करने से कालान्तर में वह सुखदायी हो जाती है।

४६२. इच्छायें गर्मी में लगने वाली प्यास के समान हैं।

४६३. वासना का वास, न तन में है, न वसन में है वरन् माया से प्रभावित मन में है।

४६४. तप वह रसायन है जिसके माध्यम से मन का पूर्णरूपेण संशोधन हो सकता है। आनंद की चरम सीमा तक पहुँचने का तप एक अनन्य साधन है।

४६५. अपना भाव क्या है? अपना कर्त्तव्य क्या है? अपना पद क्या है? इस तरह जिसका चित्त अपने बारे में ही विचार करता रहता है, समझ लो वह तप में लीन ही रहता है।

४६६. मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर कार्य करो। मैंने किया या मैं करूँ ऐसी कर्तृत्व बुद्धि से नहीं।

४६७. सम्यग्दृष्टि समय को नहीं खोता किन्तु समय में (आत्मा में) अपने आपको खोता है।
४६८. संवेग, सम्यग्दृष्टि साधक का अलंकार है।
४६९. जहाँ संवेग होता है वहाँ विषयों की ओर रुचि नहीं रह जाती, उदासीनता आ जाती है।
४७०. व्यवहार सम्यग्दर्शन फालतू नहीं वरन् पालतू है।
४७१. सम्यग्दर्शन के बिना पाप से डरना नहीं होता। संसार से भीति सम्यग्दर्शन का अनन्य अंग है।
४७२. सम्यग्दृष्टि जीव भले ही स्वयं दीक्षा न ले पर किसी को दीक्षा लेने में बाधक नहीं बनता। जो दीक्षा-शिक्षा का निषेध करता है वह नियम से संयम का प्रतिपक्षी है।
४७३. अतीत में क्या-क्या हुआ था, भविष्य में क्या-क्या होगा इसकी चिन्ता न करके वर्तमान में हमें क्या करना है, इस पर अवश्य विचार करना चाहिए। तुम्हारा अतीत भले ही पापमय रहा हो किन्तु वर्तमान यदि सच्चाई लिये है तो भविष्य अवश्य ही उज्ज्वल रहेगा।
४७४. जिस व्यक्ति के वर्तमान में अच्छे कदम नहीं उठ रहे उसका भविष्य मानो अंधकारमय ही है।
४७५. अतीत में जीना मोह है, भविष्य में जीना लोभ है और वर्तमान में जीना कर्मयोग है।
४७६. भविष्य की ओर देखने से आशा जन्मती है और अतीत की ओर देखने से स्मृति आती है।
४७७. संसार का बहुत बड़ा विस्तार है बस मुक्ति में ही सार है।
४७८. दुनिया को गौण मत करो, उसे बदलने का प्रयास मत करो, प्रयास करो अपनी दृष्टि और दृष्टिकोण को बदलने का।
४७९. तू तटस्थ होकर देख! देखना, जानना तेरा स्वभाव है लेकिन चलाकर नहीं। चलाकर देखना राग का प्रतीक है। जो हो रहा है उस होते हुए को देखिये और जानिये।
४८०. आचार्यों का दिव्य संदेश है कि कहीं अन्यत्र मत भागो। जहाँ हो वहीं ठहरो और स्वयं को जानने व पाने का प्रयास करो। बाहर में भागने से कुछ नहीं पाओगे।
४८१. खुदा का बंदा बनना आसान है किन्तु खुद का बंदा बनना कठिन है खुद के बंदे बनो।
४८२. यह जीवन तभी आनंदमयी हो सकता है जब वहाँ एकत्व हो। जहाँ अनेकत्व है वहाँ विकल्पों के सिवाय कुछ भी नहीं।
४८३. रोटी और लंगोटी की चिन्ताओं से मुक्त हुए बिना आत्मा का आनंद आ ही नहीं सकता।
४८४. जिसके चित्त में न चिन्ता है, न चिन्तन है, वह है मात्र चेतन रूप आनंद कंद किन्तु चिन्तन से पहले पर की चिन्ता से मुक्त होना जरूरी है।
४८५. जब योगी के पास बैठने से इतना आनंद आता है तो आप सोचिये योगी को कितना आनंद आता होगा।
४८६. शुभोपयोग में आकर श्रमण अपने आपको सम्हाल तो लेता है किन्तु अध्यात्म का माल तो वह

शुद्धोपयोग में ही पाता है।

४८७. वस्तुतः श्रमण की श्रमणता शुद्धोपयोग के साथ ही शोभा को पाती है।

४८८. श्रमण बनना वैसे ही दुर्लभ है किन्तु श्रमणत्व को पाना और भी दुर्लभ।

४८९. श्रम करे सो श्रमण, श्रमण का जीवन ही पुरुषार्थमय है।

४९०. परमसुख का दाता मोक्षधाम है, इसकी प्राप्ति के लिये आज से ही सभी को कटिबद्ध हो जाना चाहिए। बंधुओ! एक बार तो उस आत्मिक भाव का स्पर्श करो।

४९१. हमारी दृष्टि अन्तर्मुखी होनी चाहिए। अन्दर जाकर ही हम बाहर देख सकते हैं। हमारे महान् तीर्थंकर इस बात के शाश्वत प्रतीक हैं कि वह जितने अधिक अन्तर्मुखी हुए जगत् ने उनसे उतना ही अधिक पाया।

४९२. मेरा सही परिचय वही दे सकता है जिसने गहराई में डूबकर मुझे देखा है, ध्यान रहे! मैं देह मात्र नहीं हूँ किन्तु इस भौतिक शरीर में बैठा हुआ चैतन्य पुंज एक आत्मतत्त्व हूँ।

४९३. आक्रमण यह शब्द बाहर की ओर यात्रा का सूचक है और प्रतिक्रमण भीतरी यात्रा का प्रतीक। यदि आपको संसार से मुक्ति पाना है तो आक्रमण से परे प्रतिक्रमण की शरण में आइये।

४९४. उपयोग, उपयोग में रहे यही उसका वास्तविक सदुपयोग है। एक बार भी बोलने की इच्छा हो जाती है तो सारा का सारा उपयोग, योग में चला जाता है और अपनी धरती से खिसक जाता है।

४९५. अपने उपयोग का उपयोग, पर की चिन्ता में न करें।

४९६. मान कषाय से ऊपर उठने के लिये महासत्ता का ध्यान, चिन्तन करना चाहिए।

४९७. साधना ऐसी होनी चाहिए कि औदारिक शरीर ज्यों का त्यों बना रहे तथा कार्मण शरीर सूखता चला जाये।

४९८. जो जीवन क्रम निश्चित कर घर में कुछ साधना कर लेते हैं उन्हें आगे का मार्ग सरल हो जाता है।

४९९. रस की इच्छा जिह्वा इन्द्रिय की भूख है, पेट की भूख नहीं। साधक संयमीजन जिह्वा इन्द्रिय की नहीं पेट की भूख दूर करते हैं।

५००. न इस शरीर का शोषण करना है न ही विशेष पोषण, वरन् इसके सहारे भीतर बैठी चेतना का संशोधन करना है।

५०१. उम्र के साथ-साथ गंभीरता तो एक गृहस्थ के भी बढ़ती है किन्तु साधना के तौर पर असमय में ही गंभीरता का आना संयम का प्रभाव है।

५०२. एक क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत गृहस्थ सामायिक करते हुए भी जितनी कर्म निर्जरा नहीं कर

सकता, एक क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि महाराज आहार करते वक्त उससे भी असंख्यात गुणी ज्यादा कर लेते हैं। अहो! यह सब संयम का माहात्म्य है।

५०३. प्रचार-प्रसार के इस युग में आज साधना भी वक्तृत्व की कसौटी पर कसी जाने लगी है जो कतई ठीक नहीं है।

५०४. गुणों की प्राप्ति के लिये हमें गुणी व्यक्तियों के पास जाना चाहिए।

५०५. गुणी व्यक्ति भले ही हमारे पास आ जाये किन्तु जब तक हम उनके पास नहीं जायेंगे तब तक हमें गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

५०६. जिस प्रकार नदी का प्रवाह अपने उद्‌गम स्थान से निकलकर अपना रास्ता स्वयं बना लेता है उसी प्रकार निकट भव्य जीव के ज्ञान का प्रवाह भी अपना रास्ता स्वयं बनाता चलता है।

५०७. सबकी सब बातें सुनने के अभ्यासी तो बनना लेकिन उन सब बातों को चिन्तन का विषय नहीं बनाना।

५०८. विविक्त-शय्यासन अर्थात् एकान्तवास एक तप है जिसे साधु तपता है क्योंकि एकान्त में ही अन्दर की आवाज सुनाई पड़ती है। बोलने से साधना में व्यवधान आता है।

५०९. कषाय का यदि पूर्णतः अभाव नहीं होता तो कषाय का पूर्णतः प्रभाव भी नहीं होना चाहिए।

५१०. यह अपेक्षा न रखें कि सब आपसे सहमत होंगे और आपके कहे अनुसार चलेंगे, अगर यही आपकी चाहत है तब फिर आप एक क्षण भी तनाव से मुक्त नहीं रह पायेंगे।

५११. सामायिक में साधक अकेला होता है क्योंकि वह अपने में होता है और ऐसे समय में उसे अकेला होना भी चाहिए। किन्तु प्रवृत्ति में वह समूह में होता है और उस समय उसे समूह में होना भी चाहिए। वात्सल्य एवं सरलता के बल पर समूह में रहना आसान हो जाता है।

५१२. जितनी-जितनी लौकिकता बढ़ेगी उतनी-उतनी विशुद्धता में कमी आयेगी। अनावश्यक अप्रसांगिक क्षेत्रों में कार्य करने से ही संक्लेश परिणाम होते हैं। व्रत लेने के उपरान्त एक-एक पल का हमें सदुपयोग करना चाहिए।

५१३. वैयावृत्ति में लगा हुआ वह संयमी श्रमण स्वयं दुर्ध्यान से बचता है और जिसकी वैयावृत्ति करता है उसे भी दुर्ध्यान से बचाता है, यानि वैयावृत्ति दुर्ध्यान से बचने और बचाने में निमित्त होती है।

५१४. ग्रहण करने योग्य वस्तु जब तक पूर्णतः प्राप्त न हो जाये तब तक उसे भूलना नहीं चाहिए और त्याग करने योग्य वस्तु को छोड़ने के उपरान्त भूल करके भी याद नहीं करना चाहिए।

५१५. मन यदि चलित-विचलित होता है तो साधक को चाहिए कि वह पूर्व में किये हुए अपने कर्मों को तथा दीक्षा-तिथि को याद रखे, जिससे उपयोग निश्चित ही बदल जाता है और भावों में

दृढ़ता आती है।

५१६. मन जाता है तो जाने दो, मगर तन मत छोड़ो। क्योंकि तन जाने के बाद सम्हालना बहुत कठिन होता है जबकि मन यदि संस्कारवश चला भी जाये तो उसे सम्हाला जा सकता है।

५१७. साधनामय जीवन बार-बार नहीं मिलता, उन्नति के लिये यह एक स्वर्णिम अवसर है जो इसके मूल्य को समझता है, वह कितनी ही बाधायें, उपसर्ग, परिषह क्यों न आयें उन्हें सहर्ष स्वीकार कर अपने साधना पथ पर आगे बढ़ता है।

५१८. बरसात के दिनों में अत्यधिक जीवोत्पत्ति होने से साधु जन एक ही स्थान पर रुककर साधना अध्ययन करते हैं। वर्षावास में समशीतोष्ण वातावरण होने से ध्यान साधना के लिये अनुकूलता रहती है। श्रावक भी इन दिनों धर्म-प्रभावनादिक के कार्य ज्यादा करते हैं।

ध्यान-समाधि

५१९. मन की व्यग्रता रोकने का नाम ही ध्यान है।

५२०. चिन्तन ध्यान नहीं 'मन का व्यापार' है जबकि ध्यान तीनों योगों का पूर्ण विराम है।

५२१. आत्मा का साक्षात्कार होना यह मात्र सम्यग्ज्ञान की बात नहीं है किंतु साथ में सम्यग्ध्यान भी आवश्यक है।

५२२. समीचीन उद्देश्य बनाने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है पर उसे पूर्ण करने के लिये ध्यान की आवश्यकता है।

५२३. जिसका अशन (भोजन) और आसन पर नियन्त्रण है, वही ध्यान लगा सकता है।

५२४. मंत्र के ज्ञान, पाठ, जाप और ध्यान इन सभी में बहुत अन्तर है। सिद्धि ध्यान से होती है।

५२५. प्रवृत्ति-गत प्रमाद समितियों से और शुद्धात्मचलन रूप प्रमाद ध्यान से मिटाया जाता है।

५२६. आत्मध्यान के लिये न एयरकण्डीशन (वातानुकूलित) की जरूरत है और न किसी कण्डीशन की जरूरत है।

५२७. एयर कण्डीशन में ध्यान करने वालों की दुःख के समय कण्डीशन (हालत) बिगड़ जाती है।

५२८. जिस तरह रीढ़ को सीधा करना मात्र ध्यान नहीं है उसी तरह भीड़ जोड़ना मात्र भी ज्ञान नहीं है। ध्यान एक ऐसा प्रयोग है जिससे यह संसारी प्राणी भी ऊर्ध्वगमन कर जाता है।

५२९. ध्यान की बात करना और ध्यान से बात करना इन दोनों में बहुत अन्तर है। ध्यान के केन्द्र खोलने मात्र से ध्यान में केन्द्रित होना संभव नहीं।

५३०. प्रदर्शन की क्रिया बहुत सरल है, देखा-देखी हो सकती है उसके लिये शारीरिक, शाब्दिक या बौद्धिक प्रयास पर्याप्त है किन्तु दर्शन के लिये ये तीनों गौण हैं, उसमें तो आध्यात्मिक तत्त्व प्रमुख है।

५३१. जिस प्रकार विमान हवाई पट्टी के आधार से तीन चाकों के माध्यम से पहले दौड़ता है गति पकड़ता है और फिर आसमान में उड़ जाता है, ठीक इसी प्रकार हवाई पट्टी रूप दिगम्बरत्व के आधार से तीन चाकरूप रत्नत्रय को अंगीकार कर अभेद अखण्ड ध्यानाकाश में उड़ने का आनंद लिया जा सकता है।

५३२. प्रतिदिन कम से कम पाँच मिनिट बैठकर ध्यान करो, सोचो जो दिख रहा है सो ''मैं नहीं हूँ'' किन्तु जो देख रहा है सो ''मैं हूँ''।

५३३. तनरंजन और मनरंजन से परे निरंजन की बात करने वाले विरले ही लोग होते हैं।

५३४. जिसको शिव की चिन्ता नहीं वह जीवित अवस्था में भी शव के समान है।

५३५. यह पंचमकाल है इसमें विषयानुभूति बढ़ेगी, आत्मानुभूति घटेगी।

५३६. वर्षों हो गये दशलक्षण मनाते हुए पर एक भी लक्षण जीवन में नहीं आया, यही तो हमारी विलक्षण बात है।

५३७. ज्ञान को अप्रमत्त और शरीर को शून्य करने से ध्यान में एकाग्रता स्वयमेव आती है।

५३८. आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है इसकी सही प्रयोगशाला समाधि की साधना है।

५३९. विनय और वैयावृत्ति सीखे बिना हम किसी की सल्लेखना नहीं करा सकते।

५४०. वैयावृत्ति अन्तरंग तप है उसे यदि कोई संयमी व्यक्ति करना चाहता है तो करे किन्तु असंयम से बचकर सावधानी पूर्वक निरवद्य करे।

५४१. शल्यवान की सल्लेखना सफल नहीं हो पाती।

५४२. आधि, व्याधि और उपाधि से परे स्वस्थ समाधि होती है।

५४३. सल्लेखना जीवन से इंकार नहीं है और न ही मृत्यु से इंकार है अपितु उसमें महाजीवन की आशा है वह आत्महत्या नहीं है क्योंकि आत्महत्या में कषाय की तीव्रता एवं जीवन से निराशा रहती है।

५४४. जिसने एकान्त में शयनासन का अभ्यास किया है वही निर्भीक होकर समाधि कर सकता है और करा भी सकता है क्योंकि एकान्त में बैठने से भय और निद्रा दोनों को जीता जा सकता है।

५४५. बाहर आने पर भीतर से नाता टूट जाता है, जो भीतर की ओर दृष्टि रखता है वह धन्य है।

५४६. 'मंत्र' जहाँ काम नहीं करता वहाँ 'तंत्र' काम कर जाता है और बाहरी तंत्र जहाँ काम नहीं करता वहाँ भीतरी समाधितंत्र काम कर जाता है।

५४७. प्रयोग का निग्रह पहले होता है, योग का बाद में।

५४८. मुक्ति काल से नहीं बल्कि कारण के सम्पादन से होती है।

५४९. संसार और शरीर के प्रति राग करना मुक्ति से मुख मोड़ना है किंतु वैराग्य भाव लाना मुक्ति से

नाता जोड़ना है।

५५०. निराकुलता जीवन में जितनी-जितनी आती जाये, आकुलता जितनी-जितनी कम होती जाये उतना-उतना मोक्ष आज भी है।

५५१. चित्त की स्वस्थता के लिये चिंतन जरूरी है।

५५२. अकेले चित्र का ही नहीं किन्तु चित्त का भी अनावरण करो।

५५३. साधना की चरम सीमा ध्यान है, जिसे भीतरी एवं बाहरी वस्तुओं के त्याग करने पर होने वाली चित्त शुद्धि के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

५५४. पानी यदि रंगीन मटमैला है तो उसके अन्दर क्या पड़ा हुआ है? दिखाई नहीं देता और यदि पानी साफ-सुथरा भी हो किंतु हिल रहा हो, तरंगायित हो तब भी अन्दर क्या है? दिखाई नहीं देता अतः अन्दर झाँकने के लिये पानी का रंग और तरंग रहित होना जरूरी है। ठीक इसी प्रकार रंग (मोह) और तरंग (योग) के अभाव में ही अन्तरंग (आत्मतत्त्व)का दर्शन होता है।

५५५. आनंद प्रवृत्ति में नहीं निवृत्ति में है। पंखों को फडफड़ाते हुए पक्षी आसमान में बहुत ऊपर पहुँच जाते हैं किन्तु बीच-बीच में वह पंखों को विश्राम देकर भी उड़ते रहते हैं इस बात से सिद्ध होता है कि आत्मा का उत्तम आनंद प्रवृत्ति में नहीं किन्तु प्रवृत्ति के निरोध रूप गुप्ति में है।

५५६. मन सांसारिक विषय-कषायों में वैसे ही लगा रहता है किंतु आत्म-कल्याण में लग जाना वास्तविक ध्यान है। इसी हेतु एक-एक क्षण का उपयोग करने पर उसकी संसिद्धि हो जाती है।

५५७. केवलज्ञान और मुक्ति में उतना ही अंतर है जितना १५ अगस्त और २६ जनवरी में। केवलज्ञान का होना स्वतंत्रता दिवस और मुक्ति का होना गणतन्त्र दिवस है।

५५८. यह संसारी प्राणी किसी न किसी से अपेक्षा रखता ही है परन्तु अपेक्षा मात्र आत्मा की रही आवे और संसार से उपेक्षा हो जावे तो यह प्राणी मुक्त हो जाता है।

समता/अध्यात्म

५५९. समता भाव ही श्रामण्य है उसी में श्रमण की शोभा है।

५६०. सुख दुख कर्माश्रित है किन्तु समता आत्माश्रित, जो कि कषाय विजय की प्रतीक है।

५६१. सरलता और समता ही मेरा स्वभाव है, कुटिलता और ममता केवल विभाव।

५६२. अध्यात्म की पृष्ठभूमि वहाँ से प्रारंभ होती है, जहाँ से दृष्टि में समता आती है।

५६३. समता के साथ सुख का गठबंधन है।

५६४. अध्यात्म का आनंद समता की गोद में है।

५६५. समता के साँचे में ढला हुआ ज्ञान ही विपत्ति के समय काम आता है।

५६६. समता का विलोम है तामस। समता जीवन का वरदान है और तामस अभिशाप।

५६७. समताधारी यश में फूलता नहीं और अपयश में सूखता नहीं।

५६८. समता का अर्थ पक्षपात नहीं है किन्तु वह तो माध्यस्थ भावों की एक ऐसी भूमिका है जहाँ पर न वाद है न विवाद।

५६९. समता भाव ध्यान नहीं है वह तो राग-द्वेष से रहित एक परम पुरुषार्थ है।

५७०. साधक के लिये अन्य सभी शरण तात्कालिक हो सकती हैं पर उसे समता ही एक मात्र शाश्वत शरण है।

५७१. जरा-जरा सी बातों में क्षुब्ध होना ज्ञानी की प्रौढ़ता नहीं है, ज्ञानी की प्रौढ़ता की झलक समता में है।

५७२. जो आँखें अपमान का प्रसंग पाकर भी रक्त वर्ण की नहीं होती अपितु क्षमा-समता के दूध से भर जाती हैं वे दिव्यता को पा जाती हैं।

५७३. जो साधक वस्तुओं को न अच्छी न बुरी मानता है अपितु समता भाव रखता है वही व्यक्ति भगवान् महावीर का अनुगामी बन सकता है।

५७४. जिसे स्वरूप का ज्ञान हो गया है वह समता में आये बिना रह नहीं सकता और कभी भी वह विषमता की ओर पैर नहीं बढ़ायेगा।

५७५. समता वहीं पर टिकती है जहाँ पर किसी वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं रहती। आशा से मलीन मन में उपशम भाव नहीं आ सकते।

५७६. तलवारों का वार सहने वाले लोग आज फिर भी मिल सकते हैं लेकिन फूलमालाओं का वार सहना कितना कठिन है। इसे सहने वाले विरले ही साधक मिलते हैं बन्धुओ!

५७७. कर्म के उदय में नवीन कर्म का बन्ध हो ही यह नियम नहीं है किन्तु राग न करने वाला ज्ञानी कर्मोदय के समय समता भाव रखकर नये कर्म-बन्ध से बच जाता है।

५७८. समयसार जीवन का नाम है, चेतन का नाम है और शुद्ध परिणति का नाम है उसमें पर की बात नहीं स्व की बात है।

५७९. भूत और भविष्यत् इन दोनों को भुलाकर वर्तमान का संवेदन करना ही अध्यात्म का सार है।

५८०. 'अब' के पास आने के लिये 'तब' और 'कब' का सम्बन्ध तोड़ना होगा।

५८१. बाह्य पदार्थों को ओझल कर अपने आप में आने का नाम ही अध्यात्म है।

५८२. अध्यात्म का अर्थ झुण्ड नहीं अकेला है, द्वैत नहीं अद्वैत है, वह तो एकाकी यात्रा है।

५८३. हे मन! तू कहीं भी चला जा पर ध्यान रख, स्वरूप से बढ़कर दुनिया में कोई उत्कृष्ट वस्तु नहीं।

५८४. जिसे मरण से भीति नहीं और जन्म से प्रीति नहीं, वही अध्यात्म को पा सकता है।

५८५. अध्यात्म जब गौण हो जाता है तब पूरा का पूरा ज्ञान मिट जाता है। वास्तव में त्यागी का जीवन

अध्यात्म ही है।

५८६. जो अध्यात्म के धरातल से नीचे खिसक जाता है उसे अध्ययन की आकुलता बढ़ जाती है।

५८७. वस्तुतः अध्यात्म साधना यही है कि जो भी ज्ञान का विषय बने उसमें समता रखनी चाहिए।

५८८. अध्यात्म प्रेमी कभी बाहर में किसी से उलझता नहीं और किसी को उलझाता भी नहीं।

५८९. जिसने समयसार के कर्त्ता-कर्म अधिकार को समझ लिया वास्तव में वही अध्यात्म के रहस्य को समझ सकता है।

५९०. स्वभाव की ओर आने के लिये यह जानना आवश्यक है कि कौन किस-किस का किस रूप में कर्ता है।

५९१. इन्ट्रेस्ट (रुचि) के बिना इंटर (प्रवेश) संभव नहीं। उसके बिना भीतर अध्यात्म की बात उतर नहीं सकती।

५९२. भावना ही एकमात्र अध्यात्म का प्रवाह है अतः उस अध्यात्म तक पहुँचने के लिये अनुप्रेक्षा आवश्यक है।

५९३. इस युग में अध्यात्म शास्त्रों का असर तो हुआ है पर लगता है सर तक हुआ है।

५९४. गुरुभक्ति करते-करते जिसका हृदय शुद्ध हो गया है, आस्था मजबूत हो गई है उसे ही गुरु अध्यात्म का रहस्य उद्घाटित करते हैं।

५९५. जहाँ पर अध्यात्म जीवित है, वहीं पर आत्मा जीवित है।

५९६. आज हम उस उत्कृष्ट अध्यात्म को मात्र शब्दों में देख रहे हैं, जीवन में नहीं।

५९७. स्मृति अतीत की प्रतीक है और आशा भविष्य बनकर खड़ी है। इन दोनों पर विजय पाने वाला ही वर्तमान में निराकुलता से जी सकता है।

५९८. अध्यात्म के बिना जीवन में कोई रस नहीं रह जाता। चौबीसों घंटे बहिर्मुखी दृष्टि के साथ ही जीवन चला जा रहा है। उसे छोड़कर अध्यात्म के साथ अन्तर्मुखी साधना करनी चाहिए।

५९९. आध्यात्मिक साधना वही है, जिसमें एकमात्र आत्मा ही रह जाती है, परमात्मा भी गौण हो जाता है। इतना साहस जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में आ जाता है, वही अकेला इस परम अध्यात्म को पा सकता है।

६००. आप आनंद की अनुभूति चाहते हुए भी चाह रहे हैं कि वह कहीं बाहर से आ जाये। पर ध्यान रखना बाहर से कभी भी आने वाली नहीं है। 'बसंत की बहार' बाहर नहीं अन्दर है।

६०१. सुख-शान्ति बाहर नहीं अन्दर है। अन्दर आनंद का सरोवर लहरा रहा है उसमें कूद जाओ तो सारा जीवन शान्त हो जाये।

६०२. जहाँ पर तेरा-मेरा, यह-वह, सब विराम पा जाता है वस्तुतः वही अध्यात्म है।

६०३. लेखक, वक्ता और कवि होना दुर्लभ नहीं है, दुर्लभ तो है आत्मानुभवी होना।

६०४. सोचिये! स्वयं को छाने बगैर सारे संसार को छानने का प्रयास आखिरकार तुम्हारे लिये क्या देगा।

६०५. मैं यथाकार बनना चाहता हूँ व्यथाकार नहीं, और मैं तथाकार बनना चाहता हूँ कथाकार नहीं।

६०६. आपके भोग का केन्द्र भौतिक सामग्री है, किन्तु सन्तों की भोग सामग्री चैतन्य शक्ति है। जिसमें आत्मा के साथ सतत् भोग चलता रहता है।

६०७. अध्यात्म में उत्पाद, व्यय की अपेक्षा ध्रौव्य (सत्ता) को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसमें जो एक बार उतर जाता है वह तर जाता है।

६०८. एकान्त में शान्त चित्त से एकत्व का चिन्तन जब तक नहीं चलता तब तक संसारी प्राणी की दीनता समाप्त नहीं हो सकती क्योंकि एकत्व अनुप्रेक्षा में अपना सारा आत्म साम्राज्य सामने आता है फिर दीनता की कोई बात ही शेष नहीं रह जाती है।

६०९. पेड़ा खाना ध्यान करना है और मावा बनाना भावना भाना है। ध्यान रूपी पेड़ा खाने के लिये बारह भावना रूपी मावा बनाना जरूरी है और मावा बनाने के लिये दूध के उबलते समय वहीं पर बैठकर बार-बार आवश्यकों की चम्मच चलाना आवश्यक है।

आत्म पुरुषार्थ

६१०. स्व की ओर मुड़ना ही सही पुरुषार्थ है।

६११. पर को नियन्त्रित करने की मन की इच्छा गलत है बल्कि स्वयं को नियन्त्रित करना ही वास्तविक पुरुषार्थ है।

६१२. पहले विश्व को भूलो और आत्मा को जानो। जब आत्मा को जान जाओगे तो विश्व स्वयं प्रगट हो जायेगा।

६१३. सही रूप की प्राप्ति किसी को तब तक नहीं होती जब तक अपने स्वरूप की पहचान नहीं होती।

६१४. शरीर के प्रति वैराग्य और जगत् के प्रति संवेग ये दोनों ही बातें आत्मकल्याण के लिये अनिवार्य हैं।

६१५. आत्मबोध के होने पर संयम कभी बोझ नहीं लग सकता। जो उसे बोझ रूप महसूस करते हैं, उन्होंने अभी आत्मज वैभव को सही-सही नहीं समझा।

६१६. वीतरागता को थोपा नहीं जाता, उसे तो अपने अन्दर जाग्रत किया जा सकता है।

६१७. दुनिया से क्या बचना? कितना बचना? क्या क्या बचा पाओगे? अतः स्वयं को राग-द्वेष से बचाना ही परम पुरुषार्थ है।

६१८. अपने आपको जानो, अपने को पहचानो, अपनी सुरक्षा करो क्योंकि अपने में ही सब कुछ है।

६१९. मुक्ति के पथ पर भागो नहीं, ठहरो, स्थिर हो जाओ क्योंकि भागने में आकुलता है और ठहरने में आनंद। ठहरना ही वास्तव में विश्राम है।

६२०. अपनी आत्मा स्वयं आपको देखनी होगी। गुरु भी आत्मा को नहीं दिखा सकेंगे, सिर्फ आत्मा की बात बता सकेंगे। आत्मा दिखाने की वस्तु नहीं है, देखने की वस्तु है।

६२१. तू तटस्थ होकर देख, देखना-जानना स्वभाव है तेरा लेकिन चलाकर नहीं। चलाकर देखना राग का प्रतीक है। जो हो रहा है उस होते हुए को देखिये जानिये मगर बिगड़िये नहीं।

६२२. मिट्टी से बाँधे गये बाँध की तरह संसारी प्राणी का कमजोर उपयोग कर्मोदय के तीव्र प्रवाह में शीघ्र ही ढ़ह जाता है।

६२३. पानी की तेज धार जैसे बड़े-बड़े पाषाण खण्डों को भी बहा ले जाती है ठीक इसी तरह मोह भी एक प्रबल धारा के समान है जिसमें बड़े-बड़े साधक भी बह जाते हैं। जिसका जीवन साफ -सुथरा है वही इस धारा को पार कर सकता है।

६२४. ७० कि. मी. स्पीड वाली गाड़ी को जैसे ब्रेक लगाकर १ कि.मी. प्रति घंटे की स्पीड से कर सकते हैं ठीक इसी तरह ७० कोड़ाकोड़ी स्थिति वाले मिथ्यात्व को आत्मोन्मुखी स्वपुरुषार्थ के बल पर अन्तः कोड़ा-कोड़ी कर सकते हैं।

६२५. ज्ञान को यदि परिपूर्ण और पुष्ट बनाना चाहते हो तो आइये परिषह और तपों से गुजरिये। तप की आराधना के बिना आत्मोत्थान संभव नहीं है।

६२६. संयम की ढाल को अपने हाथ में लेकर ज्ञान की तलवार चलाने से अनंतकालीन कर्मों की फौज, जो कि भीतर साम्राज्य किये बैठी है छिन्न-भिन्न हो जाती है।

६२७. आत्म तत्त्व की उपलब्धि के लिये गहराई में उतरना पड़ता है। जो केवल तट पर ही बैठे रहते हैं उन्हें मात्र लहरें ही हाथ लगती हैं, मोती केवल गहराई में ही मिल पाते हैं।

६२८. बहुत हो गया बाहरी परिचय, और कितना? कब तक? अब तो चेतो हे चेतन! और अपने को पहचानों।

६२९. चाहे हुए अपेक्षित कार्य के सफल न होने पर हमेशा अशान्ति होती है अतः मात्र अपेक्षा न रखें किन्तु अपेक्षित कार्य सफल हो ऐसा पुरुषार्थ भी करें।

६३०. क्षेत्र और वस्तु का सदुपयोग वही कर सकता है जिसका भीतरी पुरुषार्थ चल रहा है।

६३१. हम भले ही शुद्ध-शुद्ध की चर्चा करते जायें कि आत्मा शुद्ध है, हम शुद्धाम्नाय वाले हैं किन्तु भगवान कहते हैं कि जिसका आचरण शुद्ध है उसकी आम्नाय शुद्ध है। जिसका आचरण शुद्ध नहीं उसकी आम्नाय भी शुद्ध नहीं।

६३२. आम्नाय (परम्परा) आचार और विचार की एकता से ही चलती है।

६३३. आत्म विकास के लिये वीतराग स्वसंवेदन की आवश्यकता है। स्वसंवेदन के माध्यम से हम उस तत्त्व को देख सकते हैं जिसे आज तक नहीं देखा।

६३४. जिसके माध्यम से जीवन में क्रान्ति आती है और सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है वह है वीतरागता । उसी वीतरागता की प्राप्ति के लिये यह सारे के सारे प्रयास चल रहे हैं।

६३५. सिद्ध-दशा में आत्मा अमूर्त है शुद्ध पारे की तरह उसे हम पकड़ नहीं सकते, किन्तु संसार दशा में कर्म सहित होने पर पारे की भस्म की तरह पकड़ में आ जाती है। यदि इस आत्मा को वीतरागता का योग मिल जाये तो मूर्त से अमूर्त हो सकती है।

६३६. आज भविष्य के बारे में चिन्ता है और भूत के साथ उसकी तुलना हो रही है जबकि वर्तमान पुरुषार्थ खोता जा रहा है।

६३७. जो व्यक्ति भविष्य की चिन्ता कर रहा है तो निश्चित मानिये वह वर्तमान को ठुकरा रहा है, ध्यान रहे कार्य का होना भविष्य में नहीं वर्तमान में ही संभव है।

६३८. कर्म निर्जरा करने वाला साधक महान् है। वह कुछ ही समय में आत्मा को कंचन-सा शुद्ध कर देता है।

६३९. मुक्ति तो अविपाक निर्जरा का फल है और अविपाक निर्जरा तप के माध्यम से होती है। अतः हम ऐसा तप करें जिससे आत्मा की समस्त वैभाविक कालिमा निकल जाये और एकमात्र शुद्ध स्वर्ण के समान आत्मद्रव्य शेष रह जाये।

६४०. मोक्ष पुरुषार्थ किसी वर्ग में सम्मिलित नहीं है इसलिये इसे संस्कृत में अपवर्ग कहते हैं परन्तु धर्म, अर्थ और काम आपस में सम्बद्ध है इसलिये इन्हें त्रिवर्ग कहते हैं। मोक्ष अकेला और ये तीन, फिर भी मोक्ष का सामर्थ्य देखो वह अकेला ही तीनों को समाप्त कर देता है।

६४१. जिसे दर्शन का सार मिल गया है उसे अब मात्र देखना भर नहीं है अपितु अनुभव में भी लाना चाहिए। मगर बाहरी प्रदर्शनों के चक्करों से अपने आपको पृथक् रखना चाहिए।

६४२. गुणों की अपेक्षा से सिंह बनो, श्वान मत बनो क्योंकि श्वान मात्र प्रहार को पकड़ता है जबकि सिंह प्रहार करने वाले को।

❑ ❑ ❑

चतुर्थ खण्ड
धर्म संस्कृति

धर्म संस्कृति के कथ्य में विविधता होते हुए भी इसे एक ही खण्ड में रखा गया है। धर्म जहाँ प्राणिमात्र के भीतरी-बाहरी व्यक्तित्व का दर्शन कराता है तो संस्कृति वहीं चिरन्तन चले आये आचार-विचार के प्रवाह का दर्शन कराती है। जगत् और जीवन की अनजान पहेली के रहस्यों का उद्‌घाटन करने के लिये धर्म और उन्हें मूर्तरूप देने संस्कृति के स्वर आज भी जीवंत हैं। धर्म-धर्मात्मा, तीर्थ और आचार्यों की गौरव-गाथा गाने वाले ऐसे ही कुछ विचार बिन्दु इस खण्ड में संकलित किये गये हैं। ये विचार हमारे अंदर विराजमान उस विराट तत्त्व का दर्शन कराने में सहायक बनें जो सदा से संस्कृति का उपास्य रहा है।

धर्म/धर्मात्मा

६४३. उज्ज्वल भावधारा का नाम ही धर्म है।

६४४. धर्म तो अपने श्रम की निर्दोष रोटी कमाकर देने में ही है।

६४५. 'स्व' से पलायन नहीं, 'स्व' के प्रति जागरण का नाम ही धर्म है।

६४६. आत्मा का सम परिणाम ही स्वभाव है वही समता है वही धर्म है।

६४७. धर्म, प्रदर्शन की बात नहीं किन्तु दर्शन, अन्तर्दर्शन की बात है।

६४८. आत्मधर्म देने-लेने या खरीदने योग्य नहीं है, वह तो निजी-भीतरी परिणति पर आधारित है।

६४९. धर्म वह है जिसका आश्रय लेने से प्राणी सुखी बन जाये, जो शान्ति-संतोष दिला दे और परस्पर सभी जीवों में मैत्री-वात्सल्य भाव ला दे।

६५०. धर्म वह है जो दुख के स्थान से उठाकर सुख के स्थान पर विराजमान करा देता है और अधर्म वह है जो दुख के गर्त में ढकेल देता है।

६५१. धर्म नाव के समान है। नाव उसी को पार लगाती है जो उसमें बैठता है, ठीक इसी तरह धर्म भी उसे ही पार लगाता है, जो उसे धारण करता है।

६५२. वही धर्म, जैन धर्म है, सत्य धर्म है, अहिंसा धर्म है, परम धर्म है, सनातन धर्म है, वही सर्वस्व है जो आत्म-तत्त्व की स्वतंत्र सत्ता का अवलोकन कराता है।

६५३. जिस प्रकार रत्नों में हीरा और वृक्षों में गोशीर चन्दन श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त धर्मों में अहिंसा धर्म श्रेष्ठ है।

६५४. धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित नहीं है, वह निर्बन्ध-निस्सीम है सूर्य के प्रकाश की तरह।

६५५. धर्म मात्र मानने की वस्तु नहीं अपितु महसूस करने की चीज है क्योंकि वह परिभाषा ही नहीं प्रयोग भी है।

६५६. मात्र लिखना-पढ़ना ही धर्म नहीं है किन्तु धर्म तो आत्मा के जीवन्त आचरण का नाम है।

६५७. धर्म वही है जो हमें अनुभूति कराता है, मात्र चर्चा ही नहीं चर्या भी सिखाता है।

६५८. धर्म का प्रचार-प्रसार उस पर चलने से आचरण करने से होता है।

६५९. धर्म को जानना अलग बात है किन्तु उसे जीवन में उतारना अलग बात। धर्म को अंगीकार करना श्रद्धा एवं विश्वास के बिना संभव नहीं।

६६०. जिस प्रकार अंधकार और प्रकाश एक साथ नहीं रहते उसी प्रकार धर्म और अधर्म एक साथ नहीं रह सकते।

६६१. आधुनिक विज्ञान ने आज तक मोह को क्षीण करने का कोई रसायन तैयार नहीं किया। धर्म ही वह रसायन है जो मोह को क्षीण कर देता है।

६६२. धर्म और मोह ये दोनों विपक्षी दल हैं। मोह धर्म को दबाना चाहता है और धर्म मोह को।

६६३. आज धर्म का नाम लेकर मोह का प्रचार-प्रसार खूब हो रहा है किन्तु वस्तुतः मोह के ऊपर प्रहार करने का नाम ही धर्म है।

६६४. दीन-दुखी जीवों को देखकर जो व्यक्ति आँखों में करुणा का पानी नहीं लाता, उस पाषाण जैसे हृदय से कभी भी धर्म की अपेक्षा नहीं रखी जा सकती।

६६५. धर्म का अर्थ यही है कि दीन-दुखियों को देखकर आँखों में करुणा का जल छलके, अन्यथा नारियल में भी छिद्र हुआ करते हैं।

६६६. शरणागत दीन-दुखी, असहाय जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, उन्हें संकटों से बचाकर पथ प्रशस्त करना यही क्षत्रिय धर्म है।

६६७. जिसने धर्म रूपी कील का सहारा लिया है, जिसने रत्नत्रय का सहारा लिया है वह तीन काल में पिस नहीं सकता क्योंकि केन्द्र में हमेशा सुरक्षा रहती है और परिधि में घुमाव।

६६८. दो ही धर्म का व्याख्यान शास्त्रों में आता है एक अनगार और दूसरा सागार। तीसरा कोई धर्म नहीं है, हाँ! धर्मशाला अवश्य है।

६६९. श्रावक और मुनि दो तरह के धर्म हैं जिसमें श्रावक धर्म अनुष्ठान प्रधान होता है और मुनि धर्म

अध्यात्म प्रधान।

६७०. धर्म से बढ़कर कोई भी नेकी नहीं और अधर्म से बढ़कर कोई बुराई नहीं।

६७१. धर्म के क्षेत्र में नाम नहीं काम जाना जाता है अन्यथा काम के अभाव में नाम भी बदनाम हो जाता है।

६७२. आप लोग जिस तरह धन की रक्षा करते हैं उससे भी बढ़कर आपको धर्म की रक्षा करना चाहिए। क्योंकि धर्म के द्वारा ही जीवन का निर्माण होता है।

६७३. यह जड़ की पूजा, धन की पूजा ही संसारी प्राणी को पतन के गर्त में ढकेल रही है। आत्मा की, गुणों की पूजा ही धर्म का आधार है अतः हमें जड़ की नहीं चेतन की पूजा करनी चाहिए।

६७४. हम धर्म की ज्यादा प्रभावना कर रहे हैं दूसरे नहीं। इस प्रकार के भाव जिसके मन में हैं वह धर्म की बात समझ ही नहीं रहे हैं वह अभी धर्म से कोशों दूर हैं।

६७५. धर्म की प्रभावना परमत का खण्डन करते हुए नहीं किन्तु स्वमत का मण्डन करते हुए करना चाहिए।

६७६. गंधहीन पुष्प को व्यक्ति सूंघ रहा है और सोच रहा है कि गंध क्यों नहीं आ रही है, यानि व्यक्ति धर्म के बिना जीवन जी रहा है और सोचता है कि धर्म का फल क्यों नहीं मिल रहा है।

६७७. धर्म का फल कभी निष्फल नहीं जाता। यह बात अलग है, उसके स्वाद में अन्तर आ सकता है अपने हीनाधिक परिणामों के कारण।

६७८. धर्म के क्षेत्र में आस्था और सद्भावना के साथ यदि हम तप त्याग के छोटे-छोटे बीज भी बो देते हैं तो कुछ ही समय में वह शीतलता प्रदायी विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर लेता है।

६७९. यदि आकाश समुद्र के जल का पान एवं दान बंद कर दे तो स्वयं समुद्र काँप उठेगा। यदि धर्म, त्याग और दान कराना बंद कर दे तो मानव जीवन गंदगी और दुर्भावनाओं की अग्नि से जलकर खाक हो जायेगा।

६८०. जैसे माँ अपने बच्चे को जबरदस्ती दूध नहीं पिला सकती यदि पिला भी दे तो वह वमन कर देता है। ठीक इसी तरह धर्म की स्थिति है, जबरदस्ती ग्रहण कराया गया धर्म अन्दर तक नहीं पहुँच पाता।

६८१. लघु बनकर नहीं गुरु बनकर ही धर्म का दान दिया जाता है किन्तु गुरु बनकर नहीं लघु बनकर ही कर्म का हान किया जाता है। यह तो बाहरी बात हुई, न लघु बनकर न गुरु बनकर बल्कि अगुरुलघु बनकर ही धर्म का पान किया जा सकता है।

६८२. हम ''अहिंसा परमो धर्मः'' का नारा तो बहुत लगाते हैं पर फिर भी हम जीवन में किनारा नहीं पाते, कारण सिर्फ इतना है कि समय आने पर हम धर्म से किनारा कर जाते हैं।

६८३. धर्म के बिना जीना भी क्या जीना? नीतिकारों ने कहा है – मर जाना फिर भी अच्छा है लेकिन धर्म के बिना जीना अच्छा नहीं। धर्म के अभाव में जीवन, जीवन नहीं अभिनय मात्र है।

६८४. धर्मात्मा, अधर्मात्मा को भी अपने जैसा बनाने का भाव रखता है।

६८५. धर्मात्मा वही है जो किसी दूसरे धार्मिक व्यक्ति के धर्म भावों को ठेस न पहुँचाये।

६८६. धर्मात्मा को धर्म प्रिय होना चाहिए, स्थान नहीं।

६८७. धर्मी के अभाव में धर्म और धर्म के अभाव में धर्मी नहीं रह सकता। ''न धर्मो धार्मिकैर्विना'' इसलिये यदि आप धर्म को चाहते हो तो धर्मात्मा के पास जाना ही होगा।

६८८. लोग कहते हैं धर्म संकट में है, धर्म गुरु संकट में हैं, जिनवाणी भी संकट में है किन्तु मैं कहता हूँ ये तीनों संकट मुक्त हैं तभी मुक्ति के साधन हैं। संकट तो हमारे ऊपर है। संकट तभी आते हैं जब हमारे भीतर ये तीनों जीवित नहीं रहते।

६८९. दुख दूर हो तथा शान्ति की प्रस्थापना हो इसलिये धर्म का उपदेश होता है।

६९०. विषयों में रुचि जगाने के लिये धर्मोपदेश नहीं है बल्कि मोक्षमार्ग में रुचि जगाने के लिये धर्मोपदेश है।

६९१. धार्मिक कार्यों में प्रारंभ से लेकर अंतिम दशा तक जितनी भी क्रियायें होती है, वे सब संसार से छूटने के लिये ही हैं।

६९२. अरहन्त पूजा, भक्ति, दान आदि प्रशस्त चर्या है। इसके द्वारा पुण्य का संचय तो होता ही है, साथ-साथ क्रमशः यानि परम्परा से निर्वाण की प्राप्ति भी होती है।

६९३. जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना, शील का पालन करना, उपवास करना तथा सत्पात्रों को दान देना ये चारों धर्म श्रावकों के लिये नित्य करने योग्य कहे गये हैं।

६९४. जो व्यक्ति दान, पूजा, शील और उपवास को जड़ की क्रिया कहता है, वह आगम का अपलाप कर रहा है। उसे अभी आगम का सही-सही ज्ञान नहीं है। वह तो अपना अहित कर ही रहा है किन्तु उसके उस उपदेश से सारी की सारी जनता भी अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जायेगी। बंधुओ! यह उपदेश प्रणाली ही आगम विरुद्ध है क्योंकि आचार्यों का कहना है कि यह सब जड़ की क्रियायें नहीं बल्कि धर्म की क्रियायें हैं।

६९५. धर्म के माध्यम से ही जीवन में निखार आ सकता है धर्म के माध्यम से ही सारी की सारी योजनायें सफल होने वाली हैं, केवल एक शर्त है कि हमारी दृष्टि भीतर की ओर हो।

६९६. उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्गों का कथन आगम में आया है। जो व्यक्ति किसी एक मार्ग को भूल जाते हैं वह फेल हो जाते हैं, दोनों में साम्य होना जरूरी है।

६९७. यदि जीवन में धर्म है तो बाह्य वैभव सम्पदा से क्या प्रयोजन और यदि धर्म नहीं है तो भी अन्य

वैभव सम्पदा से क्या प्रयोजन।

६९८. जिस प्रकार घर में आग लगने पर कुआं खुदवाने से कोई लाभ नहीं होता उसी प्रकार वृद्धावस्था में धर्म का मार्ग अपनाने पर अपेक्षित लाभ नहीं होता।

६९९. देह से परे आत्मा के अस्तित्त्व का ज्ञान, विज्ञान की पकड़ से परे है। इसका विवरण मात्र धर्म ग्रंथों में ही मिलता है।

७००. मोक्ष की ओर दौड़ लगाने वाला यह युग धर्म का नाम तो लेता है किन्तु धर्म की भावना नहीं रखता, सुख-शान्ति चाहते हुए भी उसके पथ पर चलना पसंद नहीं करता।

गुरु गरिमा

७०१. गुरुवचन आपत्तियों में भी पथ प्रदर्शित करते हैं।

७०२. गुरुवचन जिनशासन में उपकरण माने गये हैं।

७०३. पथ और पथप्रदर्शक के अभाव में पथिक भटक जाते हैं।

७०४. गुरु के अभाव में गुरु के पदचिह्न ही हमारे लिये दर्पण का काम करते हैं।

७०५. गुरु के द्वारा दिये गये निर्देश दीपक की तरह हमारे पथ को आलोकित करते हैं।

७०६. जिसे गुरुओं द्वारा राह मिल जाती है फिर उसके लिये किसी तरह की परवाह नहीं होती है।

७०७. जीवन में गुरुओं से अपने लिये जो कुछ भी मिला है उसे दीपक की भांति प्रकाशमान रखें एवं प्रकाश में ही जियें।

७०८. वास्तव में गुरु वही हैं जो अन्तरंग में छाये हुए अंधकार को दूर कर प्रकाश प्रदान करते हैं।

७०९. दृष्टि और चरण दोनों के लड़खड़ाने पर जो सहारा देते हैं, वास्तव में वे ही प्राज्ञ हैं वे ही गुरु हैं।

७१०. यह बात ठीक है कि आँखें हमारी हैं, दृष्टि हमारी है लेकिन उसका उपयोग कैसे करना है? यह हमें गुरु ही सिखलाते हैं, यही तो गुरु की महिमा है।

७११. सावधानी से चोट देकर पतितों के जीवन की खोटों को निकालने वाले पतितोद्धारक वे शिल्पी गुरु ही हैं जो बदले में कुछ भी नहीं चाहते। धन्य हैं उन गुरुओं की महती अनुकम्पा को।

७१२. मिट्टी के अन्दर कई तरह की शक्तियाँ विद्यमान हैं वह यदि दलदल बन सकती है तो कुंभ भी। कुशल कुंभकार का योग पाकर वह पतित मिट्टी भी पावन कुंभ बन जाती है।

७१३. हमारे गुरु आशावान नहीं बल्कि आशा पर नियंत्रण रखने वाले होते हैं।

७१४. गुरु कृपा के उपरान्त भी आलसी की कभी उन्नति नहीं हो सकती।

७१५. शिष्य वही कुशल है जो उपदेश में भी आज्ञा/आदेश को निकाल लेता है।

७१६. सच्चा शिष्य गुरु आज्ञा मिलने पर अहो भाग्य की अनुभूति करता है। शिष्य के द्वारा की गई

विनय भक्ति को प्रसन्नता से स्वीकारना ही गुरु के द्वारा किया गया शिष्य का बहुमान है।

७१७. हमें सबकी बातें तो सुनना है लेकिन सबका जबाव नहीं देना। गुरु ने सुनना सिखाया है बोलना नहीं।

७१८. गुरु से दूसरों को क्या-क्या आदेश मिले हैं। इसकी ओर ध्यान न देकर गुरु ने हमें क्या आदेश दिये हैं, इसका ध्यान रखें तथा उत्साह पूर्वक पूर्ण करने का प्रयास करें।

७१९. गुरु स्वयं तो सत्पथ पर चलते ही हैं, दूसरों को भी चलाते हैं। चलने वाले की अपेक्षा चलाने वाले का काम अधिक कठिन है।

७२०. यद्यपि बच्चा चलता अपने पैरों से है तथापि माता-पिता की अँगुली उसे सहायक होती है। इसी तरह शिष्य स्वयं मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करता है परन्तु गुरु की अँगुली, गुरु का संकेत उसे आगे बढ़ने में सहायक होता है।

७२१. भगवान् की वाणी को हमारे पास तक पहुँचाने वाले वे गुरु गणधर ही हैं। उन्हीं से गुरु परम्परा प्रारंभ हुई है गुरु पूर्णिमा के रूप में।

७२२. इन्हीं महान् गुरुओं ने ही उस दिव्य वाणी को शास्त्र रूप प्रदान कर आगम परम्परा को सुरक्षित किया है अतः इस गुरु परम्परा का हम सब पर महान् उपकार है।

७२३. जिनवाणी और सच्चे गुरुओं की शरण हमें मिली इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है? हमारे जैसा बड़भागी और कौन हो सकता है। लेकिन अकेले बड़भागी मानकर यहीं पर बैठना नहीं किन्तु उस ओर कदम जरूर बढ़ाना जिसका कि हमें संकेत मिल रहा है।

७२४. गुरु का उपकार शिष्य को दीक्षा-शिक्षा देने में है और शिष्य का उपकार गुरु द्वारा बताये मार्ग पर सही-सही निर्देशन के अनुसार चलने में है। जब तक उनके अनुसार नहीं चलेंगे तब तक अपने गुरुओं के द्वारा किये गये उपकार को हम प्रति उपकार में नहीं बदल सकते।

शास्ता/शासन

७२५. "तीर्थं करोति इति तीर्थंकर" जो तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले होते हैं, वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

७२६. जिनके माध्यम से सारा का सारा संसार तिर जाता है, उसे तीर्थंकर कहते हैं।

७२७. महावीर भगवान् उस जन्म को इष्ट बुद्धि से नहीं देखा करते थे। आप लोगों को जो पसंद आ रहा है स्वयं सोचिये क्या वह महावीर को पसंद था।

७२८. महावीर ने किसी बात पर अपने जीवन को बाँधा नहीं था। महावीर का जीवन तटस्थ नहीं किंतु आत्मस्थ था, स्वस्थ था। तटों को बाँधने वाले महावीर नहीं थे तट अवश्य उन महावीर प्रभु को चाहते थे।

७२९. दुनिया की ओर मत देखो, अपने आपको देखो। भगवान् महावीर ने कभी दुनिया की ओर

दृष्टिपात नहीं किया, यदि किया है तो दुनिया के पास जो गुण हैं उन्हें लेने का प्रयास किया। महावीर में अपने को देखो, अपने 'मैं' को देखो महावीर में।

७३०. हमारे सामने केवल 'मैं' ही रह जाये तो उसमें से अनेक महावीर फूट सकते हैं, अनेक राम अवतरित हो सकते हैं। अनेक पाण्डव उस 'मैं' की गहराई से जन्म ले सकते हैं।

७३१. जिस व्यक्ति के जीवन में शासन के प्रति प्रेम नहीं अर्थात् जिन शासन के प्रति गौरव नहीं, उसके जीवन में प्रभावना होना तीन काल में भी संभव नहीं।

७३२. जैनशासन में किसी व्यक्ति विशेष की पूजा नहीं है क्योंकि यहाँ पर नाम की नहीं गुणों की पूजा होती है।

७३३. जैनशासन में जो पंथ चलते हैं वे सागार और अनगार के हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि का कोई पंथ नहीं होता वह तो उन दोनों पंथों का उपासक मात्र है।

७३४. जिन भगवान् की उपासना करने वाले जैन माने जाते हैं यानि हमारे साथ ऐसे भगवान् का नाम जुड़ा हुआ है जो राग-द्वेष, विषय-कषाय और आरंभ परिग्रह से रहित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम जैन हैं तो जैनों जैसा कार्य भी होना चाहिए। जिनोपदिष्ट सिद्धान्तों का अनुकरण भी करना चाहिए।

७३५. सपूत 'कुल का दीपक' माना गया है। देश की, वंश की, धर्म की परम्परा में जो चार चाँद लगा देता है वही सपूत है। हम अपने आपसे पूछ लें कि हम अरहंत भगवान् के पूत हैं, सपूत हैं या ....। कहने की आवश्यकता नहीं हमारी जीवन चर्या ही हमारा आचरण बता देगी।

७३६. देशना आदेश नहीं परामर्श है, आज्ञा नहीं राय है मात्र सलाह है।

७३७. सत् सन्तों का लक्षण आगम की आज्ञा पालने में है। पूत का लक्षण पालने में नहीं गुरु की आज्ञा पालने (मानने) में है।

७३८. महापुरुषों ने अनुभवों के आधार पर जैसा प्रतिपादन किया है हमें वैसा ही अपना जीवन बनाना चाहिए।

७३९. हमारे पास क्या है? केवल छोड़ने के लिये राग-द्वेष, विषय-कषायों के अलावा और कुछ भी तो नहीं है। आपको हम किन वस्तुओं को दिखाकर खुश कर सकते हैं भगवन्? आप हमारी वस्तुओं से खुश भी नहीं होंगे....लेकिन उन वस्तुओं के त्याग से अवश्य खुश होंगे।

७४०. अहिंसा आदि व्रत संकल्पों को साकार रूप देने से ही हम भगवान् महावीर के सिद्धान्त तथा पथ को अक्षुण्ण बनाये रख सकते हैं।

७४१. साधु का रास्ता तो मनन और चिन्तन का रास्ता है। उसकी यात्रा अपरिचित वस्तु से परिचय प्राप्त करने का उत्कृष्ट प्रयास है।

७४२. जिस दिन आत्मदर्शन की खोज में निकलोगे उस दिन सभी पोथियाँ बन्द हो जायेंगी। फिर दृष्टा बन जाओगे, वैज्ञानिक नहीं।

७४३. जिसे दर्शन का सार मिल गया उसे देखना मात्र नहीं है अपितु अनुभव में लाना चाहिए और बाह्य प्रदर्शनों के चक्करों से स्वयं को पृथक् रखना चाहिए।

७४४. लक्ष्य बनाओ भार उतारने का और यह तभी हो सकता है जब याद रखोगे-तेरा सो एक, जो तेरा है सो वह एक आत्म तत्त्व है।

७४५. केन्द्र तक पहुँचने के लिये परिधि का त्याग परमावश्यक है। प्रायः करके परिधि में जो घूमता है उसे केन्द्रबिन्दु प्राप्त नहीं हो पाता। आनंद, केन्द्र में है परिधि में नहीं।

७४६. बाहरी चमक-दमक के कारण ही भीतरी आभा का परिचय नहीं हो पा रहा है। ध्यान रखिये वह आत्म आभा भौतिक साधनों की पकड़ से परे है। उसका मात्र संवेदन किया जा सकता है।

७४७. यह मुनि का पद, मुनि की मुद्रा अपने आपमें सर्वोत्कृष्ट है। इससे बढ़कर कोई पद नहीं है, अतः इस पद के साथ दीनता और विद्रूपता नहीं आनी चाहिए।

७४८. दिगम्बर मुनि मुद्रा ही एक ऐसी मुद्रा रह गयी है इस संसार में जिसके पीछे रोटी है और बाकी जितने भी हैं वे सब रोटी के पीछे हैं।

७४९. अकेले दिगम्बरत्व और पिच्छिका-कमण्डलु लेने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, जितना यह सत्य है उससे भी बड़ा सत्य यह है कि इसके बिना भी कभी मुक्ति नहीं हो सकती।

७५०. मात्र साहित्य से ही प्रभावना का काम नहीं चलता। यदि हमारे पास क्रिया है, दिगम्बर मुद्रा है तो साक्षात् महावीर भगवान् को हम देख सकते हैं।

७५१. विश्व में बहुत सारे मार्ग (परम्पराओं) को बताने वाले साहित्य मात्र हैं किन्तु श्रमण संस्कृति में साहित्य के अनुरूप आदित्य (चर्या) भी है। इस चर्या की वजह से ही यह दिगम्बर परम्परा आज तक जीवित है यह हम सभी के महान् पुण्य एवं सौभाग्य का विषय है।

७५२. इस श्रमण चर्या को देखकर ही हम यह अंदाज लगा सकते हैं कि तीर्थंकर आदिनाथ और भगवान् महावीर कैसे थे।

७५३. दिगंबरत्व ही एक ऐसा बाँध है जिसे लाँघने का साहस परवादियों में नहीं हो सकता। ज्यों ही यह बाँध टूटेगा त्यों ही धर्म का निर्मल स्वरूप नष्ट हो जायेगा।

७५४. दिगम्बरत्व धूप के समान है। उसका उपयोग चाहे जितना करें, मगर उसे बाँधने का प्रयास न करें, वह धूप है बाँधने से बंधेगी नहीं।

७५५. दिगम्बर मुनियों की चर्या ऐसी है जिसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। वह अनमोल है। आज

भी दिगम्बर संत उसका पालन कर रहे हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने तो इस चर्या (मुद्रा) के लिये महान् से महानतम उपमाएं दी हैं। जैसे कि यही जिनागम है, यही तीर्थ है, यही सर्वस्व है। अतः इस चर्या का कभी भी अनादर नहीं करना चाहिए।

७५६. सिर्फ प्रासुक आहार ही नहीं अपितु प्रासुक जमीन की ओर भी श्रावकों का ध्यान जाना चाहिए तभी यह निर्ग्रन्थ चर्या जीवित रह सकेगी।

संस्कृति-प्रवाह

७५७. कृति और कर्म की उतनी कीमत नहीं जितनी की संस्कृति की।

७५८. संस्कृति की रक्षा और देश की उन्नति हमारी सुमति पर ही आधारित है।

७५९. प्रकृति की रक्षा करने पर ही संस्कृति की रक्षा संभव है।

७६०. भारतीय संस्कृति एवं मानवता को आज सिंहों से नहीं नरसिंहों से ज्यादा खतरा है।

७६१. अर्थ के विकास में अनर्थ न हो और सहयोग का भाव बनाये रखें यही तो हमारी संस्कृति है।

७६२. अपनी संस्कृति की बातों का ध्यान रखो, हम जैन हैं अतः जैन होने के नाते अपनी प्रवृत्तियों को संयमित रखना चाहिए।

७६३. ईमानदारी, न्यायनीति व धर्म संस्कृति की रक्षा में अपने दायित्व को कभी नहीं भूलना चाहिए। उसे सही अर्थों में निभाना ही हमारा कर्त्तव्य है।

७६४. जीवन की समृद्धि, कुल, वंश, धर्म, संस्कृति व राष्ट्रीय परम्परा को सुरक्षित रखने पर ही हो सकती है।

७६५. भारतीय संस्कृति ज्ञान को महत्त्व न देकर, जिससे ज्ञान नियंत्रित होता है ऐसी आस्था को महत्त्व देती है।

७६६. केवल आर्थिक दृष्टि ही भारतीय संस्कृति नहीं है बल्कि यहाँ परमार्थ का भी पुरुषार्थ होता है।

७६७. पाश्चात्य के देश शब्दों को महत्त्व देते हैं जबकि भारत देश अनुभव को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।

७६८. कृति कभी कर्त्ता से बड़ी नहीं हो सकती किन्तु आज कर्त्ता मकड़ी की तरह अपने ही जाल में उलझ रहा है।

७६९. जिस प्रकार नदी अपने अस्तित्त्व को खोकर ही समुद्र बनती है उसी प्रकार अपने क्षुद्र अस्तित्त्व को खोकर ही यह आत्मा परमात्मा बनती है।

७७०. संस्कार के बिना संसार में कोई भी आत्मा पतित से पावन नहीं बन सकती।

७७१. जैसे दुग्ध में से निकला हुआ शुद्ध तत्त्व घृत पुनः दुग्ध रूप परिवर्तित नहीं होता ठीक इसी प्रकार मुक्त होने के बाद यह आत्मा लौटकर पुनः संसार में नहीं आती।

७७२. जैसे दधि मंथन के बिना नवनीत और घृत की उपलब्धि संभव नहीं, ठीक इसी तरह आत्ममंथन के बिना परमात्म पद की प्राप्ति नहीं।

७७३. भगवान् का जन्म नहीं होता किंतु जो भगवान् बनने वाले होते हैं उनका जन्म होता है।

७७४. भगवान् जन्मते ही मुक्ति नहीं पाते किन्तु जन्म से ही मुक्ति पा लेते हैं।

७७५. ''कोई दुनिया के पीछे पड़े हैं व किसी के पीछे दुनिया पड़ी है।'' भगवान् कभी दुनिया के पीछे नहीं देखते, दुनिया भगवान् के पीछे देखती रहती है।

७७६. जो व्यक्ति मरण से डरता है वह तीन काल में जी नहीं सकता, यह मरण ही हमारे लिये प्रकाश प्रदान करने वाला है और यह उद्भव हमें भव-भव तक भटकाने वाला है। आप जन्म की पूजा नहीं करिये, जन्म संसार का प्रतीक है।

७७७. हमारी क्षणिक बाह्य भौतिक निधि को कोई भी ले सकता है नष्ट कर सकता है किन्तु भीतरी निधि को मिटाने वाला इस धरती पर कोई नहीं है। वह थी, है, और आगे भी रहेगी।

७७८. राग और अविद्या इन दोनों कारणों से ही यह संसारी प्राणी अंधा बना हुआ है। अगर ये दोनों नहीं हैं तो वह शीघ्र ही अपना आत्म कल्याण कर सकता है।

७७९. अग्नि की पिटाई तभी तक होती है जब तक वह लोहे की संगति करती है ठीक इसी प्रकार देह की संगति करने से आत्मा की पिटाई हो रही है और जब तक आत्मा देह की संगति करेगी तब तक उसकी पिटाई होती रहेगी।

७८०. विश्व में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो मोह की चपेट में नहीं आया हो लेकिन जो इसकी रहस्यपूर्ण शक्ति को पहचान कर उस पर प्रहार करता है वही संसार से पार हो जाता है।

७८१. पथ एक ही है, मार्ग एक ही है। जो सामने चलता है वह मुक्ति का पथ चाहता है और जो रिवर्स (उल्टा) में चलता है वह संसार का पथ चाहता है।

७८२. आज जो यद्वा तद्वा व्यापार कर रहा है, घूसखोरी करके जो बड़ा बनने का प्रयास कर रहा है वह सन्मार्ग से पतित हो रहा है।

७८३. जब तक भीतर आत्मा के परिणाम उज्ज्वल नहीं होंगे, हमारा आचार-विचार उज्ज्वल नहीं होगा तब तक हमारा सम्बन्ध महावीर भगवान् के साथ, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्य समन्तभद्र आदि के साथ नहीं रहेगा।

७८४. धार्मिक संस्कृति अभी वर्षों तक टिकेगी लेकिन वह अपने आप नहीं। उसे टिकने के लिये, स्थायी रूप प्रदान करने के लिये चारित्रनिष्ठ, न्याय का पक्ष लेने वाले विभीषण, हनुमान जैसे महान् पुरुषों की जरूरत है।

७८५. दया प्रधान कृषि कर्म का रूप विकृत होता जा रहा है। आज अण्डों की खेती, मछलियों की

खेती (फार्मिंग) आरंभ हो रही है इसे भी कृषि का दर्जा दिया जा रहा है। कहाँ गई वह आदिनाथ, महावीर और राम की संस्कृति। यह सब आधुनिकता का प्रभाव है।

७८६. आधुनिक उपकरणों से सज्जित बूचड़खाने खोले जा रहे हैं। जिनमें हजारों हजारों जानवरों का संहार किया जाता है। पर किसलिये? केवल विदेशी मुद्रा पाने के लिये। इसी संहार से ही चहुँओर हिंसा, आतंकवाद, शोषण और न जाने क्या-क्या हो रहा है फिर अकेले शान्ति शासन की योजना बनाने से क्या लाभ?

७८७. अहिंसा भारतीय संस्कृति का मूल आधार है, इसीलिये स्वतंत्र भारत की प्रत्येक मुद्रा पर सम्राट् अशोक का अहिंसक चिह्न अंकित है किन्तु आज उसी मुद्रा को पाने के लिये बूचड़खाने आदि तरह-तरह के हिंसक साधन अपनाये जा रहे, यह लज्जा की बात है।

७८८. अरे जो ब्रह्म मुहूर्त में बाँग देकर सबको उठा देता है, सोते हुए इन्सान को जगा देता है उस जीवन प्रदान करने वाले प्राणी की हत्या, मानव के द्वारा किया गया यह अक्षम्य अपराध है।

७८९. अहिंसा की पूजा हिंसा के द्वारा कभी नहीं हो सकती और न ही मात्र भावों के करने से किन्तु अहिंसा की पूजा तो वास्तव में अहिंसा को जीवंत रूप देने से होती है।

७९०. हिंसा से नहीं धरती पर शांति का साम्राज्य अहिंसा के बल पर ही होगा।

७९१. राम, रहीम और महावीर के समय में जिस भारत भूमि पर दया बरसती थी, सभी जीवों को अभय था, उसी भारत भूमि पर आज अहिंसा खोजे-खोजे नहीं मिलती ।

७९२. भारतीय सभ्यता मिटती-सी जा रही है फिर भी हम लोगों की मान्यता है कि सतयुग आयेगा, विश्व में शांति आयेगी और यदि हमारा आचरण शुद्ध नहीं है तो वह सतयुग, वह विश्व में शांति 'न भूतो न भविष्यति।'

७९३. आज देश में सबसे बड़ी समस्या भूख, प्यास की नहीं बल्कि भीतरी विचारों के परिमार्जन करने की है। इसी से विश्व में त्राहि-त्राहि हो रही है। यह समस्या धर्म और दया के अभाव से ही है। एक दूसरे की रक्षा के लिये कोई तैयार नहीं। जो रक्षा के लिये नियुक्त किये गये वही भक्षक बनते जा रहे हैं।

७९४. आज का भारतीय नागरिक भोगों की ओर जा रहा है। भोग्य पदार्थों को जोड़ता हुआ वह योग को पाना चाह रहा है। किन्तु योग की प्राप्ति के लिये भोगों की तिलांजलि देनी होगी, उसे एकदम विक्षत करना होगा तभी उस योग का आनंद आ सकता है। हमें उपयोग को भोग के धरातल से योग के शिखर तक लाना होगा।

७९५. यदि भारतीय संस्कृति से संस्कारित होकर विवाह संस्कार किया जाये तो दोनों पति-पत्नी कुछ ही दिनों में भोगों से विरक्त होकर घर से निकलने का प्रयास करेंगे ओर कुछ ही समय में वह दंपत्ति योगमार्ग पर आरूढ़ होकर अपने जीवन का निर्माण कर लेंगे ।

७९६. विवाह का अर्थ भोग का समर्थन नहीं किन्तु भोग को सीमित करने की प्रक्रिया है। काम को जीतने का एक सीधा सरल तरीका है विवाह।

७९७. जैन दर्शन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ सामूहिक शांति का भी संदेश है।

७९८. धार्मिक व्यक्तियों में संस्कृति के प्रति निष्ठा एवं राष्ट्रप्रेम स्वाभाविक होता है।

७९९. भारतीय संस्कृति में अधिकार नहीं कर्तव्य को महत्त्व दिया जाता है। यहाँ कर्त्तव्य पालन करने वाले को अधिकार स्वतः मिल जाते हैं।

८००. भारत में तिथियों की नहीं अतिथियों की पूजा होती है। यह बात पृथक् है कि उन अतिथियों के सान्निध्य से तिथियों में भी पूज्यता आ जाती है।

८०१. यह भारतभूमि है, यहाँ पर त्यौहार हमेशा आते रहते हैं, उनमें हम पूजा-भक्ति करते हैं। भारतीय संस्कृति हमेशा पूजा करना सिखाती है।

८०२. संस्कृति की अथ और इति संभव नहीं, वह तो निरन्तर प्रवाहमान है। सभ्यता और समाज में परिवर्तन आते रहते हैं यह बात पृथक् है।

८०३. आचार विचार के रूप में आज जो भारतीय संस्कृति प्रवर्तित है उसका आधार श्रमण और वैदिक परम्परा ही है।

८०४. श्रमण संस्कृति, श्रम-पुरुषार्थ, शमन, समता पर जोर देती है।

८०५. विचारों में अनेकान्त और आचरण में अहिंसा तथा अपरिग्रह का सिद्धांत जैनधर्म का आधार स्तंभ है।

८०६. वस्तु स्वतंत्र है उसका परिणमन स्वाधीन है, इस बात का दिव्य संदेश हमें तीर्थंकरों ने दिया है।

८०७. धर्म, दर्शन, सिद्धान्त और अध्यात्म विद्या के उपदेष्टा के रूप में श्रमण संस्कृति में अर्हत् तीर्थंकरों का प्रमुख स्थान है। इन्हीं प्रवर्तकों की परम्परा में आचार्यों की संतति प्रवाहित है जिसने भारतीय सुषुप्त चेतना को समय-समय पर जागृत किया है।

८०८. अहिंसा, अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, त्याग और समाधि को साधना के काल में तीर्थंकरों ने जिस तरह से आचरित किया उसे केवलज्ञान पाने के बाद जनकल्याणार्थ उपदिष्ट भी किया। इसीलिये तीर्थंकर धर्म के उपदेष्टा और प्रतिष्ठाता कहे गये हैं।

८०९. शुरूआत से ही संस्कृति प्रवाह के दो प्रमुख पक्ष रहे हैं। एक विचार और दूसरा आचार। जहाँ विचारों में तत्त्व का दर्शन होता है तो वहीं आचरण से तीर्थ का। दोनों के मेल से ही संस्कृति की धारा प्रवाहित है।

८१०. जैन संस्कृति में प्रतिपाद्य प्रवृत्ति और निवृत्ति में अद्‌भुत सापेक्षता है। यहाँ पर प्रवृत्ति में निवृत्ति और निवृत्ति में प्रवृत्ति का उद्देश्य अवश्य ही निहित रहा है।

८११. इतिहास, तीर्थक्षेत्र, पुरावैभव, मूर्तियाँ, मन्दिर, पाण्डुलिपियाँ, शिल्पकला, शिलालेख आदि हमारी संस्कृति के ऐसे अवयव हैं जिनकी सुरक्षा पर ही हमारा सांकृतिक ढाँचा टिका हुआ है।

८१२. आगम और आचार्य गुरुओं से ही हमारी परम्परा का अभी तक अस्तित्त्व रहा है। यदि यह न होते तो परम्परा शब्द भले ही रह जाता पर किसी तरह की परम्परा न रहती ।

८१३. मैं जैन हूँ, मैं हिन्दू हूँ, मैं सिक्ख हूँ, मैं ईसाई और मैं मुसलिम हूँ। इस प्रकार की मान्यता हमारे समाजरूपी सागर को नष्ट कर देगी। इस प्रकार का बिखरा अस्तित्त्व हमें एक बूँद का रूप दे देगा। जिसके सूखने के लिये सूर्य की एक किरण ही पर्याप्त है।

८१४. हमारे बीच आपस में मतभेद भले ही हो जाय पर मनभेद नहीं होना चाहिए।

८१५. राजसिक और तामसिक वृत्ति का त्याग कर सात्विक जीवन चर्या अपनाने की शिक्षा हमें भारतीय संस्कृति देती है।

८१६. भारतीय आचार संहिता कहती है कि जब तक संकल्प न लिया जाय तब तक आचरण का कोई महत्त्व नहीं। प्रण-प्रतिज्ञा में बँधना और उसे प्राण रहते तक निभाना हमारी पुरानी परम्परा है।

८१७. वचन कदाचित परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु प्रण/संकल्प अपरिवर्तनीय ही होते हैं।

८१८. जो व्यक्ति कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान होता है, प्रतिष्ठा उसके पीछे भागती है।

८१९. वह संतान किस काम की जो माँ के द्वारा बताये हुए मार्ग पर विश्वास नहीं रखती। ऐसी सन्तान का विकास अभी और आगे जाकर कभी भी संभव नहीं है।

८२०. मानव जीवन बहुत ही मूल्यवान है। यह बहुत ही प्रतीक्षा के बाद पुण्योदय से मिला है। इसे व्यर्थ ही इधर-उधर की बातों में मत गंवाओ। इससे भुक्ति की नहीं मुक्ति की भूमिका का निर्माण कर निर्वाण को पाओ।

८२१. उत्तर और दक्षिण भारत का समूचा इतिहास ही इस बात का साक्षी है कि जैनियों ने समय-समय पर भारतीय संस्कृति की सुरक्षा में बड़ा योगदान दिया है।

तीर्थ

८२२. जहाँ पर तीर्थंकर आदि महापुरुषों के विहार और कल्याणक आदि होते हैं वह सभी स्थान तीर्थ माने जाते हैं।

८२३. जिसके माध्यम से हम तिर जायें, पार हो जायें वह है तीर्थ।

८२४. तीर्थ घाट के समान है जहाँ पहुँचकर अपने जीवन बेड़ा को भवसागर से पार लगाया जा सकता है।

८२५. नदी के घाट पर जाकर तो हम बाहरी मल का ही प्रक्षालन करते हैं किन्तु तीर्थों की शरण पाकर हम जन्म-जन्मान्तरों के पापों का प्रक्षालन कर लेते हैं।

८२६. तीर्थंकर भगवन्तों की विहार भूमि और कल्याणक स्थानों पर जाने से स्फूर्ति, प्रेरणा और मन को शान्ति मिलती है।

८२७. पुण्य-पुराण पुरुषों के द्वारा जो स्थान पवित्र हुए हैं, उन स्थानों पर जाकर ध्यान-साधना करने से जीवन भी पवित्र बनता है।

८२८. साधक योगियों ने जिन स्थानों का आश्रय लेकर विभिन्न प्रकार की साधनायें की हैं वह स्थान भी तीर्थों की तरह ही पूज्य माने गये हैं। यह सब बाहर के जड़ तीर्थ तो हैं ही किन्तु जिसके माध्यम से हम चैतन्य की ओर मुड़ जाये वस्तुतः वही तीर्थ है।

८२९. भगवान की दिव्यध्वनि समवसरण सभा में जिस स्थान पर खिरी हो वह स्थान तीर्थ ही नहीं बल्कि शासन-तीर्थ माना जायेगा।

८३०. तीर्थ, मंदिर और मूर्तियाँ हमारे सदियों पुराने निर्मल इतिहास की गौरव गाथा गाते हैं।

८३१. भारतीय मानस श्रद्धा भक्ति से भरा हुआ है, यही कारण है कि यहाँ के निवासियों ने मकानों के साथ-साथ पूजास्थल मंदिरों का निर्माण भी किया है। भारत में ऐसा कोई भी गाँव नहीं जो मंदिर-मूर्तियों से विहीन हो।

८३२. मंदिर विशाल किन्तु द्वार छोटे, ऐसा क्यों? कभी विचार किया, इसलिये कि भगवान् की शरण में जाने के पूर्व झुकना सीखें अर्थात् अहंकार को गलाकर श्रद्धा से अभिभूत होकर मंदिर में प्रवेश करो।

८३३. मंदिर और मूर्तियाँ मोक्षमार्ग में साधन तो है पर साध्य नहीं। साधनों का सम्यक् अवलम्बन तो होना चाहिए पर विवाद नहीं।

८३४. मंदिर और मूर्तियाँ उपयोग को स्थिर करने के लिये हैं किन्तु सबके उपयोग को स्थिर करने में सहायक बनें, ये जरूरी नहीं।

८३५. मूर्ति, मानवीय आचार विचार को निर्देशित करने वाला एक सम्यक् आदर्श है।

८३६. मन को केन्द्रित करने का सहकारी वातावरण जितना मंदिर में संभव है उतना अन्यत्र नहीं।

८३७. तीर्थ हमारी परम्परा और संस्कृति के प्रतीक हैं इनका निर्माण संरक्षण और जीर्णोद्धार कराना हमारा कर्त्तव्य है।

८३८. अहिंसा और वीतरागता का संदेश देने वाले पुरावशेषों की सुरक्षा करना आज अत्यन्त जरूरी है।

८३९. तीर्थ हमारे धर्मक्षेत्र माने गये हैं। साधना के लिये जनपद शून्य, निराकुल निरापद स्थान हैं। हमारे पूर्वजों की पवित्र सांस्कृतिक धरोहर है। इनका संरक्षण और संवर्धन एक-एक घटक का कर्त्तव्य है।

८४०. सम्मेदशिखर तीर्थंकरों की शाश्वत निर्वाण भूमि है। यहाँ से इस चौबीसी में बीस तीर्थंकरों सहित अनंत मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। यह तीर्थ ही नहीं तीर्थराज है, समूची दिगम्बर परम्परा का प्रमुख आस्था का केन्द्र है।

८४१. संस्कृति और धर्मायतनों के संरक्षणार्थ साधु, श्रावकों को उपदेश दे सकता है आवश्यकतानुसार आदेश भी।

८४२. सभी दानों के साथ-साथ अपने आपको ही तीर्थ के लिये समर्पित कर देना यह सबसे बड़ा दान है।

८४३. अपना उपसर्ग दूर करने के लिये नहीं किन्तु धर्मायतनों पर/प्राणियों पर आये हुए संकट को दूर करने के लिये विष्णुकुमार और बालि मुनि महाराजों जैसे कदम उठाना चाहिए।

८४४. अहंकार वश रावण ने जब समूचे कैलाश पर्वत को ही पलटना चाहा तब तपस्यारत बालि मुनि महाराज का हृदय द्रवित हो उठा, उस स्थिति में तीर्थ सुरक्षा के लिये उन्होंने जो कदम उठाये वह अत्यधिक प्रेरक अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है।

८४५. भरत चक्रवर्ती के द्वारा कैलाश पर्वत पर बनाये गये ७२१ जिनालयों की सुरक्षा के विचार से सगर चक्रवर्ती ने अपने ६० हजार कर्मठ पुरुषार्थी पुत्रों को गंगा की परिखा (खाई) बनाने में लगा दिया। तीर्थ सुरक्षा के लिये इतिहास में इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

इतिहास

८४६. जैन धर्मानुयायियों का देश के प्रति बहुत बड़ा योगदान है। समय-समय पर आचार्यों ने धीमानों तथा श्रीमानों ने अपनी सूझबूझ कुशलता से राजाओं तक को निर्देश देकर देश की समृद्धि में सहयोग दिया है।

८४७. दानवीर भामाशाह जैसे उदार हृदय जैनी श्रेष्ठी श्रावकों ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर देश की रक्षा के लिये महाराणा प्रताप के सामने अपना सारा खजाना खोलकर रख दिया था और कृतज्ञता भरे शब्दों में कहा था कि यह सम्पत्ति हमारी नहीं राष्ट्र की ही है आप इसे स्वीकार करें और देश की रक्षा करें।

८४८. जैन इतिहास में दीवान अमरचंदजी एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने अहिंसा और सद्‌भावना के बल पर राजा को तो परिवर्तित किया ही किन्तु मांसाहारी सिंह के पिंजड़े में भी जाकर उसे भी जलेबियाँ खिलाई। यह सब अहिंसक भावना का प्रभाव है।

८४९. इतिहास में सम्राट् अशोक एक ऐसा शासक हुआ है जिसने कलिंग युद्ध का नरसंहार देखकर अपना हृदय, अपना जीवन ही बदल लिया और फिर सिंहासन पर बैठते हुए भी बिना तलवार के शासन किया।

८५०. सम्राट् अशोक के शिलालेखों से भी विदित है कि उसका जीवन दयावान, न्यायप्रिय और काफी धार्मिक रहा है। उसने अहिंसा, प्रेम, आत्मीयता, परोपकार और भाईचारे पर काफी जोर दिया है।

८५१. इतिहास इस बात का साक्षी है कि युगों-युगों से धर्म को राजाश्रय एवं राजसंरक्षण प्राप्त रहा है। राजाओं की सहयोगी छाया में सत्य और अहिंसा धर्म ने अपना विस्तार सारी धरती पर किया है।

८५२. अन्तिम सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जीवन के उपान्त समय में जैनेश्वरी दीक्षा लेकर श्रमण संस्कृति में एक ऐसी कड़ी जोड़ी है जो आज भी हमें गौरवान्वित कर रही है।

८५३. भगवान महावीर स्वामी को जैनधर्म का संस्थापक मानना इतिहासकारों का भ्रम है। यथार्थ में इस धर्म का प्रवाह तो अनादि अनिधन है किन्तु इस युग में धर्म के संस्थापक/प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव हुए और इसी क्रम में कालान्तर से शेष तेईस तीर्थंकर और हुए जिनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी थे।

८५४. तीर्थंकर वर्धमान की शादी नहीं हुई वह तो बालब्रह्मचारी थे, उनके गर्भहरण का कथन भी दिगम्बर आम्नाय सम्मत नहीं है। इस चौबीसी में तीर्थंकर वर्धमान के समान और भी चार बालयति हुए हैं।

८५५. ऋषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है, यह बात स्वयं इतिहास से सिद्ध है।
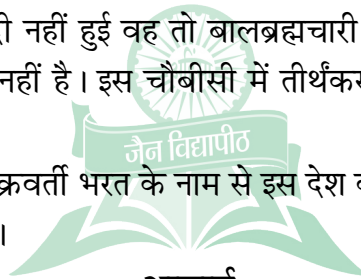
आचार्य

८५६. आचार्य स्वयं भी तरते हैं और दूसरों को भी तारते हैं। आचार्य नौका के समान हैं, वह पूज्य हैं।

८५७. आचार्यों की यह निर्मल परम्परा निर्दोष संघ शासन की निरंतर वृद्धि करती रहे। यही हम सबकी भावना हो।

८५८. आचार्य महाराज नारियल की तरह बाहर से कठोर किन्तु अन्दर से मृदुस्वभावी होते हैं। यही वजह है कि उनके जीवन में अनुशासन और अनुकम्पा एक साथ झलकते हैं।

८५९. जैसे वृक्ष सारी धूप को झेलकर पथिक को छाया प्रदान करते हैं ठीक वैसे ही आचार्य महाराज भी निस्वार्थ सब कुछ सहनकर शरणागत को शरण प्रदान करते हैं।

८६०. आत्म साधना के साथ-साथ संघ का प्रवर्तन एवं धर्मोपदेश आचार्यों का मुख्य काम है।

८६१. साधु पद की साधना करते हुए शिष्यों का संग्रह और अनुग्रह आदि कुछ विशिष्ट गुणों के कारण ही वह आचार्य अपने गौरवशाली पद से सुशोभित होते हैं।

८६२. शिष्य यदि आज्ञा में बंधे हैं तो आचार्य आगम से। बन्धन एक को ही नहीं सभी को स्वीकार करने पड़ते हैं।

८६३. आचार्य, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता और तात्कालिक उठे हुए विकल्प-विवादों के समाधानकर्त्ता होते हैं।

८६४. दोषयुक्त शिष्य के लिये निर्विकल्प निर्दोष होने में आचार्य का उतना ही महत्त्व है जितना कि बेटे को निर्दोष साफ-सुथरा होने में माँ का।

८६५. मेरु के समान अड़िग, सागर के समान गंभीर एवं सिंह के समान निर्भीक आचार्यों को संघ, समाज, देश और धर्म-संस्कृति के संरक्षण का पूरा ध्यान रहता है।

८६६. आचार्यों की करुणा और वत्सल भावना का ही यह परिणाम है कि उनकी छत्र छाया में रहकर अशक्त और अल्पज्ञानी शिष्य भी अपना कल्याण कर लेते हैं।

८६७. तीर्थंकरों से प्राप्त उस श्रुतधारा को आचार्यों ने ही आगम साहित्य के रूप में प्रणयन कर संरक्षित किया है।

८६८. भगवान की दिव्यध्वनि में क्या-क्या खिरा और गणधरों ने उसे किस रूप में पाया और प्रस्तुत किया यह सब जानकारी, यदि आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध श्रुत न होता तो हम कदापि न जान पाते।

८६९. कुन्दकुन्द, समन्तभद्र और अकलंक जैसे महान्-महान् अनेकों आचार्यों ने जीवन में संघर्ष कर तप, त्याग और बुद्धि पराक्रम से इस संस्कृति परम्परा को अक्षुण्य बनाया है।

८७०. समय-समय पर आचार्यों ने शासकों को अपनी तपस्या और ज्ञान गरिमा से प्रभावित कर जैनधर्म का विस्तार किया है।

८७१. तीर्थंकर महावीर की आचार्य परम्परा ने भारतीय संस्कृति को दर्शन, साहित्य और सदाचार से संवृद्ध किया है।

८७२. सर्वोदयी समाज निर्माण में आचार्यों का विशिष्ट महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

८७३. व्यक्ति निर्माण के साथ-साथ समाज निर्माण के क्षेत्र में भी जैनाचार्यों ने अपना दायित्व निभाया है।

साहित्य

८७४. जैन साहित्य के बिना भारतीय साहित्य सम्पदा अधूरी ही मानी जायेगी।

८७५. साहित्य तो वह सेतु है जो साधक और साधना के दो किनारों को जोड़ता है।

८७६. हित से जो युक्त है वह है सहित और सहित का भाव ही साहित्य है।

८७७. श्रमण संस्कृति श्रुत साहित्य की अविच्छिन्नता पर निर्भर है क्योंकि इस विषम काल में श्रुत साहित्य ही आदित्य का काम करता है।

८७८. सन्तों के मानस पटल पर उठी संवेदनाओं से प्रेरित स्वपर हित के लिये चली हुई लेखनी साहित्य का निर्माण करती है।

८७९ जैनाचार्यों ने लोकभाषा एवं जनभावनाओं को दृष्टिगत कर साहित्य को भाषा और प्रान्त की सीमा से परे रखा है।

८८०. हमारा साहित्य उस भारतीय मनीषा से सम्बद्ध है जिसने जगत् और जीवन के रहस्य सूत्रों को जाना और परखा है। सृजन के क्षेत्र में उन्हीं सूत्रों के शिलालेख हमें अपने आगम साहित्य के पृष्ठों को समझना चाहिए।

८८१. लेखक और शिल्पकार अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस युग के जनजीवन में रहकर वह सृजन करते हैं उस युग के प्रचलित रीति-रिवाजों की छाप उनके साहित्य और शिल्प पर पड़ती ही है। अतः इस बात को हमें स्वीकार करना चाहिए कि साहित्य और शिल्प इतिहास को दिखलाने के लिये दर्पण की तरह है।

८८२. आचार्यों की लेखनी में क्या नहीं आया? जगत् और जीवन से संबंधित ऐसा कोई भी पहलू अछूता नहीं रहा जो उनकी लेखनी में न आया हो।

८८३. श्रमण आचार्यों ने अध्यात्म के सहारे जहाँ साधना की चरम ऊँचाइयों को छुआ है तो वहीं साहित्य का सृजन भी कम नहीं किया। रात यदि साधना में गुजरी है तो सारा दिन सूरज के साथ साहित्य सृजन में।

८८४. आचार्य कुन्दकुन्द का वाङ्मय जहाँ अध्यात्म से भरपूर है तो वहीं आचार्य समन्तभद्र के ग्रन्थ दर्शन प्रधान है। हमें आचार्य कुन्दकुन्द का हृदय समझने के लिये आचार्य समन्तभद्र का परिचय जरूरी है और दोनों को समझे बगैर स्वयं को समझ पाना संभव ही नहीं है।

८८५. न्याय, दर्शन, धर्म, अध्यात्म, तत्त्व मीमांसा, तीर्थ, इतिहास, भक्ति, संगीत, कलायें, राजनीति, ज्योतिष, गणित, वर्ण और समाज व्यवस्था आदि आचार-विचारों से जुड़े हुए लोक-लोकोत्तर बिन्दु जैन साहित्य की पंक्ति-पंक्ति में समाये हुए हैं।

पर्व

८८६. भारतीय पर्व जहाँ सामाजिक, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक महत्ता को लिये होते हैं तो वहीं प्राचीन संस्कृति से भी वह अत्यधिक सम्बद्ध रहते हैं।

८८७. पर्व का अर्थ है सन्धिकाल। एक ऐसा अवसर जिसमें हमारा मन धर्म-ध्यान की ओर सहज ही प्रेरित होता है।

८८८. पर्व, सिर्फ खाने-पीने और मनोरंजन के लिये ही नहीं आते किन्तु जीवन में परिवर्तन और आदर्श स्थापित करने के लिये आते हैं।

८८९. अष्टमी और चतुर्दशी जैन परम्परा में ऐसे शाश्वत पर्व माने गये हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृति, तत्त्व विज्ञान और सौरमंडल से है। यही वजह है कि इन दिनों में गृहस्थ और साधुओं को तन-मन और चेतन को स्वस्थ सौम्य बनाये रखने के लिये उपवास आदि तपों के विधान बनाये गये।

८९०. पर्व आने का अभिप्राय ही सिर्फ इतना है कि हम जागें और अतीत में घटी हुई घटनाओं को आदर्श बनाकर उस राह पर चलने का प्रयास करें।

८९१. दीपावली का पर्व सामाजिक और ऐतिहासिक होते हुए भी अत्यधिक धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। इस दिन ऐसा कोई भी घर नहीं रहता जहाँ संस्कृति से जुड़े हुए महापुरुषों की पुरातन गाथा न दुहराई जाती हो।

८९२. कार्तिक कृष्णा अमावस्या की प्रत्यूष बेला में भगवान महावीर स्वामी इस संसार से मुक्त हुए और शाम को गणधर गौतमस्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्हीं प्रसंगों की पावन स्मृति स्वरूप आज भी जन-जन प्रातः निर्वाण लाडू चढ़ाता है एवं शाम को अज्ञान तिमिर नाशक भावना से दीपक जलाकर दीपावली पर्व मनाता है।

८९३. इस पर्व के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि श्री रामचंद्र जी जब लंका विजय के पश्चात् अयोध्या नगरी में पधारे तब नगर वासियों ने उनके स्वागत में खुशियों के दीप जलाये थे। इसे ऐसा समझना चाहिए कि यह पर्व विजयी सत्य के स्वागत का पर्व है।

८९४. जिस तरह आदिनाथ को धर्मतीर्थ का कर्त्ता कहा जाता है उसी तरह राजा श्रेयांस को भी दान तीर्थ का कर्त्ता कहना चाहिए, क्योंकि मुनिराज आदिनाथ को प्रथम आहार दान देकर राजा श्रेयांस ने सर्वस्व त्यागी पात्रों को दान देने की परम्परा प्रारंभ की।

८९५. श्रुत पंचमी का पर्व, जिनवाणी आराधना का वह पावन स्मृति दिवस है जिस दिन आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने षट्खण्डागम सूत्र ग्रन्थों की रचना पूर्ण की थी तथा श्रावकों ने उन सिद्धान्त ग्रन्थों की भक्ति-भाव से पूजा की थी।

८९६. रक्षाबन्धन का पर्व वात्सल्य का पर्व है, रक्षा का पर्व है। इसी भावना से प्रेरित होकर जब विष्णुकुमार जैसे तपस्वी मुनिराज भी आगे आये और ७०० मुनियों का उपसर्ग दूर किया तब हमें भी सोचना चाहिए और धर्म संस्कृति की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

८९७. स्वयं की परवाह न करते हुए अन्य की रक्षा करना ही रक्षाबन्धन मनाने का वास्तविक रहस्य है।

८९८. चाहे अष्टाह्निका पर्व हो या दशलक्षण, श्रावकों को चाहिए कि वह इन दिनों में हिंसा, आरंभादिक पाप कार्यों से ज्यादा से ज्यादा बचें तथा अहिंसाव्रत का पालन करते हुए सादगी-सात्त्विकता से समय बिताकर धर्मध्यान करें।

८९९. जो राग-द्वेष कर्मादि विभावों को जलाता है, नष्ट करता है, जीवन में प्रभात लाता है वह पर्यूषण

कहलाता है। ऐसा महान् पर्वराज पर्यूषण न कभी आता है न कभी जाता है, वह तो सदा विद्यमान रहता है। इसका हम अनुभव भी कर सकते हैं, होनी चाहिए सिर्फ जिज्ञासा और समझ।

❑ ❑ ❑

विशेष

१. अध्यात्म को मजबूत बनाने के लिए धर्म से पहले कर्म को देखो। कर्म विपाक को जानना ही समयसार तक पहुँचने का साक्षात् कारण है।

२. व्रतों को निर्दोष पालन करना ही यथार्थ विनय है।

३. संसार से डरना चाहते हो तो शरीर का चिन्तन करो और जब डरना नहीं चाहते हो तो आत्मा का चिन्तन करो।

४. सिगड़ी सुलगाने के लिए पहले हवा से बचाना आवश्यक होता है, फिर हवा में लाकर रख देते हैं। हवा निमित्त पहले बाधक था, अब साधक हो गया। बाधक निमित्त को साधक बनायें।

५ ज्ञान के माध्यम से जैसे क्रोध करते हैं, वैसे ही ज्ञान के माध्यम से क्रोध छोड़ सकते हैं। बिल्ली जिस पंजे से शिकार करती है, उसी पंजे से अपने बच्चे का पालन भी करती है।

६. जितने क्षण आत्मानुभूति में गए वही क्षण साधु और गृहस्थ में अंतर बताते हैं, बाकी सब तो समान है। गृहस्थ भी पुण्य करते हैं और पाप से बचते हैं।

७. लिखने-पढ़ने में यदि आर्तध्यान होता है तो लिखना-पढ़ना बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि हम धर्मध्यान करने आए हैं, आर्त्तध्यान नहीं।

८. दूसरों की नहीं बल्कि अपनी अनुभूति अपने अनुभव से काम करो क्योंकि पचास ग्रन्थों का सार आपका स्वयं का अनुभव है।

९. जिस प्रकार बच्चों को खाते-पिलाते समय माता-पिता उनके समान बन जाते हैं, उसी प्रकार असंयमियों और व्रतियों को ज्यादा मुँह नहीं लगाना चाहिए बल्कि थोड़ा बहुत दे दिया और अपने आत्म हित में लग जाना चाहिए।

१०. होनहार के साथ समझौता करना जिसने सीख लिया उसे कभी अप्रसन्नता नहीं सताती।

११. आवश्यकता पड़ने पर कोश की किताब की तरह ज्ञानी को व्यवहार का आश्रय लेना चाहिए, कोश में उलझना नहीं चाहिए।

पञ्चम खण्ड

सत् शिव सुन्दर

सत् शिव सुन्दर का सर्वोदयी स्वर्णिम प्रभात, व्यक्ति से लेकर समष्टि तक जीवन चर्या के जिन महत्त्वपूर्ण पहलुओं को आलोकित करता है, मेरी धारणा है कि उसी प्रकाश में मानवता का रथ आगे बढ़ रहा है। पाशविक प्रवृत्ति से परे मानव की पृथक् पहचान बनाने वाले सदाचार से जुड़े हुए लोक मंगलकारी कर्त्तव्य-कार्य इस खण्ड की बुनियाद है। दया-दान, विनय, सेवा, मैत्री और राष्ट्रप्रेम आदि प्रसंगों पर प्राप्त बोध वाक्य सत् शिव सुन्दर खण्ड के त्रिभुज में समाये हुए हैं।

न्याय/नीति

९००. अधिक विलम्ब के कारण कभी-कभी न्याय भी अन्याय-सा लगने लगता है।

९०१. जो व्यक्ति न्याय का पक्ष लेता है वह अन्याय को ही नहीं वरन् समस्त विश्व को झुका सकता है अपने चरणों में।

९०२. स्वयं यदि अन्याय करना नहीं चाहते हो तो अन्याय करने वाले का विरोध भी करना चाहिए।

९०३. आज का न्याय केवल अर्थ के ऊपर आधारित है। अर्थ मिलता है तो परमार्थ को गौण किया जा सकता है, और यदि अर्थ नहीं मिलता है तो उसका विरोध भी किया जा सकता है।

९०४. जो न्याय नीति के विपरीत चलता है, वह भगवान महावीर के शासन को भी कलंकित करता है।

९०५. यह भगवान महावीर का दरबार है, इसमें अनीति-अन्याय के लिये स्थान नहीं मिलता। यहाँ तो नीति-न्याय के अनुसार सादगी जीवन से काम लेना होगा।

९०६. सभी क्षेत्रों में सभी प्रकार की नीतियाँ होती हैं, जो समय-समय पर नष्ट होती रहती हैं, बदलती रहती हैं लेकिन आत्मनीति एक ऐसी नीति है, जो कभी नष्ट न हुई है न होगी।

९०७. पेट भरने की चिन्ता करो, पेटी भरने की नहीं। पेट फिर भी न्याय-नीति से भरा जा सकता है किन्तु पेटी नियम से अन्याय/अनीति के द्वारा ही भरी जायेगी।

९०८. किसी कार्य में समय देना तन, मन, धन से भी अधिक मूल्यवान है।

९०९. अच्छाइयों के प्रति उदारता एवं बुराइयों के प्रति कृपणता का भाव रखना चाहिए।
९१०. समझदार भी कभी-कभी मझधार में रह जाते हैं।
९११. धन का आकर्षण ही धर्म का अवरोधक है।
९१२. जिस कार्य में व्यक्ति की रुचि होती है, उसी ओर उसकी मति और गति होती है।
९१३. निर्णय के बिना जो मार्ग में आगे बढ़ते चले जाते हैं वे गुमराह हो जाते हैं।
९१४. पारम्परिक मार्ग का अनुकरण करना ही श्रेष्ठ है। नया रास्ता बनाना स्वयं तथा अन्य सभी के लिये भी हानिप्रद हो सकता है।
९१५. विपरीत दिशा की ओर नहीं, सही दिशा की ओर हमारे कदम बढ़ना चाहिए। यदि उतावली में हम कोई काम करेंगे तो वह नियम से ठीक नहीं होगा।
९१६. जिन्दगी कितनी ही बड़ी क्यों न हो समय की बर्बादी से वह भी बहुत छोटी हो जाती है।
९१७. अपात्र जनों को बहुमान देने से गुणीजनों के गौरव में क्षति पहुँचती है।
९१८. विपत्ति से बढ़कर अनुभव सिखाने वाला कोई विद्यालय नहीं है।
९१९. बिना जाँचे परखे किसी को भी अपना मित्र बना लेना जीवन की सबसे अप्रिय घटना है।
९२०. जब नीति रीति प्रीति कुछ भी काम न करे, तब फिर कुछ अलग ही सोचना चाहिए।
९२१. पथ्य का सही पालन हो तो औषधि की आवश्यकता नहीं और यदि पथ्य का पालन नहीं हो तो भी औषधि सेवन से क्या प्रयोजन?
९२२. बुखार के समय यदि ताकत की दवाई दे दी जाए तो बुखार ही ताकत से आयेगा। ठीक ऐसे ही विपरीत बुद्धि वालों को यदि प्रोत्साहन मिले तो उनका अहंकार ही बढ़ता है।
९२३. मन की खुराक मान है, वह न मिलने पर मन खुरापाती हो जाता है।
९२४. मनमाना मन तब हो जाता है, जब उसके मन की नहीं होती।
९२५. जब सुई से काम चल सकता है तो तलवार का प्रहार क्यों? और जब फूल से काम चल सकता है तो शूल का व्यवहार क्यों?
९२६. खण्डन की नहीं मण्डन की दृष्टि रखने से खण्डन में भी मण्डन ही नजर आता है।
९२७. जैसे गाय रूखी-सूखी घास खाकर भी मधुर स्वादिष्ट दूध प्रदान करती है, वैसे ही प्रतिकूल नीरस वचनों को सुनकर हमें भी हितकर वचन बोलना चाहिए।
९२८. महत्त्वपूर्ण कीमती वस्तु के लिये हर किसी को किसी भी जगह नहीं दिखाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उसकी महत्ता में कमी आती है।
९२९. वोट से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण सपोर्ट होता है, क्योंकि वोट अपना एक ही होता है, पर सपोर्ट न जाने कितनों का किया जाता है।

९३०. पक्षाघात रोग से तो शरीर का एक भाग ही जड़ (शून्य) हो पाता है, किन्तु पक्षपात के रोग से तो सारा का सारा शरीर और दिमाग दोनों ही जड़ जैसे हो जाते हैं।

९३१. पक्षपात एक ऐसा जलप्रपात है, जहाँ पर सत्य की सजीव माटी टिक नहीं पाती बह जाती है, बहकर जाने वह कहाँ जाती है?

९३२. पक्षपात एक ऐसी बुराई है जो बुरे को भी अच्छा मानकर स्वीकार करती है। तथा मात्सर्य एक ऐसा भाव है जो निर्दोष और सहजता को भी स्वीकार नहीं कर पाता।

९३३. मिट्टी के ऊपर ही पानी का सिंचन किया जाता है, पाषाण पर नहीं। ठीक इसी प्रकार पात्र के ऊपर ही उपकार होता है अपात्र पर नहीं।

९३४. अपराधी के लिये दण्ड देना अनिवार्य है अन्यथा वह अपराधिक प्रवृत्ति में बढ़ सकता है और गुणीजनों को देखकर मुख प्रसन्न होना चाहिए अन्यथा उसके गुणों में विकास नहीं हो सकता।

९३५. क्रूर अपराध के लिये दण्ड भी क्रूर ही दिया जाय यह कुछ जमता सा नहीं है।

धर्मनीति

९३६. अहिंसा धर्म के सद्भाव में सब धर्म अपने आप पल जाते हैं।

९३७. अहिंसा ही हमारा धर्म है, हमारा उपास्य है, उसकी रक्षा के लिये हमें हमेशा कटिबद्ध रहना चाहिए।

९३८. मूलधर्म अहिंसा है, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन उसी अहिंसा धर्म की रक्षा के लिये किया जाता है।

९३९. यदि हम अहिंसा से भावित हैं तो दूसरा हमसे अपने आप ही प्रभावित होगा।

९४०. धर्म वृक्ष से गुजरी हुई सद्भावना की हवा सभी को स्वस्थ एवं सुन्दर बनाती है।

९४१. धार्मिक क्रियाकलापों को सामूहिक रूप से करने पर विचार तथा अनुभवों में वृद्धि होती है।

९४२. धार्मिक क्रियाएँ करते हुए भी दोष लगते रहते हैं, जैसे दीपक के साथ-साथ कालिख भी निकलती रहती है।

९४३. मिलन अलग बात है और मिल जाना अलग बात। रेत का जल के साथ मिलन होता है किन्तु दूध में शक्कर घुल-मिल जाती है, बस धर्म की इतनी ही परिभाषा है।

९४४. आचार-विचारों में पतित व्यक्ति के भी कल्याण की भावना से गले लगा लेना सच्ची धर्म प्रभावना है।

९४५. धर्मात्मा के बिना धर्म कभी रह नहीं सकता अतः धर्म की चाह से हमें धर्मात्मा की भी रक्षा करनी चाहिए।

९४६. जैनधर्म, क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय या व्यक्ति विशेष का नहीं है वह तो सार्वभौमिक लोक

कल्याणकारी है।

९४७. जैनधर्म परस्पर मैत्री, सहयोग और उपकार पर विश्वास रखता है। संघर्ष, अविश्वास, द्वेष और दुराव का यहाँ पर कोई स्थान नहीं है।

९४८. अपनी-अपनी शक्ति/क्षमता के अनुसार सामाजिक जन धर्माराधना में एक जुट हो सकें ऐसा उपदेश तथा प्रेरणा विवेकी जनों के द्वारा दी जानी चाहिए।

९४९. रुढ़िवाद की पूजा और अपने को हीन मानकर दूसरे किसी बड़े के सम्मुख समग्र समर्पण यही लोक मूढ़ता है।

९५०. कर्त्तृत्व के साथ दयाबुद्धि कभी नहीं होती, करुणा का सम्बन्ध तो धर्म के साथ है।

९५१. सत्य उसे मिलता है जिसकी आत्मा गहरी और शान्त होती है।

९५२. जहाँ पर धर्म है, सत्य है, न्याय है वहाँ पर रक्षा अपने आप होती है।

९५३. जो सत्य है वही हमारा है, जो हमारा है वही सत्य है, ऐसा नहीं।

९५४. सत्य का साक्षात्कार बाद में होता है, पहले उस सत्य पर विश्वास करना जरूरी है।

९५५. चिरकाल तक संघर्ष करने के उपरान्त भी अन्त में सत्य की ही विजय होती है, क्योंकि सत्य अमर है और असत्य की पग-पग पर मृत्यु।

९५६. जो आँखें सत्य की ओर निहार रही हैं, वे पूज्य हैं, आखिर ज्ञान की आँखें ही तो पूज्य होती हैं।

९५७. असत्य से सहमत कभी मत होना, भले ही उसका बहुमत क्यों न हो।

९५८. शब्द सत्य या असत्य रूप नहीं होते बल्कि बोलने वाले का अभिप्राय ही सत्य असत्य रूप होता है।

९५९. सद्-अभिप्राय से प्राणीरक्षा के लिए बोला गया झूठ भी सत्य होता है और विपत्ति में डालने वाला कष्टकारक बोला गया सत्य भी झूठ ही होता है।

९६०. हितकारक, कटुक और कठोर वचन भी ठीक है किन्तु अहित करने वाले मधुर वचन भी ठीक नहीं।

९६१. वचनों में अद्भुत शक्ति है इसलिए तो कभी वह कर्णफूल बन जाते हैं तो कभी कर्णशूल।

९६२. सत्य को कहा नहीं जा सकता उसे महसूस किया जा सकता है क्योंकि जो कहा जाता है वह सत्य नहीं, सत्यांश ही होता है।

९६३. उतावली के कारण कभी-कभी व्यक्ति को सत्य से वंचित होना पड़ता है और असत्य की शरण में जाना पड़ता है।

९६४. ऐसी भाषा का प्रयोग करो जो कि सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध न कर सके।

९६५. सत्य हमेशा एक होता है और असत्य अनंत। लेकिन एक सत्य भी अनेकों असत्यों को समाप्त कर देता है जैसे एक चन्द्रमा सघन अंधकार को समाप्त कर देता है।

९६६. जो व्यक्ति स्वयं अनुशासित न होकर दूसरों पर अनुशासन चलाना चाहता है वह व्यक्ति कभी भी सफल नहीं हो सकता।

९६७. आत्मानुशासन के लिये अन्य किसी की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है एक मात्र अपनी कषायों पर 'कुठाराघात' करने की।

९६८. संसारी प्राणी शासन चलाना चाहता है स्वयं अनुशासित होना नहीं चाहता, लेकिन जब भगवान ने स्वयं अपने आपको अनुशासित किया तभी उनको सारे भक्त लोग शासक मानकर पूजने लगे।

९६९. शासन का नहीं आत्मानुशासन का महत्त्व है मोक्षमार्ग में।

९७०. प्रकाश के अभाव की पीड़ा अँधे को नहीं, आँख वाले को ही होती है। आँख के अभाव वाला अंधा नहीं बल्कि सही अंधा तो विवेक आचरण के अभाव वाला है।

९७१. प्रकाश तो वह है, ज्ञान तो वह है जिसमें कोई भी वस्तु अंधकारमय न रहे।

९७२. संसारी जीवों से विशेष सम्पर्क रखना ही संसार बन्धन का मूल कारण है।

९७३. विषय कषायों में अनुरंजन एवं संग्रहवृत्ति का नाम ही संसार है।

९७४. वह गृहस्थ जिसके पास कौड़ी भी नहीं, कौड़ी का नहीं और वह साधु जिसके पास कौड़ी भी है कौड़ी का नहीं।

९७५. उत्साह का जल आलस्य के मल को बहाने में सक्षम है।

९७६. हतोत्साही बनकर नहीं बल्कि उत्साही बनकर सत्कार्य करो, लेकिन उतावली मत करो।

९७७. उत्साह जीवन की वह सम्पदा है जो संसार की किसी भी वस्तु को खरीद सकती है।

९७८. सही तो दृष्टि की दृढ़ता होती है और दृष्टि की दृढ़ता से आचरण में दृढ़ता आती है।

९७९. जिस ओर हमें बढ़ना चाहिए उस ओर यदि हम नहीं बढ़ रहे हैं तो उसका एक ही कारण है आस्था का अभाव।

९८०. निष्ठा और पुरुषार्थ में ऐसा बल है जो बलवान को भी हरा देता है, तथा पद और पथ से डिगने वालों को भी दिशा बोध दिला सकता है।

९८१. गल्ती करने वाले को गल्ती बता देना मगर उसे अपनी दृष्टि से नहीं गिराना बल्कि गल्ती से परिचित कराकर उसे ऊपर उठाना महानता है।

९८२. जिन लोगों ने बुराई की उनको शीघ्रातिशीघ्र भूल जाओ क्योंकि उनका एक क्षण का स्मरण भी अनंत जन्मों के अर्जित आनंद को पलभर में नष्ट कर देता है।

९८३. मोह को जीतना मानवता का एक दिव्य अनुष्ठान है।

९८४. मोह का प्रभाव जड़ के ऊपर नहीं चेतन के ऊपर पड़ता है।

९८५. मोह एक ऐसा जहर है जिसे देखने मात्र से ही जीवन विषाक्त हो जाता हे, काटने की बात तो बहुत दूर रही।

९८६. भौतिक सम्पदा से सुरक्षा नहीं, सच्ची सुरक्षा तो आत्मिक सम्पदा से है।

९८७. कामाग्नि को उद्दीप्त करने के लिये भौतिक सामग्री घासलेट तेल का काम करती है।

९८८. जीवन बहुत संघर्षमय है, इसे हर्ष के साथ जीना चाहिए।

९८९. संघर्षमय जीवन का उपसंहार हमेशा हर्षमय होता है।

९९०. विकार से ही विकार टकराता है। विकार, विकार का संघर्ष है, विकार और निर्विकार का संघर्ष तीन काल में संभव नहीं है।

९९१. हमारा जीवन संघर्षमय है इस पर भी अनादिकालीन संस्कार ऐसे हैं जो आत्मा को झकझोर रहे हैं

और वे कभी-कभी आत्मपद से च्युत कराने में सफल भी हो जाते हैं। अतः धर्म के क्षेत्र में अहर्निश सावधानी रखनी चाहिए।

९९२. तुम दुनिया के साथ भले ही छल करो लेकिन छाले तुम्हारी आत्मा में ही पड़ेंगे।

९९३. यह संसार ठगों का बाजार है इसके ठगने में नहीं आना किन्तु अपनी कषायों को ही ठगकर संसार से पार हो जाना।

९९४. चोर से नहीं 'चौर्य' भाव से नफरत करो, घृणा पापी से नहीं पाप से करना चाहिए।

९९५. पकड़ना चोरी है जानना चोरी नहीं है, हमारी दृष्टि लेने के भावों से भरी है और भगवान की दृष्टि ज्ञान-भाव से भरी हुई है।

९९६. मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। वह तो मात्र ड्रेस और एड्रेस का बदलना है।

९९७. वह जन्म अच्छा माना गया है जो मरण को जन्म नहीं देता और वही मरण अच्छा माना गया है जो बार-बार जन्म को जन्म नहीं देता।

९९८. सबसे ज्यादा क्षमता उसी की होती है जो क्षमाशील होता है।

९९९. क्षमा मांगना नहीं, क्षमा धारण करना ही श्रेष्ठ है।

१०००. क्षमा करने वाला क्षमा मांगने वालों से बहुत आगे पहुँचा हुआ माना जाता है।

१००१. यदि क्रोध हमारे अन्दर विद्यमान नहीं तो फिर हमें क्रोध दिलाने में कोई समर्थ नहीं हो सकता।

१००२. हम सोचते हैं कि अपने क्रोध के द्वारा हम दूसरों को जला डालेंगे लेकिन ध्यान रखना विश्व में कोई भी शक्ति दूसरों को नहीं जला सकती।

१००३. उबलती हुई सामग्री जैसे छूने लायक नहीं रहती अर्थात् अस्पृश्य हो जाती है ठीक इसी तरह क्रोधाग्नि से तप्तायमान व्यक्ति भी अस्पृश्य हो जाता है।

१००४. शारीरिक गुणों का घात करना द्रव्य हिंसा है और आध्यात्मिक जीवन में व्यवधान करना भाव हिंसा है।

१००५. दीपक, बाती और तेल से नहीं जलता बल्कि इन दोनों के त्याग से जलता है।

१००६. मार्ग का अन्त ही मंजिल है। यात्रा वही है जिससे मार्ग का अन्त आ जाये।

१००७. यात्रा तो हमेशा एक ही दिशा की ओर हुआ करती है। घुमाव और भटकन का नाम यात्रा नहीं है।

वैराग्य-प्रेरणा

१००८. वैराग्य की प्रेरणा जहाँ मिले वस्तुतः वही हमारे लिये कल्याण का साधन है।

१००९. जिस वंश के हम अंश हैं उसके अनुरूप ही मोह का ध्वंस करना जरूरी है।

१०१०. शरीर को संवारो (सजाओ) नहीं किन्तु सम्हालो, यह मोक्षमार्ग में सहकारी है।

१०११. दीपक जबसे जलना शुरू करता है तभी से बुझने लगता है।

१०१२. अनंत संसार परिभ्रमण के बाद भी यह जीव थका नहीं, बड़ी विचित्र दशा है इस जीव की।

१०१३. अरे भाई! जा तो रहे हो, पर जाते-जाते यह भी विचार करो कि जाना कहाँ है? एक बार उस गन्तव्य को प्राप्त करो जहाँ से पुनः लौटकर न आना पड़े।

१०१४. यदि अंधा कुएँ में गिरता है तो कोई बात नहीं किन्तु जानते-देखते हुए भी कोई व्यक्ति गिरे तब जरूर विचारणीय बात है।

१०१५. स्व पर अहितकारी मिथ्यात्व-असंयम के ऐसे विष बीज मत बोना, जिसके द्वारा उत्पन्न विषफल आपको खाना पड़े और नरक-निगोद आदि दुर्गतियों में जाना पड़े।

१०१६. हमारा जीवन पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर है जिसे फूटने में देर नहीं।

१०१७. प्राप्त संपदा और जीवन इन्द्रधनुष तथा आकाश नगर की भाँति क्षणभंगुर है जो तृण-बिन्दुओं के समान बहुत ही जल्दी बिखर जाने वाला हैं।

१०१८. यह संसार इन्द्रजाल के समान है जो देखने में दिखता तो बहुत सुन्दर है पर स्थिर रहने वाला नहीं है। देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाला है।

१०१९. यह सारा का सारा संसार है केवल एक विशाल नाटक। भले ही इसमें तू भाँति-भाँति के वेश धर किन्तु इसमें भूलकर भी न अटक।

१०२०. अहो! इस निद्रा का माहात्म्य तो देखो, जिसके आने पर यह जीव शव जैसा दिखने लगता है, और उसके जाते ही शिव जैसा प्रतीत होता है।

१०२१. संसारी प्राणी की यह मूर्खता है जो नश्वर को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है, सुरक्षा नहीं होने पर संक्लेश करता है जिससे दुर्गति का पात्र बनता है।

१०२२. जड़ तत्त्व की सुरक्षा के लिये जो व्यक्ति मूल्यवान चेतन धन का उपयोग करता है वह पैर धोने के लिये अमृत कलश ढोल रहा है, राख के लिये चन्दन की लकड़ी जला रहा है।

१०२३. यदि हमारे घर के अन्दर एक छोटा सा भी सर्प घुस आए तो हम घर छोड़कर भाग जाते हैं किन्तु हमारे भीतर रागद्वेष विषय-कषायों के कितने सर्प बैठे हुए हैं, पर हमें उनका ख्याल ही नहीं।

१०२४. जीवन बहुत थोड़ा है, यह प्रतिपल नष्ट हो रहा है, ऐसी स्थिति में आपके भीतर इसके प्रति जो अमरत्व की भावना है वह अयथार्थ है यानी क्षणिक पदार्थ में शाश्वत बुद्धि अयथार्थ है।

१०२५. जीवन में एक घड़ी भी वीतरागता के साथ जीना बहुत अर्थ रखता है किन्तु राग-असंयम के साथ हजारों वर्ष तक जीना कोई मायना नहीं रखता। सिंह बनकर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है किन्तु सौ साल तक चूहे बनकर जीने की कोई कीमत नहीं है।

१०२६. जब तक अपराधी एक अकेला रहता है तब तक वह अनुभव करता है कि हाँ मैं अपराधी हूँ मैंने अपराध किया है, मैं उसका दण्ड भोग रहा हूँ। किन्तु जब अपराधियों कीं संख्या बढ़ जाती है तो फिर उसमें भी एक प्रकार का रस आने लगता है।

कर्त्तव्य बोध

१०२७. गुणवान, गुणियों को आदर देते ही हैं क्योंकि उन्हें गुणों की महत्ता मालूम है।

१०२८. सभी लोग दूसरों से आदर पाना चाहते हैं पर देना नहीं। दूसरों को आदर दिये बगैर आदर मिल कैसे सकता है?

१०२९. सहज जीवन जीना सीखो, मान के अभाव में मानव स्वयमेव सहज हो जाता है।

१०३०. अहंकारी का ही अधोगमन होता है, विनयी हमेशा ऊर्ध्वगामी होता है।

१०३१. हे मानी प्राणी! देख तो इस पानी को और हो जा पानी-पानी।

१०३२. कठोरता बर्फ की तरह विभाव है जबकि तरलता पानी की तरह आत्म स्वभाव।

१०३३. मृदुता और काठिन्य की सही पहचान तन को नहीं हृदय को छूकर होती है।

१०३४. लघुत्व को स्वीकार किये बिना अन्दर से गुरुत्व प्रकट हो ही नहीं सकता।

१०३५. बड़प्पन वही है जो सही को स्वीकार करे।

१०३६. वास्तव में बड़ा वही है जिसे छोटे का भी ध्यान हो।

१०३७. आज का व्यक्ति मान के पीछे सब कुछ न्यौछावर करने तैयार है पर मान को नहीं।

१०३८. मान को समझने और उसे जीतने में ही मानव की सफलता है।

१०३९. विनय, दीनता की प्रतीक नहीं है वह तो समीचीन तप है, जो आत्म-विकास तथा कर्म निर्जरा का श्रेष्ठ साधन है।

१०४०. विनय के माध्यम से सामने वाला पाषाण ह्रदय भी पिघल जाता है एक प्राचीन आचार्य को आज का दीक्षित शिष्य भी अपनी विनय वृत्ति से आकर्षित कर लेता है।

१०४१. विनय में ह्रदय साफ होना चाहिए, छल कपट मायाचारी से की गई विनय कोई विनय नहीं वह तो पाखण्ड मात्र है।

१०४२. सामने-सामने विनय भक्ति फिर भी स्वार्थ से हो सकती है किन्तु परोक्ष में भी विनय भक्ति करना निस्वार्थ गुणानुराग के बिना संभव नहीं।

१०४३. आज स्थितिकरण की बहुत जरूरत है पर ध्यान रहे वह उपगूहन की पृष्ठभूमि पर विनय और शालीनता के साथ होना चाहिए।

१०४४. जो अहंकार वश यहाँ अकड़कर ऊपर देखता हुआ चलता है उसको परभव में नीचा ही रहना पड़ता है किन्तु जो यहाँ विनम्र विनत दृष्टि रहता है उसे परभव में उच्चपद प्राप्त होता है।

१०४५. विवेक के साथ प्रत्येक घड़ी बिताने का नाम ही वास्तव में जीवन है।

१०४६. विवेकी कभी मुग्ध नहीं होता और जल्दबाजी में कभी क्षुब्ध भी नहीं होता है। अनुकूलता प्रतिकूलता में वह अपने आपको सम्हाले रखता है।

१०४७. आज दूरदर्शन की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी दूरदृष्टि रखने की।

१०४८. जिसका विवेक एक बार जागृत हो जाता है वह अधर्म से स्वयमेव बच जाता है उसे फिर किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। वास्तविक स्वयं सेवक वही है जो आत्मा की सेवा करता है।

१०४९. दूसरों की सेवा में निमित्त बनकर अपने अन्तरंग में उतरना ही सबसे बड़ी सेवा है।

१०५०. अनुभव में वृद्धि, सादगी और गंभीरता का आना वृद्ध सेवा का परिणाम है।

१०५१. सेवा वैय्यावृत्ति करना निश्चित ही उपकार है किन्तु किसी को अपनी तरफ से परेशानी में नहीं डालना भी उपकार है।

१०५२. प्रत्युपकार की इच्छा से किया गया उपकार वास्तविक उपकार नहीं है।

१०५३. पर के कल्याण में 'स्व' का कल्याण निहित है। यह बात दूसरी है कि फिर दूसरे का कल्याण हो अथवा न भी हो।

१०५४. परोपकार की वेदी पर चढ़ाया गया फल कभी निष्फल नहीं जाता।

१०५५. कर्त्तव्य में आनंद मनाने वाला व्यक्ति एक कर्त्तव्य को पूर्ण कर दूसरे कर्त्तव्य की खोज में तत्पर रहता है।

१०५६. कर्त्तव्य में अधिकार का भाव नहीं आना चाहिए क्योंकि अधिकार का भाव आते ही कर्त्तव्य, कर्तृत्व बन जाता है।

१०५७. बड़ों की विनय छोटों का कर्त्तव्य, छोटों के प्रति वात्सल्य बड़ों का कर्तव्य, परस्पर में एकता ये सभी संघ संचालन के जरूरी साधन हैं।

१०५८. अहंकार की नींव पर ही कर्तृत्व का ढाँचा टिका हुआ है।

१०५९. जैनदर्शन कहता है कि उतना ही उत्पादन करो जितना तुम्हें आवश्यक है बल्कि उससे कम ही करो जिससे कुछ समय बचेगा जिसमें परोपकार की बुद्धि जाग्रत होगी।

१०६०. स्वार्थ सिद्धि और क्षणभंगुर जीवन की रक्षा के लिये अनाप-शनाप सामग्री का संग्रह, पता नहीं इन्सान को कहाँ ले जायेगा।

१०६१. कम से कम वस्तुओं में अपना निर्वाह करना यह गरीबी नहीं किन्तु सदाचरण सन्तोषवृत्ति है।

१०६२. स्वार्थ और संकुचित दायरों से ऊपर उठे बगैर किसी की सेवा संभव नहीं।

१०६३. सफलता उसके चरण चूमती है जो निरन्तर परिश्रम करता है।

१०६४. बड़ों की आज्ञा पालन करने से तन और मन दोनों की दूरी समाप्त होती है।

१०६५. ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' इस सूत्र को यदि हम सही-सही समझ लें, जीवन में उसे लागू करें तो आज जैनधर्म की व्यापक रूप से प्रभावना हो सकती है।

१०६६. अपने जीवन की सुख सुविधाओं में यदि थोड़ी भी कमी आ जाए तो व्यक्ति को शीघ्र ही रोष आ जाता है और उस रोष में हमारा होश भी खो जाता है। दूसरों के द्वारा किये गये उपकार को भी हम भूल जाते हैं।

१०६७. दया का कथन निरा है और दया का वतन निरा है। एक में जीवन है और एक में जीवन का अभिनय।

१०६८. दया और अभय का धर्म से गहरा सम्बन्ध है। वीतरागी जीवन में हमें यह सहज ही दिखाई देते हैं।

१०६९. वे आँखें किस काम की जिनमें ज्ञान होते हुए भी संवेदना की दो-तीन बूँदे भी नहीं आतीं। वे आँखें लोहे की हैं, पत्थर की हैं, हमारे किसी काम की नहीं।

१०७०. दया के अभाव में शेष गुण विशेष महत्त्वशाली नहीं हैं। वह दया, शेष गुण रूपी मणियों को पिरोये जाने के लिये धागे के समान है।

१०७१. हे आर्य! दान देना दाता का कार्य है और अनिवार्य है।

१०७२. दाता अभिमानी न बने और पात्र दीन न हो तभी दान देय की महत्ता है।

१०७३ दाता, दान का पात्र नहीं है अतः वह दान देने की पात्रता तो रखता है पर लेने की नहीं।

१०७४. पात्र सत्पात्र हो और पावन होने वाला भी नीर-क्षीर विवेकी हंस के समान हो तो समागम करने वाला पतित से पावन नियम से बनता है।

१०७५. जो अतिथि सत्कार को बेचैन रहता है उससे कई गुना बेचैन होकर पुण्य उसकी खोज करता है।

१०७६. सर्वस्व समर्पण करने में न मांग होती है, न चाह, न प्रतिदान की भावना।

१०७७. दान के बिना अहिंसा धर्म की रक्षा न आज तक हुई है और न आगे होगी।

१०७८. धन का नहीं धर्म का स्वागत करो। न्यायोपात्त धन से जो दान दिया जाता है वह युगों-युगों तक कीर्ति का कारण बनता है।

१०७९. दान देने का अर्थ यह नहीं है कि यद्वा-तद्वा दान दें। यदि एक व्यक्ति चोरी करके दान दे तो क्या उसका दिया हुआ दान, दान कहलाएगा। नहीं....नहीं। वह तो पाप का ही कारण बन जाएगा।

१०८०. जो व्यक्ति अत्याचार, अनाचार के साथ वित्त का संग्रह करता है और मान के वशीभूत होकर दान करता है वह कभी भी धर्म प्रभावना नहीं कर सकता, और न ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है।

१०८१. वात्सल्य विहीन व्यक्ति पत्थर के समान होते हैं।

१०८२. अभिमान वश हम हाथी के साथ तो चल सकते हैं पर साथी के साथ नहीं।

१०८३. मैत्री भाव का प्रदर्शन तो स्वार्थ की वजह से कहीं भी हो जाता है किन्तु उसका दर्शन तो मैत्री के धारक महामुनिराजों के सान्निध्य में ही होता है।

१०८४. प्रेम में समय और स्थान की सभी दूरियाँ समाप्त हो जाती हैं क्योंकि प्रेम आत्मगत होता है।

१०८५. प्रेम की स्याही और आचरण की कलम से ही जीवन का काव्य निर्मित होता है।

१०८६. आनंद का अनुभव स्वयं को होता है किन्तु प्रेम का अनुभव तो निकट आने वाले को भी।

१०८७. जो प्रेम व्यक्ति या वस्तु-विशेष के प्रति होता है वह प्रेम नहीं राग का संबंध है क्योंकि प्रेम व्यापक और निःस्वार्थ होता है।

१०८८. दीनता, विनय नहीं है वह तो मात्र जीवन का निर्वाह है।

१०८९. विवाह में पहला बंधन है राग, लेकिन वह राग, रागी बनने के लिये नहीं वीतरागी बनने के लिये है। इसमें एक ही के साथ सम्बन्ध है अनंत के साथ नहीं। अनंत के साथ तो बाद में होगा, सर्वज्ञ होने पर। पहले एक फिर अनंत। जो प्रारंभ में ही अनंत के साथ उलझता है, उसका किसी विषय पर अधिकार नहीं रहता।

१०९०. एक दूसरे के पूरक होकर, प्रेम के साथ खाई गई रूखी-सूखी रोटी भी व्यक्ति को पहलवान

बना देती है किन्तु ईर्ष्या के साथ मावा-मिष्ठान्न खाने पर भी अस्पताल जाने की आवश्यकता होती है।

१०९१. जिस प्रकार बिना किसी खिड़की या दरवाजे के कोई मकान संभव नहीं ठीक इसी प्रकार बिना गुणों के कोई भी व्यक्ति संभव नहीं। हाँ, उन्हें देखने के लिये चाहिए है मात्र दृष्टि।

१०९२. हमें हमेशा गुणवानों को ऊपर उठाने का प्रयास करना चाहिए। वह गुणी कोई भी हो सकता है बस गुण होना चाहिए। फिर जाति से, शरीर से, मजहब अथवा कौम से कोई भी मतलब नहीं है। राजा या रंक उसके सामने कोई वस्तु नहीं है।

१०९३. निंदा किसी की भी नहीं करनी चाहिए, यहाँ तक कि विपरीत वृत्ति वाले की भी नहीं।

१०९४. हमें दूसरों के गुणों की प्रशंसा ही करना चाहिए, निंदा-बुराई करके हम व्यर्थ ही अपने मुख को खराब करते हैं।

१०९५. सज्जनों के मुख से कभी भी निष्ठुर, निन्दक और निर्दयतापरक वचन नहीं निकलते।

१०९६. दूसरों की आलोचना / दोषों का कथन करते समय जिनकी जिह्वा मौन हो जाती है, वास्तव में वे ही महापुरुष होते हैं।

१०९७. किसी के साथ नहीं बोलना यह तो अच्छा है लेकिन एक से बोलना और एक से नहीं बोलना यह हमारे रागद्वेष को सूचित करने वाली खतरनाक परिणति है।

निजता का पाठ

१०९८. हम लोग अभाव में पूजा तो करते हैं पर सद्भाव में नहीं।

१०९९. सद्भावना हमारे अन्दर छिपी सम्भावनाओं को अभिव्यक्त कर देती है।

११००. चिराग को नहीं किन्तु चिर-आग (राग) को बुझाओ।

११०१. मानव, माया का दास बना है माया, मानव की दासी नहीं।

११०२. आशा को ही जिन्होंने दासी बना लिया अब उनके चरणों में सारा जगत् ही दास बनकर खड़ा हो जायेगा।

११०३. अज्ञानता की धरती पर ही राग-द्वेष की खेती हो रही है।

११०४. लक्ष्योन्मुखी दृष्टि होने से गिरा हुआ व्यक्ति भी उठ सकता है जैसे कि चींटी।

११०५. उत्कृष्ट साधकों के दर्शन करने से ही उत्कृष्ट परिणाम (भाव) प्राप्त होते हैं।

११०६. व्यक्ति, माल से मालदार नहीं किन्तु भावों से मालदार बनता है।

११०७. हमें दीप का नहीं ज्योति का और सीप का नहीं मोती का सम्मान करना है।

११०८. अपनी पहचान मानवता की पहली शर्त है।

११०९. प्रत्येक प्राणी का जीवन अपने आप में एक आधी अधूरी कहानी है।

११९०. प्रत्येक द्रव्य अपनी सृजनशीलता का कोष है।

११९१. अपने में अपने हित की भावना ही जागृति है, तभी जीवन में सवेरा है।

११९२. जब हवा काम नहीं करती तब दवा काम कर जाती है। और जब दवा काम नहीं करती तब दुआ काम कर जाती है।

११९३. वर्ण का आशय न रंग से है न अंग से वरन् चाल-चलन ढंग से है।

११९४. वचनों के माध्यम से देश, वंश और परिवार का परिचय प्राप्त हो जाता है।

११९५. कलयुग की यही पहचान है जिसे खरा भी अखरा है सदा और सतयुग उसे तू मान जिसे बुरा भी बूरा सा लगा है सदा।

११९६. शांति कहीं और से आने वाली नहीं, अशान्ति जहाँ से आ रही है उसे दूर करना ही शान्ति को लाना है।

११९७. शांति किसके लिये? स्वयं को या दुनिया को। यदि स्वयं शांत हो जाओगे तो दुनिया अपने आप शांत हो जायेगी।

११९८. मंगलाचरण और मंगल ध्वजारोहण आदिक कार्यों के समय ही हमें मंगलकारी भावना नहीं भानी चाहिए बल्कि हमेशा भाते रहना चाहिए।

११९९. शुद्ध तत्त्व का निरीक्षण करने वाला व्यक्ति पावन/पवित्र होता है।

१२००. हमारी दृष्टि में समीचीनता तभी आ सकती है जब हम वस्तु के असली रूप को देखने का प्रयास करेंगे।

१२०१. स्वतंत्रता के अधिकार के साथ-साथ स्वतंत्रता के सम्मान का कर्त्तव्य भी लगा हुआ है।

१२०२. अर्थ पुरुषार्थ का अर्थ है कि दो अर्थों के बीच पुरुष। जिसका अर्थ है कि अर्थ (धन) पुरुष (आत्मा) के लिये है।

१२०३. लोग कहते हैं कि उत्पादन नहीं हो रहा पर मैं कहता हूँ कि आज मुख्य समस्या उत्पाद की नहीं, उत्पात की है जो हर जगह हो रहा है।

१२०४. संतुलित एवं संयमित आहार के द्वारा शारीरिक बल को नियन्त्रित किया जाता है जो शरीर एवं स्वास्थ्य दोनों के लिये लाभप्रद होता है।

१२०५. शाकाहार के साथ-साथ आहार की मात्रा भी संतुलित करना जरूरी है। अभक्ष्य और अनिष्ट का त्यागकर उसी तरह का भोजन करना चाहिए जो स्वास्थ्य वर्धक एवं हितकारी हो।

१२०६. आप हाथापाही को ठीक मानते हैं और माथाफोड़ी में कठिनाई महसूस करते हैं, पर विज्ञजन कहते हैं कि हाथापाही बहुत की अब थोड़ी माथाफोड़ी भी कर लो यानि अनर्गल (असम्यक्) प्रवृत्ति छोड़ दो और युक्ति संगत कार्य करो।

११२७. आज के युग की सबसे बड़ी समस्या विचार, उच्चार एवं आचार के बीच की खाई है, जिस दिन यह पटेगी उस दिन मानव जीवन की बहुत सारी समस्यायें स्वयमेव सुलझ जाएँगी।

११२८. पहले नाव की बात होती थी, आज सिर्फ चुनाव की बात होती है। पहले तैरने-तिराने की बात होती थी आज सिर्फ डूबने-डुबाने की बात होती है।

११२९. हमें कागज की नाव में नहीं चलना है। कागजी नाव से आज सारी की सारी समाज परेशान है। आज नावें भी सही नहीं हैं बल्कि नाव के स्थान पर आज चुनाव हावी होता जा रहा है।

११३०. जीव के परिणाम और कर्म के बीच की स्थिति है नोकर्म, हमें नोकर्म पर हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए। जैसे पत्र पाने वाला व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया पत्र प्रेषक के प्रति करता है न कि डाकिया पर।

११३१. समय इतना सूक्ष्म है जिसका विभाजन करना संभव नहीं। वह तो निरन्तर प्रवाहमान है, रविवार के समापन और सोमवार की शुरूआत के बीच की संधि आज तक कोई भी नहीं पकड़ पाया।

११३२. नगर-पालिका की ओर से यदि दो चार दिन ही शहर में सफाई न हो तो गंदगी काफी फेल जाती है निकलना कठिन हो जाता है किन्तु इस आत्मा के अन्दर जन्म जन्मान्तरों का कचरा पड़ा हुआ है फिर भी हमें ध्यान नहीं।

११३३. व्याकरण में प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष यह तीन पुरुष होते हैं। अन्य पुरुष में 'है' का प्रयोग होता है, प्रथम पुरुष में 'हूँ' का और मध्यम पुरुष में 'हो' का प्रयोग होता है। जब 'हूँ' या 'हो' निकल जायेगा तब 'है' शेष रह जायेगा। सर्वोदय का साक्षात् दर्शन अन्य पुरुषों में होता है। अन्य पुरुष में पूर्ण समष्टि है, इसे आचार्य कुन्दकुन्द ने महासत्ता कहा है। अन्य पुरुष में प्रथम और मध्यम पुरुष की अपेक्षा वात्सल्य प्रेम का व्यापक दृष्टिकोण होता है।

राष्ट्र-भावना

११३४. देश पर आपत्ति के क्षणों में अपने संग्रहीत धन का सदुपयोग नहीं करना, राष्ट्र के प्रति बहुत बड़ी कृतघ्नता है।

११३५. कर्त्तव्य निष्ठ व्यक्ति ही देश और धर्म की सुरक्षा कर सकता है।

११३६. देश के प्रति गौरव, बहुमान एवं अपनत्व के द्वारा ही लोकतंत्र की नींव सुरक्षित रहेगी।

११३७. त्याग, तपस्या तथा निःस्वार्थ सेवा के बिना आत्मोद्धार और देश का उद्धार संभव नहीं।

११३८. सभी जीव सुखी हों, सभी का कल्याण हो, सभी प्रसन्न रहें, राजा धार्मिक बना रहे। इस तरह की भावना सभी को भानी चाहिए।

११३९. देश में एकता, शांति और संस्कृति के संरक्षणार्थ जो भी कदम उठाए जायें वह सब स्वागत के योग्य हैं।

११४०. हमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव, भक्ति और समर्पण होना चाहिए। हमारा देश हर तरह से समृद्धशाली बने तथा शांति अहिंसा का विस्तार हो ऐसी लोक हितकारी भावना भी रखनी चाहिए।

११४१. यदि हमारे अन्दर राष्ट्रीयता नहीं है, देश के प्रति निष्ठा नहीं है हम स्वयं ही उसकी जड़े कमजोर करने में लगे हैं तब फिर हमसे बड़ा कृतघ्नी और कौन होगा? हम जिस डाल पर बैठे हैं, यदि उसे ही काटने लगे तो सोचो भला फिर हमारा क्या होगा? पता नहीं हमारी ये अज्ञानता हमें कहाँ ले जायेगी।

११४२. जो व्यक्ति राजकीय नियमों का उल्लंघन करके कोई कार्य करता है, तो समझिये कि वह अपनी तरफ से ही धार्मिक कार्यों में बाधा उपस्थित करता है।

११४३. समाजवाद का वास्तविक अर्थ है सबके साथ वात्सल्य, प्रेममय व्यवहार, सबका हित देखना हिल मिलकर रहना।

११४४. हम समाजवाद-समाजवाद की बात तो बहुत करते हैं, पर होता यह है कि पहले हम.... समाज बाद में! समाजवाद का यह रूप तो ठीक नहीं।

११४५. जिस प्रकार दानवीर भामाशाह ने अपनी न्यायोपार्जित संपत्ति को न्योछावर कर राष्ट्र सुरक्षा संवृद्धि के लिये योगदान दिया उसी प्रकार आज भी प्रत्येक राष्ट्रभक्त श्रावक के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देश की रक्षा करना चाहिए।

११४६. देश के धन को विदेशी बैंकों में जमा करना और व्यक्तिगत पूँजी बना लेना राष्ट्र की नींव को कमजोर करना है।

११४७. पारस्परिक सौहार्द्र और समन्वय से ही देश की एकता और अखंडता कायम रह सकती है।

११४८. प्रेम, मैत्री, करुणा और आस्था समाज संगठन की आधारभूत भावनायें हैं।

११४९. विनय, वात्सल्य, एकता तीनों रत्नत्रय के समान हैं। समाज की संरचना में इनका बहुमूल्य योगदान है।

११५०. अपरिग्रह का सिद्धान्त समाजवाद का व्यवहारिक रूप है यह सिद्धान्त समाजवाद को जीवित रखने के लिये संजीवनी का काम करता है।

११५१. जिस व्यक्ति के अन्दर अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम नहीं है वह व्यक्ति राष्ट्र भक्त कैसे कहा जा सकता है?

११५२. देशद्रोह, अपराधों में एक बहुत बड़ा अपराध है।

११५३. देश के प्रति वफादार होना ही राष्ट्र के प्रति सच्ची कृतज्ञता है।

११५४. धर्माराधन के लिये शासकीय अनुकूलतायें होना भी जरूरी है। प्रशासक (राजा) यदि धर्म का पक्षधर हो तो उसे राज्य में रहने वाले तपस्वियों के तप का छठवाँ भाग सहज ही मिल जाता है।

श्रेयस् पथ

११५५. प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति के मार्ग पर जाना ही श्रेयस्कर है।

११५६. वर्तमान पुरुषार्थ का प्रभाव भूत और भविष्य दोनों पर पड़ता है।

११५७. त्रस पर्याय की प्राप्ति उतनी ही दुर्लभ है जितनी कि गुणों में कृतज्ञता।

११५८. बड़ों में गंभीरता, धैर्य, साहस, वैराग्य सब कुछ प्रौढ़ होना चाहिए।

११५९. पक्ष-विपक्ष से परे जीवन को निष्पक्ष बनाना ही श्रेयस्कर है।

११६०. कैंची नहीं सुई बनो क्योंकि कैंची का काम है काटना और सुई का काम है जोड़ना।

११६१. हमें जोरदार नाम नहीं करना, किन्तु जोरदार काम करना है।

११६२. उच्चविचार ही जीवन में उच्च आचार को लाते हैं तथा उच्चतम स्थान दिलाने में कारण होते हैं।

११६३. अच्छे कार्य करने से ही अच्छे पद मिला करते हैं, बुरे कार्य करने से कभी भी अच्छे पद नहीं मिलते।

११६४. यदि दृष्टि में विकार है तो निर्दिष्ट लक्ष्य को निष्पन्न कराना असम्भव ही है।

११६५. अधिक बोलने से शक्ति का अपव्यय होता है, मौन रहने से चिन्तन में प्रखरता तथा विचारों में प्रौढ़ता आती है।

११६६. मौन की अपेक्षा ऐसे वचन बोलना भी श्रेष्ठ हैं जिससे क्षुब्ध वातावरण भी शांति का अनुभव कर सके।

११६७. कषायी के ऊपर नहीं, कषायों के ऊपर क्रोध करना श्रेयस्कर है।

११६८. वज्र के प्रहार से पत्थर कट सकता है पर नवनीत नहीं क्योंकि नवनीत विनीत ही बना रहता है।

११६९. दुनियाँ भले ही हमसे मतलब रखे, किन्तु हमें दुनियाँ से मतलब नहीं रखना है।

११७०. खसखस के दाने बराबर दूसरों को दिया गया दुख हमारे लिये मेरु के बराबर होकर फलता है।

११७१. अपनी रक्षा करना तो ठीक है, लेकिन अपनी रक्षा के लिये दुनियाँ भी मिट जाय यह कोई धार्मिकता नहीं है।

११७२. जो पापों से बचाकर प्राणियों की रक्षा करे वह है क्षत्रिय।

११७३. अपराधियों को मारने के लिये नहीं किन्तु अपराध से भयभीत कराने के लिये क्षत्रियों के हाथ में शस्त्र दिये जाते हैं।

११७४. अपनी और पर की रक्षा के लिये शस्त्र रखा जाता है न कि हिंसा के लिये।

११७५. चक्र चलाने के लिये नहीं किन्तु जिसका मन चलायमन है उसे स्थिर करने के लिये है।

११७६. चक्रवर्ती षट्खण्ड को जीतकर आया है फिर भी उसकी सुरक्षा के लिये अंग रक्षक (Body Guard) अहो! आश्चर्य की बात है।

११७७. कर्त्तव्य के प्रति अनादर एवं अकर्त्तव्य के प्रति आदर होना प्रमाद का सूचक है।

११७८. भय, दबाव और अरुचि से की गई क्रियायें कभी भी वास्तविक फल की प्राप्ति नहीं करा पाती।

११७९. मात्र लीक के पीछे मत दौड़ो, नहीं तो भेड़ों की तरह जीवन का अन्त हो जायगा।

११८०. हम जहाँ कहीं भी जो भी कार्य करें वह अपनी भूमिका, योग्यता और विवेक के साथ करें। प्रमाद के साथ नहीं किन्तु जागृति से करें।

११८१. जिसके कदम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं वह न तो भटकता है और न ही अटकता है क्योंकि अधिक अटकने पर भटकने का भी भय रहता है।

११८२. जीवन में यदि सच्चा साधु न मिल पाये तो भी कार्य सध सकता है किन्तु कुसाधु की संगति अवश्य ही संसार में डुबोती है।

११८३. अपनी क्षमता तथा पद की मर्यादा के अनुकूल ही कर्त्तव्य होना चाहिए किन्तु ध्यान रहे उसमें कर्तृत्व बुद्धि न हो।

११८४. पापी के पीछे पड़े रहने से स्वयं का भी पुण्य लुट सकता है और अपने ही पुण्य में लगे रहने से पापी भी मुड़ सकता है।

११८५. गुणीजनों को हमेशा मान-सम्मान देने का प्रयास करो किन्तु मान-सम्मान पाने की भूख मत रखो।

११८६. स्वयं में गुरुता का अनुभव करने वाला व्यक्ति ही गर्व करता है।

११८७. यदि माता-पिता और गुरुओं का वरदहस्त हमारे ऊपर है तो हम अपने लक्ष्य की ओर अबाधित बढ़ते जायेंगे। फिर हर जगह सफलता ही सफलता मिलेगी।

११८८. उपकरणों की संख्या देखकर ही उसके प्रति आसक्ति का अन्दाज लगाया जा सकता है।

११८९. वातावरण ऐसा निर्मित करें जिससे व्यक्ति पतन नहीं बल्कि उत्थान की ओर अग्रसर हो।

११९०. भौतिक सुविधायें मन को दुविधाग्रस्त करती हैं।

११९१. मंदिर जाओ, जाना न पड़े और घर न जाओ, जाना पड़े तो समझ लो धर्म की शुरूआत हो गई।

११९२. बहुमूल्य प्रतिमाओं का मूल्य नहीं किन्तु न्यौछावर होना चाहिए।

११९३. व्यक्ति की परख उसके कुल से नहीं कर्म से होती है।

११९४. सत् शिव सुन्दर की चर्चा खूब की अब तब। अब चर्चा की नहीं अर्चा की जरूरत है।

११९५. सत् शिव और सुन्दर का जो साम्राज्य जहाँ छिपा है उसे खोजो और पाने का प्रयास करो।

११९६. प्रतिनिधि सामान्य बात नहीं है क्योंकि प्रतिनिधि के माध्यम से ही उस निधि की पहचान होती है।

११९७. विपरीत वृत्ति वाले के लिये उत्तर नहीं मौन ही श्रेष्ठ है।

११९८. कर्म से प्रभावित उपयोग में वस्तुतत्त्व का वास्तविक अनुभव/अवलोकन संभव नहीं।

११९९. अर्थ का अधिक संग्रह शांति का कारण नहीं बल्कि समुचित वितरण शांति का कारण है।

१२००. हमें धन का समर्थन परिवर्द्धन नहीं करना किन्तु समय-समय पर उसका सदुपयोग करना है।

१२०१. दुख को समझना/अनुभव करना ही सुख को प्राप्त करने का सही रास्ता है।

१२०२. वह सुख किस काम का जो चाहते हुए भी किसी के दुख को दूर न कर सके।

१२०३. जब तक दुख का सही-सही अनुभव नहीं होता तब तक सुख की गवेषणा नहीं हो पाती।

१२०४. पावन का झुकना पतित होना नहीं वरन् पतित को पावन बनाने की प्रक्रिया है।

१२०५. असंयमी पुण्ययोग से प्राप्त दिव्य वस्तु का उपयोग भी असंयत होकर ही करता है।

१२०६. भले ही देश बदल जाये, वेश बदल जाये, लेकिन कभी अपना लक्ष्य नहीं बदलना, उद्देश्य नहीं बदलना।

१२०७. राग-द्वेष वाले दो पलड़े सहित कर्म कॉवड़ी को यह संसारी प्राणी भारवह बना अनंत काल से ढ़ो रहा है।

१२०८. अन्तर की शुद्धि का महत्त्व अपने लिये अधिक होता है दूसरे के लिये कम और व्यवहार शुद्धि का महत्त्व अपने लिये कम होता है दूसरे के लिये अधिक।

१२०९. मानव पर्याय की दुर्लभता को पाना तभी सार्थक है जबकि हमारे जीवन में अध्यवसान/राग-द्वेष कम हो।

१२१०. आप अपने जीवन को जैसा ढालेंगे वैसा ही ढलेगा। आप उसे अपना मित्र बनाएँ या शत्रु, सुख-दुख के कार्य आपके अपने ही होंगे।

१२११. भगवान महावीर का उपासक वही है जो नमस्कार करता है चेतन को और बहिष्कार करता है अचेतन का।

१२१२. हमें जीवन को चलाना नहीं है जीवन तो अपने आप अविराम चल रहा है लेकिन जीवन को उन्नति की ओर बढ़ाने में ही मानव जीवन की सफलता है।

१२१३. दूसरों की सुख-सुविधाओं को देखकर जलने वाला व्यक्ति कभी भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता।

१२१४. आज का व्यक्ति अपने दुःख से दुःखी कम है किंतु दूसरों को प्राप्त सुख से दुःखी ज्यादा है।

१२१५. दूसरा नरक नहीं है, दूसरा हमारे लिये दुःख नहीं है अपितु दूसरों को पकड़ने की जो परिणति है वही हमारे लिये दुःख और नरक का काम करती है।

१२१६. जिस प्रकार नदी ढलान की ओर सहज ही बह जाती है उसी प्रकार इन्द्रियाँ और मन अपने विषयों की ओर सहज ही बह जाते हैं।

१२१७. सुख से प्राप्त हुआ ज्ञान दुःख के आने पर कपूर के समान उड़ जाता किन्तु जो कष्ट परिषह झेलकर ज्ञान अर्जित किया जाता है वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थायी बना रहता है।

१२१८. जो समझना चाहता है उसे समझाना चाहिए लेकिन जो समझाने पर भी नहीं समझता, उल्टा काम करता है, उससे माध्यस्थ भाव रखना ही श्रेष्ठ है।

१२१९. सोचो, विचार करो! आर्थिक विकास के लिये अर्थ का अवलम्बन लेना ठीक है, लेकिन जीवन ही अर्थ के लिये बन जाय। जीवन चलाने के लिये तो भोजन ठीक है किन्तु भोजन के लिये ही जीवन बन जाये, यह ठीक नहीं है।

१२२०. ऐश आराम की जिन्दगी विकास के लिये नहीं वरन् विनाश के लिये कारण है, या यूँ कहो कि ज्ञान का विकास रोकने में कारण है।

१२२१. मनुष्यों की दृष्टि में ऊपर उठना बहुत आसान है किन्तु परमात्मा के निकट पहुँचना अत्यन्त कठिन है। जो मनुष्यों की दृष्टि में ऊपर उठने का आकांक्षी है वह तो अनिवार्यतः परमात्मा की दृष्टि में नीचे गिर जाता है।

१२२२. जिससे अपराध हुआ है उससे मौन लेना तो अच्छा है लेकिन अन्य जगह जाकर उसकी निन्दा करना ठीक नहीं। यदि पीठ पीछे उसकी निन्दा करते हैं तो माध्यस्थ भाव नहीं है अपितु द्वेष-भाव हो जायेगा। माध्यस्थ भाव रखना अपराधी के लिये सबसे उत्तम दण्ड है।

❑ ❑ ❑

परमार्थ देशना

पीयूष वाणी वर्षा
आचार्य गुरुदेव भगवन्त श्री विद्यासागर जी महाराज

संकलन
मुनि कुन्थुसागर

भावाभिव्यक्ति

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं, जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं॥

प्रवचनसार ग्रन्थ में आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने मोक्षमार्ग में चार उपकरणों का व्याख्यान किया है। उपकरण का अर्थ होता है-जिसमें माध्यम से साधक का उपकार हो ''उपकारं करोति इति उपकरणं''। एक यथाजात रूप, दूसरा गुरु के वचन, तीसरा विनय और चौथा सूत्र का अध्ययन इनके माध्यम से ही मोक्षमार्गी अपनी यात्रा पूर्ण करता है। इसमें गुरु के वचनों को उपकरण के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि गुरु के वचन संसार रोग को नष्ट करने के लिए परमौषधि का काम करते हैं, गुरु के वचन जीवन जीने की सामग्री हुआ करती है। मोक्ष पथ पर बढ़ने वाले पथिक में लिए पाथेय का काम करते हैं।

आचार्य गुरुदेव विद्यासागरजी महाराज से वर्तमान में सभी जैन-जैनेत्तर, आबालवृद्ध परिचित हैं एवं उनकी वाणी को सुनने में लिए लालायित रहते हैं। वे शिष्य में मात्र कान ही नहीं फूँकते बल्कि प्राण भी फूँकते हैं। हाँ, संयम, रत्नत्रय रूप प्राण। वे मात्र धर्म का ज्ञान ही नहीं कराते बल्कि धर्म का पान भी कराते हैं। पूज्य गुरुदेव की वाणी सुनकर सारी शंकाओं का समाधान हो जाता है, मात्र एक-ही शंका रह जाती है कि उनकी वाणी का हमेशा पान करते रहें।

जब भी समय-समय पर गुरुदेव की दिव्यदेशना में से कुछ अंश लिखने में लिए मेरा मन, मेरी भक्ति मुझे प्रेरित करती रहती थी और जैसे सागर में से एक दो अंजलि पानी ग्रहण कर लिया जाता है। वैसे ही मैंने गुरुदेव की दिव्यदेशना में से कुछ सूत्र वाक्य चुने थे। साधकजन इनको पढ़ते तो बार-बार कहते महाराज ये सभी सूत्रवाक्य यदि हम सभी को उपलब्ध हो जाये तो बड़ी अनुकम्पा होगी।

जिनकी अनुकम्पा की छाँव तले ज्ञान प्राप्त किया, पले, बढ़े ऐसे उन महान् आचार्य गुरुदेव भगवंत में श्री सुखद कर कमलों में उन्हीं की वस्तु उन्हीं को सादर सविनय नमोऽस्तु सहित समर्पित है...।

मुनि कुन्थुसागर

अहिंसा

१. कदम में फूल हों और कलम में शूल हो तो अहिंसा का पालन नहीं हो सकता, लेखन के माध्यम से भी 'अहिंसा' की वृत्ति कितनी है, यह मीमांसा की जा सकती है।

२. जब तक अहिंसा जीवन में नहीं आएगी, तब तक शब्दों में ताकत नहीं आ सकती, अहिंसा के क्षेत्र में बुद्धि का, तन, मन, धन का उपयोग करना चाहिए। राग की अनुत्पत्ति ही अहिंसा है।

३. अनुकूलता कथंचित् हमें साधक बना सकती है, क्योंकि अनुकूलता में पुरुषार्थ किया जा सकता है।

४. अहिंसा की रक्षा पैसे के बल पर नहीं, बल्कि अहिंसा को अपने जीवन में अपनाकर ही हो सकती है।

५. अहिंसा धर्म की शरण में रहने वाला हमेशा खुश रहता है और कमियाँ उसके जीवन में कभी भी नहीं रहतीं। उसका हमेशा विकासवान् जीवन हुआ करता है।

६. अहिंसा में कार्य करने से स्व-पर दोनों में कल्याण की बात हो जाती है।

७. जो लोग अहिंसा धर्म को अपने जीवन में स्थान देते हैं, उन्हें दुनिया में हर जगह स्थान मिलता है।

८. अहिंसा के क्षेत्र में दिया हुआ हमेशा बढ़ता है कम नहीं हो सकता। दुनियाँ की बैंक फैल हो सकती है पर यह अहिंसा की बैंक कभी फैल नहीं हो सकती।

९. अहिंसा धर्म वह संख्या है कि जिस शून्य में आगे लग जावे तो उसका महत्त्व दश गुना बढ़ जाता है। शून्य अकेला कोई शक्ति नहीं रखता यदि उसमें आगे अंक ना हो तो। शून्य का महत्त्व अंक से आंका जाता है।

१०. अन्याय, अत्याचार के साथ संग्रह किया हुआ धन खाने-पीने में नहीं आता।

११. अहिंसा धर्म के अनुयायी रागी होते हुए भी वीतरागता की आरती उतारते हैं, राग की नहीं।

१२. पार्श्वनाथ भगवान् के अंदर सहज करुणाभाव था उन्होंने विषधर जैसे जीवों के प्रति भी करुणा भाव धारण किया और उन्हें भी स्वर्ग सुख का लाभ पहुँचाया।

१३. जो अहिंसा धर्म को मानने तैयार नहीं हैं, उन्हें दिव्यध्वनि सुनने नहीं मिल सकती।

१४. धर्म वही है, जो दया से विशुद्ध हो।

१५. अहिंसा महान् प्रकाश है, आज देश को मात्र अहिंसा की आवश्यकता है।

१६. दया धर्म से जो रहित होते हैं, वे कितने ही धनी बन जावें पर वह सात्त्विक गुणों से भूषित नहीं हो सकते।

१७. मुमुक्षु वही है, जो करुणावान होता है।

१८. दूसरे की पीड़ा को दूर करने से दूसरे की नहीं, स्वयं की पीड़ा दूर होती है।

१९. जिसके घट में दया करुणा नहीं है, वह कभी भी कैसे अपने स्वरूप को, जीवत्व को हासिल कर सकता है?

२०. अहिंसक व्यक्ति का जन्म होते ही चारों ओर हरियाली छा जाती है।

२१. दया के बिना संसार हमेशा झुलसता रहता है, क्योंकि दया के अभाव में धर्म नहीं होता।

२२. दया का अभाव बता देता है कि अंदर कषाय है।

२३. दया अनुकम्पा से ही धर्म की शुरुआत होती है।

२४. वह हृदय शून्य है, जो अहिंसा पर आस्था नहीं रखता।

२५. हृदय में यदि सत्य अहिंसा के प्रति आस्था है तो समझना राम, महावीर भगवान् से आज भी हमारा सम्बन्ध निश्चित है, इसमें कोई संदेह नहीं।

२६ अहिंसा के अभाव में देश क्या देश रह जावेगा ? आदमियों का नाम देश नहीं है, बल्कि संस्कृति का नाम देश है।

२७. जहाँ पर दया है वहाँ सब कुछ मिलता रहता है, धन तो वहाँ बरसेगा ही।

२८. जीवदया के अभाव में साधना कितनी भी हो ? वरदान सिद्ध नहीं होगी।

२९. मन, वचन व काय की चेष्टाओं के द्वारा अपनी स्वयं की भी हिंसा होती है।

३०. मुनिराज कम खर्चा ज्यादा फायदा हो, ऐसी ही चेष्टायें करते हैं, वे आगमानुसार चेष्टायें करते हुए अप्रमत्त ही रहते हैं।

३१. आत्म-धर्म हिंसा रहित धर्म से ही प्राप्त होता है।

३२. रागादि भाव का होना भी हिंसा है।

अर्पण-समर्पण

३३. अपनत्व में सब कुछ समर्पण किया जाता है। जैसे श्रीकृष्णजी की अंगुली कट जाने पर रुक्मणी अपनी साड़ी का पल्लू फाड़कर पट्टी बाँध देती है।

३४. स्वार्थ जहाँ से चला जाता है, वहाँ से समर्पण प्रारम्भ हो जाता है।

३५. समर्पण में प्रतिफल की इच्छा गौण हो जाती है।

३६. जिसमें समर्पण भाव रहता है, वही इस चकाचौंध के युग में भविष्य के लिए कुछ कर सकता है।

३७. समर्पण जीवन का आदिम एवं अंतिम साधन है।

३८. आगे चलकर समर्पण कर्त्तव्य का रूप ले लेता है।

३९. समर्पण के बाद ही जीवन में संघर्ष की शुरुआत होती है, इससे पीछे नहीं हटना चाहिए।

४०. समर्पित हुए बिना कृत्कृत्य की उपाधि नहीं मिल सकती।

४१. समर्पण की यात्रा कर्त्तव्य से पूर्ण होती है और कर्त्तव्य का पालन समर्पण के साथ किया जाता है।
४२. समर्पण के बाद कर्त्तव्य प्रारम्भ होता है।
४३. समर्पण वाला ही हव (हाँ) कहता है, नहीं तो How (कैसे) कहता है।
४४. मैंने भगवान् बनाया ऐसा नहीं बल्कि मैं भगवान् को समर्पित हो गया, ऐसा कह सकते हैं।
४५. जिनेन्द्र भगवान् का नाम रहे और हमारा दासों के दास में नाम रहे, यही समर्पण है। अपने उद्देश्य के प्रति पूर्ण समर्पित होना चाहिए।
४६. यदि हम उन प्रभु व गुरु के पवित्र जीवन पर समर्पित हो जाते हैं तो यह हमारा कलंकित जीवन भी पवित्र हो जाता है।
४७. कबूतर की तरह देव, शास्त्र व गुरु रूपी जहाज पर समर्पित हो जाओ संसार समुद्र से पार हो जाओगे।
४८. एक आत्मा के साथ जब दूसरी आत्मा का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब तन, वतन सब गौण हो जाते हैं।
४९. जिनवाणी की रक्षा एवं अहिंसा धर्म की रक्षा में अपना तन, मन व धन समर्पित कर देना चाहिए।
५०. जीवन की परवाह न करते हुए धर्म की रक्षा में समर्पित हो जाना ही सही समर्पण है।
५१. समर्पण में साथ किया गया कार्य ही सफलीभूत होता है।
५२. जो उद्देश्य के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है, वही परीक्षा में खरा उतरता है।
५३. प्राणियों के संरक्षण में तन, मन एवं धन समर्पण करोगे तो तुम्हारा जीवन भी अमर बन जावेगा और अविनश्वर आत्मा का मूल्य सुरक्षित होगा।

अनर्थ

५४. अपने बारे में सोचो, अपने अनर्थों के बारे में सोचो दूसरे के भले के बारे में सोचो, यह अपाय विचय धर्मध्यान है और दूसरे का बुरा सोचने से दुर्ध्यान होता है।
५५. अनर्थ से बचना ही प्रयोजनभूत है।
५६. दुर्लभ क्षणों को व्यर्थ मत गँवाओ, माला फेरो, स्तुति पाठ करो। पहले के समय में चक्की चलाते रहते थे और स्तुति पढ़ते रहते थे, मन को भटकने नहीं देते थे।
५७. अर्थ नीति के बिना गृहस्थ का जीवन चल नहीं सकता, लेकिन अनर्थ नीति से धन इकट्ठा करना ठीक नहीं।
५८. प्रयोजन दूसरा होने पर हम प्रयोजनभूत को भूल जाते हैं।
५९. अहिंसा महाव्रत को पालने वाले रात्रि में तो बोलते नहीं है, दिन में भी निष्प्रयोजन नहीं

बोलते।

६०. अप्रयोजनभूत को याद करने से मन की बीमारी बढ़ जाती है।

६१. प्रयोजन के अभाव में बोलना भी हिंसा का कारण है।

६२. जिस साहित्य को पढ़कर मन पापमय हो जाये, ऐसे साहित्य को दु:श्रुति बोलते हैं। इनसे हमेशा बचना चाहिए।

६३. निष्प्रयोजन घूमना/घुमाना अनर्थदण्ड कहलाता है।

६४. अनर्थों से बचने से रत्नत्रय धर्म पुष्ट होता है।

६५. मधु (शहद) की एक बूँद खाने से सात गाँव जलाने के बराबर दोष लगता है। इसलिए इस अनर्थ से बचना चाहिए।

६६. अनर्थदण्ड से श्रावकों को पहले बचना चाहिए।

६७. जो अनर्थ से डरता है, वह विकास कर सकता है। अनर्थ से डरने वाला हमेशा सावधान रहता है।

६८. जिससे संसारी प्राणी का वध हो, ऐसे शस्त्रादि का दान नहीं करना चाहिए। बुद्धि को बिगाड़ने वाले सारे पदार्थ हिंसा दान में आते हैं।

६९. पहले दूध का दान होता था, आज चाय का, यह पाउच संस्कृति है, दरिद्रता का प्रतीक है।

अज्ञान

७०. स्वर्ण कभी भी बाह्य पदार्थ के सम्पर्क में जंग नहीं खाता बल्कि लोहा ही जंग खाता है, वैसे ही ज्ञानी कभी पर पदार्थों से मोहित नहीं होता, बल्कि अज्ञानी होता है।

७१. विषयों में आकर्षण ''अज्ञान'' का प्रतीक है।

७२. अज्ञान का अर्थ है-कषाय के वशीभूत हो जाना, परिग्रह के पीछे पड़ जाना।

७३. जब सूर्य अस्ताचल की ओर जाता है तो वह प्रकाश का त्याग कर पाताल में डूब जाता है, फिर अंधकार का साम्राज्य हो जाता है। वैसे ही जो संयम की उपेक्षा कर असंयम का स्वागत करता है, वह रसातल की ओर चला जाता है, उसका ज्ञान ''अज्ञान'' रूप हो जाता है।

७४. विपरीत धारणा को छोड़ देने से मन हल्का हो जाता है।

७५. मन दूसरे को समझाना चाहता है, स्वयं को नहीं यह एक सबसे बड़ा अज्ञान है।

अतिथि

७६. ''मोक्षमार्ग की साधना में लगने वाले अतिथि कहलाते हैं। अतिथियों में सम्पादक अतिथि हुआ करते हैं, जिस तिथि में ''अतिथि''आ जाते हैं, वह पुण्यतिथि (शुभ) मानी जाती है।

७७. जिसमें आने-जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती, वे अतिथि कहलाते हैं।

७८. अतिथि को भक्तिभाव पूर्वक दान देने से अद्‌भुत फल प्राप्त होता है, पंचाश्चर्य प्राप्त होते

हैं।

७९. दान और वैय्यावृत्ति को अतिथि-संविभाग के रूप में स्वीकारा है।

८०. जो घर से विमुक्त हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी को अतिथि कहा जाता है।

८१. संयम की विराधना न करते हुए जो चलते हैं, वे अतिथि कहलाते हैं।

अविवेक

८२. संसार के जो कार्य होते देखता है, यह जीव बिना परिणाम जाने उसे करने लगता है, यह एक ''अविवेक'' है।

८३. यह शरीर काराग्रह है कि कालाग्रह, काराग्रह से प्रेम करना एक ''अविवेक'' है।

८४. भगवान् के सामने सांसारिक वस्तुओं की माँग करना एक अविवेक ही है।

८५. विवेक के अभाव में ही संसारी प्राणी पर वस्तु को अपना मान बैठता है।

८६. परमार्थ को छोड़कर मात्र अर्थ (धन) में ही जीवन गँवाना अविवेक माना जाता है।

अनुभव

८७. अनुभव ज्ञान की सुगंधी है, शास्त्र की नहीं।

८८. अनुभव का जीवन, जीवन माना जाता है। दूसरे पर आधारित जीवन जीवन नहीं माना जाता।

८९. स्व (आत्मा) अनुभव में इसलिए नहीं आ रहा है क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं बन सकता।

९०. सूक्ष्मता में जाने पर आगम ही आधार बनेगा।

९१. अनुभवगम्य में दूसरे की तुलना नहीं होती।

९२. अनुभव स्व का होता है पर का नहीं और अनुभव वर्तमान का, उसी समय का होता है भूत, भविष्य का नहीं।

९३. वर्तमान में जो अनुभव हो रहा है वह स्वभाव नहीं है इसलिए इसमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए बल्कि समता धारण करना चाहिए।

९४. मोक्षमार्ग में मात्र आत्मा का ही अनुभव होता रहता है ऐसा नहीं है साता-असाता कर्म का भी अनुभव होता है इसमें हर्ष-विषाद न करके समता रखने से कर्म की निर्जरा होती रहती है।

९५. ज्ञान व श्रद्धान त्रैकालिक का हो सकता है किन्तु अनुभव (अनुभूति) तो वर्तमान का ही होता हैं।

अणुव्रत

९६. श्रावक मूलधन को अणुव्रत रूपी बैंक में जमा करके अच्छा ब्याज कमा सकता है।

९७. दिशाओं की सीमा बाँधने से अणुव्रत भी महाव्रत रूप हो जाते हैं।

९८. अणुव्रत महाव्रत के हेतु हैं। महाव्रती का अनुचर अणुव्रती कहलाता है।

अनुशासन

९९. कठोरता के बिना ''अनुशासन'' चलता ही नहीं।

१००. नियम, संविधान, लचकदार नहीं होना चाहिए, कानून तो कठोर ही होना चाहिए, वरन् व्यवस्था बिगड़ जाती है।

१०१. कमल इतनी उष्णता को सह रहे हैं, तभी तो खिले हुये रहते हैं, वैसे ही कठोर ''अनुशासन'' बनाये रखेंगे तो आपके घर में हमेशा मर्यादायें कायम रहेंगी।

१०२. सूर्य की किरणें शुरूआत में कोमल बाद में कठोर ही होती हैं, फिर भी कमल को खिला देती हैं।

१०३. कठोरता का अनुभव करने से जीवन में अच्छा फल मिलता है।

१०४. आदेश देने वाला सभी को खुश नहीं रख सकता।

१०५ पाप के डर से मर्यादा में रहना चाहिए, इसी का नाम अनुशासन है।

१०६. अनुशासन में रहना पापभीरूता का प्रतीक है।

१०७. कार्यक्रम की शोभा अनुशासन से ही हुआ करती है।

१०८. कार्य सानंद सम्पन्न तभी होता है, जब संकल्प और अनुशासन दृढ़ हो। बाहरी शासन एक सीमा तक अनिवार्य होता है। समझदार को इशारा काफी नासमझ को ये सारा भी कम है।

१०९. आप स्वयं खुद खुदा बनना चाहते हो तो खुदा के बंदे तो बन जाओ, खुदा बनने की शुरुआत हो जावेगी। आप स्वयं खुद खुदा बनना चाहते हो तो खुद में एक डंडा लगाओ। दूसरे पर डंडा लगाकर अधिकार पूर्वक खुदा मत बनो।

११०. हम अपने आपको नियंत्रण में रखने का प्रयास करें दूसरा अपने आप नियंत्रण में आ जावेगा।

१११. दूसरे को नियंत्रण में रखना कमजोरी है।

११२. अपने को नियंत्रण में रखना अपने कोर्स की बात मानी जाती है।

११३. भगवान् महावीर ने किसी पर शासन नहीं चलाया, वे आत्मानुशासन में लगे रहे।

११४. नियंत्रण आस्था के ऊपर आधारित रहता है।

११५. हम प्रतिष्ठा नहीं चाहते स्व में प्रतिष्ठित होना चाहते हैं।

११६. पर की ओर जाना आक्रमण माना जाता है, स्व की ओर आना प्रतिक्रमण माना जाता है।

११७. आत्मानुशासन ही परम शासन है, आत्मानुशासन से किसी को कष्ट नहीं होता लेकिन दूसरे पर शासन जमाने पर दूसरे को कष्ट अवश्य पहुँचता है।

११८. किसी दूसरे पर शासन करने का भाव ही हिंसा है।

११९. एक कार्य में लगे दूसरे कार्य के बारे में सोचना, चिन्ता करना अनुशासन हीनता मानी जाती

है।

१२०. हम अपने पर अधिकार न रखकर दुनियाँ पर अधिकार जमाने का भाव करते हैं, यही संसार की जड़ है।

१२१. शिष्य और शीशी को डॉट अवश्य लगाना चाहिए। यदि शीशी में डॉट न हो तो माल सुरक्षित नहीं रह सकता।

अभिमान

१२२. अभिमान के साथ जो पुरुषार्थ करता है, उसे धिक्कार हो, अभिमान अज्ञानी को ही होता है।

१२३. अपने अंदर झाँककर देखो, शांति मिलेगी, वरन् इस पर्याय की एक उम्र होती है।

१२४. अहित की सामग्री के साथ जिसने अनुबंध कर लिया है, उसे क्लेश के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

१२५. आज का युग अजीव तत्त्व की खोज में लगा हुआ है और जीव तत्त्व को भूल ही गया है।

१२६. जब तक अर्थ(धन)है, तब तक ही उसे सम्मान मिलता है। इस पर अभिमान मत करो।

१२७. शरीर तो नश्वर है वह छूटेगा ही, यह उसका स्वभाव है, इसलिए उसे अमर बनाने का प्रयास मत करो।

१२८. संसार में मात्र मृत्यु (काल) ही विजेता है, इससे कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता, मृत्युंजयी बनने वाला ही अपनी रक्षा कर सकता है।

१२९. वृक्ष से छूटा (टूटा) फल जन्म है और नीचे जमीन पर गिरा मरण है, यहाँ सदा स्थिर रहने वाला कोई नहीं है, शरीर में रहने का यह जीव आदी हो गया है इसलिए शरीर को छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन सम्यग्दृष्टि सोचता है कि मैं शरीरातीत कब होऊँगा।

१३०. अनुभव ही काम आने वाला है, जीवन में। मात्र किताबी ज्ञान कुछ उपलब्धि नहीं करा सकता है।

१३१. शरीर बदमाश है, अपने आपको जीव के रूप में दर्शाता है।

१३२. अलोकाकाश में तीन लोक बहुत छोटा दिखता है, आकाश के तारे के समान, लेकिन केवलज्ञान रूपी आकाश में अनंत लोकाकाश भी तारे की भाँति दिखाई देता है, फिर भी केवलज्ञानी अभिमान नहीं करते और यदि हम इस क्षयोपशम ज्ञान पर अभिमान करते हैं तो हँसी के पात्र हैं।

१३३. ठसका क्या है ? भोजन करते समय बोलने से भोजन जिस दिशा में नहीं जाना चाहिए उस दिशा में चला जाता है तो ठसका लग जाता है, ठीक वैसे ही हम मोक्षमार्ग की दिशा से विपरीत गये तो ठसका लगेगा ही।

१३४. आवागमन कम करने से साधना में निखार आता है।

१३५. हमारे गुणों का महत्त्व, मान कषाय में तृणवत् होने पर ही बढ़ता है।

१३६. शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ भगवान् तीन-तीन पद के धारी थे, उन्होंने कभी अभिमान नहीं किया, इसलिए तीन लोक के नाथ बन गये।

१३७. सम्यग्दर्शन मद के कारण कभी भी नष्ट हो सकता है, इसलिए हमें अपने आपको मान कषाय से बचाये रखना चाहिए।

१३८. मान कषाय का अनुभाग सबसे ज्यादा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी के ही पड़ता है।

१३९. तप, ज्ञान रूपी वृक्ष मानादि कषायों के कारण सूखने लगते हैं, इसलिए संयमी को हमेशा मानादि कषायों से सावधान रहना चाहिए।

१४०. त्यागी वस्तु याद है तो समझे कुछ छोड़ा ही नहीं वह अभी भी दिमाग में है।

१४१. जिसमें अभिमान का पुट हो ऐसा त्याग, त्याग नहीं माना जाता।

१४२. अभिमान करने से पुण्य भी पतला होने लगता है, इसलिए अभिमान नहीं करना चाहिए।

१४३. मान की भूख को छोड़ना महान् व्रत है। अपमान का अर्थ है, अपना नहीं अपनी मान कषाय का अपमान हो रहा है, इसे सहन करना भी महान् तपस्या है, इसमें मान कषाय का ही अभाव हो रहा है, अपना न मान होता है। न अपमान होता है, अपन तो ज्ञाता, दृष्टा आतमराम है। यह श्रद्धान होना बड़ा महत्त्वपूर्ण है, जिसको यह श्रद्धान आ गया उसे समझलो मोक्षमार्ग मिल गया।

१४४. जाति का मद करने से सामाजिक व्यवस्था भी बिगड़ जाती है और सम्यग्दर्शन में दोष भी लगता है।

१४५. यह जाति समाज व्यवस्था के लिए है, सम्यग्दृष्टि धर्म में इसका आग्रह नहीं करता।

१४६. जाति कुलादि देहाश्रित व्यवस्था है, जहाँ जाति का आग्रह होने लगता है, वहाँ पर रत्नत्रय धर्म गौण होने लगता है।

१४७. लघु बनना सीख लो, क्योंकि लघु बने बिना विराटता का अनुभव नहीं किया जा सकता।

१४८. जो मान/अपमान में रुष्ट-पुष्ट नहीं होते उन्हें नमन करो।

१४९. मान पंचेन्द्रियों के मालिक मन का विषय है।

१५०. हमारा ज्ञान बीज की छाया के समान है, जिसमें नीचे चींटी तक नहीं बैठ सकती और मेंवलज्ञानी का ज्ञान वटवृक्ष की छाया के समान है।

१५१. स्वभाव में अभिमान नहीं होता, विभाव में ही अभिमान के अंकुर पैदा होते हैं, सम्यग्दृष्टि इन अंकुरों को सम्यग्ज्ञान की तर्जनी से उखाड़ देता है।

१५२. दूसरे के साथ अपनी तुलना करने से स्पर्धा के भाव उत्पन्न होते हैं, जो कि मान की ओर ले जाने वाली यात्रा है।

१५३. मान को छोड़ने से दुनिया का सम्मान उनके चरणों में आ जाता है, भगवान् के चरणों में दुनिया झुकती है, सबसे ज्यादा सम्मान उसे मिलता है, जिसके पास मान नाम मात्र भी नहीं है।

१५४. क्षमा, मार्दव आदि धर्म के कारण तप, ज्ञान के वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

असंज्ञी

१५५. असंज्ञी कौन ? जो सुनकर भी, उपदेश पाकर भी हेय-उपादेय का विवेक नहीं रखता।

१५६. आगम को अच्छे ढंग से जानने वाला ही व्यवहार कुशल हो सकता है।

अंतर्दृष्टि

१५७. अंतर्दृष्टि अपने आप में महत्त्वपूर्ण होती है, जिसे वह प्राप्त है वह महान् पुण्यशाली है।

१५८. आरम्भ-परिग्रह पाप के कारण हैं, इन्हें शत्रु समझकर दूर से ही छोड़ दो, ये अपनी परिधि बाहर की भाँति है।

१५९. अपना चित्र अन्यत्व और कहीं नहीं है, अपने ही अंदर है, एक बार आँख बंद करके उसे देख तो लो।

१६०. दुनियाँ में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि दुनिया उसी को अपना मानती है, जो कभी अपना न हो सका।

१६१. हमारा बड़प्पन कार्य के पहले ही प्रस्तुत हो जाता है और महान् व्यक्ति बड़े-बड़े कार्य करते जाते हैं, पर अपने मुख से कुछ नहीं कहते।

आयतन / अनायतन

१६२. जहाँ आकर हम शरण पाते हैं, वह आयतन है।

१६३. सम्यग्दर्शनादि गुणों का घर अथवा धारण करने का जो निमित्त है, उसको आयतन कहते हैं।

१६४. जो सम्यक्त्वादि गुणों से विपरीत मिथ्यात्व आदि दोषों में धारण करने का निमित्त है, वह अनायतन है।

१६५. गलत मार्ग और गलत मार्ग को मानने वाले एवं मिथ्या मार्ग का व्याख्यान करने वाले शास्त्र और उसको मानने वाले सेवक अनायतन कहलाते हैं।

१६६ तीन मूढ़तायें अनायतन के स्रोत हैं।

१६७. जो कर्म निर्जरा में सहायक नहीं है, सम्यग्दर्शन रूप धर्म में कारण नहीं है, उन्हें धर्म रूप मानकर चलना या लौकिक मान्यताओं को धर्म मानकर करना मूढ़ता है।

१६८. चरकादि ग्रन्थ के माध्यम से जानकारी प्राप्त कर साधुओं को औषधि दान किया और उनका रोग ठीक भी हो गया तो उस ग्रन्थ को धर्म-शास्त्र मान लेना मूढ़ता में आवेगा।

१६९. जिनका आधार लेने से हमें मोक्षमार्ग में दृष्टि प्राप्त होती है, वह आयतन है।

१७०. वीतराग जो बने हैं, वे निश्चय के अनायतन नहीं हो सकते, बल्कि हमारी जो आत्मा राग-द्वेष मय है, वह निश्चय से अनायतन स्वरूप हो सकती है।

आस्था

१७१. आस्था के बल पर अंजनचोर भी निरंजन बन गया, आप भी इस मार्ग (मोक्ष) पर ''आस्था'' रखो, निरंजन बनने में फिर देर न लगेगी।

१७२. आस्था की अभिव्यक्ति हम चारित्र के माध्यम से ही कर सकते हैं।

१७३. आस्था डगमगाने से ही डर लगता है, आस्थावान तो निर्भीक होता है।

१७४. आस्था के बाद रास्ते पर चलने की बात होती है, बीच में नास्ता की माँग नहीं।

१७५. मोक्षमार्ग में आस्था ही ब्याना है, उसके बिना रत्नों की खरीदी नहीं होती, रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता।

१७६. आस्था की धरती पर ही चारित्र का महाप्रासाद खड़ा होता है।

१७७. चारित्र को आस्था, धारणा के माध्यम से बल मिलता है।

१७८. मोक्षमार्ग में कुछ जबरन थोपना नहीं होता बल्कि अंतरंग से स्वीकारना होता है, इसी अंतरंग स्वीकृति का नाम आस्था है।

१७९. आस्था के माध्यम से मार्ग की पहचान हो जाती है, जब आस्था के माध्यम से मार्ग की पहचान हो जाती है तो फिर मार्ग एकदम सीधा हो जाता है।

१८०. वृक्ष का छायादार तना मूल पर ही आधारित है - पेड़ में ऊपरी अस्थिरता भले हो लेकिन मूल में कोई भी अस्थिरता नहीं रहती।

१८१. आस्था के कारण ही क्रिया, चारित्र बन जाती है और चरण पूज्य बन जाते हैं।

१८२. आस्था को शुद्ध निर्मल तेल की तरह बनाये रखो फिर आपके पास में अंधेरा आ ही नहीं सकता।

१८३. अवस्था न होते हुए भी आस्था से व्यवस्था करते जाना चाहिए।

१८४. आस्था में किसी काल में अंतर नहीं होता।

१८५. विश्वास (आस्था) के माध्यम से हम मूल स्वरूप तक पहुँच जाते हैं।

१८६. श्रद्धा की आँख से देखो तो वीतराग प्रभु दिखते हैं और ज्ञान के माध्यम से देखो तो हम प्रभु से भी बड़े दिखते हैं।

१८७. आस्था बहन है और ज्ञान उसका भाई है। बड़ी बहन से छोटा भाई माना जाता है। भाई का महत्त्व बहन से बढ़ जाता है। ज्ञान और चारित्र को बढ़ाने वाली होती है-आस्था।

१८८. रास्ता चलने के लिए आस्था की आवश्यकता है, दिमाग की नहीं।

१८९. आस्था एक-सी रहती है, विचारों में भेद-भिन्नता रहती है। विचारों की तरंगें आस्था को क्षति

पहुँचाने में कारण बनती हैं लेकिन सही आस्था वही है जो इन विचारों की तरंगों से प्रभावित नहीं होती। सपनों को साकार बनाने के लिए आस्था मजबूत बनानी पड़ती है।

१९०. ज्ञान से, चारित्र से पेट नहीं भरता, आस्था के बिना भूख नहीं मिटती।

१९१. भाव प्रत्यय से ही यात्रा पूर्ण होती है।

१९२. जैनदर्शन में जानने से पूर्व मानने की बात कही गयी है, इसी का नाम आस्था है।

१९३. साधना श्रद्धा के माध्यम से आगे बढ़ती है।

१९४. सही-सही श्रद्धान आचरण के बाद बनता है।

१९५. आस्था के बिना जीवन में विकल्पात्मक प्रश्न हल नहीं किये जा सकते।

१९६. प्रयोग के बिना आस्था को मूर्तरूप प्राप्त नहीं होता।

१९७. अपनी शक्ति पर विश्वास रखो, अपने आप उत्साह जागृत हो जाता है।

१९८. श्रद्धान जिस पर है, उस पर प्रयोग करो, डरो मत, अच्छे ढंग से कदम रखिये पीछे की बात भूल जाइए।

१९९. यह श्रद्धान (आस्था) वह धरती है, जिस पर मोक्ष महल खड़ा होता है।

२००. विश्वास का महत्त्व होता है मोक्षमार्ग में ज्ञान का नहीं, परख को नहीं विश्वास को महत्त्व दिया जाता है। मोक्षमार्गी में श्वांस-श्वांस में विश्वास भरा होता है।

२०१. विश्वास के अभाव में श्रेय और वात्सल्य समाप्त होता जा रहा है।

२०२. क्षमता व संकल्प श्रद्धान पर आधारित रहते हैं।

२०३. धर्म पर एक बार श्रद्धान हो जाता है तो सागर के स्थान पर चुल्लु भर संसार रह जाता है।

२०४. जहाँ श्रद्धान बना रहता है वहाँ थकावट का अनुभव नहीं होता।

२०५. विश्वास के माध्यम से हम मूल स्वरूप तक पहुँच जाते हैं।

२०६. अकेले आये थे, अकेले जाना है, यह तो याद रखते हैं पर कर्म साथ लाये थे और कर्म साथ ले जाओगे यह श्रद्धान भी मजबूत रखना चाहिए।

२०७. आस्थावान ही इन धर्मक्षेत्रों को सुरक्षित रख सकता है।

आत्मा

२०८. आत्मा को उत्पन्न नहीं करना है, बल्कि उसमें जो अन्यथा भाव आ गया है, उसे हटाना है।

२०९. आत्मा श्वांस-निश्वांस के माध्यम से शरीर से बाहर जाने को आतुर है, इससे सिद्ध होता है कि शरीर का बंधन ''आत्मा'' को पसंद नहीं है।

२१०. तुम तो एक अरूपी आत्मा हो फिर बाह्य रूप से क्या ? स्वरूप को देखो।

२११. आत्मा कालजयी है वह मृत्यु को भी जीत लेती है।

२१२. आत्मा ही अपना घर है, उसमें ही रहना चाहिए, इस जीव को दूसरे के घर (शरीर) में रहने

की आदत पड़ गई है, इसलिए अपने घर में आने में कठिनाई जाती है।

२१३. आत्म-वैभव के सामने दुनियाँ के वैभव वैसे ही हैं, जैसे रत्न के सामने तृण्।

२१४. जो आत्म वैभव से ही आकृष्ट होता है अन्य पदार्थों से नहीं, उसका सारा दुःख समाप्त हो जाता है।

२१५. आत्मा को प्रकाशित करने के लिए अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती, आत्मा स्वयं स्व-पर प्रकाशी है।

२१६. आत्मा का ज्ञान हलुआ जैसा है, उसे हऊआ मत बनाओ।

२१७. आत्मतत्त्व रूपी दीपक को देखने के लिए अन्य दीपक की कोई जरूरत नहीं पड़ती।

२१८. इस आत्मवैभव पर एक बार विश्वास कर लो, फिर दुनियाँ का वैभव आपके चरणों में लोटने लगेगा।

२१९. आत्मतत्त्व की ओर जाते ही संसारगत सारी बातें औपचारिक-सी लगने लगती हैं।

२२०. आत्म सुख के सामने सभी दैहिक, मानसिक, शारीरिक, सुख कुछ भी मायना नहीं रखते।

२२१. आत्मा की महिमा को दिखाया नहीं जा सकता, बल्कि देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

२२२. बाह्य संसार को भूले बिना भीतर आत्मतत्त्व का सही आनंद नहीं आ सकता।

२२३. शरीर की चिकित्सा करने वाला घृणा नहीं करता, ज्यादा बोल भी नहीं सकता, मन को अस्थिर नहीं कर सकता, इधर-उधर नहीं देख सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मा की चिकित्सा करने वाले को भी इससे भी अधिक गुण अपनाना चाहिए।

२२४. आत्मा हवा के समान है और शरीर गुब्बारा है, हवा के कारण गुब्बारे में हलन-चलन होती है।

२२५. इस अपवित्र शरीर के लिए धिक्कार तो है ही, लेकिन उससे ज्यादा इस आत्मा को धिक्कार है, जो इस अपवित्र शरीर से मोह रखता है।

२२६. स्पर्श, रूप, रस व गंध से रहित आत्म तत्त्व का चिंतन दुर्लभ है, उसका अनुभव तो और दुर्लभ है।

२२७. आत्मतत्त्व में आसक्त व्यक्ति कभी शरीर में आसक्त नहीं हो सकता।

२२८. आत्मस्थ होकर जो बैठ जाते हैं, उन्हें कर्म का उदय कुछ नहीं कर पाता, उदय में आकर झड़ जाता है और नूतन कर्म बंध नहीं होता।

२२९. विपक्ष में रहते निश्चिंत रह नहीं सकते, हमेशा जागृत रहना पड़ता है, वैसे ही ''आत्मा'' में विपक्षी तत्त्व कर्म के रहते हमें शान्ति से नहीं बैठना चाहिए।

२३०. आत्मा की शक्ति कर्मों की शक्ति से बलजोर है तो भव्य को पुरुषार्थ करना चाहिए।

२३१. अंतरंग लक्ष्मी रूपी वैभव कोई लूट नहीं सकता, बाँट नहीं सकता, उस अनंत चतुष्टय रूपी लक्ष्मी के धनी जिनेन्द्र भगवान् हैं।

आत्महित

२३२. ''आत्महित'' की तरंगें हमारे जीवन में आज तक नहीं उठीं, यदि अब उठ रहीं हों तो समझना यह एक अभूतपूर्व घटना है।

२३३. आत्महित चाहने वाले को विषय-कषायों से हमेशा बचना चाहिए, संसार में सबसे बड़ा हित यदि कोई है तो वह है ''आत्महित''।

२३४. जो आत्महित नहीं कर सकता वह पर का हित भी नहीं कर सकता।

२३५. परहित में लगा हुआ व्यक्ति स्वहित में लगा है ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि परोपकार से भी स्वोपकार होता है।

आत्मतत्त्व

२३६. जब तक आत्मा से कर्म नहीं छूटते तब तक वह देखने योग्य, अनुभवगम्य नहीं बन पाती।

२३७. जैसी भावना शरीर के प्रति है वैसी ही आत्मा के प्रति हो जावे तो मनोभावना पूर्ण हो जावेगी।

२३८. हमेशा हमारी दृष्टि वस्तुतत्त्व को पकड़ने वाली होनी चाहिए।

२३९. आत्मतत्त्व की अनुभूति के लिए शब्दोच्चारण की आवश्यकता नहीं है।

२४०. स्वरूप समझ लेने से अभिमान और दीनता समाप्त हो जाती है।

२४१. आत्मा का शुद्ध स्वरूप मुनि अर्हंत भगवान् भी नहीं हैं, सही शुद्ध स्वरूप तो सिद्ध भगवान् हैं।

२४२. जो दिख रहा है यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मैं दिखता नहीं हूँ, देखने वाला आत्मा हूँ।

२४३. परिस्थिति नहीं बल्कि वस्तुस्थिति देखना चाहिए।

२४४. स्वरूप से वंचित होते हैं तभी हम कषाय करते हैं।

२४५. स्वरूप की ओर दृष्टिपात करने से विराटता दिखायी देती है।

२४६. उस आत्मतत्त्व के बारे में चिंतन करो, जिसमें हर्ष-विषाद नहीं होता जो कभी बिछुड़ता नहीं है।

२४७. हम सभी अंधे हैं, आत्मतत्त्व के बारे में, वह इन चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता।

२४८. शरीर से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। अंदर की ओर, आत्मतत्त्व की ओर देखने से कुछ मिल सकता है।

२४९. विराट स्वरूप सभी में विद्यमान है मात्र अंतस् की आँखें खोलने की आवश्यकता है।

२५०. सुख, शांति स्वभाव की ओर आने से ही प्राप्त होगी, दुनियाँ को जानने की ललक छोड़ दो।

२५१. स्वयं की चिकित्सा करने वाला ही सही डॉक्टर माना जाता है।

२५२. अध्यात्म वाले किसी कंडीशन को नहीं स्वीकारते वह तो आत्माश्रित रहते हैं। अध्यात्म वही है कि जड़ वस्तु के प्रति मोह कम हो जावे।
२५३. जिसे आत्मा की सम्पदा का ज्ञान हो जाता है, वह बाह्य सम्पदा को धूल के समान समझ कर छोड़ देता है।
२५४. यह आत्मा अनंत शक्ति का धारक है, यह एक सूत्र जीवन में ग्रहण कर लो।
२५५. राग के उजाले में राग की लौ में यह आत्मा रूपी पतंगा जल रहा है। यह संसारी प्राणी पतंगा की भांति भोगों के लिए अपनी आत्मा की आहूति देता रहता है। पतंगा बार-बार उसमें झुलस जाता है। मरण सम्मुख है फिर भी अगले भव की नहीं सोचता है।
२५६. ज्ञान, दर्शन, जानना, देखना ही मात्र आत्मा का काम है, इससे हटकर और कोई काम नहीं।
२५७. सही जीवन वही है जो देहातीत होता है।
२५८. अपने संवेदन के लिए अपने ही आत्म घर की ओर लौटना होता है।
२५९. तत्त्व दृष्टि हमेशा-हमेशा गंभीर हुआ करती है, इससे सारे तूफान शान्त हो जाते हैं, स्थिर दृष्टि वाला पैर लड़खड़ाने पर भी कभी गिरता नहीं है।
२६०. तत्त्व चिंतन से कभी भी प्रमाद पास नहीं आता।
२६१. स्व को पहचानना कठिन होता है, क्योंकि वह चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता। स्व की पहचान से जो दिख रहा है, उससे आकर्षण समाप्त होता है और स्व तत्त्व मिल जाता है।
२६२. श्रद्धान के साथ चेतन को जागृत करना होगा, क्योंकि चेतन की धारा भीतर से फूटती है बाहर से नहीं।
२६३. जिसका हमें संवेदन होता है, वही अपना है बाकी सब सपना है।
२६४. स्व के संवेदन के समय शारीरिक, मानसिक वेदना कम हो जाती है।
२६५. चेतना की विराटता के बारे में जिसे संवेदन होने लगता है उसे और कुछ अपेक्षा नहीं रहती।
२६६. लौह के साथ जैसे अग्नि की पिटाई हो जाती है, वैसे ही इस देह की सौबत में आत्मा की पिटाई हो जाती है। शरीर और आत्मा का अभेद सम्बन्ध हल्दी चूना जैसा है।
२६७. मुनिराज आत्मा की बात ही नहीं करते बल्कि आत्मा से बात भी करते हैं।
२६८. लौटने का नाम अध्यात्म है, भागने का नाम ज्ञान है।
२६९. ज्ञान के साथ इच्छा जुड़ी है। जानने का नाम ज्ञान नहीं बल्कि विशेष जानने का नाम ज्ञान है।
२७०. अध्यात्म हृदय का काम है, दर्शन मस्तिष्क का कार्य है।
२७१. अध्यात्म में जीने का काम होता है और दर्शन में मात्र देखने का काम होता है।
२७२. अध्यात्म में निकट से निकट का संवेदन होता है, जबकि दर्शन में मात्र बाह्य जड़ वस्तुओं में घूमने की बात होती है। दर्शन में स्वाद नहीं आता वह तो मात्र LABEL जैसा है।

२७३. जिनवाणी का सार शुद्धात्म तत्त्व है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद रागद्वेष से युक्त आत्म तत्त्व को विभक्त कीजिये ।

२७४. मोह को कम करते जाओ भीतर आत्म तत्त्व प्राप्त हो जावेगा।

२७५. संसार में सबसे महत्त्वपूर्ण तो आत्म श्रद्धान है इसी में आनंद का अनुभव होता है।

२७६. आप अपने को अपने आईने में देख लो। अपने श्रद्धान के लिए किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं क्योंकि आत्मा संवेद्य भी है एवं संवेदक भी है।

२७७. स्व को पहचानने वाला अपना विकास कर लेता है।

२७८. अध्यात्म में सहानुभूति की नहीं बल्कि आत्मानुभूति की बात होती है।

२७९. मोक्षमार्ग में आत्म विश्वास महत्त्वपूर्ण है, इसी के आधार पर अंक मिलते हैं।

२८०. आत्मा के गुणधर्म अलौकिक हैं, अतुलनीय हैं, जिससे हम अनंतकाल से वंचित रहे हैं।

२८१. राम नाम सत्य होने से पूर्व आत्मतत्त्व की बात सोचो।

२८२. अध्यात्मनिष्ठ जीवन जीने से ही भारत सभी राष्ट्रों का गुरु माना जाता है। आज अध्यात्म इसलिए भूलते जा रहे हैं कि पश्चिमी हवा की ओर बढ़ रहे हैं।

२८३. सारी समस्याओं का समाधान है, अपने आप का बोध होना।

२८४. आत्मा से प्राप्त आनंद का स्वाद लेने वाला कर्मोदय जनित सुख-दुःख का स्वाद नहीं लेता।

आत्मानुभूति

२८५. रत्नत्रय की आराधना में लीन होने वाले को ही आत्मानुभूति होती है।

२८६. आत्मानुभूति स्मरण और श्रवण का विषय नहीं है, मात्र आत्मरमण का विषय है।

२८७. अक्षर ज्ञान के साथ आत्मसाक्षात्कार का सम्बन्ध है ही नहीं।

२८८. पाँच इन्द्रियों के माध्यम से उपयोग बाहर आना बंद हो जायेगा तो उपयोग आत्मा की ओर आ जायेगा।

२८९. अपनी ओर उपयोग को लाने के लिए यह देशावकाशिक व्रत लिया जाता है। इस प्रकार के संकल्प लेने से उपयोग अंतर्मुखी हो जाता है।

२९०. विश्वास को जैसे दिखाया नहीं जा सकता, वैसे ही अनुभूति को दिखाया नहीं जा सकता।

२९१. शुद्धात्म का संवेदन जिसे नहीं हुआ वह इससे विपरीत संसार दुःख का संवेदन कर रहा है।

२९२. शुद्ध तत्त्व का ध्यान किया जा सकता है, पर शुद्ध तत्त्व का ध्यान करने वाला अशुद्ध ही होगा।

२९३. जो स्वसंवेदन में आ रहा है, वह दूसरे के ज्ञान का विषय नहीं बन सकता।

२९४. अध्यात्म में संतोष रहता है क्योंकि वह पराश्रित नहीं होता।

२९५. संवेदन का प्रदर्शन कला के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

२९६. बारहवें गुणस्थान तक विश्वास रखना होता है, उसके बाद आत्मा की अनुभूति होती है, मार्ग में अनुभूति नहीं होती।

२९७. आत्म साक्षात्कार के बिना व्रत आदि का पालन करना कोल्हू के बैल जैसी यात्रा है।

२९८. आत्म साक्षात्कार के बिना साधु जीवन व्यर्थ है।

२९९. आत्म स्वरूप की ओर देखने से शक्ति जागृत हो जाती है और आत्म-संतुष्टि प्राप्त होती है।

३००. अध्यात्म कहता है दूसरे को दु:ख बताने से और बढ़ता है, इस बोझ को उतार दो, वर्तमान में जीना सीखो।

३०१. मोही को अध्यात्म सुनाना काले रंग पर केशरिया रंग पोतने के समान है जो कभी दिख ही नहीं सकता। उस पर कोई असर ही नहीं पड़ता।

३०२. अध्यात्म पालन करना बहुत सरल है, क्योंकि यह स्वाश्रित है एवं प्रयोग का विषय है।

३०३. आत्म तत्त्व का परायण करने वाला पंचेन्द्रिय विषयों का रस छोड़ देता है, पंचेन्द्रिय के विषय खली के समान है और आत्म तत्त्व चिंतामणि रत्न के समान है।

३०४. बाह्य बिम्ब, भेष प्रवेश द्वार है, अध्यात्म तो अंदर है।

३०५. शरीर के साथ-साथ आत्मा का परिणमन ही सही परिणमन है।

३०६. दिगम्बरत्व चश्मे के समान है, उसी से आत्म तत्त्व दिखेगा, लेकिन चश्मे में ही दृष्टि मत अटकाओ, दृष्टि को उससे पार ले जाओ।

३०७. वस्तु स्वरूप ज्ञात होते ही सप्तभय से मुक्त हो जाता है। वह सोचता है जो होगा वह कर्म के अनुसार ही होगा कोई कुछ नहीं कर सकता।

आत्मानुशासन

३०८. पर वस्तुएँ कभी भी राग-द्वेष प्रदान नहीं करती, ऐसा अगाढ़ श्रद्धान रखना ही 'आत्मानुशासन' है।

३०९. दूसरे की आलोचना, प्रशंसा की ओर ध्यान ही नहीं देना, यह संसार बाजार है, इसमें मत लुटना।

३१०. आत्मा के स्वभाव के अनुरूप चलना ही 'आत्मानुशासन' कहलाता है।

३११. ''आत्मानुशासन'' से रहित व्यक्ति शासन-प्रशासन को शासित नहीं कर सकता है। यह तात्कालिक कटु है, लेकिन इसका विपाक (फल) अति मधुर है।

३१२. आगम को अच्छे ढ़ंग से जानने वाला ही व्यवहार कुशल हो सकता है।

३१३. इन्द्रिय और मन को पुष्ट न होने देना ही 'आत्मानुशासन' है।

३१४. डॉट के बिना शिष्य और शीशी का भविष्य ही क्या ?

३१५. डॉट अर्थात् ढक्कन न हो तो शीशी की सामग्री फैल सकती है और शिष्य को डॉटा न जाए

तो बिगड़ सकता है।

आज्ञा

३१६. आज्ञा देना आज्ञा पालने से भी कठिनतम कार्य है।

३१७. गणधर परमेष्ठी भी आज्ञा सम्यक्त्वी होते हैं।

आशा

३१८. जैसे आकाश में एक तारा है वैसे ही ''आशा रूपी गर्त में सारा विश्व उस तारे के समान है।

३१९. आशा रूपी गड्ढा कभी नहीं भरता।

३२०. किसी भी चीज की आशा न रहे, इस प्रकार की सभ्यता आना बहुत कठिन (दुर्लभ) है।

३२१. बार-बार उपदेश सुनने के बाद भी यदि आपको वैराग्य नहीं आता है तो समझना चाहिए कि आपके ऊपर आशा-तृष्णा रूपी देवी की कृपा है।

३२२. आशाओं की पूर्ति के लिए घर बस जाता है और मकड़ी की तरह यह जीव फँस जाता है।

३२३. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज कहते थे जो गृहस्थी में फँस गया वह उस हाथी की तरह है, जो बलवान होकर भी कीचड़ में फँस जाता है।

३२४. बारहसिंगा घास की आशा के कारण झाड़ियों में फँसता जाता है, वैसे ही यह प्राणी सुख की आशा में गृहस्थी में फँसता जाता है।

३२५. आशा-तृष्णा पर नियंत्रण धन से नहीं बल्कि धर्म से ही किया जा सकता है।

३२६. चाह के रहते हुए संतोष प्राप्त नहीं हो सकता।

३२७. साधु संसार में रहकर भी चाह रहित हैं, वे संसार में जल से हरे-भरे तालाब की भाँति हैं, जिसमें चाह की दाह प्रवेश नहीं कर सकती। कुछ नहीं चाहिए बस यही मोक्षमार्ग है।

३२८. संसार रूपी जंगल में चाह रूपी दाह से प्राणी जल रहा है।

३२९. आवश्यकता कभी समस्या नहीं बनती बल्कि अनावश्यकता ही समस्या की जननी है।

३३०. विषयों की आकांक्षा हो जाने से सम्यग्दर्शन का एक पैर टूट जाता है।

३३१. मोक्षमार्ग सम्बन्धी अभिलाषा बढ़ना चाहिए, न कि विषयों सम्बन्धी।

आयुकर्म

३३२. आयुकर्म किसी के साथ पक्षपात नहीं करता, भगवान् को भी उस भव में मरण करना पड़ता है, भले ही वह पंडित-पंडित मरण कहलाता है।

३३३. मरण को कोई नहीं रोक सकता, इसलिए मरण की नहीं बल्कि रोग की चिकित्सा की जाती है।

३३४. अकालमरण को औषधि के माध्यम से रोका जा सकता है।

३३५. जैसे राहु, सूर्य और चन्द्रमा को ग्रास बना लेता है, वैसे ही यह मृत्यु सभी जीवों को ग्रास बना

लेता है।

३३६. जैसे वोट डालते समय यह जीव अकेला रहता है, वैसे ही कर्मोदय को यह जीव अकेला ही भोगता है।

३३७. शरीर और आयु की स्थिरता कभी खत्म नहीं हो सकती, इसलिए हमें स्थिरता का प्रयास न करके, मिले हुए समय में आत्मा की साधना करनी चाहिए।

३३८. शरीर को कितना भी खिलाओ-पिलाओ, लेकिन वह कभी भी आपका (आत्मा) साथ नहीं देगा, वह तो मात्र आयु का ही साथ देगा।

३३९. आयुकर्म का संबंध काल से नहीं होता बल्कि कर्म के निषेकों से रहता है।

३४०. आयुकर्म की जिससे उदीरणा हो, वैसे कार्य कभी नहीं करना चाहिए, यत्नाचार पूर्वक ही कार्य करना चाहिए।

३४१. उदीरणा में आयुकर्म के निषेक ज्यादा खिरते हैं। सप्तम गुणस्थान में मुनि महाराज की आयुकर्म की उदीरणा रुक जाती है।

३४२. वेदना कषाय समुद्घात के द्वारा आयु कर्म का अपव्यय होता है।

आराध्यदेव

३४३. हमेशा हमारे चित्त का विषय हमारे आराध्यदेव ही होना चाहिए।

३४४. करो सो काम, भजो सो राम, सुनो आत्माराम।

इन्द्रिय

३४५. व्यापार इन्द्रियाँ नहीं करती आत्मा व्यापार करती है। इन्द्रियाँ व्यावृत होती हैं, इन्द्रियों का व्यापार बुद्धिपूर्वक होता है। आँखों की पलक का झपकना, नाड़ी का फड़कना, श्वसन क्रिया, रक्त संचार का होना अबुद्धिपूर्वक है।

३४६. नेत्र और कर्णेन्द्रिय बहिर्मुखी होने के लिए सरल साधन है।

३४७. इन्द्रियाँ नियत स्थान और नियत विषयी ही होगीं, किन्तु मन का कोई नियत स्थान और विषय नहीं।

३४८. संपूर्ण शरीर में नहीं बल्कि शरीर की सतह पर स्पर्शेन्द्रिय है।

३४९. मन और इन्द्रिय का व्यापार आकुलता का प्रतीक है।

३५०. पंचेन्द्रियों के विषयों में रस लेने वालों को स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं होता। स्वानुभव प्रत्यक्ष का अनुभव करने के लिए इन्द्रिय विषय कषायों से ऊपर उठना अनिवार्य है।

३५१. सौधर्म इन्द्र इन्द्रिय के विषयों से ऊपर नहीं उठ पाता, इसलिए उसे जौंक की उपमा दी है। जिस प्रकार जौंक गाय के स्तन के पास रहकर भी दूध न पीकर खून ही पीती है।

३५२. पंचेन्द्रिय जीवों में जो देखने में आती है वह आनपान कहलाती है। जो एकेन्द्रिय एवं त्रस

विकलेन्द्रिय हैं, उनकी श्वसन क्रिया देखने में नहीं आती, वह श्वासोच्छ्वास कहलाती है।

३५३. अपने स्वरूप को छोड़कर जब आत्मा बाहर आती है तो इन्द्रिय व्यापार होता है।

३५४. पंचेन्द्रिय में विषय आकर्षण के विषय इसलिए बने हैं क्योंकि ये संसारी प्राणी के लिए स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष हैं।

३५५. संसार का पंचेन्द्रिय सुख श्वान की हड्डी चबाने जैसा ही है।

३५६. पंचेन्द्रिय विषयों की ओर जो रास्ता जाता है वह बड़ा खतरनाक है। वह नरक रूपी गड्ढे में गिरा देता है।

३५७. इन्द्रिय सुख को सुख मानना महान् अपराध है।

३५८. अंधों में भी महान् अंधा वह है जो इन्द्रिय विषयों में आसक्त रहता है।

३५९. विषयाशक्त की इन्द्रियाँ और मन वस्तु के स्वरूप को नहीं जान पाती।

३६०. इन्द्रिय के विषयों में सुख ढूंढना रेत को पेलकर तेल निकालने जैसा है। जीवन की इच्छा रखकर विष का पान करना है। ये सब मोह के कारण हुआ करते हैं।

३६१. जो पंचेन्द्रियों के विषयों में लगा है, वह समझना ततूरी (गर्मी से संतप्त भूमि) में भटक रहा है, उसे कभी भी शांति नहीं मिल सकती।

३६२. पंचेन्द्रियों का व्यापार आपकी मानसिकता का परिचायक है।

३६३. यह जीव स्वयं इन्द्रिय और मन का दास बनकर उनकी पूर्ति करता रहता है, इसलिए दुःखी बना रहता है।

३६४. आप इन्द्रियों के दास बने हुए हैं, इसलिए बरसात में आप वाटरप्रूफ पहनते हो, सर्दी में एयरटाइट पहनते हो और गर्मी में एयर कंडीशनर। इसलिए आपके जीवन में पापों का ही विकास हो रहा है। आप इन्द्रिय और मन के नौकर मत बनो, गर पाप से बचना चाहते हो तो इनको वश में करो।

३६५. रूप को देखने वाली, आँखें महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि जो स्वरूप को दिखावें, वे ही आँखें महत्त्वपूर्ण हैं।

३६६. इन्द्रिय व्यापार करने से पाप का बंध होता है।

३६७. पंचेन्द्रिय में विषय हमेशा अपकारक ही होते हैं।

३६८. यदि स्त्री आपका एक बार अपकार कर दे तो आप उसे छोड़ देते हो, लेकिन इन पंचेन्द्रिय के विषयों को क्यों नहीं छोड़ देते ? जबकि ये हमेशा ही अपकार करते रहते हैं।

३६९. जीव के पास इन्द्रिय रूपी पाँच खिड़कियाँ हैं, जिनमें से विषय चोर आते रहते हैं और मन सिंहद्वार के समान है, विषय रूपी चोरों को रास्ता दिखाता रहता है।

३७०. पंचेन्द्रिय रूपी विषयों से यदि यह वैराग्य सम्पदा लुट जाती हो तो उन्हें वश में करो, वरन्

स्वयं की एवं धर्म की बदनामी होगी।

३७१. पंचेन्द्रिय निग्रह किये बिना जो ध्यान करना चाहता है वह सिर से पहाड़ तोड़ना चाहता है, लेकिन पहाड़ नहीं फूटेगा, बल्कि सिर ही फूट जायेगा।

३७२. साधु को, ज्ञानी को इन्द्रिय रूपी चोरों से हमेशा बचकर रहना चाहिए, क्योंकि उनके पास सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्न हैं।

३७३. इन्द्रिय चोर चारों ओर घूम रहे हैं और मन इनका मुखिया है, जो इन्हें रास्ता बताता है।

३७४. पंचेन्द्रिय सुख से आत्मा कभी तृप्त नहीं होती बल्कि संतप्त होती है।

३७५. संसार में पंचेन्द्रिय और मन में विषयों के अलावा और है ही क्या? जिसके इस काल में ये विषय और नाम की कामना छूट गई समझो वह इस काल में केवली से कम नहीं।

३७६. जो पंचेन्द्रिय विषयों से ऊब जाता है, ऊपर उठ जाता है वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

३७७. पंचेन्द्रिय विषयों के त्याग बिना अमूर्त आत्मतत्त्व का ध्यान नहीं किया जा सकता।

३७८. इन्द्रिय विषयों को छोड़े बिना जो व्यक्ति आत्मा के ध्यान की बात करता है, लगता है उसे वात का रोग हो गया है।

३७९. इन्द्रिय सुख-भोग और मोक्ष का उपाय-योग दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

३८०. पंचेन्द्रिय विषयों से नफरत मत करो, बल्कि उनसे बचकर युक्तिपूर्वक कर्म की निर्जरा करो।

३८१. इन्द्रिय सुख को तुच्छ कहा है, तुच्छ का अर्थ महत्त्वहीन और इसी महत्त्वहीन सुख के लिए संसार में घोर संघर्ष चलता रहता है क्योंकि भोग्य सामग्री सीमित है और एक-एक व्यक्ति की इच्छाएँ असीमित हैं।

३८२. जो इन्द्रिय सुख में आनंद लेता है वही एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों का घात करता है और मरण कर स्वयं एकेन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म ले लेता है।

३८३. स्पर्शेन्द्रिय में हाथी, रसना इन्द्रिय में मछली, घ्राणेन्द्रिय में भौंरा और चक्षु इन्द्रिय में पतंगा एवं कर्णेन्द्रिय में हरिण अपने प्राण गंवा देते हैं। जब एक-एक इन्द्रिय के विषय सुख में फँसकर ये प्राणी अपने प्राण गँवा देते हैं तो यह पंचेन्द्रियों के विषयों में जो आसक्त है उसकी क्या दशा होगी ?

३८४. संसार में किसी भी गति में खोजो पंचेन्द्रिय के विषय वे ही मिलेंगे, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के विषय नियत हैं।

३८५. पंचेन्द्रिय विषयों को बार-बार भोगा है, लेकिन फिर भी अज्ञानी को यह विश्वास नहीं होता कि मैंने इन विषयों को बार-बार भोगा है, इसलिए उन्हें छोड़ नहीं पाता। जिन्होंने इन्द्रियों को नहीं जीता उनके जप, तप निष्फल हैं।

३८६. यदि इन्द्रिय और मन वश में हो गया फिर मुक्ति दूर नहीं।

इच्छा

३८७. भोगों की इच्छा रखने से आगे मिलने वाले भोग भी नहीं मिलते।

३८८. इच्छाएँ अनंत हैं और पदार्थ सीमित हैं, अतः इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं हो सकती।

३८९. तप रूपी अग्नि के माध्यम से ही इच्छाओं को जलाया जा सकता है।

३९०. इच्छा का परिमाण ही परिग्रह का परिमाण है।

३९१. संसारी प्राणी इच्छा का विकास तो कर सकता है लेकिन इच्छा का निरोध भव्य पुरुष ही कर सकता है।

३९२. दृष्टि का सम्यक् हुए बिना इच्छाओं का निरोध नहीं हो सकता।

३९३. जो इच्छा/चाह को छोड़ता है, उसके चरणों में दुनियाँ आना चाहती है।

ईर्ष्या

३९४. जहाँ पर ईर्ष्या है, वहाँ पर मान अवश्य रहता है, भाव हिंसा भी होती है, वहाँ असत्य भी रहता है और मूर्च्छा भी।

३९५. ईर्ष्या, स्पर्धा आदि कषाय के ही अंश हैं, क्योंकि इनसे मान को धक्का लगता है।

उपकार

३९६. इस काल में दूसरे को संभालना तूफान में दूसरे का हाथ पकड़ना है, वह तो जावेगा ही तुम भी चले जाओगे।

३९७. आज उपकार करना बड़ा कठिन कार्य है।

३९८. यदि हमारे उपादान में नहीं है तो देव भी कुछ भी उपकार नहीं कर सकते। देव तो मात्र निमित्त बन सकते हैं, आपके उपादान के अनुरूप निमित्त के रूप में काम कर सकते हैं।

३९९. धर्म में उल्लास होने से रक्त प्रवाह बढ़ता है और हतोत्साहित होने से घटता है।

उपदेश

४००. जिसका उद्देश्य मात्र उपदेश देना ही है, इसलिए शास्त्र स्वाध्याय करता है तो वह सब्जी में पड़ी चम्मच के समान है, जो स्वयं कुछ भी स्वाद नहीं ले पाती।

४०१. उपदेश देने वाला चारित्रवान् होना चाहिए, वरन् उसका कोई असर नहीं पड़ता।

४०२. उपदेशक कभी भी सामने वाले को न उलझाये और न ही कभी अपना प्रभुत्व दर्शाये।

४०३. करुणा के बिना वक्ता का स्वभाव सही नहीं माना जाता, क्योंकि करुणा से भींगे शब्द ही असरकारक हुआ करते हैं।

४०४. गरजने और बरसने वाले बादल बहुत होते हैं, लेकिन भीतर से आर्द्र पानी बरसाने वाले दुर्लभ होते हैं। वैसे ही उपदेश सभी लोग देते हैं, लेकिन कल्याण का उपदेश देने वाले दुर्लभ हैं। या यूँ कहो अनुभूति की कड़ाई में से तलकर आ रहे शब्दों में से उपदेश देने वाले कम होते

हैं। एक बात हमेशा ध्यान रखना मानसूनी वर्षा ही लाभप्रद होती है, सामान्य वर्षा नहीं।

४०५. जिन्हें अंर्तदृष्टि प्राप्त नहीं है, उन्हें बारह भावना का उपदेश अच्छा नहीं लगता, जवानी में बारहभावना अच्छी लगनी चाहिए, बुढ़ापे में अच्छी लगी तो क्या ?

४०६. उपदेश उसे दिया जा सकता है, जिसकी धारणा कमजोर पड़ रही हो।

४०७. जैसे उबलते हुए दूध में जामन डालने से दही नहीं जमता, दूध को ठण्डा होना चाहिए, वैसे ही चतुस्थानी में उदय में उपदेश काम नहीं करता। द्विस्थानी का उदय चाहिए, तभी उपदेश का असर पड़ेगा।

४०८. तर्क के माध्यम से युक्ति पूर्वक समझाने से एवं स्वयं समझने से भगवान् की आज्ञा का पालन होता है।

४०९. हेय-उपादेय दोनों की जानकारी के बिना उपादेयभूत तत्त्व को हम नहीं पा सकते।

४१०. उपदेश सुनना बहुत सरल है, यदि कठिन है तो उस उपदेश को स्वयं अपने जीवन में उतारना।

४११. श्रमणत्व को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं इतना स्वाध्याय/उपदेश करने के उपरान्त भी, क्योंकि विशेष ज्ञान का उपयोग करने के लिए विशेष पुण्य की आवश्यकता होती है।

४१२. स्वाध्याय को, उपदेश को व्यवसाय का कारण बनाने वालों को समयसार का स्वाद नहीं आ सकता, क्योंकि परमार्थ के साधन को अर्थ का साधन बना लिया है।

४१३. देव, शास्त्र एवं गुरु के माध्यम से रत्नत्रय की उपलब्धि होती है, फिर रत्नों की इच्छा नहीं रखना चाहिए। भगवान् ने गृहस्थावस्था में उपदेश नहीं दिया और आज गृहस्थ उपदेश दे रहे हैं।

४१४. सर्वप्रथम आचार-शास्त्र का ही उपदेश दिया है जिसमें दया, अनुकम्पा की बात कही है। इसी से धर्म की शुरुआत होती है।

४१५. आज उच्चारण तो हो रहा है पर उच्च आचरण नहीं हो रहा।

४१६. स्वार्थसिद्धि के लिए उपदेश नहीं होता, हितकारी होना चाहिए वही उपदेश की संज्ञा पाता है।

४१७. दया से रहित उद्‌बोधन मात्र उच्चारण माना जाता है, उपदेश नहीं।

४१८. धर्म का ज्ञान नहीं पान करिये।

४१९. संकेत को समझकर अमल करना महत्त्वपूर्ण है, जो आत्म कल्याण के बारे में संकेत नहीं समझता उसे कोई मेंवलज्ञानी समझा नहीं सकते।

४२०. जो अपने हित की इच्छा रखता है उसे उपदेश कार्यकारी हो सकता है। जैसे माँ गर्भस्थ शिशु को जो भोजन अनिवार्य हो, वही स्वयं भोजन करती है जिससे गर्भस्थ शिशु का पालन होता है।

४२१. भोजन जल्दी जल्दी मत करो वरन् पचेगा नहीं। कम/अधिक खाने से कोई मतलब नहीं, पचाना महत्त्वपूर्ण है। पचाने का अर्थ जिनवाणी का मायना, अर्थ क्या है यह समझना और उसे समझकर चारित्र में लाना।

४२२. अर्थ समझने का, प्रयोजन के अभाव में कोई अर्थ नहीं है।

४२३. श्रुत का अर्थ समझने के लिए, प्रयोजन ज्ञात करने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि प्रयोजन सिद्ध होता है तो तृप्ति का अनुभव होता है।

४२४. रसोई बनाना अलग है उसको चखना/ स्वाद लेना अलग है।

४२५. चम्मच बनना चाहते हो तो स्वाद नहीं आवेगा। सुबह से शाम तक जिस चम्मच के माध्यम से दूसरे को खीर परोसी जा रही है, उस चम्मच को खीर का स्वाद तक नहीं आता। जिसको स्वाद आ रहा है सही मायने में वही सच्चा आराधक है (जिनवाणी का) बाकी सभी चम्मच के समान है।

४२६. आज पुस्तक पर मूल्य और आ गया, अब पैसा ही दिख रहा है समयसार नहीं। पुस्तक में समयसार नहीं दिख सकता, क्योंकि जो रत्नत्रय से विभूषित आत्मा है वही जीवित समयसार है।

४२७. भावश्रुत ही महत्त्वपूर्ण है वही आत्म स्वरूप का स्रोत है। चम्मच के बिना रसोई नहीं बनती। लेकिन बाद में स्वाद चम्मच से नहीं जीभ से आवेगा। यदि उपयोग और कहीं अटका है तो जीभ में स्वाद नहीं आवेगा। साकार उपयोग के साथ ही उसका भाव-भाषन होता है। मात्र द्रव्य श्रुत से कोई लाभ नहीं होगा। आत्मशुद्धि के लिए प्रयोजन शुद्ध होना चाहिए।

४२८. तोता समझदार निकला संतों की वाणी सुनकर २४ घंटे में पिंजरे से मुक्त हो गया। बाहर से सोये बिना पिंजड़े के दरवाजे खुल नहीं सकते, ऐसा गुरु का उपदेश तोते ने आत्मसात् कर लिया था।

४२९. कुछ समझदार होकर भी बोलते नहीं, क्योंकि बोलना न बोलना समझदारी का आधार नहीं है।

४३०. उपदेश भी वही सही है जिससे बंधन मुक्त हो सकें।

४३१. पूर्व संस्कार के अनुसार चलोगे तो उपदेश कोई प्रभाव नहीं करेगा।

४३२. द्वादशांग श्रवण करने की अपेक्षा से है, इष्ट प्रयोजनभूत उपदेश तो थोड़ा-सा ही होता है।

४३३. जिनवाणी का प्रकाश हमें अंधकार में बिजली की कौंध (चमक) जैसा मिल गया है, इतना पर्याप्त है। कई भव्य जीवों को वरदान सिद्ध हो गया।

४३४. उपदेश से उसी का बेड़ा पार होता है जो सछिद्र नहीं होता।

४३५. जो उपदेश देते हैं, उन्हें यह अवश्य समझना चाहिए कि उपदेश ग्रहण करना महत्त्वपूर्ण है देना

नहीं। देशना (लब्धि)का लाभ हो तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है उपदेश देने से नहीं, लेने से कल्याण होता है।

४३६. वस्तु तत्त्व को न समझने वाला ही संकल्प-विकल्पों में उलझता है इसलिए तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय का नियम लें। सही धन आत्म तत्त्व है शास्त्र के माध्यम से उसी दिव्य तत्त्व का ज्ञान होता है। तत्त्व विज्ञान की पहचान कहीं अन्यत्र नहीं मिलती।

४३७. स्वाध्याय से संघर्ष का समापन होना चाहिए।

४३८. हम दूसरे को बुरा न कहकर अच्छा क्या है, यह और जानने का प्रयास करें।

४३९. ज्ञान भावना का फल आलस्य का त्याग होना है। जो आलस्य का त्याग किये हैं, वह हमेशा स्वाध्याय कर रहा है।

४४०. आलस्य का त्याग है तो स्वाध्याय जीवित है, ध्यान में है।

४४१. आलस्य का त्याग नहीं हुआ तो स्वाध्याय का फल नहीं मिला, ऐसा समझना चाहिए।

४४२. समयसार की एक गाथा जीवन में उतर जावे तो जीवन गाथा ही बदल जावेगी।

४४३. स्वाध्याय का प्रयोजन ख्याति, लाभ प्राप्त करना मत रखो यह और ऐसा पाप बंध कराएगा, जो वज्रलेप के समान होगा हजार वर्ष तक उखड़ेगा नहीं। क्षणिक जीवन को चलाने के लिए कितने पाप करोगे ? इसके बारे में भी जरा सोच लो।

४४४. अंधे को समझाया जा सकता है, लेकिन अज्ञान अंधकार में पड़े हुये को नहीं। जैसे बच्चे पानी में बुदबुदे उठाते हैं, स्वयं नली से निर्माण करते हैं। सत्य क्या है बच्चे जानते हैं लेकिन आनंद फूटने बनने में ही मानते हैं।

४४५. स्व को शास्त्र बनाना चाहिए जिसे भाव श्रुत कहते हैं, जिसका अंतरंग शान्त होता चला जाता है, उसी को भावश्रुत प्राप्त होता है।

४४६. दूसरे को उपदेश देना दुनियाँ में सबसे सरल कार्य है।

४४७. जिनवाणी माँ बुलाती-बुलाती चली गयी अब खुरचन बची है, अब खरोंच कर खाओ।

४४८. उपदेश अपने देश (आत्मा) में आने के लिए होता है।

४४९. खोज पढ़ने और खोज करने में बहुत अंतर होता है।

४५०. अभी तो नींव में है, कलशा चढ़ाना बहुत दूर है, लेकिन यह कार्य अपने द्वारा ही सम्पन्न होना है।

४५१. स्वाध्याय धर्मोपदेश से प्रारम्भ नहीं करना चाहिए बल्कि वाचना से प्रारम्भ करना चाहिए। वाचना का अर्थ होता है प्रदान करना अर्थात् प्रदान करने का नाम वाचना है। शुद्ध शब्द, अर्थ एवं भाव प्रदान करना, तत्त्व निर्णय के बारे में बड़ों से पूछना। वाचना गुरु के सान्निध्य में ही होती है।

४५२. एक बार उजाला मिल गया तो फिर अनंतकालीन अंधकार दूर हो जावेगा।

४५३. मंजिल दूर नहीं है बस दिशाबोध मिल जावे, फिर कदम बढ़ाते ही मंजिल मिल जावेगी।

४५४. आकाशवाणी को नहीं बल्कि चिर-आकाश से फूटने वाली दिव्य-ध्वनि को सुनो।

४५५. जिनागम में माध्यम से ही धारणा बनानी चाहिए। गलत उद्देश्य बनाकर प्रवचन नहीं करना चाहिए। वरन् वह उपदेश अंधकार में ले जावेगा।

४५६. निरीहता के साथ वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन करोगे तो जिनधर्म की अच्छी प्रभावना हो सकती है।

४५७. धर्मोपदेश से यदि किसी की दृष्टि बदल जाती है तो बहुत बड़ा काम हो जाता है।

४५८. अपने जीवन को ही उपदेश मय बनाइए।

उपयोग

४५९. आत्मा और उपयोग का सम्बन्ध स्वर्ण में पीलापन के समान है।

४६०. आत्मा सोना है और उपयोग पीलापन है, जो एक दूसरे से पृथक् नहीं रह सकते।

४६१. शुद्धोपयोग ध्यान की परिणति है और केवलज्ञान, ज्ञान की पर्याय या परिणति है, क्योंकि कुछ पर्यायें सादि अनंत होती है, केवलज्ञान सादि अनंत पर्याय है और शुद्धोपयोग सादि सान्त पर्याय है।

४६२. आत्मा को विकल्प कराने वाला ज्ञानोपयोग है और आत्मा को समाधि की साधना में ले जाने वाला दर्शनोपयोग से ही आती है, ज्ञानोपयोग से नहीं।

४६३. अशुभोपयोग से निवृत्ति होना रात्रि का समापन है और शुभोपयोग में प्रवृत्ति होना भोर होना है और शुद्धोपयोग दिन का प्रकाश है।

४६४. शुभोपयोग में बैट घुमाओ और बाल (गेंद)दूर गई तो अवसर मिलते ही शुद्धोपयोग रूपी रन बना लेना चाहिए। ध्यान रखना शुभोपयोग की रेखा से बाहर खेलने नहीं जाना, जिस खिलाड़ी का बैट हाथ से छूट जाता है, वह अच्छा खिलाड़ी नहीं माना जाता है।

४६५. शुद्धोपयोग में प्रतिकार नहीं होता मात्र प्रतीति रह जाती है, इसलिए प्रतिकार नहीं करना। जो आया, उसे स्वीकार करो।

४६६. हमारे उपयोग का विषय तत्त्वचिंतन बने, पंचपरमेष्ठी बनें, विषय/कषाय भूलकर भी न बने।

४६७. गरम दूध में गिरा छोटा-सा तिनका जैसे चारों ओर घूमता है वैसे ही शरीर में कोई रोग हो जाये तो उपयोग तिनके की भाँति उसी की ओर जाता रहता है।

४६८. शुभोपयोग साधन रूप एकदेश उपादेय है और शुद्धोपयोग केवलज्ञान का साधनरूप उपादेय है।

४६९. उपयोग में जो विकार उत्पन्न होता है, वह आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य पदार्थों की ओर जाने

से होता है।

४७०. शुभोपयोग, शुद्धोपयोग का कारण है और शुद्धोपयोग केवलज्ञान का कारण है।

४७१. शुभोपयोग का अभाव सो शुद्धोपयोग, ऐसा अर्थ नहीं लेना बल्कि शुद्धोपयोग में शुभोपयोग का अभाव होता है, ऐसा अर्थ लेना।

४७२. जिसमें शुद्धोपयोग की भूमिका नहीं बनती उसे भूलकर भी शुभोपयोग नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि वह भी परम्परा से मोक्ष का कारण है।

४७३. शुद्धोपयोग रूप गाड़ी बिना रुके मोक्ष ले जाती है और शुभोपयोग रूप गाड़ी कई स्टेशनों पर रुकती हुई जाती है, पर पहुँचती वहीं है।

४७४. शुद्धोपयोग तो उपादेय है, क्योंकि वह आत्मानुभूति कराता है। लेकिन शुभोपयोग भी उपादेय है, क्योंकि वह शुद्धोपयोग में कारण है।

४७५. ज्ञानोपयोग होने से भय होता है, दर्शनोपयोग होने पर भय नहीं होता।

४७६. अशुभोपयोग से बचने का नाम शुभोपयोग है। भगवान् की भक्ति, दान, व्रत, स्वाध्याय, दया व अनुकम्पा आदि क्रियाएँ शुभोपयोग कहलाती हैं।

४७७. वस्तु को विषय बनाने का जो आत्मा का प्रथम पुरुषार्थ है, उसका नाम दर्शनोपयोग है। उपयोग लगाकर सुनो जीव उपयोगमय है, जीव का उपयोग से तादात्म्य सम्बन्ध है, जीव से उपयोग पृथक् नहीं होता, जैसे स्वर्ण से पीलापन।

४७८. उपयोग में उपयोग लगाओ तो समय का पता ही नहीं लगेगा।

४७९. ज्ञानोपयोग को दर्शन के समान बनाने का अर्थ है, चलाकर चिंतन नहीं करना, अवग्रह तक ही सीमित रहना, ईहा आदि को ज्ञान की ओर नहीं ले जाना।

४८०. दर्शनोपयोग में वस्तु का अस्तित्त्व मात्र होता है, भेद-उपभेद नहीं होते।

४८१. ज्ञानोपयोग के पूर्व में होने वाली उपयोग की दशा का नाम दर्शनोपयोग है।

४८२. सामान्य अवलोकन का नाम, निराकार, निर्विकल्प दशा का नाम दर्शनोपयोग है।

४८३. शुद्धोपयोग को यथाख्यात चारित्र या शुक्लध्यान के रूप में स्वीकारा है, इसी को निर्विकल्प समाधि, अभेद रत्नत्रय व वीतराग भाव भी कहते हैं।

४८४. उस शुद्धोपयोग का दर्शन तीन लोक में यदि कहीं होगा तो वह श्रमण (साधु) की चर्या में ही होगा।

४८५. शुभोपयोग बना रहेगा तो शुद्धोपयोग मिलेगा नहीं तो अशुभोपयोग में चला जावेगा।

४८६. शुद्धोपयोग सरल प्राकृतिक है, वह दबाव से पैदा नहीं होता।

४८७. शुद्धोपयोगी किसी से प्रभावित नहीं होता।

४८८. आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का उपाय शुद्धोपयोग है।

४८९. शुद्धोपयोग की तरंग में अन्य तरंगे नहीं आती, उस समय मात्र शुद्ध द्रव्य का अनुभव होता है।

४९०. जिसके जीवन में शुद्धोपयोग की रुचि नहीं है, बहुमान नहीं है तो वह शुभोपयोग को भी अधिक समय तक नहीं रख सकता।

४९१. आटे की लोई शुभोपयोग की भाँति है, जो कि कोई काम की नहीं यदि उसे शुद्धोपयोग (रोटी) के रूप में नहीं ढाला गया तो लोई की उम्र ज्यादा नहीं होती।

४९२. योग और उपयोग आत्मा की दो ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनके माध्यम से हम अच्छे-बुरे दोनों कार्य कर सकते हैं।

४९३. स्पन्दन क्रिया के बंद हुए बिना अंतरंग में क्या है यह दिखाई नहीं दे सकता।

४९४. योग सिद्धि के बिना कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती।

४९५. अस्थिर मन वाला व्यक्ति कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

४९६. शुद्धोपयोग कभी भी प्रवृत्ति के समय नहीं हो सकता है।

४९७. योग और उपयोग में कारण ही गुणस्थान बनते हैं।

४९८. उस शुद्ध निश्चयनय की कृपा से ही सिद्ध बना जा सकता है।

४९९. कुम्भकार के उपयोग में कुंभाकार आये बिना योग के कुंभ नहीं बन सकते।

५००. आत्मा के घर में विकल्प करने वाला एक ही है, वह है उपयोग। उपयोग चारों ओर दौड़ लगाता रहता है, इसलिए आत्मा की शक्ति समाप्त होती रहती है। अंतर्मुहुर्त के बाद ज्ञानोपयोग का अभाव होना अनिवार्य है और उस स्थान पर दर्शनोपयोग होना अनिवार्य है।

५०१. अग्नि से जैसे उष्णता पृथक् नहीं है, उसी प्रकार आत्मा से उपयोग पृथक् नहीं है।

५०२. अपने उपयोग के रेडियो में ज्ञान चेतना की ही स्टेशन लगाओ।

ऊर्ध्वगमन

५०३. कर्मों के उदय से ऊर्ध्वगमन नहीं होता बल्कि कर्मों के पूर्ण अभाव में जीव का ऊर्ध्वगमन होता है।

एकता

५०४. एक में हर्ष तो हो सकता है, लेकिन संघर्ष एक में नहीं दो के बीच में ही होगा।

५०५. जहाँ एकता होती है, वहाँ वात्सल्य रहता है।

५०६. १ के सामने १ रखो ११ होते हैं। घर में एक, एक ही रहो लेकिन समाज में आते ही ११ हो जावे तो बहुत अच्छा होगा।

५०७. मकान बनाने में प्रत्येक चीप (पत्थर का छोटा-सा टुकड़ा) भी चीफ का कार्य करती है। एकता के द्वारा बड़े-बड़े कार्य भी सहजता से एवं कम समय में पूर्ण हो जाते हैं। जैसे एक

हाथ लिख रहा है तो दूसरा हाथ विश्राम नहीं करता वह भी सहयोग देता है।

५०८. एक आँख जिस ओर देखती है, दूसरी भी उसका सहयोग देती है। एक कहती है तुम देखती रहो हम सहयोग दे रहे हैं, यही तो एकता का प्रतीक है।

५०९. बच्चा जैसे बातों को जल्दी भूलता है वैसे ही हमें एक दूसरे की गलती को जल्दी भूल जाना चाहिए।

५१०. समाज में एकता है, तभी तक वह समाज कहलावेगी, व्यक्तियों की संख्या का नाम समाज नहीं है।

५११. दर्जी (टेलर) के यहाँ मशीन में एक लड़ी (गिट्टी)में धागा आता है, और सटल से नीचे से भी एक धागा आता है! दोनों मिलकर सिलाई प्रारम्भ कर देते हैं। सिलने में कितने भी धागे (सूत्र) हों, कार्य एक ही स्थान पर एक ही होता है सिलाई का।

५१२. एक आँख आ जाती है तो दूसरी आँख में आँसू आने लगते हैं, वे भाई-भाई जैसी हैं।

५१३. एक दूसरे के पूरक बने बिना लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते। मुट्ठी से पदार्थ आसानी से फोड़ा जा सकता है, कनिष्ठा आगे रहती है कोई अपने को छोटा बड़ा न समझे। लाख चाहिए तो मुट्ठी बंधी रखो वरन् राख।

५१४. कुछ दिन रहना है तो वात्सल्य, एकता के साथ रहो बहुत प्रतीक्षा के बाद नर तन मिलता है। संसार का चक्कर छूटता नहीं, प्रभु की भक्ति के लिए कुछ क्षण निकालो।

५१५. भवन में कितने छोटे-बड़े पत्थर लगते हैं पता नहीं, छोटी चीप भी चीफ का काम करती है।

५१६. एक माला तब बनती है, जब बहुत सारे मोती रहते हैं, एक सूत्र में बंधे होते हैं। एक दूसरे का सहयोग आपेक्षित रहता है।

५१७. नारंगी की कलियाँ छिलके से बंधकर रहें वरन् सूख जावेगी।

५१८. एक दूसरे से मिलते, मिलाते जाओ तो धर्म की वृद्धि होती जावेगी।

एकान्त/अनेकान्त

५१९. समाजवाद तो सिद्ध परमेष्ठी में है या निगोदिया जीव में है, जो एक साथ अनंत रहते हैं।

५२०. एकान्त से ज्ञान विकल्प का कारण है, ऐसा नहीं है बल्कि संयत ज्ञान विकल्प से छूटने का कारण है। संयत ज्ञान रक्षक है, पाप कर्म के उदय में ही किसी भी जीव को पाप करने के भाव होते हैं, इसलिए एकान्त से किसी को भी पापी नहीं समझना चाहिए।

५२१. अनेक यानि बहुत नहीं किन्तु एक नहीं है।

५२२. एक एकान्त का निषेधक अनेकान्त है, अनेकान्त यानि बहुत नहीं, बल्कि एक नहीं ऐसा अर्थ निकालना चाहिए।

५२३. छाछ में जो नवनीत के गोले का ऊपर का थोड़ा-सा भाग दिख रहा है, इतना ही नहीं इससे

बारह आना अंदर छाछ में डूबा है यह स्वीकारना अनेकान्त है।

५२४. कारण के सदृश ही कार्य होता है, ऐसा एकान्त नहीं है।

५२५. संसारी प्राणी दृष्टि में अनेकान्त तो नहीं रखता लेकिन उसे अकेले में, एकान्त में चैन नहीं मिलती पर की ओर ही जाता है।

कर्म

५२६. कर्म क्षय स्वाश्रित है, लेकिन कर्म बंध कथञ्चित् पराश्रित है। दूसरे का निमित्त कथञ्चित् कर्म बंध में आपेक्षित रहता है, किन्तु मोक्षमार्ग में मात्र आप ही रहते हैं।

५२७. फिल्म की रील कर्म है और पर्दे पर चित्र नोकर्म हैं। कर्म के अनुरूप ही नोकर्म की व्यवस्था होती है।

५२८. ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही ज्ञान होता है, मात्र पढ़ने से नहीं।

५२९. कर्मोदय में गलत कार्य न करना चाहें तो भी करना ही पड़ते हैं, जैसे नरक में अशुभ विक्रिया न करना चाहें तो भी करना ही पड़ती है।

५३०. जिनके माध्यम से अशुभ कर्म का बंध होता है, आत्महितैषी को उनसे हमेशा बचना चाहिए।

५३१. आयु कर्म उस बॉटल में समान है, जो बूँद-बूँद से खाली हो जाती है।

५३२. यदि कर्म के भरोसे बैठे रहना होता तो प्रभु कर्म निर्जरा का उपदेश क्यों देते ?

५३३. राग-द्वेष नहीं करोगे तो कर्म बंध नहीं होगा, ऐसा भगवान् ने देखा, जाना और अनुभव किया है। तभी तो उन्होंने संयम से अनुराग किया था और हम लोगों को भी राग-द्वेष छोड़ने का उपदेश दिया है।

५३४. यदि कर्म के उदय में सब कुछ हो जायेगा ऐसा सोचकर पुरुषार्थ नहीं करोगे तो कर्म निर्जरा कैसे करोगे ? भगवान् ने हमें तप के माध्यम से कर्म निर्जरा करने का उपदेश दिया है।

५३५. संसारी प्राणी की सारी क्रियाएँ कर्म सापेक्ष ही हुआ करती हैं। दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन से असाता कर्म का बंध होता है।

५३६. आयु कर्म की हानि का नाम ही मरण है, इसी का नाम जीवन है, दीपक प्रकाशित हो रहा है कि तेल जल रहा है, इसे समझने का प्रयास करो। कलम (पेन)चल रही है कि स्याही खत्म हो रही है, इसे समझने का प्रयास करो। दिन अस्त होने से पहले प्रबंध कर लो वरन् इस संसार रूपी जंगल में भटक जाओगे।

५३७. नोकर्म के कारण भावों में गिरावट आ जाती है, इसलिए शरीर आदि नौ कर्मों को स्मृति में मत लाओ और भावों को पुन: स्थिर कर लो।

५३८. कर्मों की खेती कहाँ से होती है, उस खेती को समाप्त कैसे किया जा सकता है ? इन्हें पैदा करने वाले दुर्भाव को नष्ट कर दो।

५३९. जो कर्म काटने की कला को अपनाता है, वही तत्त्ववित् कहलाता है।

५४०. संसार में दो भूत खतरनाक हैं, पर द्रव्य कर्त्तृत्व और निमित्ताधीनता। जो इन दोनों से बच जाता है, वही कर्म बंध से बच सकता है।

५४१. कर्म के न्यायालय में जब कर्म न्याय करता है तो उस समय घूसखोरी नहीं चलती, वहाँ तो ''जैसी करनी वैसी भरनी'' का सिद्धान्त लागू होता है।

५४२. जो-जो भाव कर्मों के क्षय से आत्मा में होते हैं, वे सब सादि अनंत होते हैं, कभी नष्ट नहीं होते। जैसे क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक ज्ञानादि।

५४३. कर्मों की कठिनता यदि लता के बराबर हो जाये तो फिर कोई कठिनाई नहीं।

५४४. कषाय ही कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बंध का कारण है।

५४५. आठ कर्मों में मात्र वेदनीय (साता-असाता) कर्म का ही अनुभव होता है।

५४६. कर्मों की बाढ़ में तैराक भी बह जाते हैं, इसलिए आत्मा का रसास्वादन दुर्लभ है।

५४७. कर्म के पास इतनी शक्ति नहीं है कि आत्मा की शक्ति को पूर्ण रूप से मिटा सके, इसलिए सभी जीवों में सामान्य रूप से ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम पाया जाता है।

५४८. कर्म के उदय में हर्ष-विषाद नहीं करना कर्म फल चेतना है।

५४९. कर्मों का उपादान कारण आत्मा ही है, लेकिन ये स्वभाव नहीं है।

५५०. कर्मों के वेग में भी युक्ति पूर्वक बचा जा सकता है, वेग में तैराकी जैसी कुशलता चाहिए। गाड़ी चालक भी वेगवान गाड़ी को युक्ति से साइड करते हुए गति धीरे-धीरे कम करता जाता है।

५५१. गति, आयु, पुण्य रूप नहीं हैं तो सारे पुण्य रूप नामकर्म पाप रूप ही हो जाते हैं।

कर्त्तव्य

५५२. जहाँ निरीहता वाली बात समाप्त हो जाती है, वहाँ कर्तव्यबोध नहीं रहता।

५५३. कर्तव्य तो करना चाहिए, लेकिन कर्तृत्व बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

५५४. कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति आलोचकों की परवाह न करते हुये अपने कर्तव्य पालन में लगा रहता है।

५५५. कर्तृत्वभाव हमें कर्त्तव्य से विमुख कर देता है।

५५६. हम देव, शास्त्र एवं गुरु को प्रामाणिक मानकर मोक्षमार्ग में बढ़ते चलें। कर्तव्य की भूमि पर खड़ा रहना बहुत कठिन है।

५५७. हम दूसरों से कार्य कराना चाहते हैं हम खुद नहीं करना चाहते हैं यह संघर्ष की जड़ है।

५५८. अभिमान नहीं करना चाहिए कर्त्तव्य की ओर ध्यान रखना चाहिए।

५५९. सुन्दरता कर्तव्यशीलता से ही निखरती है।

५६०. जो पिता की आज्ञा का पालन करता है वही पुत्र माना जाता है। परम्परा का उल्लंघन करने वाला पुत्र कभी भी शांति को प्राप्त नहीं कर सकता।

५६१. कर्तव्य ही सही ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान है।

५६२. दूसरे के कार्य में व्यवधान न होने देना एवं अपने कार्य में सावधान रहना ही कर्त्तव्य है। दूसरे के कार्य में अपने द्वारा व्यवधान तब होता है जब हम अपने कर्तव्य के प्रति सावधान नहीं रहते। सामान की समस्या नहीं है बल्कि दृष्टि की समस्या है कर्तव्य को दृष्टि में रखें।

५६३. धर्म और किसी वस्तु का नाम नहीं है बल्कि अपने कर्त्तव्य का नाम धर्म है।

५६४. कर्तव्य सामान्य व्यक्ति होकर किया जाता है और कर्तृत्व विशेष स्वामी बनकर किया जाता है।

५६५. कर्तव्य को दिशा बोध तत्त्व ज्ञान से प्राप्त होता है।

करुणा

५६६. औरों की पीड़ा अपनी करुणा की परीक्षा लेती है।

५६७. अपनी आत्मा पर करुणा करने लगोगे तो दूसरों पर करुणा होने ही लगेगी। करुणा के माध्यम से ही हम अपनी आत्मा की ओर आ सकते हैं।

५६८. पापों से भीति होने का नाम ही तो स्वयं पर करुणा है।

५६९. जो जीवों पर करुणा नहीं कर सकता, वह व्रतों का पालन नहीं कर सकता।

५७०. करुणा का होना अलग है और दुःखित होना अलग है। करुणा और अनुकम्पा से तो सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

५७१. एक करुणादान नाम का दान होता है, उससे विधि नहीं देखी जाती, भूखे की भूख शांत की जाती है।

५७२. धर्म के अनुरूप ही करुणा का स्रोत झरने लगता है।

५७३. जब गुणीजनों को देखकर प्रमोद भाव हो जावे, दुखियों को देखकर करुणाभाव आ जावे, सभी के अस्तित्त्व पर विश्वास हो जावे तो समझना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई।

५७४. दूसरे के दुःख को महसूस करने का अर्थ है अपनी आत्मा में पीड़ा का अनुभव होना और करुणावश दूसरे के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करना।

५७५. करुणा के धनी तो प्रभु हैं, लेकिन हम वस्तु तत्त्व को समझते हैं तो दया, करुणा क्या है ? यह समझ में आ जाता है।

५७६. दूसरे के दुःख को देखकर आँखों में पानी आना करुणा की निशानी है।

५७७. महिला, पशु और नादान पर विशेष करुणा, कृपा होनी चाहिए।

५७८. अनुकम्पा से द्रवित जीव ही दुःख में पड़े जीवों की सहायता कर सकता है और सम्यग्दृष्टि

जीव में यह भाव उत्पन्न होना सहज ही है।

५७९. अपने बच्चों एवं परिवारजनों का पालन-पोषण मोह के कारण होता है, लेकिन अन्य पशु-पक्षियों के साथ करुणा का भाव धर्म का भाव माना जाता है।

५८०. आज पश्चिमी सभ्यता में कारण हम दया करुणा के भाव भूलते ही चले जा रहे हैं, हमें पुनः भारतीय संस्कृति की ओर लौटना होगा।

५८१. जब दया, करुणा हमें प्राणों से भी प्रिय हो जायेगी तब समझना हमारे जीवन में धर्म का अवतरण हो गया।

५८२. दया, करुणा को कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए, तभी धर्म की संज्ञा प्राप्त होगी।

कषाय

५८३. कषाय और इन्द्रियों को वश में करो, कायक्लेश तप के द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए।

५८४. बहुत समय तक घोर से घोर तप मत करो, लेकिन कषाय तो मत करो।

५८५. दुनियाँ की चीजों में स्पर्धा न करके कषाय को जीतने की स्पर्धा करो, फिर मुक्ति तुमसे दूर नहीं।

५८६. अपनी शक्ति का उपयोग कषाय को जीतने में ही करना चाहिए।

५८७. ज्ञानी, विवेकी वही है, जो कषाय का शमन करता है।

५८८. कषाय करने से कषाय की फौज (सेना) और बढ़ती जाती है। जैसे युद्ध में रावण का एक सिर कटता है तो दस सिर और पैदा हो जाते हैं।

५८९. कषायों का शमन करना बच्चों का खेल नहीं बन सकता, इसलिए इस मार्ग पर चलना चाहते हो तो कषाय को जीतो, परिग्रह का त्याग करो।

५९०. कषाय की प्रचुरता के कारण ही यह जीव निगोद से नहीं निकल पाता। ईर्ष्या, स्पर्धा आदि कषाय के ही अंश हैं, ये मान कषाय को ठेस पहुँचाते हैं।

५९१. कषायों का आवेग आत्मा को अंधा बना देता है।

५९२. क्रोधादि चारों कषायों का एक साथ उदय नहीं हो सकता, वरन् संसार में हंगामा मच जायेगा।

५९३. कषाय आपके पास हैं तो आप कसाई हैं, फिर कोई आपसे कसाई कहता है तो आप आग-बबूला क्यों होते हो ?

५९४. क्रोध, मान, माया, लोभ हमारा स्वभाव नहीं है, जिन्हें ऐसा श्रद्धान हो जाता है, इनकी ओर अपना उपयोग नहीं ले जाता।

५९५. कषाय से बचना चाहते हो तो सबसे अच्छा सूत्र है, दूसरे के बारे में मत सोचो, अपने बारे में चिंतन करो, दूसरे के बारे में सोचो तो उसकी अच्छाई के बारे में सोचो।

५९६. कषाय के वशीभूत होकर धर्मात्मा को नीचा दिखाने का अर्थ है, अपने धर्म को ही अपमानित

करना।

५९७. हमारी कषाय शरीरादि नोकर्म को देखकर उद्वेलित हो जाती है। अंदर कर्मों का बारूद भरा है जो नोकर्म रूपी आग का सम्पर्क पाकर फूट पड़ता है।

५९८. कषाय का सहारा लेने वाला ज्ञान खतरनाक है, वह संसार का कारण बनता है।

५९९. अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय में आते ही सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र दोनों नष्ट हो जाते हैं।

६००. मद, अभिमान मान कषाय की उदीरणा के बिना नहीं हो सकता।

६०१. हम कषायों के माध्यम से ऊर्जा को विपरीत दिशा में ले जाते हैं तो हमारा विकास पतन को प्राप्त हो जाता है।

६०२. कषायों का वमन (त्याग)करते ही मन शांत हो जाता है, मन में हल्कापन आ जाता है।

६०३. जो कषाय वश मोक्षमार्ग को दूषित करता है, कषाय की प्रचुरता रखता है, वह निगोद में जाता है।

६०४. कषाय करने वाला स्वयं दुःखित है, क्योंकि प्रतिकार के भाव हुए हैं, लेकिन जिसे असाता का उदय है वह समता से सह लेता है तो वह दुःखी नहीं है।

६०५. कषाय करने वाला उस मुर्गे के समान है, जो दर्पण में अपने बिम्ब से ही लड़ता है।

६०६. कषाय रखना फटाके की दुकान के समान है। आग्रह रूपी अग्नि का संयोग मिलते ही दुकान तक जलकर समाप्त हो जाती है।

६०७. प्रतिकार में भाव करना कषाय की मौजूदगी बताते हैं।

६०८. यदि कषायें शांत हैं तो अपने घर में आ सकते हो वरन् नहीं। कषाय स्वयं अपनी आत्मा को कसती है।

६०९. कषाय को शमन करने की स्पर्धा करो। जिस स्पर्धा से कषाय उत्पन्न हो, ऐसी स्पर्धा छोड़ दो।

काम

६१०. काम कभी भी पीड़ा का हनन नहीं करता, बल्कि वह पीड़ा को और बढ़ा देता है, इसलिए जो पीड़ा देता है, उसे हम तप के द्वारा नष्ट कर सकते हैं।

६११. काम की पीड़ा को जीव सहन कर लेता है, लेकिन तप से जो पीड़ा होती है, उससे भय खाता है।

६१२. जो तप के माध्यम से काम वासना का दहन कर देता है, उसे समाप्त कर देता है, वह विवेकी माना जाता है।

६१३. काम का दहन निःसंग अवस्था में ही संभव है, क्योंकि वस्त्र की ओट में तो काम जीता रहता

है।

६१४. काम ने तीन लोक को वश में कर लिया है और जो उस काम को जीत लेता है, वह महान् योद्धा है।

६१५. काम रूपी अग्नि को सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत की एक बूँद समाप्त कर देती है।

६१६. गर्मी की अपेक्षा सर्दी में जलाने की क्षमता अधिक होती है।

६१७. कमल वन लू से नहीं जलता बल्कि सर्दी में तुषार से जल जाता है, वैसे ही क्रोध से नहीं बल्कि काम के वेग से सब कुछ जल जाता है।

कार्य

६१८. धैर्य से कार्य करने से कार्य निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हो जाते हैं।

६१९. कार्य-कर्त्ताओं को इधर-उधर देखे बिना नीचे निगाह किए हुए कार्य करते रहना चाहिए।

६२०. अंधे को जब संगीत में निष्णात देखते हैं तो मालूम होता है कि लगन से ही कार्य सिद्धि होती है।

६२१. समयोचित कार्य करना ही कार्य कुशलता मानी जाती है और आगामी भव सम्बन्धी जो पुरुषार्थ प्रबन्ध कर रहा है, वह कार्य कुशल माना जाता है। जैसे जो किसान बीज को अगली फसल के लिए रखता है, वही कुशल किसान माना जाता है।

६२२. करने योग्य ही कार्य करो, न करने योग्य कार्य मत करो। ज्ञानी ऐसी युक्ति से कार्य करता है कि जिससे कर्म निर्जरा अधिक और कर्मबंध कम हो।

काल

६२३. अनन्तकाल हो गया हमें कषाय मार्गणा में रहते हुए, अभी तक हम निष्कषाय नहीं हो पाये।

६२४. यदि काल द्रव्य नहीं है तो घड़ी क्यों बाँधते हो।

६२५. काल द्रव्य को विज्ञान ने समय के रूप में स्वीकारा है लेकिन निश्चय काल के बारे में विज्ञान मौन हो जाता है।

६२६. कुछ लोग काल द्रव्य को नहीं मानते, लेकिन घड़ी हाथ में बाँधते हैं, यही तो काल द्रव्य को मानना हो गया।

६२७. जीव और पुद्गल के माध्यम से काल की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि काल की पहचान होती है।

६२८. जो काल परिणाम, क्रिया, परत्व (निकट) अपरत्व (दूर) लक्षण वाला है, वह व्यवहार काल कहलाता है और जो वर्तना लक्षण वाला है, वह निश्चय काल कहलाता है।

६२९. धर्म के क्षेत्र में काल पर आधारित रहकर चलना ठीक नहीं है, वरन् हम अपने आपको निर्दोषी मानने लगेंगे।

६३०. आज दु:खमा काल में सुख नहीं मिल सकता, सुख प्राप्ति की भूमिका बन सकती है।

६३१. अतीत के कथन करते समय वर्तमान की अनुभूति छूट जाती है।

६३२. आस्था को मजबूत करने के लिए यह दु:खमा काल वरदान सिद्ध होता है। आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज कहा करते थे कि यह कौन-सा काल है पंचमकाल, इसका नाम दु:खमा काल है तो सुख नहीं दु:ख ही मिलेगा ऐसा श्रद्धान रखो।

६३३. जिस काल में कर्म को बीमारी आ जाती है, वह समाधिकाल, स्वकाल है, इसलिए काल को हेय कहा है।

६३४. जीव और पुद्‍गल के अभाव में काल को पहचाना ही नहीं जा सकता है।

६३५. स्थान से स्थानांतर जाने रूप क्रिया कालाणु में नहीं होती।

६३६. कब, तब ये काल के संकेत करने वाले शब्द हैं।

६३७. कार्य काल के द्वारा नहीं होता काल में भी नहीं होता बल्कि काल का सहयोग लेकर होता है, उसके अस्तित्त्व में होता है, लेकिन परिणमन कार्य में ही होता है, काल में नहीं।

६३८. आगम ग्रन्थों में कर्म चेतना, कर्मफल चेतना और ज्ञान चेतना का वर्णन तो मिलता है, लेकिन काल चेतना का वर्णन नहीं मिलता, इससे सिद्ध होता है काल कर्ता नहीं हो सकता, वह तो मात्र परिणमन में सहयोगी होता है।

६३९. काल द्रव्य के बिना शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय होते हैं।

६४०. संसार में अशांति का कारण पर का कर्ता बनना है।

६४१. आपकी क्रियाएँ आपकी रुचि को बता देती है।

६४२. जितना परिग्रह कम रहेगा उतना ही कर्त्तृत्वपन से दूर होगा।

क्रूरता

६४३. निर्दोष हिरण आदि प्राणियों का जहाँ संहार हो रहा हो, वहाँ अपराध करने वाले पर क्या जुल्म ढाया जाता होगा जरा सोचो ? यह तो क्रूरता की पराकाष्ठा ही हो गई।

६४४. क्रूरता के साथ अपराधी अपराध करता है तो क्रूरता के साथ दण्ड नहीं दिया जा सकता। जिस कलम से जज जजमेन्ट देता है, उस कलम को तोड़ देता है।

६४५. रावण माला फेरते हुए भी राम का अहित चाहता था, यह क्रूरता मानी जाती है और राम ने जंगल में भटकते हुए भी रावण को मारने के भाव नहीं रखे, यह करुणा मानी जाती है।

क्रोध

६४६. व्यर्थ कार्यों में शक्ति खर्च करने से क्रोध आता है। ज्यादा बोलने से भी गुस्सा आता है, आज्ञा का उल्लंघन हो जाने पर भी गुस्सा आता है, प्रतिकूलता में भी गुस्सा आता है, इन निमित्तों से हमें बचना चाहिए।

६४७. धीर-वीर की परीक्षा यही है कि वे क्रोध न लायें/करें।

६४८. क्रोध के कारण अपने कार्य की हानि सभी कर जाते हैं, क्रोध करना कषाय का, असंयम का द्योतक है।

६४९. क्रोध करने का अर्थ है, दूसरे की गलती की सजा अपने को देना।

६५०. कन्नड़ में कहा है कि-''शिटेन कई दगे बुद्धीयन कुडवारदू'' अर्थात् क्रोध के हाथ में अपनी बुद्धि नहीं देनी चाहिए।

६५१. क्रोध करते समय अपने आप को क्रोधी न मानना बहुत बड़ी भूल है।

६५२. क्रोध कायरता का प्रतीक है, क्रोध न करना ही वीरत्व है।

ख्याति

६५३. धर्म की प्रभावना हो यह भावना ठीक है, लेकिन अपनी प्रभावना की कामना करना ख्याति लाभ में आ जाता है और ख्याति, लाभ व पूजा के कारण व्रत नष्ट हो जाते हैं।

६५४. मोक्षमार्ग में ख्याति को अपनाना यानि व्रतों को खा-पीकर साफ करना है।

६५५. ख्याति का प्राकृत शब्द 'खाई' बनता है। खाई का अर्थ होता है, गड्ढा अर्थात् ख्याति की ओर जाने का अर्थ है, गड्ढे में गिर जाना।

६५६. अज्ञान के कारण ही व्यक्ति मोक्षमार्ग पर चलते हुए भी ख्याति की कामना कर जाता है। अज्ञान ऐसा अंधकार है, जो कई लोगों को गड्ढे में गिरा देता है।

६५७. भोग, आकांक्षा, ख्याति व लाभ की कामना रखकर व्रत, पूजा आदि करने वाला रत्न बेचकर काँच खरीद रहा है, घी बेचकर छाछ खरीद रहा है।

६५८. जैसे बच्चा सौ रुपये देकर दो चॉकलेट चाहता है, वैसे ही मोक्षमार्ग पर आकर अज्ञानी यश, ख्याति की चाह रखता है, जो कि निरर्थक है।

६५९. भक्ति से जो भुक्ति मिलती है, उसमें निरीहता रखो, पुण्य बंध के फल में निरीहता रखो।

६६०. ख्याति, लाभ व प्रशंसा आदि मन के परिग्रह हैं, इनसे हमेशा मोक्षमार्गी को बचना चाहिए।

६६१. ख्याति, लाभ, पूजा के लिए ज्ञान का उपयोग करना ज्ञान का दुरुपयोग करना है।

गुण

६६२. गुण, गुणी के साथ रहते हैं गुण और गुणी का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि फूल और महक का सम्बन्ध है। आप महक को चाहते हैं लेकिन फूल के बिना नहीं मिल सकती। सुगंधी की कीमत होती है फूल की नहीं। सुगंधी निकल जाने के बाद फूल को फेंक देते हैं।

६६३. फूल को खरीदा जा सकता है उसके स्वामी बन सकते हो लेकिन खुशबू को नहीं खरीद सकते क्योंकि महक सभी के पास पहुँच जाती है।

६६४. आप यदि अपने को विकासवान् मानते हो तो गुण भी आना चाहिए, गुणों का विकास होना

चाहिए।

६६५. जीवन जीने का ढंग खरीदा नहीं जाता बल्कि अंदर से उद्घाटित किया जाता है।

६६६. किसी भी पदार्थ का मूल्यांकन उसके गुणों के आधार पर किया जाता है।

६६७. भगवान् को इसलिए पूजते हैं क्योंकि उनमें अनंत गुण प्रकट हुए हैं, उन गुणों की प्राप्ति के लिए ही उन्हें नमस्कार करते हैं।

६६८. कोई भी देश विकासशील तभी माना जाता हैं, जब उसके गुणों का विकास हो। धन वैभव का विकास, विकास नहीं माना जाता वह तो विनाश की ओर ले जाता है।

६६९. भगवान् नाम से नहीं बल्कि गुणों से पूज्य होते हैं। व्यक्ति की पूजा नहीं बल्कि गुणवत्ता की पूजा होती है।

६७०. जो गुणों को प्राणों से भी प्यारा मानता है, उसी के पास विजय लक्ष्मी पहुँच जाती है।

६७१. मोक्षमार्ग में मात्र गुण ही पूज्य हैं, इस मार्ग में दोष सहनीय नहीं हैं।

६७२. केवल भेष पूज्यता का प्रतीक नहीं है, बल्कि उस रूप गुण भी होना चाहिए।

६७३. गुणों की क्षति होने पर सर्वत्र अनादर ही अनादर मिलता है कोई कीमत नहीं करता, जैसे शव पर ढके कफन की कोई कीमत नहीं करता।

६७४. बहुत सारे गुण एक अवगुण के कारण निर्मूल्य हो जाते हैं।

६७५. औचित्य गुण के अभाव में सभी गुण विष जैसे हो जाते हैं (प्रासंगिक गुण)जैसे दूसरे में दुःख व्यक्त करना यह औचित्य गुण है।

६७६. प्रसंगानुसार कार्य करना बहुत बड़ा गुण माना जाता है।

६७७. बच्चों को कुछ देने से पहले पिता का कर्त्तव्य होता है, वे यह ध्यान रखें कि वह उसका किस रूप में उपयोग करता है।

६७८. गुणों में पुरस्कार के साथ दोषों का समालोचन ही होना चाहिए।

६७९. दोष गुणों का समीचीन आलोढ़न (अध्ययन) करना ही सही समीक्षा मानी जाती है।

६८०. वह हमारा मित्र है जो हमारे मत को पुष्ट करने के लिए प्रशंसक शब्द नहीं बोलता। रोगी बनता मिठाई खाने से (प्रशंसा करने से) निरोगी बनता कड़वी दवाई से, इसलिए कड़वी दवाई पीना सीखो, तभी दोष से मुक्त हो सकते हो।

६८१. गुणों का आदान और दोषों का परिहार करो।

६८२. जिन साधनों के माध्यम से गुणों का विकास हो, ऐसे साधन अपनाना ही विद्वत्ता मानी जाती है।

६८३. दोषों का निष्कासन हो गया कि गुण उत्पन्न हो जाते हैं, गुणों को उत्पन्न करने का ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता। जैसे कपड़े का गंदापन साफ किया जाता है, उसमें उज्ज्वलता अपने आप

आ जाती है। इससे सिद्ध होता है कि दोषों को हटाने के लिए पैसा और पुरुषार्थ लगता है, गुणों को पाने के लिए नहीं।

६८४. गुणों को अपनाने से यश और सम्मान मिलता है, जब तक मुक्ति नहीं मिलती।

६८५. मोह को हटाने का प्रयास किया जाता है, मोक्ष पाने के लिए नहीं वह तो अंदर ही है। जैसे मिट्टी को हटाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है, पानी के लिए नहीं। वह तो मिट्टी के हटते ही फूट पड़ता है।

६८६. दोष दुर्गति का कारण है, गुण सद्‌गति का कारण है, यह जानकर अविरल रूप से उत्साह के साथ दोषों का उन्मूलन करिए।

६८७. गुण ग्रहण में निमित्त कोई भी बन सकता है, जैसे अंजनचोर को प्रभु, गुरु निमित्त न बनकर जिनदत्त सेठ निमित्त बना।

गर्भ

६८८. गर्भ में जीव के मित्र कृमि होती है, वहाँ पर अंधकार ही अंधकार है।

६८९. गर्भ के दु:ख यदि याद आ जायें तो व्यक्ति को तप कष्टदायी महसूस नहीं होगा।

गुरु

६९०. गुरु महाराज के सान्निध्य में ही जीवन का रहस्य उद्घाटित होता है।

६९१. अपनी चिकित्सा करने वाले चिकित्सक गुरु ही होते हैं।

६९२. अज्ञान को दूर करने वाले गुरुदेव ही हुआ करते हैं।

६९३. गुरु की वाणी जीवन जीने की सामग्री है। गुरु के द्वारा दिये गये सूत्र जीवन जीने में तरीके हैं।

६९४. गुरु जमाने के अनुसार नहीं बल्कि सिद्धान्तानुसार चलने को कहते हैं।

६९५. एकलव्य ने मूर्ति में भी गुरु की स्थापना करके उनकी विद्या को प्राप्त कर लिया था। यह शिक्षा सभी को अनुकरणीय है।

६९६. गुरु विश्व को महान् ज्योति प्रदान करते हैं।

६९७. गुरुदेव डॉक्टर जैसे करुणावान होते हैं। विवेक के साथ करुणा होती है।

६९८. गुरु के वचन हमारी जीवन रूपी गाड़ी की यात्रा में पेट्रोल के समान हैं।

६९९. गुरु के वचन अनुभव भरे होते हैं, बोध नहीं ये शोध वाक्य हैं।

७००. सब कुछ भूल जाना लेकिन गुरु के वचन नहीं भूलना वरन् जीवन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

७०१. गुरुओं का भीतरी पक्ष, निष्पक्ष हुआ करता है।

७०२. गुरु का जीवन वह सांचा है जिसमें हम अपने को ढालकर उन्नत बन सकते हैं, उन जैसे बन

सकते हैं।

७०३. गुरु कभी किसी को वचन नहीं देते मात्र प्रवचन देते हैं।

७०४. ज्ञान रूपी अंजन सलाखा से हमारी आँखें खोलने का प्रयास गुरु करते हैं। लेकिन जब हमारी आँखों में ज्योति विद्यमान हो तब यह गुरु की ज्ञान रूपी अंजन सलाखा काम करती है।

७०५. गुरु के संकेत ऐसे होते हैं कि हम यदि एक ही संकेत पर अमल करें तो हमारा बेड़ा पार हो जावेगा।

७०६. गुरु को खेवटिया, तारण हारा कहा है लेकिन उनके अनुसार चलने से तन्मय होने से पार हो सकते हैं।

७०७. गुरु की वाणी को जीवन में नहीं उतारते तो वह वाणी कागज के फूल के समान है, जैसे कागज के फूल से नासिका तृप्त नहीं होती वैसे ही सुनने मात्र से जीवन तृप्त नहीं होता। यदि जीवन में अमल करते हैं तो जीवन फूल की तरह महक उठता है।

७०८. गुरुओं के दर्शन से, उनकी कृपा से जो अनादिकाल से सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था, वह प्राप्त हो जाता है मोक्षमार्ग का रास्ता मिल जाता है और यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। गुरु ऐसे मंत्र देते हैं कि जिनको अपनाने से जीवन में विकास प्रारम्भ हो जाता है। गुरुओं का लक्ष्य मात्र सम्बोधित करने का नहीं होता फिर भी सम्बोधित करते हैं यह उनकी अनुकम्पा है।

७०९. ज्ञान गुरु नहीं होता, अनुभव ही गुरु होता है।

७१०. भले ही ज्ञान आत्मा का स्वभाव है लेकिन गुरु के बिन ज्ञान नहीं हो सकता।

७११. गुरु की वाणी रूपी चाबी से अनंतकालीन मोह रूपी जंग लगा ताला भी खुल जाता है।

७१२. गुरु की पाठशाला के बाद ही प्रयोगशाला में प्रवेश किया जाता है।

७१३. शरीर और आत्मा का मेल हल्दी और चूना के मेल जैसा है। उसे गुरु की वाणी रूपी रसायन से ही पृथक् किया जा सकता है।

७१४. गुरुत्वाकर्षण के अभाव में प्राणी गिर जाता है मोह माया के आकर्षण से आत्मा पतन को प्राप्त होता है।

७१५. विषयों की बाढ़ में बहती जनता को 'गुरु' ही हितोपदेश के माध्यम से बाहर निकालते रहते हैं।

७१६. गुरु कहते हैं, ''तेरी दो आँखें, तेरी ओर हजार'' सतर्क हो जा।

७१७. यदि आप गुरु के रूप में हैं तो दूसरों के दोषों को भी दूर करें।

७१८. जो छोटे-छोटे दोषों को भी बढ़ा-चढ़ा कर बता देता है, वह गुरु है। सरसों को सुमेरु पर्वत के रूप में बताने वाला खल अच्छा है, दोष को ढकने वाले गुरु की अपेक्षा।

७१९. गुरु की कठोर उक्तियाँ ही आपके जीवन को फूल की तरह खिला सकती हैं।

७२०. सूर्य का उदय होना अनिवार्य है, वरन् अंधकार ही अंधकार होगा, इस धरा पर। वैसे ही गुरु के वचन अनिवार्य हैं, वरन् सभी जीव अंधकार में ही जीवन निकाल देंगे।

७२१. शिष्य का मन फूल की बोड़ी (कलिका) के समान होता है, उन्हें गुरु रूपी सूर्य खिला देते हैं।

७२२. गुरु यदि जिस समय अमृत को जहर कहते हैं तो वह जहर है और जिस समय जहर को अमृत कहते हैं तो वह अमृत है, यही श्रद्धान संसार से पार लगायेगा।

७२३. एक शिष्य बहुत से गुरु न बनावे, लेकिन एक गुरु बहुत शिष्य बना सकते हैं। गुरु यदि शिष्य के अनुसार पीछे-पीछे चलने लगे तो उन्हें नहीं अपनाना, यह मेरा आदेश है।

७२४. गुरुओं की आराधना करने से जगत् में सम्मान, भोग, कीर्ति प्राप्त होती है।

७२५. तपस्वियों (गुरुओं) की स्तुति करने से भक्त की कीर्ति स्वर्गों तक पहुँच जाती है, देवता भी उसका गुणगान करते हैं।

७२६. गुरु कहते हैं कि शरीर की दासता को छोड़कर आत्मा की सेवा करनी चाहिए।

७२७. ''नौका पार दे, सेतु हेतु मार्ग में गुरु साथ दे।'' अर्थात् नाव एवं पुल नदी पार कराने में हेतु होते हैं, लेकिन गुरु तो मंजिल तक साथ देते हैं।

७२८. हमारा हमेशा अधोपतन हुआ है, क्योंकि हम गुरु के आकर्षण को, संकेत को नहीं समझ सके।

७२९. हमारे भीतर विद्यमान भगवत् सत्ता का उद्घाटन गुरुदेव के माध्यम से ही होता है।

७३०. जिनका वर्तमान उज्ज्वल हो चुका है, उनके माध्यम से हम अपने वर्तमान को सुधार लें तो अपना भविष्य भी उज्ज्वल हो जायेगा।

७३१. गुरु जो कह रहे हैं, उसे करो अपने मन से कुछ मत करो, ऐसा करने से इच्छा का निरोध अपने आप हो जावेगा।

गुप्ति

७३२. गुप्ति में अंदर बैठ जाने से आत्मा की पूर्ण सुरक्षा हो जाती है, वहाँ कोई दूसरा तत्त्व प्रवेश कर ही नहीं सकता। गुप्ति में शरीर और मन दोनों की रक्षा हो जाती है।

७३३. व्रत लिए बिना समिति का व्यवहार नहीं होता और समिति के पालन बिना गुप्ति में नहीं जाया जा सकता।

७३४. असत्य वचन नहीं बोलना वचन गुप्ति में आता है।

७३५. आगम के अनुसार वचन बोलना वचन गुप्ति में आता है।

७३६. राग-द्वेष की होली से बचना चाहते हो तो गुप्ति का आधार लेना चाहिए।

७३७. गुप्ति में गुप्त होने का अर्थ है, एयरकंडीशनर में पहुँच जाना। पाप-पुण्य रूप बाहरी हवा से

बच जाना।

७३८. आत्मानुभूति के लिए गुप्ति आवश्यक है, जैसे मंजिल के लिए सीढ़ी आवश्यक है।

चारित्र

७३९. आचारांग की शरण लेने से ही मुक्ति मिलती है, चारित्र का वृक्ष २८ मूलगुण पर आधारित है।

७४०. चारित्र की शुद्धि के लिए मूलाचार ग्रन्थ बार-बार पढ़ना चाहिए।

७४१. कषाय चारित्र मोहनीय कर्म के बंध का कारण है।

७४२. स्वाध्याय करना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसे चारित्र में धारण करना महत्त्वपूर्ण है।

७४३ मुक्ति को चाहने वाले यत्नपूर्वक समितियों का पालन करते हैं। यदि समितियों का सही पालन नहीं होगा तो हिंसा से नहीं बच सकते।

७४४. लोग पथ से तो चलते हैं पर ईर्यापथ से नहीं चलते लेकिन चारित्रवान् हमेशा ईर्यापथ से ही चलते हैं।

७४५. चारित्र के बिना सद्‌गति सम्भव नहीं है।

७४६. देवायु को छोड़कर यदि अन्य किसी आयु का बंध हो गया है तो फिर चारित्र ग्रहण करने के भाव नहीं होते।

चिन्तन

७४७. चिंतन नहीं करें, पर मन कहीं और चला गया तो क्या होगा, यह चिंता होती है।

७४८. नदी के तटों के ऊपर यदि चिन्तन करें तो चिन्ता अपने आप ही भंग हो जाती है और उस चिन्तन में चेतना लीन होती चली जाती है।

७४९. चिंतन नहीं होता तो चिंता क्यों करते हो ? तुम तो चित् स्वरूपी हो।

७५०. नरक के दु:खों से तो सभी भयभीत है, लेकिन स्वर्ग सुख अथवा विषयों की चाह है तो उससे कर्मों का ही बंध होगा।

७५१. जिसको जिसमें सुख होता है, वह उसी को पाने का प्रयास करता है।

७५२. परमात्म भावना से उत्पन्न सुधारस को पीने वाला संसार के सुख को नहीं चाहता।

७५३. रस का और रसना का मूल्य क्या बिना चर्वण में।

७५४. अव्यक्त सुख दुखानुभव स्वरूप कर्म चेतना है।

७५५. इच्छापूर्वक राग-द्वेष रूप से जो परिणाम हो, वह कर्म चेतना है, जिससे कर्म का स्पष्ट रूप से बंध होता है।

७५६. मुनिराज अपने उपयोग को बाहर न ले जाकर आत्मा की ओर ले जाते हैं, यह कर्म चेतना से हटने का प्रयास है।

७५७. आत्मा का अनुभवन होना सो ज्ञान चेतना है, यह केवली भगवान् को हुआ करती है।

७५८. आप आनंद का अनुभव करना चाहते हो तो वह आनंद का स्रोत चेतना में ही है, अन्य का सहारा मत लो।

७५९. कर्मफल चेतना महत्त्वपूर्ण है। यह जीव यदि कर्मफल में हर्ष-विषाद नहीं करता तो बहुत बड़ा फल प्राप्त कर लेता है, निगोद से मनुष्य भव प्राप्त कर लेता है।

७६०. चिन्ता और चिन्तन दोनों निश्चयनय से विकल्प के ही कारण हैं।

७६१. संसार व शरीर के स्वभाव का चिन्तन करने से वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

७६२. आप भी संसार का चिंतन कर निर्मोही बनो। निद्रा पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने किए गए अनर्थों पर चिन्तन करना चाहिए।

चिन्ता

७६३. भौतिकी जीवन हमेशा-हमेशा चिन्ता का कारण है।

७६४. चिन्ताग्रस्त होने से कभी समस्या का हल नहीं हो सकता।

७६५. अंतरंग जगत् की पहचान होने पर बाहरी जगत् का वैभव चिन्ता का कारण नहीं बन सकता।

७६६. चिन्ताग्रस्त मानव को मानव के पास नहीं बल्कि प्रकृति के पास जाना चाहिए।

७६७. खिलते हुए फूल को देखकर चिन्ता में कमी आने लगती है।

७६८. भविष्य की चिन्ता छोड़कर अतीत में पूर्वजों ने कैसा जीवन जिया है ? उस ओर ध्यान दें, तभी भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

७६९. चिन्ता की बात नहीं, चिन्तन करो, चित् चमत्कार पैदा करो।

जीव

७७०. जीव उपाधि से रहित है। शरीर या पर्याय की अपेक्षा जो उपाधि है, उनमें यह जीव उसी रूप हो जाता है, यह अज्ञान है।

७७१. जब अविनश्वर जीव की पहचान हो जाती है तब इसके संरक्षण की सारी दौड़-धूप समाप्त हो जाती है।

७७२. शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से जीव आदि, मध्य और अंत से रहित है।

७७३. जीव स्व-पर प्रकाशक है, आज तक हमने अपनी शक्ति को दूसरों को प्रकाशित करने में लगायी है। स्वयं को जो प्रकाशित करता है और जो दूसरों को प्रकाशित करने की योग्यता रखता है, वही सम्यग्ज्ञानी माना जाता है।

७७४. अमूर्त जीव द्रव्य अवधिज्ञान का विषय नहीं बन सकता। परोक्षज्ञान में मात्र हमारे पास आगम ज्ञान है, जिसके माध्यम से हम जीव को जान सकते हैं, क्योंकि आँखों से अमूर्त जीव दिखता नहीं है।

७७५. जब जीव अमूर्त है तो पंचेन्द्रिय के विषयों में घटन–बढ़न होने पर हर्ष–विषाद नहीं करना चाहिए।

७७६. निश्चयनय से आत्मा तो आत्मस्थ है पर संसार परावर्तन करने के कारण संसारस्थ है, यह जीव संसार में रहकर भी संसारातीत का श्रद्धान कर सकता है।

७७७. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव शुद्ध नय से ज्ञान–दर्शन रूप हैं।

७७८. वर्तमान में जीव नारायण स्वरूप है, पर दरिद्र नारायण बना हुआ है।

७७९. निश्चय से शुद्ध स्वरूप है जीव, पर अभी मोह के कारण कर्मों से जकड़ा हुआ है।

७८०. अशुद्ध निश्चयनय से जीव राग–द्वेष रूपी भाव कर्म का कर्ता है, व्यवहारनय से पुद्‌गल कर्म आदि का कर्ता है, शुद्धनय से शुद्ध भावों का कर्ता है।

७८१. जीव द्रव्य सक्रिय है। बिना शरीर के भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। वह एक समय में सात राजू पार कर जाता है।

तृष्णा

७८२. तृष्णा की पूर्ति करने से वह कभी उपशमित नहीं होती, उसे पीठ दिखाये बिना वह उपशमित नहीं होगी।

७८३. तत्त्व ज्ञान के माध्यम से ही तृष्णा को शांत किया जा सकता है।

७८४. तृष्णा रूपी अग्नि को बुझाना चाहते हो तो धनादि की इच्छा छोड़ दो और जो रखा है, उसे भी त्याग दो।

७८५. तृष्णा नागिन का जहर भव–भव में भी नहीं उतरता। जैसे इमली का पेड़ भले ही बूढ़ा हो जाये पर उसकी खटाई कम नहीं होती, ऐसे ही तृष्णा भी कम नहीं होती।

७८६. तृष्णा रूपी अग्नि में संसार की सम्पदा ईंधन का काम करती है। उससे तृष्णा कम नहीं होती, बल्कि और बढ़ती है।

७८७. ''लार गिरती, गर्दन तो हिलती, तृष्णा युवती''।

तप, तपस्या

७८८. धर्म, तप, तपस्या, आशा के साथ मत करो बल्कि कर्म निर्जरा के लिए करो।

७८९. जब आग को पकड़–पकड़ कर आप अभ्यस्त हो जाते हो तो थोड़ा–थोड़ा तप करके तप में अभ्यस्त क्यों नहीं होना चाहते हो? तप आग तो नहीं है ना।

७९०. तप के माध्यम से अप्रशस्त प्रकृतियों की निर्जरा होती है और अतत्त्व बाहर निकल जाते हैं और प्रशस्त प्रकृतियाँ बढ़ती ही चली जाती है।

७९१. इस जीवन में घोर तपश्चरण मत करो लेकिन पाँच पापों की सीमा बना लो, गर पूर्णतः पाप नहीं छोड़ सकते तो।

७९२. विकल्पों की, परिग्रहों की सीमा बना लो, व्रती श्रावक बन जाओ, सादगी से जीवन जियो। अब तो स्वयं में जीर्णोद्धार की बात सोचो, तपस्या में मन लगाओ।

७९३. ज्ञान, ध्यान, तप को लेकर बंध स्थान नहीं होना चाहिए, बल्कि निर्जरा स्थान और बढ़ना चाहिए।

७९४. तपस्या का उद्देश्य प्रदर्शन नहीं आत्मदर्शन होना चाहिए।

७९५. तप के कारण जीवन में अद्भुत अनुभूतियाँ होती हैं, लगनशील ऐसे तप को और बढ़ाते जाते हैं।

७९६. तप और ध्यान के माध्यम से रत्नत्रय में निखार आता है।

७९७. व्रतों में लगे दोषों का निर्मूलन तप, प्रायश्चित्त के द्वारा भी होता है।

७९८. यह मनुष्य पर्याय जितनी दुर्लभ है, उतनी ही अशुद्ध और दुःखमय है और कर्मों की निर्जरा भी इसी पर्याय में ही की जा सकती है। इसलिए तपस्या करके कर्मों की निर्जरा कर लेना चाहिए।

७९९. शक्ति का यद्वा-तद्वा व्यय करने से वीर्यान्तराय कर्म का बंध होता है।

८००. श्रावकों का परम कर्त्तव्य है कि पंच, पंचायत को छोड़कर पंचपरमेष्ठी के स्मरण में मन को लगाएँ।

८०१. तप के माध्यम से क्षमा, शांति आदि अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, फिर विवेकीजन उस तप को क्यों नहीं चाहेंगे।

८०२. फूल सूख जाता है, फल बढ़ता जाता है, वैसे ही तप बढ़ता जाता है और शरीर सूखता जाता है। तपस्या बाल सूर्य के समान बढ़ते क्रम से होना चाहिए।

८०३. शरीर से तपस्या करो, वरन् शरीर की पुष्टि के साथ पापार्जन ही होगा।

८०४. तप करते समय इतना ध्यान अवश्य रखना, दूध तपाते हैं, लेकिन दूध सुरक्षित रहता है, पानी ही तपता है, वैसे ही कर्म को तपाना है, शरीर को नहीं।

८०५. तप करते समय प्राणों को बाधा नहीं पहुँचना चाहिए, प्राणों की किस-किसाहट आ जायेगी तो तप करने में आनंद नहीं आयेगा। यदि मशीन गरम हो गई तो वह कुछ दाना माँगती है, उसे दाना देना चाहिए, वरन् चक्की के पाट घिस जाते हैं।

८०६. समीचीन तप करने वालों को अंत में निश्चित ही समाधि का लाभ होता है।

८०७. जहाँ आशा-तृष्णा नहीं पलती वहाँ पर दुःख का नामोनिशान नहीं रहता, वहाँ उससे बड़ा कोई सुख और हो ही नहीं सकता।

८०८. वस्तु की चाह ही वस्तु की कीमत बढ़ाती है, चाह रहित के सामने वस्तु की कोई कीमत नहीं रहती।

८०९. बाह्य तप, अग्नि को बढ़ाने वाली हवा के समान है और आभ्यन्तर तप अग्नि के समान है। कर्म आभ्यन्तर तप से ही कटते हैं।

८१०. तप के माध्यम से सारा दुराचार,पाप नष्ट हो जाता है। जैसे साबुन और पानी से बहुत पुराना गंदा कपड़ा भी स्वच्छ-साफ हो जाता है।

८११. जो तप का फल ख्याति, लाभ, पूजा को चाहता है, वह तप रूपी वृक्ष को जड़ से काट रहा है। फूल को तोड़कर उसकी गंध मत लो वरन् उसका फल प्राप्त नहीं कर पाओगे।

८१२. हमारा तप कच्ची पूड़ी की तरह है जल्दी मत करो, अच्छे से पकने दो वरन् स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा।

८१३. ख्याति, लाभ, पूजा संसार के सुख, कच्चे फल के समान हैं, इन्हें मत चखो, वरन् दाँत गोंठले हो जायेंगे।

८१४. तप और श्रुत का सदुपयोग कर्म निर्जरा में करना महत्त्वपूर्ण है।

८१५. यह शरीर मुनीम है, लेकिन मालिक बन बैठा है। अब अवसर आया है, इसे तप के माध्यम से अपने वश में करो।

८१६. जीवित अवस्था में इस शरीर को तप के द्वारा जलाओ, वरन् लोग इसे अंत समय तो जलायेंगे ही। जैसे टार्च का सेल उपयोग करते हैं तो ठीक है वरन् बच्चे उससे खेलते रहते हैं।

८१७. शक्ति का सही उपयोग न कर पाने से फल कम मिलने से वहाँ स्वर्गों में पहुँचकर दु:ख होता है। अफसोस होता है कि मैंने उपलब्ध समय में शक्ति का उपयोग तप में नहीं किया।

८१८. तपस्वियों की पूजा करने वाले को हर जगह सम्मान मिलता है।

८१९. तपस्वियों (मुनिराजों) को प्रणाम नमस्कार करने से उच्चगोत्र का बंध होता है, साधु बनने योग्य संस्कारित परिवार में जन्म होता है।

८२०. तपने के बाद अकाल की कोई सम्भावना नहीं रहती।

तपस्वी

८२१. काम की वंचना में तपस्वी नहीं आता।

८२२. मान और अपमान की बू तपस्वी को छू ही नहीं सकती, बल्कि तपस्वी के चरणों में लगी धूल को इन्द्र मान छोड़कर अपने मस्तक पर लगा लेते हैं।

८२३. तपस्वी की अपनी नहीं बल्कि धर्म की प्रभावना हो, ऐसी भावना रहती है।

त्याग

८२४. जिस बाह्य पदार्थ का हमने त्याग किया वह हमारा था ही नहीं,ऐसा भाव आना चाहिए तभी वह त्याग सार्थक होगा। वरन् त्याग का अभिमान हो सकता है।

८२५. त्यागीजन नृत्य, वाद्य, संगीत में भाग नहीं ले सकते। व्रती श्रावक को भी उपवास के दिन

स्नान आदि का त्याग करना चाहिए और गृहस्थ श्रावक को अनथौ का अर्थ थोक में नहीं बल्कि थोड़ा-सा होता है। शाम को थोड़ा-सा भोजन करना चाहिए।

८२६. जब तक छोड़ने योग्य है, तब तक छोड़ते जाओ। जब शरीर मात्र रह जाये तो कायोत्सर्ग लगा लो, फिर मुक्ति दूर नहीं।

८२७. जो त्याग करते हुए भी मद को नहीं छोड़ता वह कर्म बंध से नहीं बच सकता।

८२८. धन से धर्म की प्रभावना नहीं होती बल्कि धन के त्याग से धर्म की प्रभावना होती है। त्याग तप के बारे में कंजूसी नहीं करना चाहिए और त्याग-तप के बदले में कुछ माँग भी नहीं रखनी चाहिए।

तत्त्व

८२९. तत्त्व ज्ञान होने से आत्मा में विश्वास जागृत हो जाता है और शरीर कमजोर होने पर भी साधना में उत्साह बना रहता है।

८३०. स्वाध्याय करने से तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है और तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने से कहीं भी रहो विषय रुचते नहीं हैं, वैराग्य बना रहता है।

८३१. तत्त्व ज्ञानी बाह्य वस्तुओं को छोड़ते समय विस्मय करता है, न मद करता है और न ही शोक करता है।

८३२. तत्त्व पथ का अर्थ है, परमेष्ठी के चरणों की शरण। यही पथ है और यही पथ्य है।

८३३. तत्त्वज्ञान के संस्कार स्वर्गों में, भव-भवान्तरों में, काम करते रहते हैं और बुरे भाव भी ऐसे ही प्रभाव डालते हैं।

तीर्थंकर

८३४. तीर्थंकरों के घर में वियोगकृत दु:ख नहीं होता।

८३५. २४ तीर्थंकरों के नाम पर २४ परिग्रह छोड़ दो। तुम भी आगे चलकर तीर्थंकर बन सकते हो।

८३६. अरहंत भगवान् का शरीर सप्तधातु से रहित होता है। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि उनके शरीर में हड्डी संहनन आदि समाप्त हो जाते हैं, बल्कि ऐसा अर्थ लेना चाहिए कि उनके शरीर में सड़न/गलन नहीं होती।

८३७. परमौदारिक केवली भगवान् के शरीर में निगोदिया जीव नहीं रहते।

८३८. भव्य जीवों को मार्ग दिखाने के लिए तीर्थंकर भगवान् स्वयं उद्यत रहते हैं।

८३९. तीर्थंकर भगवान् का परहित सम्पादन ही एक मात्र कार्य रह जाता है।

८४०. तीर्थंकर भगवान् को जगत् मुमुक्षु कहा जा सकता है।

८४१. तीर्थंकर भगवान् ने भी आचारांग मार्ग पर चलकर ही सिद्धत्व रूप फल प्राप्त किया है।

८४२. तीर्थंकर भगवान् ने भी इस चारित्र को स्वीकारा है। धन्य हैं वे लोग जो इस महाव्रत का पालन

करते हैं।

८४३. तीर्थंकर बालक अवस्था (गृहस्थावस्था) में कभी भी आहारदान नहीं देते, फिर भी सभी को पूजा और दान का उपदेश देते हैं। ८ वर्ष की उम्र के बाद तीर्थंकर देश संयमी जैसे हो जाते हैं।

दर्शन

८४४. ''प्रदर्शन तो उथला है दर्शन गहराता है''।

दान

८४५. दानादि करने से पाप घटता है, पुण्य बंधता रहता है एवं मोह भी कम होता जाता है।

८४६. जिस घर में मुनि को आहारदान नहीं दिया जाता वह घर, मरघट के समान है।

८४७. दाने-दाने पर खाने वाले का नाम के साथ दाने-दाने पर देने वाले का भी नाम लिखा होता है।

८४८. दान देने का अर्थ है, सागर में से पानी निकालना। सागर का पानी निकालने से कभी कम नहीं होता वैसे ही दान देने से धन कभी कम नहीं होता।

८४९. दान करने से धन नहीं घटता बल्कि पुण्य क्षीण होने से धन घटता है।

८५०. दान देने से तो पुण्य की वृद्धि होती है और लक्ष्मी (धन, दौलत) पुण्य की दासी है।

८५१. जो दान देते समय लेखा-जोखा नहीं रखता, उसके यहाँ धन की कभी भी कमी नहीं आती।

८५२. धन का जो बांध है, उसे विधानादि के माध्यम से रिसाना चाहिए वरन् खतरा पैदा हो सकता है।

८५३. धन का त्याग संसार त्याग व मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

८५४. यदि हमारी मन, वचन एवं काय की चेष्टाओं के निमित्त से किसी को मोक्षमार्ग मिलता है तो इससे बढ़कर और कोई लाभ नहीं, आज इससे बड़ी और कोई साधना नहीं है, उपलब्धि नहीं है।

८५५. दूसरे के जीवन में भी यह आत्मवैभव का श्रद्धान हो जावे ऐसा दान चैतन्य दान है।

८५६. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दान अनमोल दान है।

८५७. दान करें पर अभिमान न करें वरन् उस दान का सही फल प्राप्त नहीं होगा, कर्म निर्जरा नहीं होगी, दान अपने आप में वैयावृत्त नाम का तप है।

८५८. दान, पुण्य के द्वारा अपने पापों की गंदगी धो लो।

८५९. पात्र के योग में दाता का पाप पुण्य में बदल जाता है या पाप नष्ट हो जाता है।

८६०. जैसे जल खूनादि को धो देता है वैसे ही दान, गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से उपार्जित सुदृढ़ कर्मों को नष्ट कर देता है।

८६१. मन में विशुद्धि पैदा होना दानादि का तात्कालिक फल है।
८६२. अभयदान प्राप्त होना ही दान का सही फल है।
८६३. शुद्धि का अर्थ–दाता शरीर से निरोग हो एवं अपवाद से रहित हो वही शुद्ध दाता है यही दाता की बाह्य शुद्धि है।
८६४. दान देने में पास तो सभी हो जाते हैं पर शत/प्रतिशत अंक सभी को नहीं मिल पाते।
८६५. दान देने से राग छूट गया यही तो साक्षात् फल मिल गया एवं संवर निर्जरा हो गयी। यह सब श्रद्धान का फल है। दान देने से कर्मों की संवर व निर्जरा होती है ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।
८६६. दानादि तो श्रावक के कर्त्तव्य हैं, उनके प्रदर्शन का सवाल ही नहीं उठता।
८६७. दान के विषय में कहा है कि दायें हाथ से दिया तो बायें हाथ को भी पता न लगे।
८६८. दान, प्रतिदान की भावना रखकर नहीं देना चाहिए। जैसे तंत्र, मंत्र मिल जाएगा, ऐसे भाव रखकर दान देना प्रतिदान की भावना कहलाती है।
८६९. धर्मामृत की प्राप्ति हो ऐसी भावना से दान देना चाहिए, धन प्राप्ति के लिए नहीं।
८७०. पात्र, साधुजन यथाजात बालक के समान होते हैं। उन साधुओं को भी बालकों जैसा विधि-विधान से आहारदान देना चाहिए।
८७१. ज्ञानदान को उपकरण दान के रूप में स्वीकारा है। सम्यग्दर्शन में कारणभूत जिनायतन भी उपकरण दान में आते हैं।
८७२. शास्त्र, पुस्तक को तो मात्र मनुष्य ही पढ़ सकता है लेकिन प्रतिमा का, वीतराग मुद्रा का दर्शन तिर्यंच भी कर सकता है और सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर सकता है।
८७३. आहारदान तब तक काम करता है जब तक भूख दुबारा न लगे पर जिनायतन में दिया गया दान अनंतकालीन मिथ्यात्व को धो देता है।
८७४. मनुष्य का कार्य एक जंगली सुअर ने कर दिया और वह आवास दान में प्रसिद्ध हो गया।
८७५. पूर्व दान, त्याग, तप के माध्यम से इस भव में माहात्म्य वैभवादि प्राप्त होता रहता है। जैसे जब तक पेड़ है तब तक उससे छाया, फल आदि मिलते रहेंगे।
८७६. मान/सम्मान के लिए नहीं बल्कि दान का सही उपयोग हो इसलिए दान दिया जाता है।

दया

८७७. आगम का उल्लंघन करने वाला कभी भी दया का पात्र नहीं बन सकता, उसकी दशा हवा की संगति में आये बादलों की तरह हो जाती है।
८७८. जिनवाणी की उपासना करने का अर्थ है, हृदय का दया से ओतप्रोत हो जाना।
८७९. वासना का नहीं बल्कि दया, अहिंसा का आदर्श निर्णय होता है। जैसे नेमिनाथजी ने लिया था।

८८०. दया के बिना धर्म की शुरुआत ही नहीं होती।

८८१. दया धर्म के अभाव में कोई पूज्य नहीं बन सकता। दया धर्म का पालन करने वालों को देवता भी बार-बार नमस्कार करते हैं।

८८२. अहिंसक की उपासना भी अहिंसा पूर्वक ही होनी चाहिए।

८८३. जिसे मात्र वस्तु का स्वरूप ही धर्म लगता है और ''दया विसुद्धो धम्मो'' धर्म नहीं लगता वह अपने परिणाम आप ही जाने।

८८४. यदि आपके पास दया है तो धर्म आपके पास है, वह आपकी रक्षा हमेशा करता रहेगा।

८८५. दया धर्म की महिमा अपरम्पार है। राजा श्रेणिक ने मुनिराज पर उपसर्ग करने के बाद पश्चात्ताप करके तैंतीस सागर की आयु को चौरासी हजार वर्ष में परिवर्तित कर दिया।

८८६. अपने मन में दूसरे के प्रति करुणा के भाव उमड़ते रहना, धार्मिक बने रहने का अहसास देता रहता है।

८८७. दया, करुणा, अनुकम्पा अंतरंग क्रियाएँ हैं और वह बाहर अपनी प्रतिक्रिया दिखा देती है।

८८८. घोड़े को चलाने वाला व्यक्ति चाबुक मारते समय लगाम को छोड़ देता है, क्योंकि उसके अंदर भी दया के अंकुर हैं।

८८९. यदि आप दया नहीं करते तो आपके हाथ भी पैर के रूप में (जानवर की तरह) कार्य करने लगेंगे।

८९०. जिनशासन की प्रभावना विश्व भर में दया के माध्यम से ही हो सकती है।

८९१. दया, दम के लिए और दम त्याग के लिए और त्याग, समाधि के लिए कारण है।

८९२. दयावान के सामने शेर और गाय एक ही घाट पर पानी पीते रहते हैं।

८९३. दया धर्म के कारण तिर्यञ्च भी जात्य बैर छोड़ देते हैं।

८९४. दया (अभयदान) से बढ़कर और कोई दान नहीं होता।

८९५. दया, अनुकम्पा सहित सम्यग्दर्शन ही सक्रिय सम्यग्दर्शन माना जाता है।

८९६. दयापूर्वक किया गया तपश्चरण मोक्षरूपी वृक्ष का बीज है और सभी ऋद्धियों का कारण है।

८९७. अहिंसा सभी व्रतों की माँ है, रत्नत्रय की खान है एवं समस्त जीवों का हित करने वाली है।

दण्ड

८९८. व्यवहार में शरीर को दण्डित किया जाता है और निश्चय में भावों को दण्डित किया जाता है।

८९९. धन का, समय का अपव्यय करना सबसे बड़ा दण्ड माना जाता है।

दु:ख

९००. यदि आप दु:ख भोगना नहीं चाहते हो तो, जिससे दु:ख होता है, ऐसे कार्य करना छोड़ दो।

९०१. जब आप दु:ख से डरते हो तो जहाँ दु:ख है वहाँ क्यों जाते हो ?

९०२. दु:ख से डरने से दु:ख नहीं छूटेगा, बल्कि दु:ख के कारण छोड़ देने पर दु:ख स्वतः ही छूट जाता है।

देश

९०३. भारत के अंदर भले महाभारत हो, लेकिन बाहर भारत एक हो। भारत के पास सभी अंग हैं लेकिन हृदय नहीं है। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि हे भगवान्! इन हृदय शून्य भारतवासियों को हृदय दे दो।

९०४. मांस निर्यात रुक जावेगा तो भारत का इतिहास बन जावेगा।

९०५. मांस निर्यात, स्वतंत्रता के नाम पर महान् अभिशाप है, कलंक है।

९०६. आदमियों का नाम भारत देश नहीं है, बल्कि संस्कृति का नाम भारत देश है।

९०७. गाँधीजी ने कहा था यह आंदोलन विश्व की स्वतंत्रता के लिए है।

९०८. महान् व्यक्तियों का उद्देश्य विश्व के लिए होता है, संकीर्ण नहीं होता।

९०९. भारत कभी खोटा काम करके उन्नत नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसे कार्यों में साधु, संतों का आशीर्वाद नहीं मिलेगा। सत्य का समर्थन नहीं करना यानि असत्य का समर्थन करना है।

९१०. मनुष्य तो जियें पर पशु-पक्षियों को भी जीने दें, यही लोकतंत्र है।

९११. देश को धन, प्रासाद से नहीं बल्कि अहिंसा से समृद्ध बनाइए।

९१२. विदेश में विदेह की बात नहीं मिलती। सूख-सूख कर सोंठ जैसे बन जाओगे तो भी वहाँ सुख नहीं मिलता।

९१३. नोट से आप वोट नहीं मांगिये बल्कि अहिंसा की बात करिये, पशुओं में संरक्षण की बात करिये। डिब्बे का दूध देशवासियों की बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला है।

९१४. चेतन धन (पशुधन) का बेचना जिस देश में होगा उस देश का कभी भी विकास नहीं हो सकता।

९१५. जो मनु के, भगवान् के कहे अनुसार चलता है वही मनुष्य है।

९१६. विदेशी संस्कार नंबर से चलते हैं, देशी भारतीय संस्कार नाम से चलते हैं।

९१७. भारत को स्वतंत्रता मिली नहीं है बल्कि मान ली गयी है।

९१८. प्रतिभा रत भारत चाहिए दूसरा भारत, महाभारत नहीं चाहिए।

९१९. उन्नत भारत के लिए उन्नत भावना को संस्कारित करने की आवश्यकता है।

९२०. राष्ट्रीय पक्ष को लेकर कार्य करना चाहिए पक्ष/विपक्ष को छोड़कर। स्वतंत्रता का अर्थ अपना तंत्र होता है स्वच्छंदता नहीं।

९२१. योग्यता के बिना स्वतंत्रता लाभप्रद नहीं हो सकती।

९२२. मोबाइल, फोन के साथ देशावकाशिक व्रत पल ही नहीं सकता।

देशनालब्धि

९२३. देशनालब्धि का अर्थ गुरु के मुख से कहा हुआ, सुनना है और उपदेश का अर्थ किसी से भी सुनना होता है।

९२४. अनादि मिथ्यादृष्टि को देशनालब्धि पूर्वक ही सम्यग्दर्शन हुआ करता है।

९२५. प्रभु की धर्म-देशना को सुनकर तिर्यञ्च भी अपना कल्याण कर लेते हैं।

९२६. प्रभु की दिव्य-देशना सभी जीवों को अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती है।

दोष

९२७. संसारी प्राणी अपनी कमजोरी को बताना नहीं चाहता इसलिए दूसरे को दोष देता है।

९२८. दोष दृष्टि वाले की नेत्र ज्योति कमजोर भी हो तो उसे दूसरे की कमी दिखाई दे जाती है, चाँद में भी दाग दिख जाता है।

९२९. चन्द्रमा तुम्हारी चाँदनी ही तुम्हें दागदार बता रही है, गर चाँदनी न होती तो दाग दिखते ही नहीं।

९३०. छोटी-सी कमजोरी पर ध्यान न देने से जीवन का विकास रुक जाता है।

९३१. गुरु हमारे छोटे-छोटे दोषों को भी दिखाते हैं तो वे हम पर दया कर रहे हैं, ऐसा समझना चाहिए।

९३२. जिस हेतु से दोष आ रहे हैं, उस हेतु के कारण को ही दूर करने से दोषों से मुक्त हुआ जा सकता है।

९३३. दूसरों में दोष देखना, दोषों की कथा करना, जिनका यह भोजन है, समझना वह अपने दोषों को पुष्ट कर रहा है।

९३४. परनिंदा रूप भोजन करने वाले में राग-द्वेष आदि अजीर्ण रोग हमेशा बना ही रहता है।

९३५. खुरापात ही जिनकी खुराक हो, वे बैल, श्वान और चूहे के समान हैं। जैसे चूहे खुरापात से जमीन खोदकर सुरंग बनाकर दूसरे के घर में घुस जाते हैं।

९३६. दोष लगना तो सरल है, राग-द्वेष की कोठरी में बैठकर सदा सफेद (दाग रहित) नहीं रहा जा सकता।

९३७. चन्द्रमा का दाग उसकी प्रभा के कारण संसार को देखने के लिए मिला लेकिन चन्द्रमा जैसा गुण कोई प्राप्त नहीं कर पाता। शरद पूर्णिमा के चाँद से औषधियाँ निर्मित होती हैं। यह गुण संसारी प्राणी प्राप्त नहीं कर पाता जबकि उसके दाग की आलोचना कर बैठता है।

९३८. रागी को साधु में दोष तो दिखते हैं लेकिन वह एक बार साधु बनकर देख ले तो उसे ज्ञात हो साधु बनना कितना कठिन है।

९३९. क्या करें ? सफेद कपड़े पर एक छोटा-सा दाग दिख ही जाता है उसकी सफेदी नहीं दिखती।

दोष तो अंधा भी देख लेता है, पर गुणों को प्राप्त नहीं कर पाता।

९४०. दूसरों के दोषों को देखकर मौन धारण कर लेना चाहिए।

९४१. कोई राग-द्वेष कर रहा है तो एकान्त से वह दोषी नहीं है, क्योंकि उसके कर्म का भी उदय है, ऐसा समझना चाहिए।

९४२. दोषों का त्याग, गुणों का ग्रहण तभी संभव है, जब हम दोष को दोष के रूप में एवं गुण को गुण के रूप में स्वीकार करेंगे।

९४३. संसार में तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं-हेय (छोड़ने योग्य), उपादेय (ग्रहण करने योग्य) एवं ज्ञेय (जानने योग्य)।

९४४. ऋण, वृण् (घाव), अग्नि, कषाय के छोटे से कण को भी कम नहीं समझना चाहिए।

९४५. बुरे कार्यों में अंधा, गूँगा, लँगड़ा, लूला, बहरे बन जाओ, अर्थात् बुरा कार्य न देखो, न सुनो और न करो, न ही बुरे कार्य की अनुमोदना करो। बुरे विचारों से बचने का सही उपाय है कि उन्हें छोड़कर अब जो पाना चाहते हो, मन को उसी ओर लगाइए।

दृष्टि

९४६. स्वरूप की ओर दृष्टि रखने से जीव अनंत सुख का भोक्ता हो जाता है।

९४७. जिस वस्तु से वीतरागता प्राप्त हो सकती है, उसी वस्तु से रागी व्यक्ति राग प्राप्त कर लेता है, यह दृष्टि का ही परिणाम है।

९४८. सम्यक् रूप से दृष्टि रखने से ही उद्धार होगा।

९४९. निश्चय दृष्टि आते ही व्यवहार के सारे भूत उतर जाते हैं।

९५०. सम्यग्दृष्टि को अपनी पहचान में कुशलता रखनी चाहिए।

९५१. स्व की पहचान के बिना श्रद्धान मजबूत नहीं बनता एवं सही दिशा में कदम भी नहीं उठते।

९५२. मोक्षमार्ग में जब स्वयं अपने दोषों का गुरु के सामने बखान करें तभी योग्य प्रायश्चित्त मिल सकता है।

९५३. बाह्य शरीर को जड़ मान लो तो क्रोध व राग-द्वेष नहीं होगा। यह ज्ञाता-दृष्टापन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

९५४. हमारी दृष्टि के कारण ही वीतरागता में भी राग दिखता है एवं राग में भी वीतरागता दिखती है।

९५५. श्रावक मुनि के पीछे चलता है और उसकी दृष्टि हमेशा मुनिव्रत की ओर ही लगी रहती है।

९५६. जितने पदार्थ के गुण हैं, उनमें पक्षपात न करना, मोहित न होना अमूढ़दृष्टित्त्व अंग है।

९५७. विशेष रूप से तत्त्व चिन्तन होने पर विषय-सुखों से दृष्टि हट जाती है।

द्वादशांग

९५८. द्वादशांग को सुनने वाले मुनि होते हैं, उन्हें ''विस्तार सम्यग्दर्शन'' प्राप्त होता है।

धन

९५९. अर्थ के लिए जीवन नहीं बल्कि जीवन चलाने के लिए कुछ अर्थ रख लें तो ठीक है।

९६०. संग्रह का विरोध नहीं, परिग्रह का विरोध है। संग्रह इसलिए किया जाता है कि समय आने पर उसे बांट दिया जावे और चमड़ी जावे पर दमड़ी ना जाये इस वृत्ति का नाम है परिग्रह।

९६१. ज्यादा अर्थ आने से भी परमार्थ छूट जाता है इसमें ब्रेक लगाना भी आना चाहिए नहीं तो गड्ढे में चले जाओगे।

९६२. आपके जीवन में धन है तो ठीक है पर यदि आप का धन कमाने में जीवन चला जायेगा तो क्या होगा ?

९६३. नाव जब तक पानी में तैरती है तब तक ठीक है और यदि नाव में पानी आ जाता है तो नाव में हाहाकार मच जाता है।

९६४. यह धन का संयोग तो संयोग है, पर हाथ की रेखायें मैल नहीं होती उन रेखाओं में पुरुषार्थ लिखा होता है, भाग्य बनाया जाता है।

९६५. वह धन पैसा किस काम का जो गले का फंदा बन जावे।

९६६. धन को उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितना उपादेय हो, भोजन जैसा ही।

९६७. धन के त्याग से धर्म प्रभावना होती है, धन से नहीं।

९६८. धन से सम्बन्ध उतना ही रखो, जैसे दीपक जलाते वक्त माचिस से तीली निकालते हैं, अंगुली, अंगूठा उससे दूर रखते हैं और ज्यादा गड़बड़ करे तो तीली को फेंक देते हैं। ठीक उसी प्रकार धन रखो लेकिन आँख बंद होने से पहले फेंक दो। छोड़ जाओगे तिजोरी में तो रखवाली करने आना पड़ेगा, कुंडलीमार बनकर।

९६९. इतना ही अर्थ (धन) अपने पास रखो जिससे परमार्थ का दरवाजा बंद न हो सके।

९७०. भगवान् ने जिस ओर से मुख फेर लिया आपने उस ओर मुख कर लिया। आप जोड़ने में लगे हैं लेकिन अपार धन राशि केवल पूर्व सात्विक साधना से प्राप्त होती है। पूर्व में जो महाव्रती बनते हैं वे ही अगले भव में चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त करते हैं। आप अहिंसा का आधार लेकर साधना करो, धन-लक्ष्मी तो आपके पीछे-पीछे आवेगी।

९७१. यदि मल संचय रोग का कारण बनता है तो धन संचय दोष का कारण बनता है।

९७२. युक्तिपूर्वक तन, मन एवं धन का उपयोग किया जाता है वरन् पाप का बंध होता है। धन विषयों में लगाओगे तो पाप बंध होगा और पाप से कमाई सम्पदा भी नष्ट हो जाती है।

९७३. आप लोग पुण्य के फलों में रचो-पचो नहीं, इसे धर्म में लगा देते हैं तो अगले भव में अच्छे-

अच्छे पद प्राप्त होते हैं।

९७४. अपना द्रव्य तो शाश्वत है, इस नश्वर द्रव्य (धन) के बारे में मत सोचो इसे प्रभु के चरणों में चढ़ा दो।

९७५. इस प्राण (जान) से रहित सम्पदा की रक्षा में आपके प्राण भी जा सकते हैं।

९७६. धनवान बनने से पहले ये सोचिये कि धन क्या है? धन पाप है तो क्या आप पापी होना चाहोगे ?

९७७. धन कमाने से पहले उसके सदुपयोग की बात सोच लो।

९७८. आपका धन बैंक में है, वह परिग्रह है, वहाँ से पाप की नाली आप तक हर क्षण आती रहती है।

९७९. शुद्ध धन (सात्त्विक धन) के द्वारा सज्जनों की भी संपत्तियाँ विशेष नहीं बढ़ती हैं, जैसे नदियाँ शुद्ध जल से कभी भी परिपूर्ण नहीं होती।

९८०. ''वैधानिक तो, पहले बनो फिर धनिक बनो''।

९८१. धन चाहते हो तो आशा अवश्य आवेगी, फिर उससे जलोगे ही।

धर्म

९८२. धर्म को मात्र सुनना सार्थक नहीं है, बल्कि उसके पालन करने में ही सार्थकता है।

९८३. संसार में चाहे कोई सुखी रहे, चाहे दुःखी रहे उसे धर्म ही करने योग्य है।

९८४. अविनश्वर सुख पाने के लिए धर्म का ही अनुष्ठान करो।

९८५. धर्मात्मा को कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। पुण्यशाली व्यक्तियों पर भी पूर्व कर्म के उदय से आपत्तियाँ आ जाती हैं।

९८६. बैंक में पैसा जमा है तो वह बढ़ता ही जावेगा, भले आप कुछ पुरुषार्थ करो या न करो। वैसे ही धर्म करते जाओ तो सुख भले न चाहो लेकिन मिलता ही जावेगा।

९८७. धर्म कभी भी इन्द्रिय सुख का भी विघातक नहीं हो सकता।

९८८. धर्म का फल बिन माँगे मिलता है और अचिंत्य फल मिलता है।

९८९. कल्पवृक्ष या चिंतामणि रत्न के सामने चिंतन करना पड़ता है, माँगना पड़ता है, लेकिन धर्म का फल आप सो रहे तो भी मिलेगा, उसमें कभी भी घटा-बढ़ी नहीं हो सकती।

९९०. धर्म करिये, चिंता न करिये, सब कुछ उपलब्ध होगा। जैसे वृक्ष की शरण में जाने से छाया माँगनी नहीं पड़ती अपने आप मिलती है।

९९१. धर्म को छोड़कर धनोपार्जन करते रहना मनुष्य के लिए अभिशाप सिद्ध होगा।

९९२. धर्म की रक्षा प्रयोग से ही होती है, मात्र कोरे ज्ञान से नहीं।

९९३ आप समय निकालकर भगवान् के पास आ तो जाते हो, लेकिन मन को घर में ही छोड़ आते

हो। एक बार मन के साथ आओ तो धर्म समझ में आयेगा।

९९४. लोगों की साधारणतया से धारणा बन जाती है कि जब से धर्म करना प्रारम्भ किया है, तब से विघ्न आना प्रारम्भ हो गये हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि धर्म के कारण आपत्ति आ रही है, बल्कि अब कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो गयी है, ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।

९९५. तोता रटन्त का नहीं बल्कि आत्मरमण का नाम धर्म है।

९९६. धर्म ही परम रस का रसायन है, धर्म ही समस्त निधियों का निधान है, धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म ही कामधेनु गाय है और धर्म ही चिन्तामणि रत्न है।

९९७. जिनेश्वर के द्वारा कहे हुए धर्म को प्राप्त होकर दृढ़ बुद्धि के धारक सम्यग्दृष्टि हुए हैं, वे ही धन्य हैं।

९९८. इन्द्रिय सुख को दुःख मानना ही धर्म की शुरुआत है।

९९९. इन्द्रिय सुख की सामग्री को इकट्ठा करना यानि धर्म से विमुख होना है।

१०००. धर्मानुराग राग नहीं है, बल्कि विषयों को भुलाने वाला है।

१००१. धर्मानुराग उदित होते सूर्य की लालिमा जैसा है, जो संसार विषयों से जगाता है/बचाता है।

१००२. धर्म वस्तुतः एक अजेय शस्त्र है। धर्म के बिना जीवन में कुछ हॉसिल नहीं किया जा सकता। यदि धर्म की रक्षा की है तो आपकी भी रक्षा हो सकती है।

१००३. दर्शन का नाम धर्म है। प्रदर्शन तो मात्र धर्म की ओर आकर्षित करने का उपाय है।

१००४. साधु को अपने आत्म धर्म के अलावा किसी की आवश्यकता नहीं होती।

१००५. धर्म के माध्यम से ही संतोष मिलता है, धन से नहीं।

१००६. आशा का नियंत्रण धन से नहीं बल्कि धर्म से किया जा सकता है।

१००७. किसी के खून को चूसकर अपने खून को बढ़ाना धर्म नहीं माना जाता।

१००८. धर्म के स्थानों में यदि मान कषाय करोगे तो ध्यान रखना सद्गति नहीं मिलेगी।

१००९. धर्म का सेवन भी प्रत्येक व्यक्ति को भोजन की तरह करना चाहिए।

१०१०. सुख-दुःख की अपेक्षा नहीं रखना ही धर्म की सही सेवा है।

१०११. अन्याय का पक्ष भगवान् नहीं लेते लेकिन धर्म की परीक्षा अवश्य होती है।

१०१२. धन कमाने की स्पर्धा की जगह धर्म कमाने की स्पर्धा में लगे रहो। इसमें जितना तन, मन व धन लगेगा वह सबसे बड़ा सदुपयोग होगा। प्रचलन में धर्म आवेगा तो बढ़ेगा।

१०१३. क्षत्रिय ही धर्म की रक्षा कर सकता है।

१०१४. स्वयं जीते हुए जीने वालों को सहयोग देना धर्म है। धर्म का मायना बहुत विस्तृत है। कर्त्तव्य निष्ठा के बिना धर्म की गंध नहीं आ सकती। कर्त्तव्य ही सही ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान है।

१०१५. जो कुछ कार्य या चेष्टायें अपने को अच्छी नहीं लगती वह दूसरों को भी अच्छी नहीं लगती

ऐसा समझना धर्म है।

१०१६. हमारी भावना धर्ममय हो जाती है तो प्रकृति साथ देती चली जाती है।

१०१७. प्रकाश प्रदान करो प्रकाश में मत आओ। जब धर्म का कार्य कर रहे हो तो धर्म का ही नाम होना चाहिए। आपका नाम तो TEMPORARY है।

१०१८. धर्म रूपी ऊष्मा के साथ जीवित रहो यह अपूर्णदशा से पूर्णदशा की ओर जाने का रास्ता है।

१०१९. हमेशा धर्मध्यान का वातावरण बना रहे ऐसा सम्यग्दृष्टि सोचता रहता है।

१०२०. धार्मिक क्षेत्र में शक्ति को छुपाओगे तो आगे फिर शक्ति कम प्राप्त होगी।

१०२१. संसार में सब कुछ सुलभ है, एक मात्र धर्म ही दुर्लभ है। उसे पाने के लिए यदि सब कुछ त्यागना पड़े तो भी पीछे नहीं हटना चाहिए।

१०२२. धर्म को स्वीकार करते ही संतुष्टि (आत्मसंतुष्टि) उपलब्ध होने लगती है। धर्म को जितने अंशों में स्वीकारोगे उतनी संतुष्टि प्राप्त होगी।

१०२३. पशु-पक्षी भी धर्म से संतुष्टि का अनुभव करते हैं और अपना हिंसक भाव छोड़ देते हैं। धर्म के अलावा प्राणी को तीन लोक में और कोई संतुष्टि नहीं दे सकता।

१०२४. जो विषय/कषायों की सामग्री के बीच में रहकर भी धर्म रूपी कील का सहारा लेता है वह बच जाता है। संसार में भी मुक्ति का अनुभव किया जा सकता है पर्याय को गौण करना पड़ता है।

१०२५. धर्म दिखाने और किसी पर मेहरबानी करने के लिए नहीं किया जाता बल्कि कर्मक्षय के लिए किया जाता है।

१०२६. धर्म शुद्धवृत्ति का नाम है, इसे स्वयं में प्रकट करना होता है, इसे थोपा नहीं जा सकता।

१०२७. जो धर्म, कर्म विनाशक नहीं होता वह समीचीन धर्म नहीं हो सकता।

१०२८. विषय/कषायों को छोड़कर जो धर्म को स्वीकार कर लेता है, उसे वर्तमान में आत्मसंतुष्टि प्राप्त हो जाती है एवं कर्मों की निर्जरा भी प्रारम्भ हो जाती है बाद में मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।

१०२९. धर्म, भाव परक होता है लेकिन बाह्य क्रियाओं से भीतरी भाव धर्म का ज्ञान होता है।

१०३०. धर्मात्मा संख्यात ही होंगे अधर्मात्मा असंख्यात होते हैं। एक धर्म की पार्टी है एक अनंत की पार्टी है।

१०३१. आप धर्मात्मा हैं तो आपको यह श्रद्धान कर लेना चाहिए कि कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो गयी है।

१०३२. धर्मध्यान करना बहुत कठिन है और महंगा भी है।

ध्यान

१०३३. अपने उद्देश्य को सही बनाये रखना ही धर्मध्यान है।
१०३४. आर्त्त, रौद्रध्यान को पहचानकर उसे छोड़ दो, फिर धर्मध्यान मिल जायेगा।
१०३५. हमारा कितना समय प्रमाद में निकल गया यह भी ध्यान में रखना चाहिए।
१०३६. सामायिक में तन, मन कब हिलता है, यह देखो इसी का नाम ध्यान है।
१०३७. ध्यान का कार्य ड्रायवर के जीवन के समान है। जो सभी व्रत, नियम रूपी यात्रियों को मंजिल तक पहुँचाता है।
१०३८. ध्यान सब अनुष्ठानों का उपसंहार है।
१०३९. सामायिक की सामर्थ्य से ध्यान धारण करते हैं और ध्यान से केवलज्ञान प्राप्त होता है।
१०४०. स्वभाव की ओर दृष्टि रखने से ध्यान अपने आप लग जाता है।
१०४१. ध्येय की ओर दृष्टि रखें ध्याता की ओर नहीं, क्योंकि ध्याता अशुद्ध है, ध्यान में शुद्ध को रखो।
१०४२. ध्यान करना फिर भी आसान है, लेकिन ध्यानातीत होना बहुत कठिन है। गुणस्थानातीत होने के लिए ध्यानातीत होना अनिवार्य है।
१०४३. ऐसा कोई भी गुणस्थान नहीं है जिसमें ध्यान नहीं हो। इसलिए कहा है कि ध्यानातीत हुए बिना मुक्ति नहीं हो सकती।
१०४४. ध्यान का अर्थ है अस्त-व्यस्त योगों को व्यवस्थित करना।
१०४५. सभी शुभ-ध्यानों से कर्म प्रकृतियों की निर्जरा होती है।
१०४६. शुद्धात्मा की आराधना से तात्पर्य है आत्म-ध्यान में लीन होना।
१०४७. शुद्धात्मा का ध्यान करने वाला रत्नत्रय का धारी होता है। रत्नत्रय महाव्रत धारण करने से प्राप्त होता है।
१०४८. ध्यान आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा का परिणाम है।
१०४९. ज्ञान और ध्यान में उतना ही अंतर होता है जितना प्रवृत्ति और निवृत्ति में हुआ करता है।
१०५०. शक्ति ज्ञान से नहीं ध्यान से आती है।
१०५१. दूसरे के दु:ख को देखकर दु:खी होना एवं दूसरे का दु:ख दूर कैसे हो, ऐसा विचार करना अपायविचय धर्म ध्यान कहलाता है।
१०५२. ध्यान रूपी अग्नि के माध्यम से ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है।
१०५३. शुक्लध्यान की ओर ध्यान रखने से धर्मध्यान अच्छे से होता है।
१०५४. शारीरिक वेदना होने पर भी उसमें हर्ष-विषाद नहीं करना धर्मध्यान का कारण है।
१०५५. ध्यान में एक काम अच्छा हो जाता है कि स्वार्थ मिट जाता है।

१०५६. ध्यान मुद्रा में भद्रता होनी चाहिए यह प्रसन्नता का प्रतीक है। यह हास्य नहीं है, हर्ष -विषाद से परे है।

१०५७. दूसरों के दु:ख को देखकर आँखों में पानी आना धर्म ध्यान है। आज पानी का स्तर नीचे क्यों जा रहा है ? क्योंकि आज दूसरों के दु:ख को देखकर आँखों में पानी नहीं आ रहा है।

१०५८. ध्यान में कंडीशन तो होती है लेकिन एयर कंडीशन नहीं।

१०५९. स्वार्थ के लिए रोना आर्त्तध्यान माना जाता है। स्वार्थ को भूलने से धर्म ध्यान अपने आप हो जाता है।

१०६०. ध्यान द्वारा संसार का भी संपादन होता है तो ध्यान द्वारा मुक्ति का भी सम्पादन होता है।

१०६१. एक ध्यान सोपान का कार्य कर जाता है तो एक ध्यान मदिरापान का।

१०६२. एक ध्यान के माध्यम से हम गिर जाते हैं, एक ध्यान के माध्यम से हम उन्नत हो जाते हैं, आगे बढ़ जाते हैं।

१०६३. निश्चिंतता में जहाँ भोगी सो जाता है, वहाँ योगी आत्मा में खो जाता है।

१०६४. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुरूप हमारी शक्ति सो भी जाती है और जाग भी जाती है।

१०६५. निमित्ताधीन दृष्टि होने से ही परिणाम विकृत होते हैं।

१०६६. नदी, पहाड़ों-पत्थरों से डरकर कभी वापस नहीं लौटती। जबकि मानव को थोड़ी-सी कठिनाई का अनुभव हो जाता है तो वह अपना रास्ता बदलने लग जाता है।

निश्चय/व्यवहार

१०६७. वह व्यवहार, व्यवहार नहीं माना जाता जो निश्चय की ओर न ले जाए और वह निश्चय, निश्चय नहीं माना जाता, जो व्यवहार को बिल्कुल ही तोड़कर रख दे, गौण कर दे।

१०६८. बाहरी पक्ष, भीतरी पक्ष दोनों आपस में सम्बन्ध रखते हैं, जिसे हम व्यवहार या निश्चय कह सकते हैं।

१०६९. निश्चय-व्यवहार दोनों नय सापेक्ष हैं। जैसे एक आँख विषय बनाती हैं तो दूसरी आँख सहयोग देती है। परस्पर सापेक्षता से ही काम चलता है।

१०७०. निश्चय कहता है तुम बाह्य में कुछ नहीं कर सकते यदि करना है तो अपने में कुछ करो।

१०७१. निश्चय में कर्म, कर्त्ता, करण सामग्री अभिन्न हुआ करती है और हमारी दृष्टि हमेशा भेद पर जाती है, अभिन्न की ओर जाना महत्त्वपूर्ण है। अभिन्न से निरालम्ब, परनिर्पेक्ष अपने आप रुचने लगता है।

१०७२. हम निश्चय के स्थान पर व्यवहार और व्यवहार के स्थान पर निश्चय की बात करते हैं यही गलत है।

१०७३. व्यवहार में भी जिसे छोड़ रहे हो उस ओर दृष्टि न रखकर जो निश्चय ग्रहण करना है उस

ओर दृष्टि रखना चाहिए।

१०७४. भगवान् निश्चय से आत्मज्ञ हैं और व्यवहार से सर्वज्ञ हैं।

१०७५. निश्चय में अपना आत्म तत्त्व ही उपादेय है।

१०७६. अशुद्ध निश्चयनय बारहवें गुणस्थान तक चलता है क्योंकि वहाँ तक अशुद्ध उपादान चलता रहता है।

१०७७. त्याग और ग्रहण निश्चय में होता ही नहीं।

१०७८. नरकों में जो वेदना है, वह सम्यग्दर्शन का भी कारण बनती है।

१०७९. केवली भगवान् निश्चय से आत्मा को देखते-जानते हैं, व्यवहार से सभी को जानते हैं। अर्थात् निश्चय से आत्मज्ञ हैं और व्यवहार से सर्वज्ञ हैं।

१०८०. स्वसंवेदन तो निश्चयनय का आलम्बन लेकर ही किया जा सकता है।

१०८१. अपने आप को उन्मार्ग से उठाकर सन्मार्ग पर लाना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

१०८२. यदि गुरु महाराज हमेशा निश्चय में ही बैठे रहते तो हम लोग इस मार्ग पर कैसे आ पाते ?

१०८३. व्यवहार में धर्म तीर्थ की प्रभावना होती है और निश्चय में आत्मा को प्राप्त करने की भावना होती है।

१०८४. व्यवहार धर्म के अभाव में धर्म तीर्थ का लोप हो जायेगा और निश्चय धर्म के अभाव में आत्म तत्त्व का लोप हो जायेगा, अतः दोनों धर्म की आपस में मित्रता है। एक दूसरे में कार्य-कारण या साध्य-साधक का सम्बन्ध है।

१०८५. निश्चय या शुद्धोपयोग तो उपादेय है ही लेकिन व्यवहार, शुभोपयोग उसका कारण है उपकारक है, इसलिए यह भी उपादेय है।

१०८६. अशुद्ध निश्चयनय से राग जीवात्मा ने किया, निश्चय से तो आत्मा में राग है ही नहीं ऐसा श्रद्धान रखना ही सही श्रद्धान है तभी हम राग को छोड़ सकते हैं।

१०८७. निश्चयनय से संसारी प्राणी कषायों से, पापों से रहित है। फिर मोक्षमार्ग पर चलो, ऐसा कहना गलत है पर ऐसा नहीं है इसलिए व्यवहार धर्म आवश्यक है।

१०८८. व्यवहारनय से जो भगवान् का श्रद्धान नहीं कर सकता, वह निश्चय से भी श्रद्धान नहीं कर सकता।

१०८९. निश्चयनय की अपेक्षा न बंध है, न मोक्ष है बल्कि सभी जीव शुद्धनय से सिद्धस्वरूप ही हैं।

१०९०. निश्चय का अर्थ स्वभाव होता है इसलिए राग-द्वेष जीव से नहीं बल्कि जीव के स्वभाव से भिन्न हैं, ऐसा विश्वास रखने पर ही हम राग-द्वेष से बच सकते हैं, वरन् हम कभी राग-द्वेष को छोड़ ही नहीं सकते।

१०९१. श्रमण (साधु) को दो ड्रेस (पोशाक) दी गयीं हैं। आत्मा से बाहर आते ही व्यवहार में मूलाचार और निश्चय से जब आत्मा में जाते हैं तो समयसार है। लेकिन एक बात हमेशा ध्यान रखना बिना मूलाचार के समयसार में प्रवेश नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यवहार मुद्रा से ही निश्चय मुद्रा बनती है।

१०९२. आत्मा दूध की भाँति है और राग-द्वेष आदि कर्म पानी की भाँति हैं, इनका आपस में अनादिकाल से सम्बन्ध है। ऐसा जब तक श्रद्धान नहीं होगा, तब तक दोनों को पृथक्-पृथक् करने की बात ही नहीं होती।

१०९३. शुद्धोपयोग अशुद्ध निश्चयनय का विषय है, क्योंकि वह स्वभाव नहीं है।

१०९४. अपने आपको उन्मार्ग से उठाकर सन्मार्ग पर लाना निश्चय सम्यग्दर्शन को पुष्ट करना है।

१०९५. जितने भी सिद्ध हुए हैं, उन्हें सबसे पहले व्यवहार मोक्षमार्ग प्राप्त हुआ है फिर निश्चय मोक्षमार्ग।

१०९६. व्यवहार पराश्रित नहीं है, क्योंकि पर के सहयोग से वह अपने में ही होता है। व्यवहार धर्म चकमक से उत्पन्न आग जैसा है और निश्चय धर्म लाइटर जैसा है।

१०९७. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप हलुआ बना है वही आत्म तत्त्व निश्चय रत्नत्रय है, ध्यान रूपी अग्नि से पकाया हुआ।

१०९८. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अभिन्न हों, तभी मोक्ष प्राप्त होता है। जैसे नृत्यकार, गीतकार और वादक तीनों का स्वर एक हो तभी संगीत में आनंद आता है। निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता रहती है।

१०९९. जब व्यवहार में अनुपात सही रहेगा तभी निश्चय धर्म प्राप्त होगा।

परमार्थ

११००. स्वार्थ वही सही माना जाता है जिससे परमार्थ की सिद्धि होती है।

११०१. तत्त्वोपदेश परमार्थ की भावना से ही दिया जाता है।

११०२. तत्त्व का प्ररूपण करने के लिए स्वार्थ का विमोचन करना अनिवार्य है।

११०३. अर्थ एवं काम पुरुषार्थ श्रावकों को धर्म पुरुषार्थ पूर्वक ही करना चाहिए, तभी जीवन सार्थक हो सकता है।

११०४. साधु उसी को कहते हैं जो परमार्थमय हो क्योंकि परमार्थरत ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्रशंसा

११०५. भोजन कराने वालों की प्रशंसा तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक भोजन पच न जाये, यह नीति वाक्य है।

११०६. जब तक राजा युद्ध में जीतकर न आ जाये तब तक राजा की प्रशंसा मत करना।

११०७. जब तक नारी वृद्धा नहीं हो जाती भले शीलवती हो प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

११०८. जब तक साधना पूरी नहीं हो जाती, तब तक अपनी साधना की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

११०९. नाविक की प्रशंसा नाव के उस पार जाने तक नहीं करनी चाहिए। जैसे बीज बोने के उपरांत किसान की प्रशंसा तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक वह फसल को काटकर घर नहीं ले आता।

१११०. आप किसी की प्रशंसा नहीं कर सकते तो एक नियम ले लो कि हम कभी किसी की निन्दा नहीं करेंगे।

प्रज्ञा

११११. प्रज्ञा के द्वारा आत्मा और कर्म के सम्बन्ध को जानो तथा प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को जानो एवं प्रज्ञा के द्वारा कर्म का छेदन करो।

१११२. प्रज्ञा के द्वारा ही धर्म का स्वरूप जाना जा सकता है।

प्रमाद

१११३. प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रायः प्रमाद जुड़ा रहता है।

१११४. प्रमाद आत्मा की कमजोरी का नाम है, तीर्थंकर भी छद्मस्थ अवस्था में प्रमाद में, छट्ठे गुणस्थान में आ जाते हैं।

१११५. अभ्यन्तर प्रमाद तो वर्धमान चारित्र वाले तीर्थंकरों में भी आ जाता है।

१११६. अप्रमत्त का अर्थ प्रमाद रहित अवस्था है, यह मुनिराज में सप्तम-गुणस्थान में गुप्ति एवं समिति दोनों में रह सकती है।

१११७. आहार एवं स्वाध्याय के समय भी मुनियों के सप्तम-गुणस्थान होता है।

१११८. समितियों का पालन करते समय बुद्धिपूर्वक प्रमाद होता है और गुप्ति आदि के समय अबुद्धिपूर्वक प्रमाद होता है।

१११९. शनिवार की रात को सोया विद्यार्थी रविवार को जानबूझकर देर से उठता है, क्योंकि उसे मालूम है कि आज उसे स्कूल नहीं जाना, यह प्रमाद (आलस्य) कहलाता है। प्रमाद वास्तव में असावधानी ही है, इसे भी कषाय में ही गिना है।

११२०. इस जीव को जब तक योग्य पदार्थ नहीं मिलता तब उसके लिए प्रयास करता है और मिल जाने पर प्रमाद करने लगता है।

प्रत्यक्ष-परोक्ष

११२१. जिसमें आत्मा को ज्ञेय की ओर उपयोग ले जाना पड़ता है, वह परोक्ष ज्ञान है और जिसमें आत्मा को उपयोग बाहर नहीं ले जाना पड़ता वह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

११२२. परोक्ष का ही विश्वास किया जाता है, क्योंकि मानना तभी होता है जब तक उसकी साक्षात्

अनुभूति नहीं होती।

११२३. मान्यता में विवाद आ जाता है, जबकि प्रत्यक्ष होने पर विवाद समाप्त हो जाता है।

११२४. स्वाध्याय के समय वाद-विवाद होता है और ज्यों ही भगवान् के सामने पहुँचे वाद-विवाद समाप्त, शांति मिल जाती है, यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष की महिमा है।

११२५. परोक्ष साक्षात् सुख नहीं देता मान्यता में है कि सुख मिलेगा।

११२६. किसी की परोक्ष में निंदा करना हिंसा का प्रतीक है।

११२७. अवधिज्ञान प्रत्यक्षज्ञान होकर भी मर्यादित पदार्थ आदि को जानता है।

११२८. जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव रूप व्यवधान उपस्थित हो जाते हैं, उसे परोक्ष कहते हैं।

११२९. परोक्ष ज्ञान के द्वारा भक्ति अच्छी होती है, भक्ति के माध्यम से अपनी प्यास बुझा सकते हैं।

११३०. परोक्ष ज्ञान में ही मन को संयत बनाने की बात होती है, प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद कुछ नहीं होता।

प्रसन्नचित्त

११३१. हमेशा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए, प्रसन्नचित्त रहने से कर्मों के वेग में भी आत्मा का संवेग भाव काम करता रहता है, इसलिए फूल की तरह हमेशा 'प्रसन्न' रहना चाहिए।

११३२. प्रसन्नचित्त होकर ही आवश्यकों का पालन करें, उससे और निखार आ जाता है दिनोंदिन चर्या के प्रति उल्लास बढ़ता जाता है।

११३३. रोते हुए दिन निकालने की अपेक्षा मुस्कान के साथ दिन निकाल लो, कैसे निकालें ? प्रभु को देख लो वे हमेशा शांत रहते हैं।

११३४. हम दुःखी रहते हैं तो सामने वाले भी दुःखी रहेंगे तो दोनों को असाता का बंध रहेगा, तो क्या आप दूसरों को असाता का बंध कराना चाहते हैं?

११३५. प्रभु! आपने मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया पर कुछ भी बदले में चाह, इच्छा नहीं रखी, धन्य है आपकी यह अलौकिक वृत्ति।

११३६. आत्महित के साथ-साथ परहित की भी सोच सकते हैं, यह अपायविचय धर्म्यध्यान में आ जाता है।

प्रमोद

११३७. श्रावकों के लिए मोक्षमार्ग के प्रति एवं मोक्षमार्गी के प्रति ''प्रमोदभाव'' रखना चाहिए, क्योंकि यह भाव सम्यक्त्वाचरण चारित्र में बहुत बड़ा सहयोगी है।

पाप-पुण्य

११३८. पाप एक दलदल है, उस पाप के दलदल के कारण संसारी प्राणी अपने आप को आज तक ऊपर नहीं उठा पाया है।

११३९. पाप पाताल की ओर ले जाते हैं।

११४०. पाँचवें पाप (परिग्रह) को छोड़ने के लिए बोलियाँ लगायी जाती हैं। यह परिग्रह पाप सभी पापों का बाप है।
११४१. अपव्यय सबसे बड़ा पाप है।
११४२. आज हवा कुछ ऐसी चल पड़ी है कि पाप को नहीं पुण्य को मिटाने की बात करते हैं और पापमय होते जा रहे हैं।
११४३. जिनके पास पाप नहीं है, वे पूजन योग्य हैं।
११४४. भूलकर भी तत्त्ववेत्ता पुण्य कर्म की निर्जरा के बारे में न सोचें, तभी वह सच्चा श्रद्धानी माना जावेगा।
११४५. पाप कर्म की निर्जरा की जाती है। जैसे-जैसे पापकर्म की असंख्यात गुणी निर्जरा होती है वैसे-वैसे पुण्य का अनुभाग बढ़ता जाता है।
११४६. पाप करोगे तो पापी कहलाओगे और पुण्य/ धर्म करोगे तो पुण्यात्मा/धर्मात्मा कहलाओगे, क्योंकि स्वयं के कार्यों के माध्यम से टाइटल मिलते हैं किसी की कृपा से नहीं।
११४७. प्रतिशत में जीने वालों को सुख कहाँ से मिलेगा। ९०% पाप जिसके जीवन में हो उसे सुख नहीं मिल सकता।
११४८. १०% पुण्य की सुगंध ९०% पाप की दुर्गंध के बीच नहीं आ सकती।
११४९. दोषों से अनुराग और गुणों से द्वेष रखने से पाप बंध ही होता है और गुणों में अनुराग दोष में द्वेष रखते हैं तो पुण्य बंध होता है और इन दोनों में राग-द्वेष नहीं रखने से कर्म की निर्जरा होती है, मोक्ष होता है।
११५०. जो वर्तमान में पाप नहीं करता वह यहाँ भी सुखी है और आगे जहाँ भी जावेगा वहाँ भी सुखी रहेगा, इसलिए सुख चाहते हो तो पापों का त्याग कर दो।
११५१. इन्द्रियनिग्रह, संयम, तपश्चरण, जिनभक्ति, दयाभाव ये सभी दुर्लभ गुण महान् पुण्यात्मा जीव में ही होते हैं, जिनके संसार रूप समुद्र का किनारा निकट में आ चुका हो।
११५२. सात्त्विक भाव, पुण्य स्वयं में साथ दूसरों को भी उन्नति की ओर ले जाने में सहायक होता है।
११५३. मोक्षमार्ग में आलोचना, प्रायश्चित्त को स्वयं स्वीकारना होता है। पाप बाँधा है तो स्वयं को परिमार्जित करना चाहिए।
११५४. संसारी प्राणी में जन्म-मरण, विकास-ह्रास का क्रम चलता रहता है, उसके पीछे उसके जन्मान्तर कें अर्जित पाप-पुण्य का ही हाथ रहता है।
११५५. तुम्हारा वध तुम्हारे ही अहितकारी पाप कर्म के द्वारा होता चला आ रहा है।
११५६. जिससे आपको कष्ट होता हो, उसे क्या आप अपने पास रखना चाहोगे। उन पाँच पापों को

छोड़ने के लिए जल्दी तत्पर हो जाओ।

११५७. पाप छोड़ने की दिशा में साधारण लोगों की गति नहीं हो और यदि वह छोटा भी हो और पाप छोड़ने की दिशा में उत्साह के साथ लीन हो तो उसकी मजबूत आस्था, आत्मबल एवं पुरुषार्थ प्रशंसनीय है।

११५८. जो पुण्यवान है और पुण्य के कार्यों में लगे हुए हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी और सरस्वती दौड़ी चली आती है।

११५९. पुण्यवानों की नौकरी में तो लोग लग जाते हैं लेकिन पुण्य के कार्यों में नहीं लगते।

११६०. आत्महितैषी को नश्वर शरीर के लिए पाप करना बंद कर देना चाहिए।

११६१. पति-पत्नि दोनों एक दूसरे के लिए अपना पुण्य समाप्त करते रहते हैं, लाभ-हानि के बारे में सोचा जाये तो पुरुष स्त्री में लिए और स्त्री पुरुष के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं।

११६२. घर नहीं छोड़ सकते तो घर के प्रति जो मूर्च्छा है उसे तो छोड़ सकते हो। जीवन में निरीहता होना अनिवार्य है, वरन् प्रतिपल पाप का बंध हो रहा है।

११६३. पुण्यानुबंधी पुण्य के माध्यम से ही चक्रवर्ती आदि पद मिलते हैं।

११६४. आत्मा के परिणाम ही सब कुछ हैं उसी से पुण्य-पाप होते हैं। जब कर ही रहे हैं तो धार्मिक परिणाम ही क्यों न करें ? हाँ, संक्लेश विशुद्धि घटती-बढ़ती रहती है, ये बात अलग है।

११६५. यह परिणामों का ही खेल है, नारायण ने कोटिशिला उठा ली, हार्टफेल नहीं हुआ, किन्तु भाई का वियोग सुनकर हार्टफेल हो गया।

११६६. जैसे सूर्य का प्रकाश कमल के विकास में सहायक है, उसी प्रकार पूर्व में किया हुआ पुण्य समय पर अवश्य ही काम आता है, आपत्तियों को भी सम्पत्ति में बदलता जाता है।

११६७. पुण्य क्षीण होने पर सारी शक्तियाँ छोड़कर चली जाती है।

११६८. यह स्वार्थ की दुनियाँ है, यह जानते हुए भी यह जीव दूसरे के लिए स्वयं पाप कमाता है, यह अज्ञान ही तो है।

११६९. पूर्व पुण्य का उदय नहीं है तो वर्तमान में कितना ही पुरुषार्थ करो तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता।

११७०. जिस पुण्य से धन मिलता है, उससे धर्म मिले यह कोई नियम नहीं। धर्म पाने के लिए दुर्लभ पुण्य चाहिए।

११७१. पुण्य कर्म की निर्जरा के लिए कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। पाप कर्म की निर्जरा में लिए ही पुरुषार्थ करना पड़ता है।

११७२. पुण्य के फल के प्रति हेय बुद्धि रखना, न कि पुण्य कर्म के प्रति क्योंकि पुण्य मोक्षमार्ग में बाधक नहीं है।

११७३. जैसे वर्षा हो रही है तो ठण्डी लहर आवेगी उससे बच नहीं सकते, वैसे ही सम्यग्दर्शन होते ही पुण्यकर्म का बंध होगा ही उससे बच नहीं सकते। सातवें गुणस्थान से साता का ही बंध होगा, भले वहाँ असाता कर्म का उदय हो।

११७४. धर्म से, सुख से जो आत्मा की रक्षा करता है, उसे पाप कहते हैं।

११७५. खेत में खरपतवार (घासफूस) बिना उगाये उग आती है, वैसे ही इस जीवन रूपी खेत में पाप रूप घास अपने आप पनपती रहती है।

११७६. शुभ भाव किया तो पुण्यात्मा, अशुभ भाव किया तो पापात्मा हो गया एवं इन दोनों से ऊपर उठ गया तो परमात्मा बन गया।

परिग्रह

११७७. आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर दो, शोर सूतक समाप्त, पहला सोपान यही है। मोक्षमार्ग प्रारम्भ नहीं हुआ तो संसार कितना है यह हम नहीं कह सकते। मन जितना भी हल्का होगा परिग्रह छोड़ने से ही होगा।

११७८. भार छोड़कर आओगे तो यहाँ मन लगेगा वरन् धर्मध्यान में मन नहीं लगेगा। पैसा परिग्रह रखते हो तो रौद्रध्यान परिग्रहानंद से नहीं बच सकते।

११७९. जड़ की सेवा हमारे यहाँ वर्जित है क्योंकि उससे बुद्धि गाफिल हो जाती है।

११८०. ताला लगाना रौद्र-ध्यान का प्रतीक है, परिग्रहानंद नामक रौद्रध्यान है।

११८१. शरीर का ममत्व भी परिग्रह है, यह भी अपना नहीं है, फिर कौन अपना होगा ?

११८२. आत्मा परिग्रह वाला होता ही नहीं, यह भ्रम है। हम पर द्रव्य को फिर भी अपनाते हैं।

११८३. परिग्रह ने आपको पकड़ रखा है कि आपने परिग्रह को। धन का लोभी अगले भव में वहीं कुंडलीमार बनकर बैठ जाता है। पर द्रव्य के वियोग में आपको पीड़ा होती है जबकि पर द्रव्य को नहीं क्योंकि परद्रव्य में ज्ञान नहीं होता।

११८४. धन के बिना काम नहीं चलता लेकिन जिस धन से अपना जीवन अंधकार की ओर चला जाये वह धन किस काम का ?

११८५. परिग्रह त्याग का पाठ समझ में आ गया तो लगे रहो और दूसरों को भी लगाते रहो। अर्जित धन अंजुली में पानी की तरह बह जाता है। यदि रह गया तो अगले भव में परिग्रही जीव सर्प बनकर उस परिग्रह की रक्षा करने आता है। यह पर्याय लोभ के कारण मिलती है। चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाये लेकिन जब चोर आ जावे तो सब ले जाये।

११८६. अग्नि हाथ में रखोगे तो जलोगे ही वैसे ही परिग्रह हाथ में रखोगे तो चलोगे ही।

११८७. अतिथि-संविभाग व्रत का अर्थ है, धन का कुछ हिस्सा देव, शास्त्र एवं गुरु की भक्ति में समर्पित करना।

११८८. हमारी नाव इसलिए डूब रही है कि हमारी नाव में पानी भरता जा रहा है। पानी भीतर जा रहा है तो डॉट लगाओ।

११८९. आत्मा को हल्का बनाने की प्रक्रिया परिग्रह त्याग है, पर वस्तु से दूर होना है।

११९०. आत्मा का स्वभाव लकड़ी से भी ऊपर घी की तरह तैरना है।

११९१. आत्मा कभी डूब नहीं सकती लेकिन परिग्रह लेप के कारण संसार में डूबी हुई है। हमने पर वस्तु को भावों से अपना लिया इसलिए सिद्ध नहीं हो सके।

११९२. धन संचय से मूर्च्छा रूपी गंदगी पैदा होती है।

११९३. वैभवमात्र विलासता का प्रतीक नहीं है बल्कि उसके प्रति गृद्धता का नाम विलासता है।

११९४. आपत्तियों की जड़ परिग्रह है, परिग्रह वस्तुओं का नाम नहीं है बल्कि मूर्च्छा का नाम परिग्रह है।

११९५. जब शरीर के प्रति भी मूर्च्छा का अभाव हो जाता है तब वह दिगम्बर मुद्रा को धारण करके मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो जाता है।

११९६. राग की बुनियाद बहिरंग पदार्थ है, वह जब तक सामने केन्द्र में नहीं रहता तब तक राग हो ही नहीं सकता। इसलिए राग छोड़ने के लिए बाहरी पदार्थ का विमोचन करना आवश्यक है। तन एवं मन से त्याग होना चाहिए और फिर स्वप्न में भी बाह्य पदार्थ याद नहीं आना चाहिए।

११९७. यदि शरीर के प्रति ममत्व है तो आहार, भय, मैथुन व परिग्रह रूप संज्ञाओं में यह जीव आसक्त रहता है।

११९८. दूसरे पदार्थ को देखकर उसे ग्रहण करने का भाव करना ही मूर्च्छा (परिग्रह) है। यह सबसे बड़ी कमजोरी है, पर पदार्थ के ग्रहण से ही जीवन में ग्रहण लग जाता है।

११९९. आग के हट जाने पर पानी का उबलना बंद हो जाता है, वैसे ही परिग्रह त्याग करने के बाद मन शान्त हो जाता है, पूर्व संस्कार होने से थोड़ा अशान्त भी रह सकता है।

१२००. परिग्रह का त्याग किये बिना अपने आपको ज्ञानी मानना मात्र एक नाटक ही है।

१२०१. दस प्रकार के परिग्रह का त्याग किये बिना आत्मा की बात करना सन्निपात रोग जैसा है।

१२०२. अध्यवसाय वस्तु के बिना नहीं हो सकता, इसलिए सर्वप्रथम वस्तु (परिग्रह) का त्याग करो।

१२०३. जहाँ परिग्रह है, वहाँ शान्ति नहीं रह सकती। परिग्रह और शान्ति का बिल्ली और चूहे जैसा जात्य वैर है।

१२०४. जो परिग्रह पाप में रत है, वह हमेशा और हर जगह दुःखी ही रहेगा।

१२०५. बाह्य और अंतरंग दोनों परिग्रह को छोड़े बिना अहिंसा धर्म की महक नहीं आ सकती आत्मानुभूति तो दूर की बात है।

१२०६. परिग्रह का त्याग आत्मा का कायाकल्प कर देता है, जिससे नई स्फूर्ति आ जाती है, जैसे कल्प

करने से पेट साफ हो जाता है, शरीर निरोग हो जाता है और जैसे मूसलाधार वर्षा से सारा दल-दल समाप्त हो जाता है।

१२०७. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में स्त्री भी एक रत्न में आती है इसलिए पति-पत्नि एक दूसरे के लिए परिग्रह है। जो सौभाग्यशाली होते हैं, वे इसे अपनाते ही नहीं हैं।

१२०८. वस्तु परिग्रह नहीं है, उसे पकड़ने के भाव का नाम, मूर्च्छा का नाम परिग्रह है।

१२०९. परिग्रह उतना ही रखो जिससे धर्मध्यान में बाधा न आवे।

१२१०. परिग्रह को जितना छोड़ोगे उतनी हिंसा कम होगी और दया आती जावेगी। धन परिग्रह को उचित (धर्म) स्थान पर लगाना ही, खर्च करना ही उसका सदुपयोग है।

परीषह

१२११. नदी में ही नाव की शोभा है, ठीक वैसे ही परीषहों से ही साधु की शोभा है।

१२१२. स्वाभिमान रखने से याचना परीषह सहन हो जाता है।

१२१३. परीषहजय के बिना अनुप्रेक्षाओं का कोई महत्त्व नहीं होता।

१२१४. मोक्षमार्ग में दुःख को सहन करने से कर्मों की निर्जरा होती है।

१२१५. परीषहों का सहन, मार्ग से स्खलन न हो और कर्म निर्जरा होती रहे इसलिए किया जाता है। उपसर्ग, परीषहों में जीने वाले को स्वाध्याय की क्या आवश्यकता उनकी हर क्षण कर्म की निर्जरा हो रही है।

१२१६. संसारी प्राणी आराम चाहता है लेकिन मोक्षमार्ग में सबसे पहले परीषह सहन करना पड़ते हैं, ये परीषह मोक्षमार्गी को संवर मार्ग में बनाये रखते हैं।

१२१७. अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण में समता बनाये रखना ही तो दृढ़ श्रद्धान माना जाता है।

परीक्षा

१२१८. ऐसे विद्यार्थी को हम पढ़ाना नहीं चाहते जो परीक्षा (सल्लेखना या उपसर्ग परीषह) से डरते हैं। साधु वही जो हमेशा सुखी रहे, क्योंकि त्यागी कभी मौत से नहीं डरता, वह तो उसका स्वागत करता है।

१२१९. कठिन परिस्थितियों से गुजरना बहुत बड़ी परीक्षा है, इसमें पास होने वाले को महान् फल मिलता है।

१२२०. परीक्षा के माध्यम से ही ज्ञात होता है कि हमारा पथ कितना सुगम, सरल एवं सीधा है।
उस पथिक की क्या परीक्षा जिस पथ में शूल न हो।
उस नाविक की क्या परीक्षा जिसकी धारा प्रतिकूल न हो॥

१२२१. परीक्षा के बाद सफलता मिलती है तो परीक्षा देते समय हुई वेदना अपने आप गायब हो जाती है।

१२२२. ज्ञानी पुरुष वही है जो विपत्ति के समय, परीक्षा के समय धैर्य से काम लेता है।
१२२३. यदि आपने अध्ययन किया है और प्रगति चाहते हो तो परीक्षा देना अनिवार्य है।
१२२४. परीक्षा के बिना हमारी आस्था और ज्ञान में निखार नहीं आ सकता।
१२२५. आज तो मात्र चुनाव में जीतना ही सफलता मान लेते हैं, यह एक सबसे बड़ी कमजोरी है।
१२२६. प्रलोभन के माध्यम से साधक की परीक्षा हो जाती है।
१२२७. स्वर्ण की परीक्षा तपाकर, तोड़कर, घिसकर की जाती है।
१२२८. चारों ओर से हमारी योग्यता क्या है इसका निर्णय लेना परीक्षा है।
१२२९. परीक्षा के बिना प्रामाणिकता नहीं मिलती।
१२३०. आत्मा की परीक्षा के लिए शरीर को तप की अग्नि में तपाना पड़ता है।
१२३१. इस शरीर का बिछुड़न ही एक मात्र मोक्षमार्ग में परीक्षा है।
१२३२. परीक्षा का नाम सुनते ही कई कमजोरियाँ सामने दिखने लगती हैं।
१२३३. संदेह को दूर करने के लिए परीक्षा जरूरी है।
१२३४. जहाँ देह है वहाँ संदेह नियम रूप से रहता है देह रहित में संदेह नहीं रहता।
१२३५. सत्य को सिद्धि की आवश्यकता नहीं होती। संदेह के निवारण के लिए प्रदर्शन अवश्य करना पड़ता है, यह व्यवहार है।
१२३६. विद्यालय जाये बिना विद्या नहीं आती, विद्या आयी है कि नहीं इसकी जानकारी के लिए परीक्षा होती है।
१२३७. परीक्षा के पूर्व जागृति रखना चाहिए, कमर कस लेना चाहिए।
१२३८. परीक्षा नहीं देना चाहते हो तो फार्म नहीं भरना चाहिए।
१२३९. अध्ययन के समय आपके साथ बस्ता, किताबें, गुरु सब होते हैं लेकिन परीक्षा के समय मात्र आपका दिमाग साथ होगा। (हम न किसी के कोई न हमारा)।
१२४०. परीक्षा से घबराओ मत, परीक्षा के बिना अगली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता।
१२४१. क्षमता का मूल्यांकन परीक्षा से ही होता है। अध्ययन कितना भी हो पर प्रश्न तो कठिन ही होते हैं।
१२४२. परीक्षा के समय अपने आप पर विश्वास होना चाहिए।
१२४३. आत्म-विश्वास का होना परीक्षा में बहुत अनिवार्य होता है।
१२४४. परीक्षा में अपने आप पर विश्वास होना चाहिए कि ४+४ = ८ ही होते हैं। अध्ययन किया है तो विश्वास अडिग होना चाहिए।

पुरुषार्थ

१२४५. इस शरीर में आत्मा (जीव) को किसी ने बाहर से नहीं डाला। जैसे दूध और पानी का सम्बन्ध

अनादि सत्य है, वैसे ही जीव और शरीर का है, इन्हें पुरुषार्थ पूर्वक ही जुदा-जुदा किया जा सकता है।

१२४६. आत्मा के पास ऐसी क्षमता है कि वह अंतर्मुहूर्त में पुरुषार्थ के द्वारा सभी कर्मों को नष्ट कर सकता है।

१२४७. कर्म के उदय में होने वाले औदयिक भावों को जानो, देखो, इसमें गाफिल न होना बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

१२४८. मोक्षमार्ग में बहुत जागरुकता चाहिए तभी पुरुषार्थ मूलक कुछ हो सकता है, अन्यथा नहीं। तीव्र कर्म के उदय में पुरुषार्थ भी काम नहीं करता।

१२४९. धर्म, मोक्ष पुरुषार्थी के लिए अभिमान और दीनता को छोड़कर अपने कर्त्तव्य में लग जाना चाहिए।

१२५०. उपदेश में शब्दों के साथ-साथ सन्मार्ग पर लाने का पुरुषार्थ होता है।

१२५१. पुरुषार्थ में माध्यम से अतीत को भी बदला जा सकता है और भविष्य की खाई को भी थोड़ा पूरा जा सकता है।

१२५२. स्वाश्रित कार्य में पुरुषार्थ को मुख्यता देनी चाहिए।

१२५३. जब मृत्यु निश्चित है तो आत्म हितैषी को निश्चिंत हो जाना चाहिए और आत्म पुरुषार्थ में लग जाना चाहिए, जैसे-सुकुमाल मुनिराज ने तीन दिन में ही निश्चिंतता से आत्म कल्याण कर लिया।

१२५४. भविष्य की उज्ज्वलता के लिए वर्तमान में पुरुषार्थ आपेक्षित होता है।

१२५५. मृत्युंजयी बनना चाहते हो तो अभी से पुरुषार्थ करना प्रारम्भ कर दो।

१२५६. हे विवेकी जनो! आत्महित में लगो, जीवन की उन्नति के लिए पुरुषार्थ करो।

१२५७. दूसरे के द्वारा दिया गया धनादि द्रव्य काम में नहीं आता, अपने पुण्य पुरुषार्थ के माध्यम से ही जो कमाया है, वही काम में आता है।

१२५८. पुरुषार्थ उसी का नाम है जो वर्तमान के संघर्ष से जूझे।

१२५९. श्रावक भी मोक्षमार्ग में श्रद्धा रखता है लेकिन बहाव के अनुसार बहना भी एक प्रकार से तैरना ही है, डूबने से बचने का प्रयास करना एक महान् पुरुषार्थ है।

१२६०. हमारा पुरुषार्थ दूसरों को जानने से नहीं स्वतत्त्व को जानने से ही स्वस्थ होगा।

१२६१. बुद्धिपूर्वक कार्य करना पुरुषार्थ है और अबुद्धिपूर्वक होना दैव (भाग्य) है।

१२६२. पुरुषार्थ के माध्यम से जब क्रोध उपयोग में नहीं आता तो क्रोध उदय में आकर चला जाता है। पुरुषार्थ से उदीरणा की क्रमबद्धता छूटती जाती है।

१२६३. उद्देश्य सही होने पर पुरुषार्थ का फल अवश्य मिलता है।

१२६४. सागर का मंथन गोताखोर ही कर पाते हैं। सागर की गहराई से जो अपरिचित है वह रत्नों को नहीं पा सकेगा।

१२६५. छोटी-छोटी बातों में, कषायों में इस नर काया को मत गंवाओ, इससे मोक्ष-पुरुषार्थ का प्रयास करो। कषायों का हनन करते हुए पाप नष्ट करते हुए इस नर काया का उपयोग करना चाहिए।

१२६६. यात्रा का अंत हो सकता है लेकिन भटकन का अंत नहीं होता।

१२६७. यात्रा में चिन्ता नहीं होती बल्कि भटकन में चिन्ता होती है।

१२६८. अपना पुरुषार्थ अपने ही क्षेत्र में होता है।

१२६९. योग्यता एवं पुरुषार्थ मुक्ति के लिए अनिवार्य हैं।

१२७०. जितनी सीमा है उतना पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए।

१२७१. पुरुषार्थ से एक साथ पूरा छोड़ा जा सकता है, त्यागने के लिए ज्यादा पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता।

१२७२. कषायों को कम करने का प्रयास करना चाहिए, एक दूसरे की कषाय कम करने में भी निमित्त बनना चाहिए।

१२७३. कर्मफल भोगना अज्ञान स्वभाव है, पुरुषार्थ के द्वारा इससे बचा जा सकता है।

१२७४. अंतर्मुहुर्त के बाद क्रोध समाप्त होगा ही जरा धीरज रखो।

१२७५. वस्तु और व्यक्ति से परिचित होते हुए भी उसकी स्मृति की ओर अपने उपयोग को न ले जावे इतना पुरुषार्थ तो किया जा सकता है।

१२७६. कर्म के उदय को गौण करना पुरुषार्थ का फल है।

१२७७. ज्ञानावरणादि कर्म रूपी ढक्कन को खोलने का पुरुषार्थ ही सही पुरुषार्थ माना जाता है।

१२७८. बुद्धिपूर्वक जितना बन सके उतना तो प्रमाद से बचने का पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

पुद्गल

१२७९. पुद्गल (शरीर) छोटा होने के कारण आत्मवैभव में कभी कमी नहीं आती।

१२८०. तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में सुख-दुःख, जन्म-मरण को पुद्गल में उपकार कहा गया है। इसलिए ज्ञानी को इनमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए।

१२८१. यह सब पुद्गल का संसार है, पुद्गल के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता।

१२८२. अजीव तत्त्व व्यापक है और पुद्गल व्याप्य है। अजीव, जीव में विपरीत स्वभाव वाला है एवं पुद्गल स्पर्श, रूप, रस, गंधात्मक है।

१२८३. पुद्गल को चिंतन का विषय बनाने से विकल्प होता है और जीव को चिंतन का विषय बनाने से विकल्प शांत होता है।

१२८४. ये पुद्गल शब्दादि पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें हैं।

१२८५. पुद्गल द्रव्य अस्तिकाय वाला नहीं है परंतु मिल-मिल कर स्कंध बन जाता है।

१२८६. पुद्गल द्रव्य अनित्य है, क्योंकि इसमें परिवर्तन होता रहता है।

प्रतिशोध

१२८७. दुनियाँ में प्रतिशोध की भावना रहती है, मोक्षमार्ग में यदि प्रतिशोध लेना चाहो तो इस शरीर से लो। इस शरीर ने कई बार धोखा दिया है, अब तुम उसे धोखा देकर तप करते हुए मुक्ति को प्राप्त करो।

१२८८. प्रतिशोध में हमेशा हिंसा के भाव होते हैं।

प्रथमानुयोग

१२८९. महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ें आगे बढ़ें, अभी नहीं तो अगले भव में तो मोक्षमार्ग की भूमिका बन ही जावेगी। अगले भव की इस जीवन में भूमिका बना सकते हैं।

१२९०. हमारे साहस को बढ़ाने वाली महापुरुषों की गौरव गाथा को पढ़ना चाहिए। उनका गुणानुवाद करने से हमारे अंदर शक्ति जागृत हो जाती है।

१२९१. आदर्श पुरुषों को याद करते ही हमारा जीवन लहलहा उठता है। दर्पण को जितनी बार देखो उतनी कमियाँ (अपने में) दिखेंगी।

१२९२. महापुरुषों के प्रत्येक कार्य में, श्वांस में, परोपकार के भाव रहते हैं।

१२९३. उन राम, महावीर ने वह आस्था जमायी थी तभी इन सभी जीवों को रास्ता मिला है।

१२९४. आपके चरण भी उनके चरणों के साथ आदर्शों पर चलें आपके चरण भी पवित्र हो जावेंगे।

१२९५. रागी, द्वेषी एवं मोही पर प्रथमानुयोग का ही सही प्रभाव पड़ता है।

१२९६. महापुरुषों के जीवन को पढ़कर संसारी प्राणी प्रशमभाव के साथ अपने जीवन को सम्हाल सकता है।

१२९७. चार कषायों को छोड़ने का ही आचार्यों ने प्रयास किया है एवं उपदेश ग्रन्थ लिखे हैं।

१२९८. उपन्यास नहीं ऐसे चारित्र पढ़ो, ताकि आचरण बदल जावे।

१२९९. इरादों को मूर्तरूप देने के लिए इतिहास देखना पड़ता है।

१३००. पुराण-ग्रन्थ पढ़ने से दुर्भाव भी सद्भाव के रूप में बदल जाते हैं।

१३०१. यदि अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो पुराण, ग्रन्थ पढ़ा करो।

१३०२. पुराण-ग्रन्थों से अद्भुत चीजें मिलती हैं। जिससे प्रेरणा मिलती है उनको आत्मसात् करने से पता चलता है कि यह जीवन कितना महत्त्वपूर्ण है।

१३०३. पुराण-ग्रन्थों से विकृत मन को बोध प्राप्त हो जाता है।

१३०४. तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय करना अनिवार्य है।

१३०५. सबसे बड़ा धन आत्म तत्त्व है स्वाध्याय के माध्यम से इसका ज्ञान होता है।

परिहार विशुद्धि संयम

१३०६. जो जन्म से ३० वर्ष तक की अवस्था को सुख पूर्वक व्यतीत करके वर्ष पृथक्त्व (३ से ९ वर्ष) पर्यन्त तीर्थंकर भगवान् के पादमूल में प्रत्याख्यान को पढ़कर तीनों संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोश गमन करते हैं ऐसे मुनिराज को परिहार विशुद्धि संयम होता है।

परिवर्तन

१३०७. परिणाम प्रत्यय (भावों) के माध्यम से बहुत कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

१३०८. भावों को हम पुरुषार्थपूर्वक परिवर्तित व संयत कर सकते हैं लेकिन कर्मों को बंधने के बाद परिवर्तित नहीं कर सकते।

१३०९. आवश्यकों में परिवर्तन करने से स्वाद (अनुभव) भिन्न-भिन्न आने लगता है। परिवर्तन का अर्थ है-व्रत, नियम को बढ़ाते जाना और कठोर साधना करते जाना।

१३१०. जो व्यक्ति प्रकृति को आत्मसात् करता है, वह व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता।

भगवान्

१३११. भगवान् का नाम लेते रहने से वचन शुद्ध एवं सिद्ध हो जाते हैं।

१३१२. जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति, मोक्ष रूपी घर के ताले को खोलने के लिए कुँजी के समान है।

१३१३. भगवान् की भक्ति विषय रूपी जंगल में भटकते हुए मन रूपी हाथी को बाँधने के लिए जंजीर के समान है।

१३१४. आज भले ही साक्षात् भगवान् नहीं हैं फिर भी उनकी प्रतिमा को आदर्श मानकर हम भगवान् के स्वरूप का अवलोकन कर सकते हैं।

१३१५. जो १८ दोषों से रहित होते हैं, वही निर्दोष व्यक्तित्व हमारे आराध्य देव हैं।

१३१६. भूतों के बीच रहकर भी जो एवंभूत का अनुभव करने वाले हैं, वे मुनिराज धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं।

१३१७. सभी संसारी जीवों को भूत ही लगे हैं। किसी को क्रोध का, किसी को मान का, किसी को माया का, किसी को लोभ का, इससे तन, मन व वचन आहत हो रहे हैं, यह भीतरी बाधा है, ऊपरी बाधा नहीं है।

१३१८. भगवान् के चरणों में आने से हमारे जीवन की कुण्डली बदल जाती है।

१३१९. भक्त और भगवान् में दूरी अवश्य होती है किन्तु दिशा एक ही हुआ करती है।

१३२०. भगवान् की भक्ति जैसे आप आदर के साथ करते हैं, वैसे ही उनकी आज्ञा का पालन भी आदर पूर्वक करना चाहिए।

१३२१. भगवान् की आज्ञा है कि संसार में जहाँ भी दुःख, पीड़ा व अज्ञान है उसे दूर करने का प्रयास

करना चाहिए। इसमें सफलता मिलना विश्वास के माध्यम से ही संभव है।

१३२२. जब भक्ति, भक्त के अंदर प्रकट हो जाती है तो भगवान् भी अंदर प्रवेश कर जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं।

१३२३. भगवान् ने कभी किसी को वशीभूत नहीं किया, उन्होंने स्वयं को वश में किया है, इसलिए सभी उनके वशीभूत हैं।

१३२४. आत्मा का स्वरूप मात्र देव, शास्त्र एवं गुरु से ही प्राप्त हो सकता है।

१३२५. भगवान् का अवतार नहीं होता बल्कि भगवान् तो बनते हैं।

१३२६. आज साक्षात् भगवान् नहीं हैं लेकिन उनका पथ तो है। जो संस्कारवान एवं आस्थावान होता है, वही इस पथ पर चल सकता है।

१३२७. दुनियाँ में जब कहीं सहारा नहीं मिलता तब भगवान् व गुरु का दरवाजा हमेशा खुला रहता है।

१३२८. जब प्रभु आस्था के विषय बन जाते हैं, तब जीवन में वैर-भाव गौण हो जाते हैं।

१३२९. जहाँ भगवान् जन्म लेते हैं, उस भूमि का एक-एक कण पूज्य हो जाता है।

१३३०. आज भी भगवान् मिलते हैं, महावीरजी में एक ग्वाले को मिले, लेकिन ध्यान रखना सात्त्विक जीवन जीने वालों को मिलते हैं।

१३३१. भगवान् के ऊपर उपसर्ग करने वाले को भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, यह भगवान् पार्श्वनाथ का भीतरी परिचय था।

१३३२. माता-पिता भी तीर्थंकर भगवान् के प्रभाव से वैराग्य धारण कर लेते हैं, विषय वासनाओं को भूल जाते हैं।

१३३३. भगवान् का कीर्तन करने से अपनी कीर्ति तीनों लोकों में फैल जाती है।

१३३४. जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती है।

१३३५. जो अर्हन्त भगवान् को द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद से जानता है, उसका मोह क्षय को प्राप्त होता है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

१३३६. भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक करके स्वर्ग के देवतागण भी भगवान् को जैसे साक्षात् स्पर्श कर लिया हो, ऐसा आनंद प्राप्त करते हैं।

१३३७. ज्ञान में अभिमान हो सकता है लेकिन भक्ति में लघुता प्रकट होती है। क्योंकि विवेक पूर्वक की गयी भक्ति ही सच्ची भक्ति मानी जाती है।

भव

१३३८. अनंत भव गँवा दिये, इस भव में मोक्षमार्ग की भूमिका बना लो यह भव सार्थक हो जायेगा और इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण के अक्षरों से अंकित हो जायेगा।

१३३९. संसार के भोग औपचारिक हैं, इन औपचारिक भोगों के पीछे ही संसार में प्राणी इतना कष्ट उठा रहा है। ज्ञानी यह समझकर इन भोगों को छोड़ देता है।

भव्य-अभव्य

१३४०. भव्य का अर्थ होनहार होना है, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्राप्त करने की योग्यता रखता है, वह भव्य है।

१३४१. युक्ति और आगम के आधार पर जो धर्म को धारण करता है, वह भव्य है।

१३४२. जैसे माँ गर्भस्थ शिशु का ख्याल रखती हुई भोजन का सेवन करती है, वैसे ही गुरु महाराज स्वयं मोक्षमार्ग पर चलते हुए 'भव्य' जीवों के लिए ग्रन्थ रचना करते हैं।

१३४३. अभव्य को भव्य नहीं बनाया जा सकता और भव्य को अभिशाप देकर भी अभव्य नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि स्वभाव की कभी भी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती, विभाव की चिकित्सा तो हो सकती है।

१३४४. द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भव मिल गया लेकिन भाव स्वाश्रित है, जो भाव करता है, वह भव्य है, ऐसा ज्ञानसागरजी महाराज कहते थे।

१३४५. जो कर्मदहन की बात नहीं करता, भाव नहीं करता, वह अभव्य है।

१३४६. यह संसार भव्यों से भी खाली नहीं होगा, अभव्य के समान भव्यों से भी खाली नहीं होगा और अभव्यों से तो खाली होगा ही नहीं।

१३४७. जिसे विषय विष के समान लग रहे हों, जो संसार एवं पाप से डरता हो और जिसे गुरु के वचनों पर भरोसा हो, समझना वह भव्य जीव है।

१३४८. संयम में, धर्म में, उत्साह में अभाव के कारण ही यह जीव अभव्य के समान रह रहा है।

१३४९. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि से विभूषित हो जावे तो उस भव्य को सुख दूर नहीं, सुख तो अंदर है।

१३५०. जब सम्यग्दर्शनादि की संयोजना हो जाती है तो भव्यत्व का प्रदर्शन हो जाता है।

१३५१. वह भव्य भी कभी मुक्त नहीं होता जो रत्नत्रय की अभिव्यक्ति नहीं करता।

१३५२. भव्यत्व की सार्थकता रत्नत्रय की अभिव्यक्ति में है। अंध पाषाणवत् स्वर्ण तो रहता है पर पाषाण से निकल नहीं पाता, उपयोग में नहीं आता।

१३५३. जिस प्रकार चावल कभी अंकुरित नहीं होता कितना भी खाद पानी क्यों ना दिया जावे उसी प्रकार अभव्य कभी भी रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकता।

१३५४. मूँग और ठर्रा मूँग दोनों देखने में एक से लगते हैं पर ठर्रा मूँग समुद्र भर पानी और अग्नि दोनों से सीज नहीं सकता उसी प्रकार अभव्य भी कभी सीज नहीं सकता, यह उसका स्वभाव है।

१३५५. आत्मतत्त्व को यदि हम पुरुषार्थ से सिझा देते हैं तो ध्यान रखना दूध, घी बनने के बाद पुनः दूध नहीं बन सकता, यह त्रैकालिक सत्य है।

१३५६. सभी का कल्याण हो ऐसी अंदर से भावना भाने वाला भव्य ही होता है।

१३५७. किसी को अभव्य कह दो तो वह पूछ सकता है, मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता अच्छा मैं कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा। यदि बार-बार ऐसा भाव करता है तो समझना वह निश्चित भव्य है। हमें प्रमाद से उठना है ऐसा बार-बार भाव करने वाला भव्य है।

भाव

१३५८. पाप का बंध भावों पर आधारित है, मात्र सुख का अनुभव करने से पाप का बंध नहीं होता।

१३५९. सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में सबसे ज्यादा सुख का अनुभव होता है इसलिए सबसे ज्यादा उन्हें पाप का बंध होना चाहिए, जबकि ऐसा नहीं है, क्योंकि उनमें पाप के भाव ज्यादा नहीं होते। जिसे भावभासन होता है, उसे कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं।

१३६०. हमारे ही घट में, भावों में दोनों रहते हैं, राम और रावण, जो चाहो प्राप्त कर लो। सत्युग कलयुग हमारे भावों की ही देन है।

१३६१. भाव मन भागता है और द्रव्य मन वहीं स्थिर रहता है। जैसे बल्ब वहीं रहता है, उसका प्रकाश इधर-उधर फैलता है।

१३६२. संवेग, निर्वेग भाव के साथ जो दीक्षित होते हैं, वह बिना (शाब्दिक) ज्ञान के भी बहुत आगे बढ़ जाते हैं।

१३६३. दीर्घ संहनन की अपेक्षा हीन संहनन के साथ भी असंख्यातगुणी कर्म की निर्जरा होती है, इसलिए हमें हमेशा अपने भावों को उज्ज्वल बनाये रखना चाहिए। भावलिंग का प्रदर्शन नहीं होता, भावलिंग का तो दर्शन होता है।

१३६४. भावों के द्वारा मोह की पर्त को अनपढ़ भी जल्दी हटा लेता है, अंजनचोर की भाँति ''आणम-ताणम कछु न जाणम सेठ वचन परमाणं'' ।

१३६५. भावों की पहचान करना धर्म क्षेत्र में बहुत अनिवार्य है।

१३६६. आँखों से आँसू भावों से ही आते हैं, किराये से नहीं।

१३६७. भाव कर्म से, राग-द्वेष से बचो, तभी संवर सहित निर्जरा होगी।

१३६८. भाव से नग्न होना महत्त्वपूर्ण है, यह किसी को दिखाया नहीं जा सकता।

१३६९. भाव कर्म के माध्यम से नोकर्म में अंतर आ जाता है।

१३७०. क्रियायें जड़ की नहीं आत्मा की हैं, यह व्यक्त शरीर से होती हैं, लेकिन उनके कर्त्ता हमारे भाव ही हैं।

१३७१. भावों को मोड़ने का सबसे अच्छा तरीका है मोह को मरोड़ (छोड़) दो।

१३७२. द्रव्य के लिए शायद किसी से पूछना पड़े लेकिन भावों के लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है।

१३७३. भावों में द्रव्य की मुख्यता नहीं होती, द्रव्य से जब काम लेते हैं तब उपयोगी होता है लेकिन भाव तो हमेशा उपयोगी है।

१३७४. तिर्यंचों में द्रव्य प्रणाली नहीं चलती वहाँ तो भावों से ही कार्य होता है।

१३७५. जैनधर्म भाव-प्रधान है, द्रव्य को नकारता तो नहीं है पर गौण अवश्य कर देता है।

१३७६. भाव बढ़ते हैं तो द्रव्य बढ़ता जाता है, बाजार में भाव बढ़ने पर थोड़ा-सा भी माल हो तो मालामाल हो जाते हैं। द्रव्य अंक है और भाव उसके पीछे लगने वाला शून्य है।

१३७७. भावों के परिवर्तन से द्रव्य के रूप, लावण्य व वैभव में परिवर्तन आ जाता है।

१३७८. भाव सुधारने का प्रयास करो द्रव्य तो अपने आप नाचता हुआ आ जावेगा।

१३७९. अर्हंत-भक्ति में मेंढ़क का नाम आ गया आपका नाम नहीं आया। यह भावों की ही महिमा है।

१३८०. भावों में उन्नति नहीं होती है तो इन द्रव्यों का कोई मूल्य नहीं है।

१३८१. मानसिक मंत्र महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मानसिक मंत्र में मन, वचन एवं काय तीनों में स्तब्धता आ जाती है जिसके माध्यम से अंतर्मुहुर्त में कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सांसारिक सुख के साथ मोक्ष सुख का दाता भी वही है। मनोयोग से सुनने पर सम्यग्दर्शन की भूमिका बनती जाती है।

१३८२. भावों के संकल्प से ही (आप रक्षासूत्र से) शोर/सूतक से बच जाते हैं।

१३८३. विमान से भी वेगवान भाव(कर्म) हैं।

१३८४. वातावरण की शुद्धता/अशुद्धता भावों पर ही आधारित है।

१३८५. आपको पूजन का प्रशिक्षण मेंढ़क के भावों से लेना चाहिए।

१३८६. संगीत का आनंद भाषा से नहीं भावों से आता है।

१३८७. जो भाव परक साधना में जागृति नहीं रखता वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।

१३८८. जो अभी नहीं कर पा रहे हैं लेकिन भावना भा रहे हैं तो वह कार्य परभव में अच्छे से कर लेता है।

१३८९. अपनी प्रभावना नहीं प्रभावना धर्म की हो ऐसी अपनी भावना हो।

१३९०. संकल्प और भावनाओं से कार्य बहुत जल्दी हो जाता है।

१३९१. भावना (उद्देश्य) के अनुसार ही हमारे जीवन का निर्माण होता है।

१३९२. जीवन में भावों के माध्यम से ही सब कुछ पाया जा सकता है।

१३९३. उद्देश्य के प्रति हमारे भाव जागृत रहें, हमें वीतराग-विज्ञान पाना है।

१३९४. भाव के अभाव में जो घटना घटती है वह धर्म, अधर्म का रूप नहीं ले सकती।
१३९५. सुख-दुःख के कारण संसार में और कोई नहीं मात्र हमारे ही परिणाम हैं।
१३९६. अभिशाप के भाव हमेशा पतन में कारण होते हैं।
१३९७. किसी भी काल में सुधारो अपने परिणामों को स्वयं अपने को ही सुधारना है।
१३९८. पशु द्रव्य को नहीं भाव को ही पकड़ता है। कभी भी पशु में द्रव्य, भाव लिंग का भेद नहीं किया गया।
१३९९. भावों की पकड़ के लिए भाषा की आवश्यकता नहीं होती।
१४००. सम्प्रेषण के माध्यम से दूसरे के दुःख को दूर करने के लिए भाव रूपी तरंगों को भेजा जा सकता है। इसके लिए मात्र आत्मीयता चाहिए।
१४०१. गुणीजनों को देखकर प्रमोद भाव प्रकट करें, इसमें गुणी का आदर हो जाता है।
१४०२. पारिणामिक भाव त्रैकालिक होते हैं, इसलिए परम शुद्ध पारिणामिक भाव को ध्येय बनाना चाहिए।
१४०३. जिससे आत्मा में परिणाम का लाभ होता है, उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।
१४०४. स्वप्न, भावना का मॉडल है।
१४०५. बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न कराने में माँ के समान काम करतीं हैं।
१४०६. परिणामों में ही सब कुछ है परिणाम ही परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए हमें हमेशा अच्छे परिणाम बनाये रखना चाहिए।

भक्ति

१४०७. आत्मतत्त्व की भावना नहीं हो रही हो तो परमात्मा की भक्ति करते हुए भी आत्मा को पाया जा सकता है।
१४०८. जो दूसरों को व्यवधान उपस्थित नहीं करता, वही विवेक से भक्ति, पूजन करता है।
१४०९. भक्ति में भाव प्रत्यय ही महत्त्वपूर्ण है, शब्दज्ञान नहीं।
१४१०. उपास्य के पास स्वरूप का भान, आत्म श्रद्धान प्राप्त होता है, लेकिन वह अंतर्दृष्टि रखने वालों को ही प्राप्त होता है।
१४११. प्रभु के चरणों में जो विशुद्धि प्राप्त होती है, वह अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकती।
१४१२. प्रभु की भक्ति से, उनके पादमूल में मोहनीयकर्म का क्षय हो जाता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।
१४१३. देव, शास्त्र व गुरु के समागम से अनन्तानुबन्धी कषाय नष्ट हो जाती है। जैसे पुलिस को देखकर शराबी का नशा उतर जाता है, वैसे ही इन्द्रभूति क्या पूछने जा रहा है? यह भी भूलता जा रहा है। मानस्तम्भ देखते ही उसका मान स्तंभित हो गया/डाउन हो गया। अब चिकित्सा

के योग्य हो गया। दीक्षा की प्रार्थना करने लगा और दीक्षित होकर महावीर भगवान् का प्रथम शिष्य बन गया।

१४१४. भगवान् का पक्ष आते ही सब पक्ष /विपक्ष समाप्त हो जाते हैं।

१४१५. भगवान् का पक्ष संसार से पार लगा देता है और पक्षपात संसार का विस्तार करता है।

१४१६. जिनदर्शन के प्रति हमेशा विशुद्धि बनी रहनी चाहिए।

१४१७. श्रद्धा और विवेक के साथ जो भक्ति की जाती है, उसी का सही फल प्राप्त होता है।

१४१८. जिसके हृदय में आराध्य को स्थान होता है, उसका हृदय पवित्र होता है।

१४१९. जो भक्ति के माध्यम से साधु परमेष्ठी को स्वीकारता है, बदले में स्व-पर कल्याण की भावना भाता है, वही सही भक्त माना जाता है।

१४२०. भक्ति के बीच में भुक्ति की चाह आकर खड़ी हो जाती है तो भक्ति का सही फल प्राप्त नहीं होता।

१४२१. सही ज्ञान होते ही भक्त मात्र भगवान् बनने का रास्ता माँगता है।

१४२२. भगवान् की भक्ति में, बिना कामना के भाव लगाने से, शुद्ध कंचन बन जाते हैं। यही भक्ति का सार है।

१४२३. आप भगवान् की भक्ति से कुछ संसार की वस्तुएँ माँगना चाहते हो, पर ध्यान रखना भगवान् की भक्ति में फल का कोई अंत नहीं होता।

१४२४. भगवान् के दर्शन से बाहरी सब गौण हो जाना चाहिए अंतरंग में उतरना चाहिए।

१४२५. पूजन, भक्ति प्रशस्त मन से करो और उसके फल में हेय बुद्धि रखो।

१४२६. ध्यान रखना धार्मिक अनुष्ठान कभी भी हेय बुद्धि से नहीं किये जाते क्योंकि इनके माध्यम से ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

१४२७. भक्ति के माध्यम से भक्त भगवान् तक पहुँच जाता है।

१४२८. जो व्यक्ति विषय कषायों में फँसा है, धन के कारण अंधा बना हुआ है, उसके अंदर भक्तिभाव व अध्यात्म के भाव भूलकर भी उभर नहीं सकते।

१४२९. आज मन लगाने का सबसे सरल तरीका है भगवान् की भक्ति करना।

१४३०. भगवान् की पूजा, कामना पूर्ति करती है एवं वासना को नष्ट करती है।

१४३१. भगवान् बनने की एक युक्ति है। भगवान् के गुणों के प्रति अनुराग रखो, भक्ति करो।

१४३२. भगवान् को देखते रहने से भी स्तुति होती है, भक्ति होती है। वह भावविभोर हो जाता है, भगवान् के सामने कुछ बोल ही नहीं पाता।

१४३३. पूजन में भावों को गौण नहीं करना चाहिए। मन, वचन एवं काय को समर्पित करके पूजन करिये, हेय बुद्धि से नहीं। प्रसन्न बदन, प्रसन्न चित्त होकर, भावविभोर होकर भगवान् की

भक्ति करना चाहिए।

१४३४. वैभव प्राप्त होना ही भक्ति का प्रयोजन नहीं है, बल्कि भव बंधन रूपी कर्मों का क्षय होना मुख्य प्रयोजन है।

१४३५. भगवान् भक्ति और भक्त का तालमेल गायन, वाद्य एवं नृत्य जैसा ही है।

१४३६. भगवान् की भक्ति में यह क्षमता है कि वह जहर को भी अमृत बना सकती है। जीवन विषाक्त होने से पूर्व भक्ति की ओर बढ़ जाना चाहिए।

१४३७. जिनकी आत्मा कषायातीत हो गयी है उनकी भक्ति किया करो उन्हीं के माध्यम से ही हमें विकास करना है।

१४३८. भक्त बनने के बाद किसी भी बात का भय नहीं रहता। देवता स्वयं आकर आपकी व्यवस्था करेंगे।

१४३९. भगवान् का जीवन हमें वरदान सिद्ध तब होगा जब हम उनके जीवन के अनुसार ढलने की शुरुआत कर देंगे वही तीर्थ है, मुहुर्त है।

१४४०. भगवान् भक्त के वश में होते हैं, ये बात ठीक है पर मुनिराज किसी के वश में नहीं होते। यह भगवान् की आज्ञा मुनिराज को है।

१४४१. यदि हम सच्चे देव, शास्त्र व गुरु से सम्बन्ध नहीं रखते तो हमारी पार्टी फैल हो जावेगी।

१४४२. प्रभु किसी से प्रभावित नहीं होते हमें भी उन जैसा बनना है तो अन्य किसी से प्रभावित नहीं होना चाहिए एवं उनके (प्रभु के) गुणों, लक्षणों की ओर दृष्टि रखना चाहिए।

१४४३. सांसारिक सुख की अभिलाषा के साथ यदि भगवान् की आराधना करते हो तो आराधना का फल उद्देश्य के अनुरूप ही मिलता है।

१४४४. रावण की आराधना मात्र स्वार्थ को लिए हुए थी, यदि कर्म क्षय के लिए करता तो उसे केवलज्ञान हो जाता।

१४४५. भोजन, भोग्य सामग्री तन्दुल, नैवेद्य आदि पूजन में ले जाते हैं तो वह मंगल द्रव्य बन जाती है, केवल दृष्टि का अंतर है।

१४४६. उपास्य के प्रति भावना जुड़ना महत्त्वपूर्ण है। जिस धन को लेकर कलह पैदा होती है, वह यदि प्रभु की उपासना में लगा दी जावे तो उसी से कर्म निर्जरा हो जाती है। विवेक जागृत होने से भव-भवान्तर के कर्म नष्ट हो जाते हैं।

१४४७. भाव और निर्मल बनाओ, चंदन जितना घिसोगे उतनी सुगंधी आवेगी। फिर केवलज्ञान जो छिपा है वह आस्था की दृष्टि से नजर आने लगेगा।

१४४८. हम सच्चे देव, शास्त्र व गुरु के उपासक बने रहें, क्योंकि आगे हमें भी वही देवत्व प्राप्त करना है।

१४४९. हे प्रभु! हमारी आस्था महान् आत्माओं के प्रति बनी रहे और हम उनके पथ चिह्नों पर चल सकें, भक्ति का फल यही माँगता हूँ।

१४५०. भक्ति करने से बाह्य रूप एवं अंतर का स्वरूप सुंदर स्वच्छ प्राप्त होता है। सुन्दर शरीर तीर्थंकर का ही होता है वह प्राप्त हो।

१४५१. वासना को समाप्त करना चाहते हो तो भगवान् के चरणों में जाओ उनकी उपासना करो।

१४५२. आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि हे भगवन् ! मैं आपको इसलिए नमस्कार करता हूँ कि आपमें दोष (मोह) आवरण (ज्ञानावरण आदि) का अभाव हो गया है, समवशरण विभूति आदि को देखकर नहीं।

१४५३. प्रभु की भक्ति, उपासना करने वाले को सांसारिक कमियाँ, कमियाँ-सी नहीं लगती। वह तो मात्र इतना ही भाव बनाये रखता है कि भगवान् से तादात्म्य बना रहे।

१४५४. सुख और आनंद किसी बाह्य पदार्थ में नहीं है, वह तो परमार्थ में है और परमार्थ के प्रतीक वीतरागी प्रभु हैं।

१४५५. भक्ति अंधी ही होती है क्योंकि, वह आँख बंद होने पर हृदय से प्रकट होती है, वह अंदर की आँख खोलकर देखती रहती है। भीतर की आँखों से भी मोक्षमार्ग में कार्य होता है।

१४५६. श्रद्धा के साथ भक्ति करते हैं तो चमत्कार होने लगते हैं। यह दुनिया को चमत्कार लगते हैं पर तत्त्वज्ञानी इसे वस्तु स्वरूप समझता है।

१४५७. प्रभु की भक्ति एक दर्पण का काम करती है, उसमें देखने से हमें अपना कर्त्तव्य ज्ञात हो जाता है।

१४५८. आपने भगवान् को देखा है पर भगवान् जिस ओर देखते हैं उस ओर नहीं देखा। भगवान् की हमेशा नासा दृष्टि रहती है और आपकी आशा पर दृष्टि रहती है।

१४५९. निष्कषाय के सिंहासन पर बैठा देवता पूज्य होता है, मैं उन्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ।

भाग्य

१४६०. पुरुषार्थ पर घमण्ड नहीं करना चाहिए, भाग्य को भी मानना चाहिए। क्योंकि पूर्वकृत् कर्म तीव्रता से उदय में आ जाते हैं तो किया हुआ पुरुषार्थ भी कार्यकारी नहीं होता।

१४६१. सम्यक्त्व और संयम के लिए जिस समय दरवाजे खुल जाते हैं, वह समय सबसे भाग्यशाली माना जाता है।

१४६२. प्रमादी का भाग्य कभी नहीं फलता।

१४६३. भाग्य भरोसे बैठने वालों को वही वस्तु मिलती है जो पुरुषार्थी लोग छोड़ जाते हैं।

१४६४. प्रबल भाग्य वाले को ही रत्नत्रय की उपलब्धि होती है।

१४६५. गुरु का समागम भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।

१४६६. भाग्यशाली उसे मत मानो जिसके पुण्य का उदय है, बल्कि उसे मानो जो पुण्य के कार्यों में लगा हुआ है और पाप से बचा हुआ है।

भेदविज्ञान

१४६७. इस शरीर का क्या स्वरूप है ? यह जानना ही भेद-विज्ञान है।

१४६८. चतुर्थ गुणस्थान वाला भेदविज्ञान श्रद्धात्मक होता है और सप्तम गुणस्थान वाला भेदविज्ञान अनुभूति परक होता है। जैसे एक स्कूल में है और एक प्रयोगशाला में है।

१४६९. मैं काया में अवश्य हूँ लेकिन काया के बिना भी रह सकता हूँ यह श्रद्धान ही भेदविज्ञान कहलाता है।

१४७०. भेदविज्ञान की शुरुआत ही सही जीवन की शुरुआत है, यह केवलज्ञान तक ले जाने वाला है, जो कभी अंत को प्राप्त नहीं होता है।

१४७१. अनेक बार शरीर को पाया पर यह बोध नहीं आया कि मैं कौन हूँ ? मैं एक आत्म तत्त्व हूँ और शरीर से पृथक् हूँ, इस प्रकार का ज्ञान भेदविज्ञान माना जाता है।

१४७२. शरीर की वेदना को पड़ोसी की वेदना समझना सम्यग्ज्ञान है, भेदविज्ञान है।

१४७३. भेदविज्ञानियों के पास जाकर सत्चित्त में आनंद की प्राप्ति का प्रयास करो, फिर स्वयं सच्चिदानंद बन जाओगे।

१४७४. भेदविज्ञान का परिणाम है फूल सा मुस्कराना।

१४७५. शरीर अलग है, आत्मा अलग है, इस प्रकार का ज्ञान होना भेदविज्ञान कहलाता है।

१४७६. भेदविज्ञान से ध्यान की भूमिका बन जाती है।

१४७७. हम रात-दिन निमित्त को दोष देते रहते हैं, यह सब भेदविज्ञान के अभाव के कारण होता है।

१४७८. भेद-भाव से व्यक्ति राग-द्वेष करता रहता है और भेदविज्ञान प्राप्त कर ले तो राग-द्वेष समाप्त हो जाता है।

१४७९. भेदविज्ञान के बल पर ही धर्म में लीन हुआ जाता है।

१४८०. आत्मा में रमण करने के लिए पोथी का ज्ञान आवश्यक नहीं, मात्र भेदविज्ञान की आवश्यकता है।

मन

१४८१. हमें अपने बाहरी चित्र की सुरक्षा नहीं करना बल्कि भीतरी चित्त की सुरक्षा करना है। चित्र को नहीं चित्त को मांजना है।

१४८२. मन के बिना पंचेन्द्रिय का निरोध नहीं होता है।

१४८३. मन, वचन, काय की शुद्धि होने से आत्मा की विशुद्धि और बढ़ जाती है।

१४८४. जो हमारे मन में संकल्प-विकल्प का कल्पतरु है, उसका कल्प कर दो।
१४८५. हम मन में जिस प्रकार की धारणा बना लेते हैं, वैसे चित्र दिखाई देने लगते हैं।
१४८६. मन को प्रशस्त रखने के लिए पर में इष्टानिष्ट कल्पना नहीं रखना चाहिए।
१४८७. आत्मा बिना मन के रह सकता है, पर मन बिना आत्मा के नहीं रह सकता।
१४८८. ज्ञान की एक विशेष परिणति का नाम मन है और आत्मा ज्ञानमय है।
१४८९. बड़ी-बड़ी नदियों को बाँधना सरल है किन्तु मन को बाँधना कठिन है, लेकिन मन की चाल को जानने वाले को इसे बाँधना कठिन नहीं है।
१४९०. अपना मन अपना होकर अपने बारे में क्यों नहीं सोचता ?
१४९१. मन हमेशा अतृप्त ही रहता है, जो मन के इस स्वभाव को जानते हैं, वे मन के अनुसार नहीं चलते।
१४९२. मन को वश में करने का अच्छा तरीका है, उसे दुर्लभ चीज की ओर ले जाओ।
१४९३. जिसके मन में निरीहता आ जाती है वह निरक्षर होकर भी सम्यग्ज्ञानी है और वह शीघ्र ही आत्म कल्याण कर लेता है।
१४९४. साधना के क्षेत्र में ज्ञेय पदार्थों से नहीं बचना होता है बल्कि जो मन ज्ञेय पदार्थों की ओर जाता है, उसे रोकना पड़ता है।
१४९५. मन में बहुत कुछ व्यर्थ का भर लेने से ही पागलपन छा जाता है, इसलिए मन को खाली रखना चाहिए।
१४९६. मन की धारणा के कारण ही मोक्षमार्ग चलता है।
१४९७. मन को नियंत्रण में रखने से जीवन सफलीभूत हो जायेगा।
१४९८. कम समय में साधना ज्यादा करना चाहते हो तो मन को साधो।
१४९९. ख्याति, लाभ, पूजा के लिए तप, उपवास करना यानि समझना मन अभी सधा नहीं है।
१५००. मन रूपी मृग यदि स्थिर है तो उसे काम रूपी भील मार नहीं सकता।
१५०१. मन की विकृति को आधि माना जाता है, तनाव भी एक प्रकार की आधि (मानसिक रोग) ही है, क्योंकि वह मनोगत विकार है।
१५०२. मन को वश में रखने वाला व्यक्ति जीवन में कभी पराजित नहीं हो सकता, कहा भी गया है कि एक गूँगा १०० को हराता है।
१५०३. समता के साथ कटु वचन सुनो, उन्हें अपने मन का बोझ मत बनाओ।
१५०४. स्वस्थ मन वही माना जाता है, जिसे कभी भी तनाव नहीं छूता।
१५०५. बार-बार विशेष तप करने से मन नियंत्रण में रहता है।
१५०६. गलत दिशा में जाना मन का स्वभाव बन गया है, यदि इसमें संयम रूपी लगाम नहीं लगायी

तो यह अनर्थ कर जायेगा।

१५०७. मन रूपी बंदर को श्रुत-स्कंध पर चढ़ाये रखो वरन् वह अनर्थ कर जायेगा।

१५०८. मन रहित जीव श्रुतज्ञान के माध्यम से अपने हिताहित का निर्णय कर लेते हैं, लेकिन मन के बिना वे हेयोपादेय का ज्ञान नहीं कर सकते शिक्षित नहीं हो सकते, सम्बोधन को नहीं सुन सकते।

१५०९. तनाव के कारण निद्रा भाग जाती है, मन को ठेस पहुँचने पर भी निद्रा भाग जाती है।

१५१०. मन से कहो ऐसा सोचो जिसमें कारण बंध न हो, निर्ममत्व को अपनाओ मात्र ज्ञाता-द्रष्टा बने रहो।

१५११. मन की चाल को समझना बहुत कठिन है, लेकिन उसे जो समझ ले वह ज्ञानी है।

१५१२. राजा और महाराजा कभी अपने मन पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे इस बात को जानते हैं कि मन धर्म से नहीं कर्म से प्रेरित होता है।

१५१३. नीति से काम लिया जायेगा तो मन सही काम कर सकता है, वरन् वह उछल-कूद करता ही रहेगा।

१५१४. मन बाह्य पदार्थों में जाता है तो अनर्थ के लिए ही जाता है।

१५१५. जब मन विषय कषायों से ऊपर उठ जाता है तब स्थिर हो जाता है।

१५१६. जिसका मन सिद्ध है उसे मंत्र सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं है, और जिसका मन सिद्ध नहीं है और मंत्र सिद्ध करता है तो वह स्वयं को घातक सिद्ध होता है।

१५१७. मनोबल जो प्राण है, उसे भी बचाओ। ज्यादा मत सोचो, क्योंकि मन के माध्यम से ज्यादा सोचने से, तनाव रखने से मन रूपी प्राण का घात होता है।

१५१८. ध्यान करने वाला भी मन है और ध्यान में विघ्न डालने वाला भी मन है।

१५१९. मन की अव्यवस्था के कारण सभी व्यवस्थायें होने पर भी उनका फायदा नहीं उठा सकते। मन की अशुद्धि के कारण आहार अशुद्ध हो जाता है।

१५२०. एक साथ स्वाहा बोलते हैं तो मनुष्य के मन की शांति से देवता भी आनंद बरसाने लगते हैं। उस आनंद को आप मन की शुद्धिपूर्वक बोलते हुए लीजिए।

१५२१. अंदर के स्वभाव के अनुरूप बाह्य स्वरूप दिखाई देने लगता है।

१५२२. जब तक मन की कलुषता, कटुता, ईर्ष्या का भंजन (मंजन) नहीं करोगे तब तक कल्याण नहीं होगा।

१५२३. मन शुद्ध करने वालों को भजन करने की आवश्यकता नहीं है।

१५२४. मनकृत् प्रयोजन यदि शुद्ध नहीं होता तो सभी अशुद्ध है।

१५२५. शुद्धि से आहार की उदीरणा हो जाती है। यदि आहार के पूर्व आपका उपयोग शुद्ध नहीं हो

तो वह आहार विष बन जावेगा।

१५२६. मन को नियंत्रण में रखने से सारी विराधनाएँ, आराधनाएँ बन जाती हैं।

१५२७. नियंत्रण दूसरे पर नहीं अपने मन पर रखो यह संयम है। यह अपने कोर्स की बात मानी जाती है। दूसरे पर नियंत्रण रखना परिग्रह है। दूसरे को नियंत्रण में रखना कमजोरी है।

१५२८. मन को सुला दो फिर आत्मा अपना काम कर जाती है।

१५२९. मन को सुलाने वाला ए-वन होगा। मन को विश्राम देना साधक का मुख्य कार्य है।

१५३०. कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामित्व इन तीनों से मन को खाली कर दो क्योंकि ये ही संसार में संघर्ष की जड़ है।

१५३१. मन की खुराक का नाम पसंदगी है। वह इसी पसंदगी पर जीना चाहता है।

१५३२. पाप की मजबूत गठरी मन के बिना नहीं बंधती है।

१५३३. मन के खेल के सामने सारी आराधनायें फैल हो जाती हैं और मन को नियंत्रित करने से सारी विराधना आराधना बन जाती है।

१५३४. मन को मंत्रित नहीं करना बल्कि नियंत्रित करना है।

१५३५. संसारी प्राणी अपने चित्र की चिन्ता तो करता है लेकिन चित्त की चिन्ता नहीं करता।

१५३६. प्रशस्त मन वाले को दवाई की आवश्यकता नहीं होती।

१५३७. मोह, क्षोभ से रहित आत्मा की शक्ति का नाम मन है।

१५३८. विक्षिप्त मन भ्राँति है, विक्षिप्त मन तत्त्व निर्णय नहीं कर सकता। भ्राँति ही कष्ट है।

१५३९. मन बहुत पुण्य के बाद प्राप्त होता है। उसे अविक्षिप्त बनाना और कठिन है।

१५४०. मन बूढ़ा नहीं होता। जुबान बंद हो गयी पर मन जवान ही बना रहता है।

१५४१. जो मन से अस्वस्थ है वह तन से भी अस्वस्थ हो जाता है।

१५४२. जब मन रूपी सरोवर तरंग रहित होता है, तभी भगवान् आप से प्रसन्न होते हैं।

१५४३. माना मन है लेकिन मनमाना नहीं करना चाहिए, मन को मनाना चाहिए फिर वह महामना बन जावेगा।

१५४४. सम्यग्दर्शन मन वाले को ही होता है। (संज्ञी होना अनिवार्य है सम्यग्दर्शन के लिए)

१५४५. मनोहर मन के हरण बिना विघ्नहर (प्रभु) का दर्शन सम्भव नहीं है।

१५४६. मन के द्वारा माँग मत करो, मन का संघर्ष ही संसार में भटका रहा है।

१५४७. मनुष्य मनु की संतान है, इसलिए हे मानव ! तू मन का गुलाम नहीं बन। बल्कि मन को शिष्य, गुलाम बनाओ, क्योंकि मन का दास वासना का दास होता है।

१५४८. प्रभु के पास हम मन के साथ न जावें मन को नियंत्रण में रखकर जावे और प्रभु के चरणों में समर्पित कर दें। मन के द्वारा हम सही मूल्यांकन नहीं कर पाते।

१५४९. मन की खुराक अहंकार होती है। मन उपयोग की धारा है जिसमें अभिमान की धारा बहती रहती है।

१५५०. जो मन उपासना की पद्धति के अनुसार चलता है वह हल्का हो जाता है।

१५५१. भगवान् की पहचान आँख से नहीं मन के द्वारा होती है।

१५५२. मनोरम नहीं मनोहर चाहिए, राम को चाहिए रमन को नहीं।

१५५३. भगवान् के सामने मन गायब हो जाना चाहिए, समर्पित हो जाना चाहिए। संसार का सार व बड़प्पन इसी में (समर्पण में) है।

१५५४. मन आपकी निधि चुराने वाला है, वह भगवान् के चरणों में समर्पित कर दो। हे प्रभु यह आपके चरणों में आज समर्पित करता हूँ इसी के कारण आज तक आपकी पहचान नहीं कर पाया हूँ। प्रभु आचरण की धरती पर खड़े हैं।

१५५५. तीन लोक में कहीं मत झुको पर त्रिलोकीनाथ के सामने तो झुको।

१५५६. मन, रूपी पदार्थों को चाहता है पर उन्हें देख नहीं सकता। आँखें देखती हैं मन तो वासा ही खाता है।

१५५७. मन का हरण जिस दिन हो जावेगा वह सौभाग्य का दिन माना जावेगा। उस दिन से आप भगवान् की उपासना के लायक हो जाओगे। शांति की आवश्यकता आत्मा को है, मन को नहीं।

१५५८. मन की रुचि की ओर जाना एकमात्र पागलपन है।

१५५९. न मनः इति नमनः। जब मन नहीं रहता तो सिर झुक जाता है, नहीं तो मनमाना करने लगता है।

१५६०. धर्म को पालने में कोई शर्त नहीं बस मन वश में रहे, अपना बना रहे, दुनियाँ के सपने में न रमे।

१५६१. मन जवाब देने लगता है पर ध्यान रखना मन कमजोर प्राणी है, वैसे तो अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है।

मनुष्यभव

१५६२. मनुष्यभव बुखार का डाऊन (सामान्य) होना है, इसी में आत्मा का इलाज संभव है।

१५६३. मनुष्य जीवन का एक पल और तीन लोक की सारी सम्पदा दोनों की एक-सी कीमत है, इसलिए इसका सदुपयोग करो।

१५६४. मनुष्य जीवन दुर्लभता से प्राप्त होता है, प्रयोजनहीन कार्य करने से पुनः प्राप्त नहीं होता।

महाव्रत

१५६५. अहिंसा महाव्रत सभी व्रतों का मूल है, इसलिए अहिंसा को परम धर्म कहा है। इस भव में

ही इसका पालन हो सकता है।

१५६६. महाव्रतियों की शोभा अपनी काय से ममत्व हटाकर छहकाय के जीवों की रक्षा करने में है।

१५६७. व्रत, समिति, तपादि अहिंसा महाव्रत की वृद्धि (रक्षा) के लिए ही होते हैं।

१५६८. जिस प्रकार गाड़ी एक बार खरीदी जाती है, लेकिन उसमें पेट्रोल बार-बार डाला जाता है। ठीक उसी प्रकार महाव्रत एक बार लिए जाते हैं पर उनकी पाँच-पाँच भावनाओं को बार-बार चिन्तन में लाना पड़ता है।

१५६९. संकल्पपूर्वक महाव्रत लेने वाले की उपयोग प्रणाली बहुत शुद्ध हुआ करती है।

१५७०. महाव्रत निवृत्ति रूप है, पाँच पाप की निवृत्ति का नाम महाव्रत है।

१५७१. तीन गुप्ति, पाँच समिति ये आठ मातायें महाव्रती रूप बालक का पालन करती हैं।

१५७२. व्रती को भावों के माध्यम से मन से भी विदेश नहीं जाना चाहिए।

१५७३. दिग्व्रत के माध्यम से निष्प्रयोजन पाप से बच जाते हैं।

१५७४. दिशाओं की सीमा बाँध लेने पर उसके बाहर के पाप से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है।

१५७५. मोह को काटने का अमोघ शस्त्र है व्रत-संकल्प।

१५७६. संकल्प लेने से पूर्व में बंधे कर्म भी हिलने लगते हैं।

माया, मायाचारी

१५७७. मायाचारी करने वालों को दुःख ही दुःख मिलता है, ऐसा जानकर मायाचारी का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।

१५७८. मायाचारी अनुमान के माध्यम से प्रमाणित हो जाती है, इसलिए ये मत समझो कि मेरी मायाचारी कोई नहीं जान सकता। जैसे चन्द्रमा को पूर्ण निगलते ही ज्ञात हो जाता है कि राहु आ गया है, राहु छिप नहीं सकता।

१५७९. मायाचारी प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती, अन्य कषाय, क्रोध, मानादि तो देखने में भी आ जाते हैं।

१५८०. तिर्यञ्चगति के जीव तीन लोक में सभी जगह रहते हैं, यह माया की ही महिमा है।

१५८१. व्रती माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों से रहित होता है।

१५८२. माया की पोशाक पहनकर ही झूठ, चोरी की जाती है।

१५८३. मायाचारी करने से यश समाप्त हो जाता है, जैसे मारीचि मायाचारी से मृग बनकर आया तो उसका यश समाप्त हो गया।

मिथ्यात्व

१५८४. मिथ्यात्व मोक्षमार्ग में आतंकवादी की भाँति है, वह सभी कषायों को अपनी ओर कर लेता है। ध्यान रखना यह आतंकवादी अपने आत्म घर में घुसने न पाये।

१५८५. मिथ्यात्व छूटने से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, अविरति छूटने से व्रत होता है, फिर दक्षता से प्रमाद छूटता है, फिर कषायों के नाश से योग निरोध होता है, आस्रव रुकता है, तभी यह जीवन बंधन मुक्त होता है।

१५८६. जिसमें मिथ्यात्व रूपी अंधकार विद्यमान है और क्रोधादि सर्प जिसमें निवास करते हो, ऐसे माया रूपी महान् गड्ढे से सदा बचना चाहिए।

१५८७. मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष के कारण जन्म-मरण रूपी फल प्राप्त होता है और सम्यग्ज्ञान के द्वारा वैराग्य के द्वारा अजर-अमर पद प्राप्त होता है।

१५८८. मिथ्यात्व के उदय में ही ज्ञान मिथ्या होता है, ऐसा नहीं बल्कि अनन्तानुबन्धी की उदीरणा होने पर भी ज्ञान मिथ्या हो जाता है। इसलिए आत्म-हितैषी को जैसे मिथ्यात्व से बचना चाहिए, वैसे ही अनन्तानुबन्धी कषाय से भी बचना चाहिए।

मुनि

१५८९. संकल्प पूर्वक महाव्रत लेने वाले की उपयोग प्रणाली बहुत शुद्ध हुआ करती है, थोड़ा दोष लगता है तो तत्काल धुल जाता है।

१५९०. मुनिराजों की चर्या देखकर आलोचकों की बुद्धि ठिकाने आ जाती है, श्रद्धान जागृत हो जाता है।

१५९१. स्वप्न में भी इस दिगम्बर रूप का इस ''मुनि मुद्रा'' का दर्शन हो जाये तो महान् सौभाग्य समझना।

१५९२. मुनि के दर्शन होते ही हमें अपना स्वभाव ज्ञात हो जाता है। सभी को इसी रास्ते पर आना होगा यदि शाश्वत सुख चाहते हो तो।

१५९३. बहुत बड़ा पुण्य है जो इस अवसर्पिणी काल में भी धर्म करने का भाव हो रहा है और जो मुनि बने हैं, उनके पुण्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

१५९४. जिन्होंने हेयोपादेय को जान लिया, पाप क्रियाओं से रहित हो गये हैं, आत्महित में लीन हो गये हैं, इन्द्रिय व्यापार से रहित हो गये हैं, स्व-पर हित जिसमें निहित हो तभी बोलते हैं, संकल्प विकल्प से रहित है, वे ऐसे मुनि ही मुक्ति के पात्र हैं।

१५९५. संसार के समस्त पदार्थों से राग भाव छोड़ दो तो ज्ञानी, मुमुक्षुपना नाम सार्थक होगा, वरन् बुभुक्षुपना ही बना रहेगा।

१५९६. छोटी उम्र में जो दीक्षा ले लेते हैं, उन्हें भी मनोज्ञ साधु कहा जाता है।

१५९७. सुख-दुःख का वेदन करते हुए भी जो हर्ष-विषाद नहीं करते, वे मुनिराज अलौकिक सुख का अनुभव करते हैं, इसे अतीन्द्रिय सुख कहते हैं।

मोह

१५९८. मोह छोड़ने का नाम है, जोड़ने का नहीं।

१५९९. मोह नहीं तो बंध भी नहीं, फिर मोक्ष भी कहीं दूर नहीं।

१६००. शोर-सूतक मोह का ही परिणाम है, इसलिए निर्मोही महापुरुषों को कोई शोर-सूतक का विधान नहीं है।

१६०१. मोह के कारण राज्य पाने की इच्छा से प्राणी कुछ भी कर सकता है, वह मरने एवं मारने से नहीं चूकता।

१६०२. मोह आपके घर में कब से है ? जब से आप हो तब से। मोह कहता है मुझे घर में से कैसे निकाल सकते हो? जब ४० साल तक घर में रहने वाला किरायेदार मालिक जैसा बन जाता है। इसलिए हर क्षण मोह को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

१६०३. मोह रूपी अग्नि ज्ञेय रूपी अग्नि (ईंधन) के अभाव में भी जलती रहती है।

१६०४. यह शरीर मोह रूपी सर्प का बिल है।

१६०५. शरीर के प्रति जिसे मोह होता है, वही अपना संसार बसाता है।

१६०६. यह मनुष्य पर्याय मोह पर प्रहार करने का एक अनोखा अवसर है।

१६०७. नाता और रिश्ता, पुराना मोह रिसता, बिना मोह में रिसे, संसार का रिश्ता चलता ही नहीं है।

१६०८. दृढ़ श्रद्धान वाले को मोह हटाने में दर्द नहीं होता, इसमें पढ़-अपढ़ दोनों एक हैं।

१६०९. सबसे गहन मोह है, जो व्रतों को छुड़वाकर पुनः विषयों में फँसा देता है। जैसे रावण को मोह के कारण समझाने पर भी समझ में नहीं आया, यह मोह का ही परिणाम है।

१६१०. आश्चर्य यह नहीं है कि प्राणी विष को छोड़कर अमृतपान करता है, बल्कि आश्चर्य यह है कि अमृत को छोड़कर पुनः विषय रूपी विषयों को पीने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन मोही के लिए यह कोई आश्चर्य नहीं है।

१६११. यह मोह की ही महिमा है कि संसारी प्राणी ज्ञान के माध्यम से बाह्य पदार्थों को ही खोजता रहता है और वस्तु स्वरूप से अनभिज्ञ बना रहता है।

१६१२. जब तक मोह रूपी बीज विद्यमान है, तब तक संसार वृक्ष हरा-भरा बना रहेगा।

१६१३. सम्यग्दर्शन और चारित्र के क्षेत्र में जो विपरीत दिखाता है, उसका नाम है मोह।

१६१४. राग-द्वेष से बचना चाहते हो तो किसी से भी, शरीर से भी मोहित नहीं होना चाहिए। आत्मा से बाहर देखने से मोह आकर धमक लेता है, शरीर दिखने लगता है।

१६१५. मोह एक प्रकार का घाव है उसे ठीक करने के लिए त्याग रूपी मलहम पट्टी करना चाहिए और परिग्रह आदि संक्रमण से बचना चाहिए, क्योंकि परिग्रह आदि मोह रूपी घाव को बढ़ाते ही जाते हैं।

१६१६. अनादिकाल से यह मोह का घाव आत्मा में बना हुआ है, इसे ठीक होने में बहुत समय लगेगा! त्याग, तपस्या के बिना यह ठीक नहीं हो सकता।

१६१७. सब कुछ लांघा जा सकता है, पर मरण को लांघा नहीं जा सकता, फिर किसी के मरण पर रोना-धोना अविवेक ही है।

१६१८. शरीर बार-बार नहीं चाहते हो तो शरीर से मोह छोड़ दो।

१६१९. उद्देश्य ठीक न होने से प्रतिस्पर्धा कषाय की ओर ले जाती है। मोह के उदय से कषाय होती है, अतः सबसे पहले मोह को जीतो।

१६२०. यदि मोह शरीर है तो कषाय उसकी छाया है, शरीर नष्ट होगा तो छाया अपने आप नष्ट हो जायेगी, वैसे ही मोह को जीतने पर कषाय भी चली जावेगी।

१६२१. मोह के आवरण में रहने वाला व्यक्ति क्रोध, मान, माया, लोभादि को भी अपनाता है और मरण कर तिर्यञ्च आदि गतियों में चला जाता है।

१६२२. मृग पूँछ के बालों से अधिक मोह रखता है, यदि उसकी पूँछ झाड़ी में फँस जाती है तो वह मोह के कारण बाल टूट न जाये ऐसा सोचकर खड़ा रहता है और शेर आकर उसे अपना शिकार बना लेता है।

१६२३. स्नेह(तेल) के निमित्त से दीपक प्रकाश देते हुए भी कज्जल पैदा करता है। वैसे ही साधु जीवन दीपक की भाँति है, थोड़ा-सा स्नेह भी बहुत बड़ा दोष माना जाता है, क्योंकि स्नेह का अतिरेक कषाय का रूप धारण कर लेता है।

१६२४. मोह को छोड़े बिना अध्यात्म पर चलना काकस्नान के समान है।

१६२५. मोह गाफिल भाव का नाम है और जो वस्तु अच्छी लगे उसके प्रति आकर्षित होना राग भाव है।

१६२६. मोह को कम करने का उपाय करना ही मोक्षमार्ग माना जाता है।

१६२७. मोह से ज्यादा मत डरो बल्कि मोह के स्वभाव को समझो।

१६२८. असंयम की दशा में भी दर्शनमोहनीय का क्षय हो जाता है। लेकिन संयम के बिना चारित्रमोहनीय का क्षय नहीं होता। (अन्तानुबन्धी को छोड़कर)।

१६२९. मोहनीयकर्म का बंध अनेक कर्मों के बंध का कारण है।

१६३०. मोह का अर्थ विषमता में प्रवेश करना और समता से दूर हटना है।

१६३१. निर्दयता के साथ मोह पर प्रहार किया जाता है।

१६३२. किसी भी पदार्थ से गाफिल होना मोह है।

१६३३. मोह को नष्ट करने का चक्र जब प्राप्त होता है तब दुनियाँ का चक्र छूट जाता है।

मोक्षमार्ग

१६३४. मोक्षमार्ग में कोई बड़ा फावड़ा नहीं चलाना पड़ता मात्र दृष्टि को बदलना होता है।

१६३५. मोक्षमार्ग में अभिमान छोड़कर आत्मध्यान में लगना चाहिए, वह मैनासुंदरी थी जो कहती थी मैं ना सुंदरी हूँ।

१६३६. साधु सदा सुखी रहते हैं क्योंकि उन्हें यह विश्वास रहता है कि मैं जिस मार्ग पर चल रहा हूँ इसके माध्यम से धीरे-धीरे कर्म बंध से छूट रहा हूँ।

१६३७. दुर्बल मन वाले को मोक्षमार्ग में ही संहनन याद आता है, मोह मार्ग में नहीं और मोक्षमार्ग में अभी कम उम्र है ऐसा सोचता है, विषय कषाय में उम्र नहीं देखता।

१६३८. सुख चाहने वाले को विद्या प्राप्त नहीं होती और विद्या प्राप्त करने वाले को सुख प्राप्त नहीं होता, ऐसा ही मोक्षमार्ग में है।

१६३९. मोक्षमार्ग में विषयों से ऊपर उठना प्रथम वर्ष की परीक्षा है और कषायों से ऊपर उठना फाइनल परीक्षा है।

१६४०. शरीर और शरीर से सम्बन्धित लोगों से नाता तोड़ने का नाम ही मोक्षमार्ग है।

१६४१. मोक्षमार्ग टेड़ा नहीं है बिल्कुल सीधा है, ढाईद्वीप में कहीं से भी देखो बिल्कुल सीधा है।

१६४२. मोक्षमार्ग में मोह, मद व मत्सर के लिए कोई स्थान नहीं है।

१६४३. मोक्षमार्ग की यात्रा में ज्ञान हमारा दर्शक है, लज्जा/मर्यादा मित्र के समान है, तप-संबल (नास्ता) है, चारित्र पालकी है। २८ मूलगुण वीतरागता रक्षक हैं, समता शीतलता से युक्त हवा है और छाया दया भावना है, स्वर्ग पड़ाव के समान है, बिना बाधा के, बिना दुर्घटना के यह मार्ग सीधा मोक्ष पहुँचता है। देवों का काम यही है कि सही मार्ग पर चलने वालों की व्यवस्था करते जाना।

१६४४. आज इस मार्ग में जुगनू का प्रकाश है, तूफान, हवा-पानी और चारों ओर दलदल है, फिर भी चलना तो है ही। भगवान् को याद करते चलो कि हे भगवान् ! ऐसे रास्ते को आप कैसे पार कर गये। लघुता को प्रकट करते हुए और दूसरों को भी मार्ग प्रशस्त करते हुए चले गये, ऐसी भगवान् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए चलो।

१६४५. यदि आप ज्ञेय से नहीं चिपकते हो तो मोक्षमार्ग में आनंद ही आनंद है।

१६४६. मोक्षमार्ग में अवधिज्ञान एवं मनःपर्ययज्ञान अनिवार्य नहीं है इनके बिना भी मुक्ति मिल जाती है।

१६४७. यह श्रमणचर्या तब से है जब से विश्व विद्यमान है।

१६४८. इस मयूर पिच्छिकाधारी श्रमण जहाँ भी जाते हैं, वह भूमि पवित्र हो जाती है।

१६४९. साधुओं का रुकना और विहार होना दोनों श्रावकों की वजह से ही होता है।

१६५०. मुनिमुद्रा के द्वारा कभी किसी को क्षति नहीं पहुँचती।

१६५१. रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रन्थ में मोक्षमार्ग को ही धर्म कहा गया है।

१६५२. भटककर वापस आने की अपेक्षा चलने से पूर्व ही रास्ते की पहचान कर लो तो अच्छा होगा।

१६५३. मोक्षमार्ग में सम्यग्दृष्टि कभी थकता नहीं बल्कि और मजबूती लाता है।

१६५४. जब पाप की क्रिया से बच रहे हैं तब उस समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र भी काम कर रहे हैं, ऐसा समझना चाहिए।

१६५५. मोक्षमार्ग में संसार (स्वर्गादि) का सुख तो नास्ता की तरह है, भोजन तो मोक्ष सुख ही है। नास्ता में ही संतुष्ट नहीं होना चाहिए, क्योंकि जिस कार्य के लिए आये हो थोड़े से प्रलोभन के कारण उसे भूलना नहीं चाहिए।

१६५६. सम्यग्दर्शन रूपी टिकिट को अच्छे से सम्भालकर रखना चाहिए, क्योंकि मोक्ष का रास्ता लम्बा है।

१६५७. मोक्षमार्ग में मन के द्वारा पंचेन्द्रिय विषय न आवे यह महत्त्वपूर्ण साधना मानी जाती है। मोक्षमार्ग में पंचेन्द्रियों का व्यापार रुकना चाहिए।

१६५८. मोक्षमार्ग में कभी-कभी मन भी साथ नहीं देता दूसरे की तो बात ही क्या ?

१६५९. समयसार मोक्षमार्ग में चलने वाले व्यक्ति को पहली किताब है। पहाड़ चढ़ते समय भार कम करना पड़ता है वैसे ही मोक्षमार्ग में (परिग्रह रूपी) भार उतारकर ही चला जा सकता है।

१६६०. जो हमारे रास्ते में बाधक है वह परिग्रह ही है ऐसा मानकर चलो और रास्ते में हल्के/फुल्के होकर चलो तभी आनंद आवेगा।

१६६१. मोक्षमार्ग का प्रतिपादन शब्दों के माध्यम से नहीं हो सकता बल्कि आस्था के माध्यम से देखना चाहो तो दिख सकता है।

मोक्षमार्गी

१६६२. कहीं के, न होना ही मोक्षमार्गी होना है किसी से भी बंधकर न रहना। बंधकर रहना हो तो देव, शास्त्र व गुरु से यही मोक्षमार्ग है।

१६६३. जिसने मोह को छोड़ दिया, उसे कभी भी धोखा नहीं हो सकता।

१६६४. मोह पर प्रहार भेदविज्ञानी ही कर सकता है और मोह छोड़ते समय वह खुश होगा।

१६६५. मोक्षमार्ग में अंतर्मुहुर्त में प्रयोग में गया बस स्वयं प्रमाण बन गया। प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं। शोध वही है जो किसी के प्रमाण सिद्धि की आवश्यकता नहीं रखता।

१६६६. स्वानुभूति में जगत् से सम्पर्क तोड़ना पड़ता है।

१६६७. मोक्षमार्ग में राह के अनुसार चाह चलेगी, अपने मन की चाह नहीं चलेगी।

१६६८. संकल्प जिस ओर जाने का है उसी लक्ष्य की ओर जाना, बीच में कितने भी प्रलोभन आवे

मन को वहाँ रोकना नहीं, डिगाना नहीं।

१६६९. जैसे रोगी को थोड़ी-सी अनुकूलता देनी पड़ती है ताकि उल्टी न हो जावे लेकिन रोगी के अनुसार नहीं चला जाता। मन ही सर्वप्रथम रोग का घर है।

१६७०. कभी कठोर चर्या से कभी मृदु चर्या से मन को बाँधा जाता है।

१६७१. मन ही ऐसा है जो आपकी सारी कमजोरियाँ जानता है और आपको (आत्मा को) दबाता जाता है। मन को दबाने वाला ही मोक्षमार्गी हो सकता है।

१६७२. जब तक साधना पूर्ण न हो जावे तब तक मन पर विश्वस्त मत होईये। जैसे इमली का पेड़ भले बूढ़ा हो जावे पर इमली की खटाई कम नहीं होती, वैसे ही शरीर भले बूढ़ा हो जावे पर मन कभी बूढ़ा नहीं होता।

१६७३. गाल पुचक जाते हैं बुढ़ापे में पर मन और मोटा होता जाता है। मन औरों को समझाता है पर स्वयं समझने तैयार नहीं होता। तप करो पर मन के अनुरूप नहीं।

१६७४. आत्मा को स्वच्छ, स्वतंत्र बनाना चाहते हो तो मन पर लगाम लगाओ।

१६७५. मोक्षमार्ग में परीक्षाओं पर परीक्षायें हैं।

१६७६. जैसे मिलेट्री में कौन साथ जाता है कोई नहीं ? बंदूक। नौ-नौ दिन तक पानी नहीं मिलता, नींद नहीं, खांस भी नहीं सकते। भोजन का भी ठिकाना नहीं रहता। वतन की रक्षा के लिए ऐसा ही करना होता है, तन को गौण करना होता है, ऐसा ही मोक्षमार्ग में धर्म की रक्षा के लिए करना होता है।

१६७७. विद्यारथ पर आरूढ़ होकर मनोवेग को रोककर जिनधर्म के मार्ग पर चलना यही निश्चय प्रभावना है। इस प्रभावना का स्रोत भीतर है। इसी स्रोत के बारे में सोचिये, इसी से कुछ मिलने वाला है।

१६७८. मोक्षमार्गी को ऐसे साधन सामग्री नहीं रखना चाहिए जो उपयोगी न हों।

१६७९. पास की वस्तु (आत्मा) के बारे में ही सोचिये पर की ओर मत जाईये।

१६८०. प्रशंसा, निन्दा दोनों में समता रखना; मोक्षमार्ग में एक ही कोर्स है।

१६८१. सही-सही श्रद्धान आचरण के बाद बनता है।

१६८२. ऐसी साधना करो जो भविष्य को निश्चित कर दे, जो भविष्य के बारे में संदेह पैदा कर दे वैसी साधना मत करो। वर्तमान की गोद में ही भविष्य को आना है। ज्ञानी का (मोक्षमार्गी का) स्वरूप यही है कि जो विषयों के बीच में रहकर भी कीचड़पन को ग्रहण नहीं करता।

१६८३. तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय का नियम लें। स्वाध्याय कहाँ से प्रारम्भ होता है? स्व से, मैं कौन हूँ ?

१६८४. मोक्षमार्ग में प्रलोभन बहुत मिलते हैं, प्रलोभन में नहीं आना चाहिए।

१६८५. श्रद्धान के विषयों पर चल पड़ो मंजिल पा जाओगे, बीच में सुख सुविधाओं की ओर चले जाओगे तो भटक जाओगे।

१६८६. बहुत दूर तक न चलो थोड़ा ही चलो, पर सीधा तो चलो, युक्ति से चलो गुप्ति से चलो।

१६८७. मोक्षमार्ग में इतना आनंद है तो मोक्ष में कितना आनंद होगा अनुमान लगाओ।

१६८८. आज का सुख कम नहीं बस दुनिया से अवकाश लें।

१६८९. मोक्षमार्ग में सुख-सुविधा ढूँढना एक अविवेक माना जावेगा।

१६९०. बिना पढ़े लिखे भी मोक्षमार्ग पर आरुढ़ होते हैं, बस विनय और लगन चाहिए।

१६९१. संसार की लोभ-लिप्सा के लिए नहीं बल्कि आत्मोपलब्धि के लिए साधना करनी चाहिए। कौन-सी वस्तु है संसार में जो साधना से प्राप्त नहीं की जा सकती? लेकिन सच्ची साधना होनी चाहिए।

१६९२. जब साधना करने से अनंत काल की दरिद्रता मिट जाती है तब संसार का सारा वैभव उसके सामने फीका लगने लगता है।

१६९३. सही रास्ता मिलने पर, सहारा मिलने पर भी यदि आप उसका दुरुपयोग करेंगे तो कल्याण नहीं होने वाला। अपना पुरुषार्थ मात्र आत्मोपलब्धि में होना चाहिए। प्रत्येक श्वांस में आत्मा की बात करते जाओ फिर अंत में मात्र आत्मा ही रह जाती है सब छूट जाता है। इन क्षणों को दुनिया के कार्यों में नहीं लगाना।

१६९४. दुनिया में रहकर दुनिया का नहीं बल्कि अपने उत्थान का विकल्प होना चाहिए। आत्म ध्यान के लिए दुनिया के दंद-फंद छोड़ देना चाहिए।

१६९५. तनाव, पर पदार्थ को पाने में होता है, आत्म तत्त्व को पाने में तनाव गायब हो जाता है। एक बार ऐसा भोजन करो कि अनादि की भूख मिट जावे।

१६९६. शरीर, वचन, स्पर्श के बिना अपना परिचय ज्ञात करना है, वह एकान्त में बैठकर ज्ञात होता है। वह अलग ही लोक है, जिसे हमने स्वयं बनाया है।

१६९७. ऐसी चीज उपलब्ध करो फिर दुबारा अन्य कोई चीज उपलब्ध न करना पड़े।

१६९८. जिसे अपनाया हो तो उससे सुख-दुःख होगा, अपरिचित चला जाता है तो आपमें कोई परिवर्तन नहीं आता। अनुभव स्व का ही होता है पर का अनुभव तब होता है जब हम उससे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं।

१६९९. यदि भीतरी साधना जीवित है तो अभिशाप वरदान बन जाता है।

१७००. इस शरीर से भी साधना नहीं हुई तो यह वरदान अभिशाप सिद्ध हो जाता है।

१७०१. ज्ञान साधना में यश, ख्याति, विषयों की बात नहीं आती मात्र आत्मा की बात आती है।

१७०२. मैं कितना चल चुका हूँ यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि किस दिशा में चल रहा हूँ यह देखना

महत्त्वपूर्ण है।

१७०३. दूसरों को मोक्षमार्ग पर चलाने के भाव रखते हो तो पहले स्वयं को निर्दोष होना/चलना चाहिए।

१७०४. जो मोक्षमार्ग पर आरुढ़ होता है, उसे नरक, तिर्यंच और मनुष्यायु का बंध नहीं होता।

१७०५. इस मार्ग में कोई शर्त नहीं अपना मन बस अपने में रहे, अपना बना रहे। दुनिया का सपना उसमें न रहे। फिर सोलह स्वप्न देखने वालों के यहाँ जन्म हो जावेगा।

१७०६. मोक्षमार्ग प्रत्यक्ष नहीं होता, उसे दिखाया नहीं जा सकता। आत्म-संतुष्टि तभी होगी जब हम आत्मा की बात करेंगे।

१७०७. मोक्षमार्ग में शारीरिक विज्ञान महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि भेदविज्ञान, आत्मज्ञान महत्त्वपूर्ण है।

१७०८. कितने चल गये यह नहीं देखना बल्कि कितना और चलना है यह याद रखिये। इसमें दीर्घकालीन साहस की आवश्यकता है, बीच में साहस नहीं खोना।

१७०९. स्वयं को, आत्म तत्त्व को सुरक्षित रखना है और कर्मों को जलाना है यही मोक्षमार्ग है। उद्देश्य मात्र कषायों का शमन करना है। दृष्टि लक्ष्य की ओर होना चाहिए अन्य सब गौण होना चाहिए।

१७१०. इस मार्ग में आरती ही नहीं आक्रोश परिषह भी सहन करना होता है उसे भी फूलमाला के समान स्वीकारना चाहिए तभी मोक्षमार्ग चलता है।

१७११. साधना के मार्ग में साधन जुटाना मार्ग को कठिन बनाना है।

१७१२. मोक्षमार्ग में उनसे मोह रखो जो गुणों में श्रेष्ठ हैं।

१७१३. मोक्षमार्ग में बाहर से कुछ प्राप्त नहीं होता, भीतर से उद्घाटित करना होता है।

मौन

१७१४. मौन वालों को वचन शुद्धि एवं वचन सिद्धि प्राप्त होती है।

१७१५. वचन शुद्धि करने से वचन सिद्धि होती है।

१७१६. मौन पूर्वक ही भोजन करें वरन् हाजमा में गड़बड़ी होगी।

१७१७. नहीं बोलते हुए भी जो मन से बोलते रहते हैं, वे अज्ञानी माने जाते हैं और जो बोलते हुए भी आत्मतत्त्व में स्थिर रहते हैं, वे ज्ञानी कहलाते हैं।

याचना

१७१८. गुफायें ही साधु के घर हैं, फिर घर आदि की याचना क्या करना ?

१७१९. प्रभु से प्रार्थना, याचना करो बोधि, समाधि की किसी और से नहीं।

१७२०. जो व्यक्ति माँगता है, याचना करता है, वह परमाणु से भी छोटा होता है और जो नहीं माँगता है, वह आकाश से भी बड़ा हो जाता है, इसलिए स्वाभिमानी ही बड़ा माना जाता है।

१७२१. महास्कंध तीन लोक माना जाता है, लेकिन उससे बड़ा महास्कंध वह है जो कभी याचना नहीं करता।

१७२२. याचना करने वाले का गौरव दाता के पास चला जाता है। आहारचर्या में मान की परीक्षा अच्छी तरह से हो जाती है, आहार लेने वाले को संकोच अपने आप आ ही जाता है।

१७२३. तराजू के पलड़े यह संदेश देते हैं कि जो कोई लेता है वह नीचे की ओर जाता है और जो कुछ नहीं लेता वह अपने आप ऊपर की ओर जाता है।

१७२४. धन थोड़ा है, उससे सभी की इच्छा पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए उसकी आशा रखने की अपेक्षा दरिद्र रहना ही ठीक है। संतोष धारण करना ही एक मात्र उपाय है, इसी से तृप्ति मिलेगी।

१७२५. स्वाभिमान एक ऐसा धन है जो कभी लुट नहीं सकता, लेकिन याचना करने से स्वाभिमान भी नहीं रहता।

१७२६. जिस वस्तु की आशा है उस वस्तु को पहले छोड़ दो, तभी आपके पास अयाचकपना बना रह सकता है।

१७२७. आत्म वैभव को छोड़कर जड़ वैभव की याचना करना अज्ञान का प्रतीक है।

१७२८. दान देकर बदले में कोई भी कामना नहीं रखनी चाहिए।

१७२९. अनशन का अर्थ है इच्छा के बिना ही आहार ग्रहण करना, यह अध्यात्म की अनोखी कला है।

१७३०. इस जीव को अपनी आत्मशक्ति और वैभव का गौरव नहीं है, इसलिए यह याचक वृत्ति नहीं छूटती।

१७३१. व्रत पालन करने वालों को कुछ याचना करने की आवश्यकता नहीं होती, उन्हें सब कुछ अपने आप उपलब्ध हो जाता है।

१७३२. निर्धनता ही जिनका धन है, वे साधु परमेष्ठीधन्य हैं, ऐसे धनी के चरणों में तीन लोक का वैभव आने को मचलता है।

१७३३. हे आत्मन्! थोड़ी प्रतीक्षा कर लो, इस भव में तप कर लो, फिर स्वर्ग में तो भोग मिलना ही हैं। संसार में सुख तो पानी की भाँति हैं और मोक्ष सुख भोजन है, भोजन की प्रतीक्षा करो, पानी मत पीओ वरन् भोजन नहीं मिलेगा।

१७३४. दीनता और अभिमान से ऊपर उठने वाली लहर का आनंद अलग ही हुआ करता है।

१७३५. भारतदेश से संस्कारों का निर्यात तो करो लेकिन विदेशी संस्कारों का आयात मत करो, इसी से देश में संतोष और शांति आयेगी।

१७३६. काली मिट्टी से तो हाथ धो सकते हैं लेकिन पीली मिट्टी से (सोना) तो मन तक मैला हो जाता

है।

१७३७. चाहने वालों को ही धन का महत्त्व है, न चाहने वालों को तो वह मिट्टी है।

१७३८. तृष्णा की खाई आज तक नहीं भर सकी और न कभी भर सकती है, वह तो मात्र स्वाभिमान के द्वारा ही भरी जा सकती है क्योंकि स्वाभिमानी कभी आशा नहीं रखता है, वह तो स्वाभिमान को ही अपना धन मानता है।

१७३९. यहाँ आशीर्वाद से ही लोग संतुष्ट हो जाते हैं और घर में कभी भी आप लोग धन से संतुष्टि का अनुभव नहीं करते। इससे सिद्ध होता है कि संतुष्टि धन से नहीं धर्म से ही प्राप्त हो सकती है।

योग्यता

१७४०. योग्य बनने के लिए पुरुषार्थ, प्रबंध करना चाहिए।

१७४१. स्वार्थ की दुनिया में योग्य/अयोग्य का मूल्यांकन भी नहीं होता।

१७४२. योग्यता के अभाव में परिणाम ठीक नहीं निकलेगा।

१७४३. जमीन अच्छी नहीं होती तो उसमें डाला गया बीज फलता नहीं और उसका महत्त्व भी घट जाता है। मुक्ति को पाना तभी संभव है जब हम उस योग्य हो जायें।

१७४४. उपकार उसी पर किया जा सकता है जो उपकार का पात्र हो।

१७४५. उस पर उपकार करो जो कम से कम कृतज्ञता तो ज्ञापित करे।

१७४६. प्रत्येक पर्याय कठिनाइयों के ढेर होती है, इसका उपयोग करना बहुत कठिन होता है।

१७४७. इस मनुष्य पर्याय में आँखें खुल जावें तो खुल जावें वरना पता नहीं आगे क्या होगा? हमारे पास योग्यता होते हुए भी यदि हम उसका उपयोग नहीं करते तो पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

१७४८. अपनी योग्यता न समझने पर अच्छे-अच्छे भी अवसर चूक जाते हैं।

१७४९. स्वाभिमान की ओर देखो तो अपने आप शक्ति जागृत हो जाती है।

१७५०. सभी के प्रति मैत्री रखें लेकिन गुणियों के प्रति प्रमोद भाव रखें। किसी में एक छोटा-सा भी गुण दिखता है तो उसके प्रति प्रमोद भाव होना चाहिए।

१७५१. करने योग्य कार्य परिस्थितियों को देखकर करें।

१७५२. जो जैसी योग्यता रखता है उसकी योग्यतानुसार प्रबंध होने लगता है।

१७५३. व्यक्ति के गुणों को देखकर ही उसका गौरव, उसकी योग्यता ज्ञात होती है।

१७५४. जो शुद्ध होने की योग्यता रखता है उसे ही शुद्ध बनाया जा सकता है।

१७५५. योग्यता जब तक उद्भूत नहीं होती तब तक उस रूप मानना एक अविवेक है।

१७५६. प्रतिभा के साथ-साथ प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है क्योंकि प्रशिक्षण व्यवहारिक ज्ञान

से ओतप्रोत हुआ करता है।

१७५७. समय की पाबंदी सभी को अनिवार्य है, इसलिए समय की कीमत करना सीखो।

१७५८. समय पलटने पर हीरे भी काले कोयले बन जाते हैं।

रत्नत्रय

१७५९. रत्नत्रय पर भरोसा आत्मा का रहे, मन का नहीं मन तो तस्कर है।

१७६०. आज भी पंचमकाल में, भरतक्षेत्र में रत्नत्रयधारी भावलिंगी मुनि हैं। ऐसा पूर्ण श्रद्धान रखना चाहिए।

१७६१. रत्नत्रय तो वही है भले आज हीन संहनन हो।

१७६२. बाजार में सोना-चाँदी रत्न तो मिल सकते हैं, लेकिन सम्यग्दर्शन आदि रत्न नहीं मिल सकते। रत्नत्रय तो आत्मा को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता।

१७६३. प्रभु कृपा, गुरु कृपा से ही यह महान् रत्नत्रय की निधि प्राप्त होती है।

१७६४. संसारी प्राणी रत्नत्रय की चाह न करके पाषाण खण्ड रूपी रत्नों की चाह करता है, अर्थात् चिंतामणि रत्न को छोड़कर काँच के टुकड़ों को प्राप्त करना चाहता है।

१७६५. रत्नत्रय को धारण किए बिना निश्चय मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता।

१७६६. रत्नत्रय की आराधना हमेशा बनी रहे, सभी साधक यही भावना रखते हैं, लेकिन जब शरीर इसके लिए साथ नहीं देता तो वह उस रत्नत्रय धर्म के लिए शरीर का साथ छोड़ देता है।

१७६७. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की काया कृश् थी पर रत्नत्रय का मावा सफेद ही था।

रस

१७६८. इस जीव को जब तक पुद्गल में रस आ रहा है, तब तक आत्मा का रस नहीं आ सकता।

१७६९. संसार के विषयों में रस लेने वाले को समयसार का रस नहीं आ सकता।

रसना इन्द्रिय

१७७०. रसना इन्द्रिय स्वयं कहती है कि बाहर रस ना। बाह्य पदार्थों में रस नहीं है और फिर भी रस माँगती है तो समझना उसके पास सिर ना (बुद्धि नहीं है) फिर भी असर ना हो तो क्या करें ?

१७७१. रसना इन्द्रिय का लोलुपी सुभौम, चक्रवर्ती की सम्पदा पाकर भी नरकगामी हुआ।

१७७२. इन्द्रियों का विषयों की ओर न जाने देना इन्द्रिय दमन कहलाता है।

१७७३. रसना इन्द्रिय पर जो नियंत्रण रखता है, वह अकारण अस्वस्थ्य नहीं होता है।

१७७४. रसना इन्द्रिय में आते ही वचन बल आ जाता है।

१७७५. स्पर्शन और रसना, भोगेन्द्रियाँ मानी जाती हैं।

१७७६. अचित्त प्रासुक भोजन (फलादि) से रसनेन्द्रिय विजय नामक मूलगुण का पालन होता है।

राग-द्वेष

१७७७. राग से संसार का पदार्थ भोग्य हो जाता है और द्वेष से अभोग्य हो जाता है, इष्टानिष्ट कल्पना करने से ऐसा हो जाता है।

१७७८. राग-द्वेष का नाम प्रवृत्ति है और इनके अभाव का नाम निवृत्ति है।

१७७९. पर-पदार्थों से राग या आकर्षण पाप के लिए ही होता है।

१७८०. बुद्धिपूर्वक राग-द्वेष करना छोड़ दो, फिर धीरे-धीरे अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष होना भी छूट जायेगा।

१७८१. ज्ञानियों की होड़ (स्पर्धा) राग-द्वेष कम करने में लगी रहती है।

१७८२. राग-द्वेष कम करना ही स्वभाव की ओर जाना है।

१७८३. राग-द्वेष से कर्म बंध होता है, इसके फलस्वरूप शरीरादि मिलते हैं, इसी का नाम संसार है।

१७८४. संसार की चक्की को बंद करना चाहते हो तो राग-द्वेष का कनेक्शन हटा दो।

१७८५. राग-द्वेष रूपी बोझ को उतारने (हटाने) का नाम चारित्र है, धारण करने का नाम नहीं।

१७८६. हमारे जीवन की नाव राग-द्वेष रूपी पानी से पूर्ण खाली होनी चाहिए, तभी संसार सागर से पार हो सकते हैं।

१७८७. राग-द्वेष के बहाव में बहने वाला कभी भी नदी पार नहीं कर सकता।

१७८८. विषयों में रस तब तक आता है जब तक राग मौजूद रहता है।

१७८९. रुचि होने पर, राग होने पर, गंदी वस्तु में भी गुण दिखने लगते हैं।

१७९०. जैसे चुनाव में पर पक्ष की बात अच्छी नहीं लगती, वैसे ही साधु को राग-द्वेष व मोह की बात अच्छी नहीं लगनी चाहिए, वरन् पर-पक्ष की ओर जाने से आपकी हार निश्चित है।

१७९१. समता और ध्यानाग्नि के माध्यम से राग-द्वेष रूपी तुषार से बचा जा सकता है।

१७९२. राग वह बारुद है, जिस पर वह बरस जाये, वह जल जाता है।

१७९३. राग की पहचान करने के लिए रागी की दशा देख लो, राग की अपने आप पहचान हो जायेगी, क्योंकि रागी हमेशा दुःखी रहता है, रागी घर से नहीं निकल पाता, अंत में निकाल दिया जाता है।

१७९४. राग बिना भी जी सकते हो-जैसे निर्धूम अग्नि।

१७९५. राग-द्वेष से ऊपर उठने वालों को जड़-पदार्थों से भी ऊपर उठना चाहिए, ममत्व का त्याग करना चाहिए।

१७९६. रोग से मुक्ति चाहते हो तो कुपथ्य को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, वैसे ही दुःख से मुक्ति चाहते हो तो दुःख के कारण राग-द्वेष को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

१७९७. राग-द्वेष की कारणभूत वस्तुओं को मत हटाओ बल्कि उनसे अपनी दृष्टि को हटाओ,

कर्मबंध से बच जाओगे।

१७९८. राग-द्वेष का आह्वान हमारी कमजोरी को प्रदर्शित करता है, मतलब यह हुआ वस्तु आपसे मतलब नहीं रखती आप उससे मतलब रखते हैं।

१७९९. इस मार्ग पर राग-द्वेष को छोड़ने के उद्देश्य से चल रहे हैं तो बाह्य से सम्बन्ध पहले हटाना चाहिए।

१८००. घड़ी का पैंण्डूलम दायें-बायें होता रहता है, इससे सिद्ध होता है कि घड़ी चल रही है। वैसे ही राग-द्वेष चलता रहता है तो इससे सिद्ध होता है कि कर्म बंध भी होता रहता है, ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।

१८०१. राग-द्वेष के कारण संसार-भ्रान्ति चलती रहती है।

१८०२. काँटा खींचकर निकाल दिया, ऊपर आ गया तो कह दिया देखो ऊपर आ गया तुम ही निकाल लो, उससे द्वेष रखकर यदि नहीं निकालोगे तो वह चाँई बन जायेगी। इसलिए दोष को (द्वेष को) गौण करके राग को निकालने का प्रयास करो।

१८०३. अधिक प्रसन्नता दिखलाना भी राग का ही रूप है, राग की ही अभिव्यक्ति है।

१८०४. अज्ञानी जीव में उपयोग की धरती पर ही राग-द्वेष रूपी अंकुर उत्पन्न होते हैं।

१८०५. राग-द्वेष से वही बच पाता है जो गुप्ति में लीन रहता है।

१८०६. वस्तु स्वरूप न जानने से वस्तु अच्छी, बुरी लगती है यह सब अज्ञान की धरती पर ही घटित होता है।

१८०७. आप सभी इतने अधिक रागी होकर भी एक अकेले महावीर प्रभु को रागी नहीं बना पाये। न हि उनके साथ हो सके और न ही उन्हें अपना बना सके।

१८०८. आज सुना है ऊपर से खूब खाते पीते रहो भीतर राग-द्वेष छूट जावेगा ऐसी मशीन आने लगी है, लेकिन इनसे सावधान रहना।

१८०९. रागादि की उत्पत्ति में आत्म तत्त्व का हाथ है, भले वह अज्ञान मूलक है।

१८१०. संसार के पदार्थों की ओर आप राग के कारण ही आकर्षित होते हो।

१८११. रागादि भाव चिन्तागत हैं, इनका विमोचन करते समय समझ में आ जाता है।

१८१२. रागद्वेष छोड़ने का नाम ही तप, साधना है।

१८१३. रागद्वेष रूपी सर्प ज्ञान व वैराग्य के मंत्र से ही रोके जा सकते हैं।

१८१४. रागद्वेष से रहित अवस्था का नाम ही अहिंसा है।

१८१५. रागद्वेष में परिणमन करने वाला बहिरात्मा है।

१८१६. निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को जो नहीं जानता वह रागद्वेष को कभी छोड़ ही नहीं सकता।

१८१७. रागद्वेष हटाने का लक्ष्य नहीं है तो उसके बिना साधना शून्य मानी जाती है। बड़ी सुकुमारता

से रागद्वेष छोड़ा जाता है ताकि आत्मा को धक्का न लगे। जैसे चावल के ऊपर की ललाई बड़ी सुकुमारता से हटाते हैं, ताकि चावल को क्षति न पहुँचे।

१८१८. बाल मात्र भी राग विद्यमान है तो सभी आगम को जानने वाला भी आत्मा को नहीं जान सकता, आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता।

१८१९. राग-द्वेष और हठाग्रह के द्वारा जो दोष होते हैं उनसे बचते रहना चाहिए।

१८२०. रागद्वेष को छोड़ने की प्रणाली आंतरिक साधना मानी जाती है।

१८२१. रागद्वेष रूपी कड़वाहट के दूर होने पर ही आत्मा का स्वाद आता है।

१८२२. पंचेन्द्रिय विषयों से मात्र राग-द्वेष का ही लाभ होता है।

१८२३. यह संसारी प्राणी रागद्वेष को जहर समझकर भी उन्हें करता ही रहता है, क्योंकि अनादिकाल से गहरे संस्कार पड़े हुए हैं और वह कर्मों की थपेड़ों से पीड़ित है।

१८२४. जिसे भूख लगी रहती है वह अच्छा/बुरा नहीं देखता, बिना रागद्वेष किये पेट भर लेता है।

१८२५. रागद्वेष करना एक अविवेकपूर्ण कार्य है, यह विवेक से जान लेना चाहिए।

१८२६. इष्टानिष्ट पदार्थों में मोह मत करो, रागद्वेष मत करो, चित्त को स्थिर करने का यही उपाय है।

१८२७. जानने के लिए तीन लोक है और छोड़ने के लिए रागद्वेष व मोह।

१८२८. संसार में कहीं भी चले जाओ इष्टानिष्ट पदार्थ हमेशा उपस्थित रहेंगे। कर्म बंध से बचने का उपाय है, इनमें रागद्वेष नहीं करना।

रास्ता

१८२९. जैसे विद्यार्थी स्वयं अपना विषय चुनता है, वैसे ही हमें संसार एवं मोक्ष का रास्ता स्वयं ही चुनना चाहिए।

१८३०. जो रास्ते पर हमेशा-हमेशा चलते रहते हैं, उन्हीं से रास्ता पूछना चाहिए।

१८३१. इस संसार में सही रास्ता मिलना बहुत दुर्लभ है, जिनके प्रसाद से यह रास्ता मिला है तो उनके गुणों की स्तुति करना नहीं चूकना चाहिए।

१८३२. वे मीलों चलकर मंजिल पर पहुँच गये बिना कुछ कहे और तुम हो कि एक कदम भी नहीं चले और रफ्तार की बात करते हो।

१८३३. सही रास्ते पर भटकना अलग है और गलत रास्ता चलना अलग है, गलत रास्ते पर भटकन के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा।

रोग

१८३४. रोगादि में होने पर साधक को कभी दुःख का अनुभव नहीं करना चाहिए, बाह्य दुःख के प्रति अचेतन हो जाना चाहिए।

१८३५. रोग हो गया तो निरामय प्रभु का ध्यान करो तभी निरोगी बन सकते हो।

१८३६. रोग है तो उसे समाप्त करने के लिए औषधि से मत डरो, क्योंकि रोग औषधि लेने से ही दूर होगा, भले ही औषधि कड़वी ही क्यों न हो ?

१८३७. औषधि रोग के लिए होती है, स्वभाव के लिए कोई औषधि नहीं होती है।

बंध

१८३८. स्निग्ध और रुक्षत्व के माध्यम से ही बंध होता है।

१८३९. राग-द्वेष से रहित होने पर ही आत्मा कर्म बंध से बच सकता है।

१८४०. आत्मा के पास राग रूपी चिकनाहट एवं द्वेष रूपी रूखापन है जिसके माध्यम से कर्मों का बंध हो रहा है।

१८४१. आत्मा अपने परिणामों से, पर पदार्थों के निमित्त से कर्मों का बंध भी कर सकता है, उन्हीं पदार्थों से कर्म की निर्जरा भी कर सकता है।

१८४२. आत्मा के पास ऐसी क्षमता विद्यमान है कि अंतर्मुहुर्त में कर्मों को नष्ट कर सकती हैं और अनंतकाल तक उन्हें मौजूद भी रख सकती है।

१८४३. कर्मों से डरने की आवश्यकता नहीं है, उन्हें समझकर निर्जरित करने की आवश्यकता है। आगे कर्म न बाँधो जो कर्म बाँधा है उसे साफ करो।

१८४४. केवली भगवान् के पास अनंत शक्ति है लेकिन आयु कर्म अपनी स्थिति तक उन्हें संसार में बाँधे/रोके रहता है।

१८४५. दो में आपस में बंध होता है, दोनों का भान उसमें नहीं होता बंध के बाद तीसरा ही होता है इसी का नाम बंध है। जैसे हल्दी चूना का मिश्रण न हल्दी का रंग न चूने का रंग बल्कि तीसरा ही रंग पैदा हो जाता है।

१८४६. राग-द्वेष रूप परिणाम ही भाव बंध है।

१८४७. कर्मबंध से छूटना चाहते हो तो रागद्वेष को कम करते जाना चाहिए।

१८४८. अंधकार, दृष्टि को प्रतिबंधित कर देता है।

१८४९. दूसरे का आधार लेना बंध का कारण है।

१८५०. अशुभोपयोग में न आ जावे इसलिए शुभोपयोग का आधार लिया जाता है, शुभोपयोग में भी कर्म निर्जरा के साथ-साथ पुण्य कर्म का बंध भी होता है।

१८५१. जो चेतन भाव है वही कर्मास्त्रव को रोकने में कारण है, उसी को निश्चय नय से भाव संवर कहा है और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण है, वह द्रव्य संवर कहलाता है।

१८५२. भाव संवर व द्रव्य संवर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को लिए हुए है।

१८५३. जिस चेतन भाव से कर्म बंधता है वह तो भाव बंध है और कर्म व आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप द्रव्यबंध है।

१८५४. आत्मा मोह से प्रभावित उपयोग के द्वारा कर्मबंध को प्राप्त होती है।

१८५५. कर्मों का बंध एवं निर्जरा अपने भावों पर आधारित है।

बुद्धिमान्

१८५६. बुद्धिमान् वही है, जिसकी बुद्धि समय पर काम कर जाती है।

१८५७. सम्यग्दृष्टि होकर भी बुद्धि सही काम तब नहीं करती जब उसका विनाश होना होता है।

१८५८. जो बुद्धिपूर्वक पाप क्रियाएँ नहीं करते, वे बुद्धिमान् कहलाते हैं।

१८५९. यदि ज्ञान होने पर भी संसारभूत पाप क्रियाएँ जिसकी रुकती नहीं हैं, वह ज्ञानी नहीं माना जाता।

१८६०. गुरु की कृपा से तो बुद्धु भी बुद्धिमान बन जाते हैं।

१८६१. क्रोध के उदय में भी जो क्रोध नहीं करता, वही बुद्धिमान् माना जाता है।

१८६२. बुद्धि के माध्यम से दुनिया को उठाना कठिन है, लेकिन उससे भी ज्यादा कठिनतम् कार्य है, अपने भावों को उठाना/सम्हालना।

वंदना

१८६३. द्रव्य वंदना के साथ मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति जुड़ी रहती है, भाव वंदना में कोई क्रिया नहीं होती। भाव वंदना शुद्ध भाव के साथ शांत बैठकर की जाती है। सामायिक के समय शुद्ध स्तवन, वंदना का अवसर मिलता है।

व्रत

१८६४. पाँच पापों का त्याग किए बिना व्रती नहीं बन सकते।

१८६५. विरति दो प्रकार की होती है, सकल विरति और देशव्रती। देशव्रती श्रावक का धर्म है और सकलव्रती होना मुनि धर्म है।

१८६६. एक व्यक्ति व्रती बन जाता है तो सारा परिवार प्रासुक/सात्त्विक हो जाता है। इससे जीवन में, परिवार में व्रत पलने लगता है, फिर आत्मा की बात रुचने लगती है।

१८६७. जिनके यहाँ सात्त्विक जीवन बना रहता है, उनके परिवार में व्रती आते रहते हैं।

१८६८. व्रत पालना विश्वास के साथ होता है, उसी विश्वास का नाम सम्यग्दर्शन है।

१८६९. विश्वास की कमी होने से व्रतों में कमी आ जाती है।

१८७०. हमारा जीवन संयत और संतुलित रहे तभी लक्ष्य प्राप्त होगा।

१८७१. व्रत ऐसा पक्का होना चाहिए जैसे कपड़े पर लगा पक्का रंग,जो कपड़ा फटने के बाद भी रहता है, उड़ता नहीं।

१८७२. व्रतियों को हमेशा अशुचि भावना का चिंतन करना चाहिए।

१८७३. व्रत पालन करने के लिए दृढ़ श्रद्धान की आवश्यकता होती है।

१८७४. सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन सुरक्षित हो तभी विरति सार्थक है।
१८७५. व्रती हमेशा माया, मिथ्या और निदान रूप तीनों शल्यों से रहित होता है।
१८७६. सम्यग्दर्शन के अभाव में पाँच पापों का त्याग सम्यक्चारित्र नहीं कहलाता।
१८७७. श्रावक के १२ व्रत होते हैं, जब उन्हें अंगीकार करता है, तभी वह व्रती माना जाता है। एक पाप के त्याग करने से व्रती संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सकता।
१८७८. व्रत के बिना समितियों का कोई महत्त्व नहीं होता, क्योंकि व्रत की रक्षा के लिए समिति होती है।
१८७९. व्रत होने के बाद भी मैं व्रती हूँ, इस प्रकार का विकल्प नहीं रहता, इसका नाम निश्चय व्रत है, जो कि शुभाशुभ रागादि विकल्प से रहित होता है।
१८८०. व्रतों में दृढ़ रहना, सदाचार का पालन करना और तत्त्वों का चिन्तन करना धर्म-ध्यान का लक्षण है।
१८८१. प्रायश्चित्त के बिना व्रतों का कोई महत्त्व नहीं होता।

विवाह

१८८२. विवाह संसार की वृद्धि में मूल कारण है।
१८८३. विवाह संतान की उत्पत्ति के लिए, कुल परम्परा चलाने के उद्देश्य के लिए होना चाहिए, वासना की पूर्ति के लिए नहीं, वरन् संसार की परम्परा कभी समाप्त नहीं होगी।
१८८४. एक बच्चे (चारुदत्त) को विवाहित करने के चक्कर में शौच कूप तक भेज दिया, यह है, मोही बंधुओं की दशा।

विनय/विवेक

१८८५. बाल्यावस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें हिताहित का विवेक नहीं रहता। युवावस्था उस वन के समान है, जिसमें यदि भटक गये तो रास्ता ही नहीं मिल पाता।
१८८६. श्रावक को भी हंस जैसा श्रोता होना चाहिए, क्षीर, नीर विवेक वाला।
१८८७. त्याग करते समय जल्दबाजी नहीं करो। बल्कि विवेक के साथ ही किसी वस्तु का त्याग करे।
१८८८. भले ही थोड़ा-सा त्याग करो लेकिन विवेक, आस्था दृढ़ता के साथ करिये उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है एवं फल भी अच्छा मिलता है।
१८८९. ड्रायवर गाड़ी अच्छी चलाता हो, लेकिन शराब पीता हो तो उससे खतरा ही समझो। वैसे ही तपस्या बहुत अच्छी हो लेकिन विवेकपूर्वक नहीं हो तो उससे खतरा ही समझो।
१८९०. विवेकशील को थोड़ा-सा भी अभिमान नहीं करना चाहिए, अतिविश्वास कभी भी लाभप्रद नहीं होता।
१८९१. राग कभी भी धर्म नहीं हो सकता, दया भी विवेक के साथ होती है।

१८९२. विनय, विवेक के साथ होती है, इसलिए विनय में भय नहीं होता।
१८९३. विनय में हाथ जुड़े होते हैं और भय में हाथ कांपते हैं।
१८९४. विनय सम्यग्दर्शन के साथ रहती है और भय कषाय के साथ रहता है।
१८९५. नय नय है, विनय पुरौधा है मोक्षमार्ग में।
१८९६. विवेक वही है, जिससे दोषों का निराकरण हो।
१८९७. विनय के पाप का घात होता है और सभी प्रकार की कलाएँ प्राप्त हो जाती हैं।
१८९८. प्रायश्चित्त लेने वाले के पास विनय गुण आ जाता है।
१८९९. सम्यग्दर्शन का निर्दोष पालन करना ही सम्यग्दर्शन की विनय है।
१९००. विनय के माध्यम से श्रुतसागर बन जाते हैं और संसार सागर को पार कर जाते हैं।
१९०१. छः आवश्यकों का पालन करना भी तप की विनय है।
१९०२. गुणाधिक के प्रति यथायोग्य विनय करना हमारी प्रसन्नता को व्यक्त करना है।
१९०३. विनय से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।
१९०४. विवेक के द्वारा दूर और पास के पदार्थों को हम निकट से जान सकते हैं।
१९०५. जीवन में आनंद चाहते हो तो ज्ञान के साथ विवेक का उपयोग कीजिए।
१९०६. इतना ही जानना विवेक है कि दूध में पानी है या पानी में दूध।
१९०७. लोभ से विवेक कुण्ठित हो जाता है।
१९०८. हम जड़ की रक्षा कर रहे हैं या जड़ से हमारी रक्षा हो रही है, इसका निर्णय करना ही विवेक माना जाता है।
१९०९. कौवे (शरीर, जड़) की चाकरी के लिए हंस (आत्मा) को रखा यह अविवेक नहीं तो क्या है ?
१९१०. जो अपने आपको नहीं जान सकता वह सबसे बड़ा जड़ (मूर्ख) माना जाता है।
१९११. किसी को अपनाने की आवश्यकता नहीं बल्कि जो अपनाया है उसको छोड़ने की आवश्यकता है, बस यही आत्म-पुरुषार्थ कहलाता है।
१९१२. पानी कहीं गया नहीं, उसे खोजने की आवश्यकता नहीं बल्कि खोदने की आवश्यकता है।
१९१३. जो आत्मा पर मोह, कषाय की पर्तें पड़ी हैं, उसे अलग करके चेतन को पाना ही सबसे बड़ा विवेक है।
१९१४. शरीर यदि आज तक शरारत करता रहा तो अपने विवेक की कमी मानी जाती है।
१९१५. हमारे सुख का स्रोत मात्र विवेक है आप जब चाहो तब इस स्रोत को खोल सकते हो।
१९१६. प्रत्येक मानव का लक्ष्य धन कमाना नहीं, बल्कि आत्म धर्म पाना होना चाहिए।
१९१७. विवेक एक ऐसी सम्पदा या प्रकाश है, जिससे हम हमेशा के लिए प्रकाशित हो सकते हैं, मालामाल हो सकते हैं।

१९१८. संसार में संतुष्टि यदि मिल सकती है तो विवेक से ही मिल सकती है।
१९१९. विवेक की उपासना का ही, मैं जीवन की साधना समझता हूँ।
१९२०. विवेक ही जीवन का सार है।
१९२१. आज विज्ञान की आवश्यकता नहीं किन्तु विवेक की आवश्यकता है।
१९२२. विवेक का अर्थ होता है कौन-सा कार्य अहितकारी है, कौन-सा हितकारी है, पूर्वापर विचार करने का नाम विवेक है।
१९२३. विवेकवान् व्यक्ति बाधक को छोड़कर साधक को अपनाने की बात सोचता है।
१९२४. यदि विकास चाहते हो तो सही दिशा में विकास करो, जिस दिशा में विकास की आवश्यकता है, इसी का नाम विवेक है।
१९२५. कार्य निष्पन्न करने के लिए उद्यम के साथ-साथ विवेक की भी आवश्यकता होती है।
१९२६. विवेक का अर्थ ज्ञान नहीं, बल्कि विवेक का अर्थ विशेष सावधानी है।
१९२७. दाता के पास विवेक गुण आ जाता है तो सातों गुण आ जाते हैं।
१९२८. विवेक के अभाव में खेत की सुरक्षा में लगायी गयी बाड़ी ही खेत को खा जाती है।
१९२९. हमारा विवेक समाप्त होने पर ऐसा अनर्थ घट जाता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।
१९३०. विवेक का अर्थ विभाजन है, कौन ? कब ? कहाँ ? कैसे ? सावधानी रखना, बोलने में, चलने में, व्यवहार में आदि आदि।
१९३१. जो हमारा नहीं है, उसे हम अपने काबू में रखना चाहते हैं, यह हमारा अपना अविवेक ही है। प्रत्येक कार्य में विवेक दृष्टि रखते हैं तो उसमें संतुष्टि अवश्य मिलती है और उससे अपना हित अवश्य होता है।

विभाव

१९३२. विभाव को हटाना ही स्वभाव को पाना है, विभाव को हटाये बिना स्वभाव का परिचय नहीं हो सकता।
१९३३. विज्ञान स्वभाव को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह विभाव को छोड़ना नहीं चाहता।
१९३४. विकार निकल जाने से सही वस्तु का सही-सही स्वाद आने लगता है।
१९३५. आत्मा के भावों को बाहर लाते समय जीव विभाव रूप परिणमन कर जाता है, इसलिए प्रायश्चित्त का भागीदार होता है।
१९३६. विभाव भाव ही मद पैदा करते हैं।
१९३७. विभाव ज्ञान हमेशा खतरा पैदा करता है।

१९३८. स्वभाव का श्रद्धान न होने पर विभाव को छोड़ने की बात ही नहीं होती, राग को छोड़ने से पहले राग मेरे अंदर विद्यमान है, ऐसा श्रद्धान करना अनिवार्य है।

१९३९. हमारा स्वभाव वर्तमान में शक्ति के रूप में विद्यमान है, अभिव्यक्ति के रूप में नहीं।

विश्वास

१९४०. जो विश्वास समय पर सक्रिय हो वही सही विश्वास है।

१९४१. जिसे नरकों के दुःखों पर विश्वास नहीं होता वही व्यसन और पाप करता है।

१९४२. मोक्षमार्ग में सबसे पहले विश्वास रखने की बात हुआ करती है।

१९४३. विश्वास की नींव पर ही उन्नति का विशाल महल खड़ा होता है।

१९४४. निराकुल सुख में जिसकी आस्था नहीं है, उसे कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती।

विषय

१९४५. यह संसारी प्राणी जितने अच्छे भाव से, प्रमुदित भाव से, विषयों को देखता है, वैसे ही प्रभु को क्यों नहीं देखता? इसका कारण अनन्तकाल का आकर्षण है। स्वप्न में विषयों को तो देखता है लेकिन प्रभु को नहीं देखता, यह सब रुचि पर आधारित है।

१९४६. विषयों के विष से घुला हुआ भोजन क्यों कर रहे हो ? यह प्राणलेवा कलेवा (नास्ता) है।

१९४७. जीना चाहते हो लेकिन विषय रूपी विष पीकर, यह तो पागलपन है, ऐसा तो पागल भी नहीं करता। लेकिन सभी यह कर रहे हैं, इसलिए भव-भव में मृत्यु हो रही है।

१९४८. मनुष्य जीवन के गौरव को, स्वाभिमान को इस प्राणी ने विषयों के कारण मिट्टी में मिला दिया।

१९४९. इस संसार में जो राग का विषय है, वही कुछ समय बाद द्वेष का विषय बन जाता है। जैसे शाम को हवा अच्छी लगती है लेकिन अर्धरात्रि में वही कँपकँपी पैदा कर देती है।

१९५०. एक बात ध्यान रखो विषयों की पूर्ति से कभी भी शांति नहीं मिल सकती।

१९५१. विषयों की ओर जाने वाले व्यक्ति का भविष्य अंधकारमय ही होता है।

१९५२. विषय कषाय में आपादकण्ठ डूबे गृहस्थ को निश्चय धर्म हो ही नहीं सकता।

१९५३. यह संसार पंचेन्द्रिय विषयों से भरा-पूरा जंगल है, इसमें चार हाथ देखकर चलो, इधर-उधर प्रलोभनों की ओर देखा तो भटक जाओगे।

१९५४. यह संसारी प्राणी विष से तो डरता है, लेकिन विष से भी विषैले विषयों से नहीं डरता। वह बाह्य रूप पर मुग्ध हो जाता है, उसे नरक का कूप नहीं दिखता।

१९५५. बिल्ली की भाँति विषय भोग रूपी नवनीत की आस में यह दुनिया अटकी रहती है।

१९५६. दूसरों को देखकर तुम विषयों की ओर क्यों जाते हो ? जरा सोचो थोड़े से समय व सुख के लिए विषयों की इच्छा करना बड़ी अनर्थकारी है।

१९५७. बुखार से पीड़ित व्यक्ति को जैसे घी, तेल, मिर्च, खटाई आदि निषेध है, नुकसानदायक है, वैसे ही व्रती में लिए विषयाभिलाषा अनर्थकारी है। विषय-कषाय मोक्षमार्ग में कुपथ्य है।

१९५८. मोक्षमार्ग में दूसरे के लिए कुछ किया जा सकता, यह एक महान् भूल है। हाँ! भाव अच्छे रख सकते हो दूसरे के प्रति भी ताकि हमारा मन विषयों, कषायों की ओर न जा सके।

वैय्यावृत्ति

१९५९. दीक्षाभिमुख को दीक्षा के लिए प्रेरित करना भी वैय्यावृत्ति मानी जाती है।

१९६०. वैय्यावृत्ति अंतरंग तप में आती है, इसलिए वैय्यावृत्ति करने वाला तपस्या में लगा हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

१९६१. अलग-अलग भावों के माध्यम से दिये गये दान और की गई वैय्यावृत्ति का फल तारतम्य को लेकर हुआ करता है।

१९६२. शरीर में कौन रहना चाहता है, लेकिन इससे उपकार होता है। इसके माध्यम से संवर, निर्जरा चलती रहती है, इसलिए वैरागी इसमें रहता है।

१९६३. संसार, शरीर और भोगों का आकर्षण कम हो जाना, इनसे वैराग्य आ जाना एक बड़ी अद्‌भुत घटना है।

१९६४. वैराग्य आते ही संसार असार लगने लगता है, राग में, असार में (छिलका में) भी सार (तेल) निकाल लेता है।

१९६५. धर्म में, धर्म के फल में और दर्शन (मोक्षमार्ग) में जो हर्ष होता है और पापों से भय होता है, उसे संवेग कहते हैं और संसार, देह तथा भोगों में विरक्तभाव रूप वैराग्य है।

१९६६. बारह भावनाओं का चिन्तन करने से वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

१९६७. सम्यग्दर्शन जितना प्रौढ़ होगा उतना ही अधिक वैराग्य बढ़ेगा।

१९६८. वैराग्य रूपी अंकुश से इन्द्रिय रूपी हाथियों को वश में कर लेना चाहिए।

१९६९. संसार, शरीर और भोग के त्याग रूप वैराग्य तीन प्रकार का होता है।

१९७०. वैराग्य में भय नहीं, अभय होता है।

१९७१. जिन्हें गुणों के प्रति आदर होता है, वही वैय्यावृत्ति कर सकता है।

१९७२. जिस समय जो आवश्यक हो, संयमी के लिए उसकी पूर्ति करना वैय्यावृत्ति है।

१९७३. वैय्यावृत्ति में प्रदर्शन नहीं होता बल्कि समर्पण होता है।

१९७४. वात्सल्य अंग को सुरक्षित रखना चाहते हो तो वैय्यावृत्ति को कभी भूलना नहीं चाहिए।

१९७५. जो वैय्यावृत्ति नहीं करता उसके व्रत ठूंठ वृक्ष से पक्षियों की भाँति उड़ जाते हैं।

१९७६. आवश्यक और सीमा के अनुरूप ही वैय्यावृत्ति होनी चाहिए।

१९७७. जो वैय्यावृत्ति नहीं करता तो समझना वह संघ को तोड़ने का काम कर रहा है।

१९७८. लोक संग्रह वैय्यावृत्ति के माध्यम से ही होता है।

१९७९. दान और वैय्यावृत्ति को आचार्यों ने अतिथि-संविभागव्रत के रूप में स्वीकारा है।

१९८०. मानसिक वैय्यावृत्ति करना बहुत कठिन है।

१९८१. जो गुणों के प्रति अनुराग नहीं रख सकता वह कभी भी वैय्यावृत्ति नहीं कर सकता।

१९८२. गुरुओं के गुणों के प्रति आदर भाव रखते हुये जो वैय्यावृत्ति करता है वह आगे चलकर उन्हीं गुणों को प्राप्त करता है।

१९८३. वैय्यावृत्ति करने वाला नियम से विनयशील होता है, इसलिए वैय्यावृत्ति करने वाले के दो तप सहज ही हो जाते हैं।

१९८४. अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वियों की वैय्यावृत्ति करने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

१९८५. कुछ न करने का नाम ही निश्चय है, इसलिए निश्चय सरल है। व्यवहार में कुछ करना होता है, इसलिए व्यवहार धर्म कठिन है।

१९८६. जहाँ सत्य होता है वहाँ विसंवाद होता है और विसंवाद से राग-द्वेष होता है, जिससे संसार बढ़ता है।

१९८७. कर्म बंधन शुभाशुभ क्रियाओं के आस्रव से होता है और आस्रव क्रोधादि कषायों से होता है, क्रोधादि प्रमादों से उत्पन्न होते हैं और प्रमाद मिथ्यात्व से पुष्ट होता है।

१९८८. अपने आप में स्वाश्रित होना एक बड़ी तपस्या है।

१९८९. यदि कार्यक्रम में प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्थित हो जावे तो व्यवस्थापकों की जरूरत ही नहीं पड़ेगी, कभी-कभी व्यवस्थापकों से ज्यादा अव्यवस्था हो जाती है।

१९९०. जो संसार से डरता नहीं, जो पापों से भयभीत नहीं है, वह वीर नहीं कहला सकता।

१९९१. जो विकसित हो रहे हैं, उन्हें सहयोग देने वाला बंधु माना जाता है, इसलिए कमल को विकसित करने में सहयोग करने वाले सूर्य को कमल बंधु कहा जाता है।

१९९२. घर में बंधुजन ही चारुदत्त जैसों को दारुदत्त बनाते हैं (शराब पीने में प्रवृत्त करते हैं) मोह जाल में फँसाते हैं।

१९९३. जिनसे हमारे दोष फलें-फूलें, वे बंधु कैसे ?

१९९४. बाह्य वस्तु का विकल्प छूटे बिना अध्यात्म का रस नहीं आ सकता, इसलिए कहा है-शम ही जिनका धन है, वे साधु हैं।

१९९५. सत्य वही है जो बोलता नहीं, अपनी बात सिद्ध करने छटपटाता नहीं है।

वैराग्य-वीतरागता

१९९६. सभी से मैत्रीभाव रखो और वैराग्य को अलंकार बनाओ।

१९९७. धन, दौलत, पद, सत्ता आदि की भूख समाप्त होने पर ही वैराग्य आता है।

१९९८. वैरागी अपने नाम से धन कभी रखता ही नहीं।

१९९९. लक्ष्मी, धन व वैभव पाप रूप हैं एवं तृष्णा को बढ़ाने वाले हैं, इसलिए त्यागी इसे छूता ही नहीं।

२०००. वैराग्य होने के बाद सम्पदा का त्याग कर दिया, इसमें क्या आश्चर्य! जहर का ज्ञान होते हुये ही वह उल्टी कर देता है, जिसको घृणा आ जाती है, वह उसे दुबारा ग्रहण नहीं कर सकता।

२००१. व्यक्ति के जीवन में वैराग्य आते ही संसार का कोई भी पदार्थ उसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं करा सकता।

२००२. समता माँ, वैरागी बेटे के पास ही रहती है रागी के पास नहीं।

२००३. वैरागी लोग शरीर को ऐसा संभालते हैं, जैसे ड्रायवर गाड़ी को, तभी मोक्षमार्ग की यात्रा समीचीन होती है।

२००४. जीवन में वीतरागता जितनी रखोगे उतना पाओगे यह महावीर का मार्ग है।

२००५. पारे में भस्म के रूप में आत्मा की दशा है, ''वीतरागता'' का पुट मिलते ही वह स्वरूप में आ जायेगा।

२००६. रागी को आकृष्ट करने का एक मात्र उपाय है वीतराग होना।

२००७. हमारी प्रत्येक चेष्टाओं में राग का पुट रहता है, इसलिए वीतरागी का दर्शन करते रहना चाहिए।

२००८. तपस्या में मुख्य तो वीतरागता है, निष्कषाय भाव है, अतः उसी की ओर बढ़ना चाहिए।

२००९. वीतरागता के लिए परिग्रह अभिशाप है। साधक को हमेशा विवेक की आँख खोले रखना चाहिए, क्योंकि ''आगम चक्खु साहू'' कहा है। इसलिए साधक को अपवादों से हमेशा बचना चाहिए।

२०१०. वैराग्य के लिए किसी मुहूर्त की आवश्यकता नहीं होती।

२०११. जिस प्रकार अग्नि की छोटी-सी कणिका अटवी को भस्म करने में सक्षम होती है, उसी प्रकार एक क्षण का वैराग्य भी सारे कर्मों को नष्ट कर देता है।

२०१२. वैराग्य कक्ष में किसी से सम्बन्ध नहीं होता वह प्रकृतिस्थ हो जाता है। यह संसार में मेरा तेरा मात्र दिमाग की उपज थी, जिससे ये तरंगे उठ रहीं थीं। ऐसा विचार आने लगता है।

२०१३. स्वस्थ आत्मा में ये कोई तरंगें नहीं हुआ करती, भीतर से कोई उपाधि भी नहीं होती।

२०१४. करंट से आप लकड़ी के द्वारा छूट सकते हो और यदि लोहा जोड़ दोगे तो आप भी उससे चिपक जाओगे। इसी प्रकार हजार व्यक्ति रागी हैं और एक वीतरागी है तो सभी को संसार से छुड़ा सकता है। यदि वही रागी हो गया तो वह भी चिपक सकता है।

२०१५. वीतरागता की रक्षा पैसे से नहीं बल्कि पैसे के त्याग से की जा सकती है।

२०१६. वीतरागता की रक्षा राग के माध्यम से करना एक बहुत बड़ी भूल मानी जाती है।

२०१७. जब वीतराग धर्म का विलय हो जावेगा तब कृषि, असि, मसि आदि षट्कर्म का भी विलय हो जावेगा।

२०१८. वीतरागता की रक्षा यदि हम राग की वस्तुओं से करते हैं तो वह रक्षा सम्भव नहीं क्योंकि राग की वस्तुओं से तो राग का ही वर्द्धन होगा।

२०१९. संसार की वस्तुओं में यदि सुख होता तो तीर्थंकरों ने इस संसार का त्याग क्यों किया होता।

२०२०. वीतराग मार्ग की पहचान परिग्रह से नहीं बल्कि वीतरागता या अपरिग्रह से होती है।

२०२१. संसारी प्राणी की दशा चक्की में पड़े दाने की भाँति है, जो रागद्वेष रूपी चक्की में पड़ेगा वह पिसेगा ही।

२०२२. मोक्षमार्ग में कोई शर्त नहीं होती बड़ा सीधा मार्ग है। बस एक ही शर्त है और वह यह है कि पीछे मुड़कर नहीं देख सकते।

२०२३. एक बार वैराग्य हो गया तो बंधन छूट जावेगा और बंधन नहीं रहा तो फिर मुक्ति हो जावेगी।

२०२४. मृत्यु के बारे में सोचते हैं तो जल्दी वैराग्य हो जाता है।

२०२५. जंगल में मंगल इसलिए हो जाता है क्योंकि वहाँ राग से ऊपर उठे साधु वीतराग प्रभु रहते हैं। मोह का पवन नहीं होने से भगवान् के मान सरोवर में तरंगें नहीं उठतीं।

२०२६. वीतरागता के दर्शन में जो अनुभूति होती है एवं जो आनंद आता है, वह अन्य किसी वस्तु में नहीं आता।

२०२७. वैरागियों के सान्निध्य से ही यह दिव्य नेत्र खुल जाता है।

२०२८. वैराग्य की मूर्ति को देखकर चोर भी वैरागी बन गया, उपदेश से नहीं।

२०२९. राग से वीतरागता की ओर जाने का जो उपक्रम है, वह अद्‌भुत है। यह चमत्कार नहीं बल्कि चित्‌चमत्कार है। यह मन, वचन एवं काय की नहीं, चेतन की बात है।

२०३०. वीतरागता के दृश्य को देखकर माया बाजार समाप्त हो जाता है, चेतना का बाजार खुल जाता है। यह शक्ति का उद्‌घाटन वैराग्य होने पर हो जाता है।

२०३१. जो हमारी अनादिकाल से चली आ रही भूख है, वह वीतरागता से ही शांत होगी।

२०३२. रागद्वेष, विषय कषाय आदि अंदर की गंदगी को बाहर निकाल दो फिर अंदर से वीतरागता की सुगंधी फूटने लगेगी।

२०३३. वैराग्य मात्र आत्मतत्त्व की पहचान हो जाने पर अकेला ही चलता है।

२०३४. वैराग्य के सामने यह संसार एक मायाजाल-सा प्रतीत होने लगता है।

२०३५. वैराग्य ऐसा घर है जिसमें किसी भी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती।

२०३६. वीतरागी सामने रहेंगे तो जागृति बनी रहेगी।

२०३७. मुझे आश्चर्य है रोज दर्पण देखने के बाद भी आपको संसार क्षणभंगुर नहीं लगता। यह शरीर गलन पूरन की क्रिया सहित है। इस रहस्य को संसारी प्राणी समझता नहीं। इसलिये वैराग्य की ओर नहीं बढ़ पाता।

व्यसन

२०३८. अपना हित किसमें निहित है यह ज्ञान व्यसनी को नहीं होता।

२०३९. किसी पदार्थ का अतिरेक से सेवन करना व्यसन में आता है।

२०४०. जिसके बिना रहा न जावे, उसे व्यसन कहते हैं।

२०४१. किसी-किसी को सद्व्यसन भी होते हैं। जैसे-विद्या का, कविता पाठ करने का आदि।

२०४२. बुरी आदतें ही व्यसन का रूप ले लेती हैं।

२०४३. बुरी लत व्यसनी को लात मारकर नरक (पतन) के गड्ढे में गिरा देती है।

२०४४. धन कमाने का व्यसन हमें धर्म से दूर कर देता है।

२०४५. कोई भी दुर्व्यसन हो वह दुःखदायी ही सिद्ध होता है।

२०४६. व्यसनी के पास कभी विद्या टिक नहीं सकती, व्यसनी पर कोई विश्वास नहीं करता।

शरण

२०४७. चार शरण दर्पण के समान है, वे सभी आत्माभिमुख हैं, उन्हें याद कर हम भी अपनी आत्मा की शरण ले लेते हैं। दर्पण को देखने का अर्थ स्वयं को देखना है, इसलिए आत्मस्थ को देखने से आत्मा की याद आ जाती है।

२०४८. जो आत्मा की गहराई में उतर जाते हैं, वे आत्मज्ञ हो जाते हैं और वही हमारे लिए शरणभूत हो जाते हैं।

२०४९. संसार में अंतिम शरण आत्मा ही है।

शरीर

२०५०. शरीरमय आत्मा नहीं है, बल्कि शरीर में आत्मा है जैसे पाषाणमय सोना नहीं है, बल्कि पाषाण में सोना है।

२०५१. यह शरीर काम रूपी सर्प का घर है और यह शरीर संयम का साधन भी है।

२०५२. शरीर सुख की आकांक्षा रखोगे तो काम का प्रकोप बढ़ेगा।

२०५३. शरीर में सुख को विष मिश्रित अन्न समझकर छोड़ देना चाहिए।

२०५४. शरीर सुख एवं शरीर का संस्कार मोक्षमार्ग में बाधक है।

२०५५. यह प्राणी शरीर को पुष्ट बनाना चाहता है पर ज्ञान को पुष्ट बनाना नहीं चाहता।

२०५६. मैं शरीर वाला हूँ ही नहीं ऐसा श्रद्धान बना लो ऐसा श्रद्धावान जीव आत्मस्थ हो जाता है। वह चलते हुये भी नहीं चलता, देखते हुये भी नहीं देखता, कर्म बंध से मुक्त रहता है।

२०५७. शरीर से हमेशा विकल्प ही होते हैं। पित्त की अधिकता से स्वप्न में अग्नि दिखती है, वात की अधिकता से हवा में उड़ना दिखता है और कफ की अधिकता से पानी दिखता है।

२०५८. अनर्थ का मूल कारण यह शरीर ही है। जो इस शरीर को नियंत्रण में रखकर इससे धर्म साधन करता है, वह अशरीरी बन सकता है।

२०५९. कुछ भी पदार्थ डालो इस शरीर में फिर भी नाली की भाँति गंदा हो जाता है। यह शरीर धन आदि आपत्तियों का घर है साढ़े साती का ग्रह उसी को लग सकता है जिसके पास परिग्रह हो।

२०६०. शरीर को आचार्यों ने हीनस्थान कहा है, क्योंकि इससे हीन कार्य किए हैं, इसलिए यह अब छूटता नहीं है। उसमें रहने वाले सब पिंजरे के पंछी के समान हैं।

२०६१. हमने इस शरीर को अपना हेतु समझा है, तभी तो उससे बड़ा अनुबंध है। सल्लेखना के बाद भी वह प्राप्त हो जाता है।

२०६२. बच्चे की भाँति शरीर को सुला दो, फिर भीतर आत्मा से काम लो। शरीर पर ज्यादा दया करना अविवेक है।

२०६३. शरीर से व्यवस्थित काम लेते रहना एक महान् कला है।

शास्त्र

२०६४. शास्त्र विषयक राग साधु को सुबह की लालिमा के समान है।

२०६५. शास्त्र-स्वाध्याय से कषायों का उपशम होना चाहिए, कषाय संक्लेश नहीं होना चाहिए।

२०६६. बाजार के भाव के बारे में अखबार पढ़ते हो तो आत्मा के भाव के बारे में जानने के लिए शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए।

२०६७. वीतराग सर्वज्ञ के वचन प्रमाण हैं, ऐसा मन में निश्चय करके उनके कथन में विवाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि विवाद सें रागद्वेष उत्पन्न होते हैं और रागद्वेष से संसार की वृद्धि होती है।

२०६८. जैसे सूर्य के प्रकाश व प्रताप में कभी कमी नहीं आती, चाहे जब उसको ग्रहण कर सकते हो। वैसे ही जिन शास्त्रों को कभी भी पढ़ो, इनसे हमेशा ज्ञान व वैराग्य ही प्राप्त होता है।

२०६९. जिनके वैराग्य की ओर कदम बढ़े हैं और जो बढ़ाना चाहते हैं, उन्हें जिन शास्त्र मील के पत्थर सिद्ध होते हैं।

२०७०. अध्यात्म ग्रन्थ में पहले शुद्ध को ही नमस्कार किया जाता है, लेकिन जिनके प्रसाद से, कृपा दृष्टि से यह मोक्षमार्ग मिला है, उनको भी नमस्कार किया गया है।

२०७१. जिनेन्द्र भगवान् के वचनों को औषधि कहा है, जो इसका सेवन करता है उसके भय, रोग नष्ट हो जाते हैं।

२०७२. जो कर्ममल मिथ्यात्व, रागादि आत्मा में आ गये हैं, संचित हो गये हैं, उन्हें निष्कासित करने के लिए जिनेन्द्र भगवान् की वाणी 'त्रिफला रूप' औषधि है।

२०७३. जिससे मन में एकाग्रता आती हो ऐसा साहित्य पढ़ना चाहिए, लेकिन यह भी ध्यान रहे कि वह एकाग्रता कर्म निर्जरा में साधक बननी चाहिए।

२०७४. शास्त्र स्वाध्याय करते समय कुतर्क नहीं करना चाहिए, कुतर्क करना शास्त्र का अनादर है।

२०७५. सूत्र और व्याख्या में जितना अंतर है उतना ही मंत्र और ग्रन्थ में अंतर है।

२०७६. जहाँ मंत्र का आलम्बन लेना अनिवार्य है, वहाँ लेना ही चाहिए।

२०७७. आगम का आश्रय लेने वाले में राग-द्वेष, मोह कम होते चले जाते हैं, और आत्मा का आश्रय लेने वाले को राग-द्वेष मोह होते ही नहीं हैं।

२०७८. अर्थ-शास्त्र के साथ-साथ थोड़ा त्याग-शास्त्र पढ़ना भी आवश्यक है वरन् अर्थ (धन) अनर्थ का कारण बन जावेगा।

श्रावक

२०७९. डॉ. जे. को.वी. जर्मनी ने कहा है कि भारत से ही जैनधर्म और बौद्धधर्म चल रहे हैं पर जैनधर्म की परम्परा अभी भी चल रही है जबकि बौद्धों के अनुयायी इतने नहीं हैं। क्योंकि बौद्धधर्म में मात्र साधु धर्म है श्रावक धर्म नहीं। जबकि जैनियों में साधु धर्म भी है और श्रावक धर्म भी और साधु से श्रावक धर्म वाले ज्यादा हैं। इसलिए दो पहियों (श्रावक, साधु) से जिनशासन रूपी रथ आगे बढ़ता जा रहा है।

२०८०. दोनों पहियों को साथ-साथ चलना होता है यदि एक भी रुक गया तो दोनों को रुकना होगा।

२०८१. श्रावक धर्म में कमी आने से श्रमण, साधु धर्म में भी कमी आ जावेगी। श्रावक आज अपना कर्त्तव्य भूलता जा रहा है।

२०८२. श्रावक और साधु में तालमेल बिना धर्म नहीं चल सकता।

२०८३. श्रावक को कमजोर नहीं समझना चाहिए, वह एक का नहीं बहुतों का निर्वाह करता है।

२०८४. श्रावक समाज के साथ भी चलता है धर्म संस्कार भी पालता है एवं हमेशा-हमेशा मुनि बनने के भाव बनाये रखता है।

२०८५. श्रावक को यदि जीवन में सात्त्विकता रखनी है, दया का पालन करना है तो उसे पशुपालन करना चाहिए।

२०८६. जीवित धन नहीं रखोगे तो महान् हानि होगी।

२०८७. श्रावक का जीवन रागमय होता है लेकिन वह वीतराग का अनुरागी भी अवश्य होता है। वीतरागता की ओर बढ़ने का भाव हमेशा बनाये रखता है।

२०८८. श्रावक को भी दया का पालन करना चाहिए। जब तक दया धर्म है तभी तक सब कुछ है।

२०८९. त्रैकालिक सावधानी रखने की वृत्ति श्रावक में होना चाहिए।

२०९०. श्रावकों को पानी विधिवत् छानना, जिवाणी डालना जिनवाणी का सार है।

२०९१. श्रावकों में से ही ये अकलंक, जिनसेन जैसे रत्न आये थे। घुंटी में ही ये संस्कार पिलाये जाते हैं प्राण जावे पर प्रण न जावे ऐसे संस्कार डाले जाते हैं।

२०९२. गृहस्थ/श्रावक को हर क्षण कर्म बंध इसलिए होता रहता है क्योंकि उसका इन्द्रिय और मन का संयम नहीं रहता। संकल्प में अभाव के तत्सम्बन्धी बंध होता ही रहता है।

समता/समाधि

२०९३. समाधि का अर्थ मन, वचन एवं काय से ऊपर उठना होता है। समाधि का अर्थ है समतामय जीवन।

२०९४. मान को छोड़ना अनिवार्य होता है तभी समाधि प्राप्त होती है।

२०९५. जानते हुए भी प्रतिकार का भाव न आना ही समता है, कायरता का नाम समता नहीं है।

२०९६. मोक्षमार्ग में सबसे अच्छी औषधि समता ही है।

२०९७. जीवन में सुरक्षा कवच का नाम समता है।

२०९८. समता के अभाव में जीवन भारमय/दुःखमय प्रतीत होता है।

२०९९. सुहावने, असुहावने दोनों प्रकार के शब्दों को सुनकर समता रखना नाम सामायिक कहलाती है और हमेशा समता रखना काल सामायिक है।

२१००. साधक निर्विकल्प समाधि के द्वारा अंतर्मुहुर्त में काय, विषयों एवं कर्म इन तीनों को घातता है।

२१०१. षट्रसों से परहेज रखना लेकिन आत्मा का रस, समता रस खूब लो रात दिन इसमें कोई परहेज नहीं।

२१०२. कम परिश्रम में ज्यादा लाभ समता से ही होता है।

२१०३. समता जहाँ पर आ गयी वहीं धर्म-ध्यान है।

२१०४. सल्लेखना में कर्म की उदीरणा नहीं हो सकती क्योंकि यह बुद्धिपूर्वक होती है।

२१०५. समता के साथ मरण करने पर मनुष्यायु का भी बंध हो सकता है, लेकिन अभी इस पंचमकाल में मनुष्य से मनुष्य होगा तो मिथ्यात्व के साथ होगा।

२१०६. जन्म-मरण, सुख-दुःख, निंदा-प्रशंसा, योग-वियोग एवं वन-भवन में समता रखने वाला ही सच्चा साधु माना जाता है।

२१०७. समता साधु की सबसे बड़ी पूँजी है।

२१०८. समता स्वभाव है, मूलगुण है, इसलिए साधुओं को हमेशा समतामय बने रहना चाहिए। समता भाव रखो! यह एक ऐसी औषधि है जो स्वयं एवं दूसरों को भी प्रभावित करती है।

किसी चीज का प्रतिकार मत करो, इसे ही उपेक्षा संयम कहते हैं।

२१०९. यह सब अच्छा-बुरा मेरे कर्मों के उदय से हो रहा है। ऐसा सोचता हुआ जो समता रखता है वह वीर कहलाता है, इसमें बहुत आमदनी होती है। कर्मोदय को हटाया नहीं जा सकता, उसको समता से सहन करके निर्जरित किया जा सकता है।

सम्यग्दर्शन

२११०. पार्श्वनाथ भगवान् को केवलज्ञान की उत्पत्ति होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि कमठ के जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना महत्त्वपूर्ण है। हमेशा अनुभव तर्क से पृथक् रहता है, अनुभव होते ही तर्क समाप्त हो जाता है।

२१११. गृहस्थों का सम्यग्दर्शन उस गन्ने की तरह है, जिससे चारित्र रूपी गुड़ नहीं बनता।

२११२. केवली का सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष पदार्थ को जानकर परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन होता है, यह मन के द्वारा नहीं होता है, इसे केवल सम्यक्त्व भी कहते हैं, यहाँ पर सम्यग्दर्शन को अनुभूति प्राप्त हो जाती है।

२११३. सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान, तपादि गधे पर चंदन के भार के समान है।

२११४. सम्यग्दर्शन अनिवार्य प्रश्न है, इसे हल किए बिना व्रत, तप आदि प्रश्न हल कर भी दो तो मोक्षमार्ग में फेल ही माने जाओगे।

२११५. आज ऐसे नशीले पदार्थों का सेवन किया जा रहा है, जिनके सेवन से सम्यग्दर्शन रूपी सम्पदा लुट जाती है, वात्सल्य, दया जैसे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, इन कुसंस्कारों से समाज को बचाना होगा।

२११६. सम्यग्दृष्टि दूसरे के दुःख का वैरी रहता है, वह दूसरे के दुःख को दूर करने का भरसक प्रयास करता है।

२११७. सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग में किया गया कार्य कुछ भी सुख नहीं दे सकता।

२११८. अविरत सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं के प्राणों की रक्षा तो कर लेता है, लेकिन दूसरे प्राणियों की रक्षा का संकल्प नहीं ले पाता, उसके प्राणी संयम नहीं पलता।

२११९. हमारा जितना श्रद्धान आत्म स्वरूप की ओर दृढ़ होता है उतनी ही अधिक कर्म की निर्जरा होती है।

२१२०. ज्ञान का मद हो सकता है, पर सम्यग्दर्शन मद रहित ही होता है।

२१२१. सम्यग्दर्शन रूपी बीज का उपयोग करो यही स्वदेशी है, बाकी सब विदेशी बीज हैं।

२१२२. पुण्यवान् व्यक्ति ही सम्यग्दर्शन की सेवा करता है।

२१२३. जो संसार विच्छेद का प्रथम कारण है, ऐसे सम्यग्दर्शन का हमेशा गुणगान करना चाहिए।

२१२४. विश्वास को जब तक अनुभूति प्राप्त नहीं होती तो नीरस जैसा लगता है।

२१२५. ये अभिषेक पूजनादि क्रियायें सम्यग्दर्शन के कारण हैं ये पूजनादि सम्यक्त्ववर्धिनी क्रियाएँ हैं। सम्यग्दर्शन में प्रथम हैं।

२१२६. निष्क्रिय सम्यग्दर्शन नहीं, सक्रिय सम्यग्दर्शन बने जो दूसरों के प्रति अनुकम्पा रखे। करुणा, दया, वात्सल्य के साथ ही सक्रिय सम्यग्दर्शन होता है।

२१२७. जीवित जीवन वही है, जिसमें अनुकम्पा सहित सम्यग्दर्शन होता है।

२१२८. अपने ऊपर दया करते हुए संसार के ऊपर भी दया करनी चाहिए।

२१२९. सम्यग्दर्शन की मणिका को शुद्ध करना चाहते हो तो अजीव तत्त्व को (नोट को) खर्च करके, दान करके जीवतत्त्व की रक्षा करो, पशुओं का संरक्षण करो।

२१३०. गाढ़ श्रद्धान होने पर दया का स्रोत खुल जाता है।

२१३१. सम्यग्दर्शन जीवन का एक सहारा बन जाता है। सम्यग्दर्शन जीव को स्वस्थ्य बना देता है।

२१३२. दूसरे को सम्यग्दृष्टि बनाने का भाव तो रखो पर ऐनकेनप्रकारेण सम्यग्दृष्टि बनाने का भाव छोड़ दो क्योंकि चिकित्सा समझदारी से की जाती है।

२१३३. सम्यग्दर्शन एक ऐसी औषधि है, इसे प्राप्त करने के उपरान्त लड़ाई-झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

२१३४. ज्ञान, वैराग्य रूप शक्ति सम्यग्दृष्टि के पास रहती है, इन शक्तियों से ही वह बंधे हुए कर्मों की निर्जरा करता है।

२१३५. एक व्यक्ति अपने आप को एक अकेला समझ लेगा तो एकत्व की भावना अपने आप आ जावेगी। फिर अज्ञान का टकराव समाप्त हो जावेगा। सम्यग्दृष्टि इसी को बोलते हैं। दुनियाँ को भूल जाओ कोई बात नहीं पर अपने स्वरूप को मत भूलना।

२१३६. सम्यग्दर्शन के गुणों में एक आस्तिक्य गुण है ''मैं भी हूँ'' ऐसा स्वीकारना।

२१३७. विवेक के साथ करुणा होती है, सही चिकित्सा करने वाले ही करुणावान् हैं, यही सही सम्यग्दर्शन है।

२१३८. क्षायिक सम्यग्दर्शन देवों को नहीं होगा भले ही वे केवली के पादमूल में चले जावें। गुरु (केवली) के सान्निध्य में ही होता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन।

२१३९. जीव सम्यग्दर्शन के साथ कहीं भी चला जावे हमेशा सुखी रहता है।

२१४०. जब ऐसा स्वरूप है भगवान् का तो हम भक्त को भी श्रद्धान कर लेना चाहिए कि हमारा स्वरूप भी यही है। फिर भविष्य के बारे में सीमा रेखा खिंच जाती है।

२१४१. सम्यग्दर्शन की काया तब टिकती है जब संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य एवं प्रशम भाव रूप गुण रहते हैं। इन गुणों को साकार रूप देने से अमूर्त सम्यग्दर्शन भी मूर्तत्व धारण कर लेता है। दृष्टि को मजबूत (पूज्य) बनाने वाले पैर (आचरण) होते हैं।

२१४२. सम्यग्दृष्टि स्वार्थी नहीं परमार्थी होते हैं, वे परमार्थ की उपासना करने वाले होते हैं। मूर्त सम्यग्दर्शन आँखों से देखना चाहें तो उसे प्रयोग का रूप देना चाहिए, उपकार के भाव आना चाहिए। सम्यग्दृष्टि किसी की प्रतीक्षा नहीं करता वह स्वयं प्रयोग करने लगता है। अपना भी कर्त्तव्य कुछ वस्तु है, अविरत सम्यग्दृष्टि का भी कुछ कर्त्तव्य होता है।

२१४३. सम्यग्दृष्टि संयम की ओर दृष्टि रखता है। वह संसार में नहीं बल्कि संसार के किनारे पर रहता है।

२१४४. संसार से विरक्ति सम्यग्दृष्टि को ही आती है, सम्यग्दृष्टि मोह को जहर की भाँति समझता है।

२१४५. दृष्टि में सम्यक् होने पर मोहमार्गी मोक्षमार्गी बन जाता है।

२१४६. सम्यग्दर्शन अनगढ़ पत्थर है अविरत के साथ यदि उसे चारित्र रूपी शान पर चढ़ाते हैं तो गले का हार बन जाता है, वह केवलसम्यक्त्व में बदल जाता है।

२१४७. सम्यग्दर्शन इतना सरल नहीं है, उसके लिए लोभ का त्याग करना अनिवार्य है।

२१४८. आप सम्यग्दर्शन के साथ पैदा होते तो विदेह में जन्म होता। यदि वहाँ सम्यग्दर्शन के साथ जन्म होता है तो वह संयमासंयम व संयम लेगा ही यह नियम है।

२१४९. आत्मतत्त्व पर श्रद्धान होते ही आत्म संतुष्टि प्राप्त हो जाती है।

२१५०. जिसका श्रद्धान मजबूत होता है वही दया को मजबूत रखता है और सिद्धान्त को भी मजबूत रखता है। वरन् यह समयसार को पढ़कर कह देगा यह तो परघात नाम कर्म के उदय से दूसरे का घात हो रहा है, मैं क्या कर सकता हूँ ?

२१५१. सम्यग्दृष्टि विषयों से राग नहीं रखता क्योंकि विषयों में आत्मा के कोई गुण नहीं होते और उनसे आत्मा के गुणों की पुष्टि भी नहीं होती।

२१५२. जो पदार्थ जिस रूप में है, उसे उसी रूप में स्वीकारना सम्यग्दर्शन है।

२१५३. सम्यग्दृष्टि अपने भावों के माध्यम से ही श्रद्धान करता है, सात तत्त्व और देव, शास्त्र एवं गुरु(परद्रव्य) निमित्त मात्र हैं।

२१५४. सम्यग्दर्शन तभी जीवित रह सकता है, जब अनुकंपा जीवन में उतर गयी हो। सम्यग्दृष्टि को दूसरों के कष्ट को देखकर कष्ट दूर करने के भाव उमड़ आते हैं।

२१५५. पेड़ में ऊपरी अस्थिरता भले हो लेकिन जड़ में कोई अस्थिरता नहीं होती तभी वह अडिग खड़ा रहता है।

२१५६. जब गुणीजनों को देख कर प्रमोद भाव हो जावे, दुखियों को देखकर करुणा भाव आ जावे और सभी के अस्तित्त्व पर विश्वास हो जावे तो समझना हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गयी है।

संसार

२१५७. संसारी प्राणी संयोग के कारण दुःख उठाते हैं, संसार के सभी संयोग दुःख के ही कारण हैं।

२१५८. गरीब-अमीर सभी को वही कफन, वही अर्थी, वही श्मशान घाट मिलेगा, यह सृष्टि का अटल नियम है।

२१५९. संसार में सुख नमक युक्त खारे जल के समान हैं, जिससे कभी प्यास शांत नहीं होती, बल्कि गला और सूखता है। संसार में मीठा पानी है ही नहीं, इसलिए तृप्ति संभव ही नहीं है।

२१६०. संसार स्वभाव से परिचित होकर उससे दूर रहने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं।

२१६१. संसार-सागर में जन्म, जरा व मृत्यु रूपी लहरें उठती रहती हैं, इसमें मोह का मगरमच्छ मुख फाड़े खड़ा रहता है, इसलिए साधुजन सागर में न रहकर सागर के तट पर रहते हैं।

२१६२. यह संसारी प्राणी वास (दुर्गंध) आने वाले शरीर में बसा है।

२१६३. यह संसारी जीव इस शरीर के कारण दुःख उठाता है, वेदना का रस पीता है, फिर भी इसी को पुनः चाहता है।

२१६४. संसारी प्राणियों को सुख मिलना अंधे के हाथ बटेर के समान है, अर्थात् कठिन है, असंभव है।

संयोग

२१६५. संयोग एक बड़ी बीमारी है, इससे बचो वरन् निरोगी नहीं हो सकते।

२१६६. संयोग दुःख का कारण है।

संगति

२१६७. जिनके साथ रहने से पाप कम हो उनकी संगति करो।

२१६८. जीवन के रहस्यों को खोलने के लिए संत समागम अनिवार्य है।

२१६९. संतों का समागम बूँद का सीप से संयोग है, वह बूँद समागम से मोती बन जाती है।

२१७०. तीन लोक के आभूषण संत समागम की देन हैं।

२१७१. पंचमकाल में तीर्थक्षेत्रों और संतों के चरणों में जाकर धर्मध्यान कर लेना चाहिए वरन् पंचेन्द्रियों के विषय छूट ही नहीं सकते।

२१७२. साधु संगति करने से साधु बनने के भाव जागृत होते हैं।

२१७३. हम वीतरागी के पास जाकर यह सीख सकते हैं कि राग कैसे छोड़ा जाता है ?

सदुपयोग

२१७४. साधन सामग्री मिलने पर भी उसका सदुपयोग करना बहुत कठिन है।

२१७५. धार्मिक क्षेत्र में इस शरीर का जितना चाहो उतना उपयोग करो यही इसका सदुपयोग है।

संकल्प-विकल्प

२१७६. आप अपने आप को संकल्प-विकल्पों से जितना बचाये रखोगे उतनी ही शांति मिलेगी।

२१७७. विकल्प रूपी पेट्रोल समाप्त हो जाता है तो रागद्वेष की गाड़ी चलना बंद हो जाती है।

२१७८. जो निश्चित है उस पर विश्वास न होने से संकल्प-विकल्प रूप मानसिक दुःख होता है।

२१७९. निश्चित को मानने से जीवन में संतोष आ जाता है, जैसे मृत्यु निश्चित है तो सोचता है ज्यादा क्या करना इतने में ही जीवन चल जाएगा, संतोष प्राप्त कर लेता है।

२१८०. संकल्प-विकल्प पर द्रव्य को लेकर ही हुआ करते हैं।

२१८१. संकल्प-विकल्प संसार के ही कारण हैं, इनसे कर्म बंध होता है और कर्म बंध से संसार बढ़ता है।

२१८२. सभी विकल्पों का कारण शरीर ही है।

२१८३. संकल्प-विकल्प रूपी जाल संसारी प्राणी बुनता रहता है, परिणाम स्वरूप कभी खट्टा और कभी मीठा फल भोगते हुये संसार में भटकता रहता है।

२१८४. निज शुद्धात्मा ही मुक्ति का कारण है, इसके लिए संसार के सारे संकल्प-विकल्प छोड़नें पड़ते हैं, आज छोड़ो या कल या कभी भी सारे विकल्पों को छोड़े बिना मुक्ति संभव नहीं है।

संस्कार

२१८५. विषय मात्र तात्कालिक ही होते हैं, लेकिन धार्मिक संस्कार तात्कालिक और त्रैकालिक सुख देने वाले होते हैं।

२१८६. आज के युग में अण्डे को शाकाहार और दूध को माँसाहार घोषित किया जा रहा है, इसलिए कहना पड़ रहा है कि देश में धार्मिक संस्कारों की अत्यन्त आवश्यकता है।

२१८७. संस्कार बचाये रखना चाहते हो तो बच्चों का निर्यात बंद कर दो उन्हें विदेश भेजना बंद कर दो, अंतर्राष्ट्रीय की जगह आत्मजगत् की ओर बढ़ो।

२१८८. नगर के पास एक धार्मिक स्थल अवश्य होना चाहिए, नसिया आदि, ताकि वहाँ जाकर ध्यान, चितंन किया जा सके, आज ऐसा स्थान न होने से युवा वर्ग कश्मीर आदि जाने लगे हैं, इसलिए धार्मिक संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं।

२१८९. जीवन में ऐसे संस्कार डालो ताकि रत्नत्रय मावा के रूप में रहा आवे और शरीर व कषाय रूपी पानी समाधि की अग्नि में आहूत हो जावे।

२१९०. जीवन में वर्गीकरण के अभाव में आज संस्कार एवं संस्कृति का अभाव होता चला जा रहा है।

२१९१. बच्चों को दान धर्म की बातें सिखाओ। करुणा, दया, परोपकार के संस्कार डालो, तभी संस्कृति सुरक्षित रह सकेगी।

२१९२. इस बुन्देलखण्ड में अद्वितीय सम्पदा देखने को मिली है वह यह है कि यहाँ की जनता में देव-शास्त्र व गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा है।

२१९३. जीवन का मूल्यांकन धन, वैभव से न करके वस्तुतः उच्च विचारों, संस्कारों के माध्यम से किया जाता है।

२१९४. यह सब संस्कार का ही प्रभाव है कि विषयों के बीच में रहकर भी उन्हें बिना ग्रहण किए संतुष्ट है।

२१९५. पहले के लोगों में भाव/संस्कार उज्ज्वल थे, उन्हीं से आज धर्म टिका हुआ है।

२१९६. वही व्यक्ति धर्म की बात कर सकता है, जिसके जीवन में सात्त्विकता आ जाती है।

२१९७. आज के संस्कार उच्छृंखल बनाने वाले हैं, आध्यात्मिक विकास को रोकने वाले हैं।

२१९८. आज साहित्य का सृजन अच्छा इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि आज विषयों की चिन्ता में लगे मानव को चिन्तन के लिए समय ही नहीं है।

२१९९. आज जीवन का स्तर जमीन में घुस गया है, अब उसे और नीचे मत ले जाओ।

२२००. आगे में गुण तभी रह सकते हैं जबकि पीछे में गुण पहले से ही विद्यमान हों।

२२०१. पेड़ की जड़ें कभी अंकुर की तरह ऊपर नहीं आती, जैसे ही अंकुर होता है वैसे ही जड़ें पाताल की ओर चली जाती हैं। इसी प्रकार आदर्श के अंकुर के साथ जड़ें भी पाताल (इतिहास) से संबंधित होना चाहिए।

२२०२. पूर्व संस्कार के साथ चलोगे तो उपदेश का कोई प्रभाव पड़ेगा नहीं।

२२०३. संसारी प्राणी के ऊपर मोह के अलावा कोई संस्कार नहीं पड़े।

२२०४. संस्कार के अभाव में करोड़पतिपना निरर्थक है।

२२०५. विदेश की अच्छाई को अपनाइये विदेश नीति को मत अपनाइये।

२२०६. देश विषयों का गुलाम होता जा रहा है, स्वाभिमान गायब होता चला जा रहा है। अर्थनीति फेल हो जाती है लेकिन परमार्थ नीति फेल नहीं होती इसका ध्यान रखें।

२२०७. सात्त्विक जीवन रखने से सात्विकता आती है एवं प्रतिभा का विकास होता है।

२२०८. प्रतिभा तो अंदर रहती है, संस्कारों के माध्यम से बाहर आती है।

२२०९. व्यसनों से शारीरिक स्वास्थ्य की हानि, धर्म की हानि, अर्थ की हानि होती है, इसलिए व्यसनों से बचना चाहिए।

२२१०. जीवन में उन्नति चाहते हो तो अपने खान-पान को, वाणी को व अपने व्यवहार को पवित्र बनाइये।

२२११. इस बहुमूल्य समय का उपयोग सदाचरण के पालन करने में कीजिए।

२२१२. जब हम संस्कार पवित्र रखेंगे तभी महावीर जैसी आत्मायें हमारे घर में जन्म लेंगी।

२२१३. गर्भवती होने पर सीता तीर्थयात्रा पर जाती थी तभी उनके बच्चे संस्कारवान बने अपने पिता को भी हरा दिया। आप विदेशी संस्कार डालकर बच्चे का उद्धार करना चाहते हैं, यह सम्भव नहीं है।

२२१४. आप अपने बच्चों की केवल अर्थव्यवस्था को लेकर पढ़ाई कराते हैं परमार्थ के बारे में नहीं सोचते।

२२१५. आत्मा की बात सुनने के लिए पूर्व में कुछ संस्कार डालना भी अनिवार्य होते हैं।

२२१६. इंजेक्शन लगाते समय उस स्थान को स्प्रिट से साफ करना पड़ता है, ये पूर्व संस्कार अनिवार्य हैं; विज्ञान भी इसे स्वीकारता है।

२२१७. देशना लब्धि (जिनवाणी सुनने) की पात्रता उसी में है, जो भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखता है। सम्यग्दर्शन की भूमिका उसी में आती है, योग्यता आती है, जो व्यसन मुक्त हो। तीर्थंकरों के जीवन के संस्कारों को जब तक हम अपने जीवन में नहीं उतारेंगे तब तक हमारा उनसे सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता।

२२१८. शिक्षण और संस्कार में बहुत अंतर होता है, संस्कारवान् ही जानता है कौन-सा पौधा अनाज का है कौन-सा घास का ?

२२१९. अपनी संतान धर्म में समर्पित होकर जीवनयापन करें, ऐसे संस्कार डालते जाओ।

२२२०. संस्कार इत्र के समान होने चाहिए, उन्हें बताना न पड़े अपने आप लोगों को उसकी महक आ जावे। यदि संतान लोक-कल्याण का मार्ग अपनाती है तो उनके माता-पिता को भी बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है। जो संस्कार हमें पूर्वजों से मिले हैं, वे आगे की पीढ़ी को सिखाते जाओ वरन् पीढ़ी भटक जावेगी।

२२२१. आज की समस्याओं का समाधान संस्कार से ही सम्भव है।

२२२२. संस्कार के अभाव में जीवन की कीमत कोड़ी की ही रहेगी।

२२२३. बचपन के संस्कार वृक्ष की जड़ के समान हैं, यदि जड़ में कीड़ा लगा हो तो पौधे की वृद्धि नहीं हो सकती उसी प्रकार कुसंस्कार के कारण बालक के जीवन का विकास नहीं हो सकता।

साधना

२२२४. आज तक हमने साधना, शरीर-सुख के लिए की है इसलिए सही सुख नहीं मिल पाया। यदि आत्म सुख के लिए साधना की होती, तो अभी तक शाश्वत् सुख की प्राप्ति हो गई होती।

२२२५. चारित्र का पक्ष मजबूत रहेगा तो धर्म का झंडा लहराता रहेगा। चारित्र का पक्ष उठ गया तो झंडा उड़ जावेगा मात्र डंडा हाथ में रह जावेगा।

२२२६. चारित्रमय जीवन है तो हमारा जीवन है नहीं तो नहीं।

२२२७. साधु चारित्र की ध्वजा हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं, वे हमारी रक्षा करें।

२२२८. साधु की चर्या पालना बहुत बड़ी साधना मानी जाती है इसी के बल पर सिद्ध बनते हैं।
२२२९. साधु वही है जो मात्र अपनी आत्मा की साधना से मतलब रखता है।
२२३०. साधना प्रखर होने से विश्वास कम होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य हो जाते हैं।
२२३१. विश्वास के साथ-साथ साधना भी आवश्यक होती है तभी लक्ष्य तक पहुँचते हैं। निरालम्ब रहने का आनंद अलग ही होता है।
२२३२. यदि हमारी कषाय में परिणति जाती है तो हमारी साधना शुरु ही नहीं हुई क्योंकि कषाय के अभाव के माध्यम से ही ज्ञात होता है हमारा समर्पण कितना है ?
२२३३. आचरण से चरण तो क्या चरण धूल भी पूज्य बन जाती है और मरण भी पूज्य हो जाता है।
२२३४. साधना को आदर्श बनाया जाता है, व्यक्ति को नहीं।
२२३५. सही दिशा में की गयी तप साधना से मोक्ष प्राप्त होता है और जब तक मुक्ति नहीं मिलती तब तक अच्छे-अच्छे पद प्राप्त होते रहते हैं।
२२३६. मन को साध लेना ही साधना है।
२२३७. नाम साधना का अर्थ होता है एक पद को लेकर ध्यान करना, यह पदस्थ ध्यान है।
२२३८. आत्मा की बात करने का अर्थ आत्मा के ऊपर लगी हुई कालिमा को साधना के माध्यम से अलग करना है।
२२३९. अभी साधना करने से आगे और स्वस्थ शरीर एवं दीर्घ संहनन प्राप्त होते हैं, जिससे अच्छी साधना एवं प्रभावना की जा सकती है।
२२४०. मोक्षमार्ग की साधना चार प्रत्ययों में पूर्ण होती है, अज्ञान निवृत्ति, पाप-विषय त्याग, आदान (व्रत ग्रहण) एवं उपेक्षा (विकल्पों की शून्यता)।
२२४१. आज यदि बड़ी साधना नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, पर कषायों को तो कम किया जा सकता है। इसमें काया की शक्ति नहीं बल्कि आत्मा की रुचि काम करती है।
२२४२. शत्रु-मित्र से रहित भाव प्रणाली बनाये रखना बहुत बड़ी साधना है।
२२४३. समता की आरती उतारो, एक क्षण में असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है।
२२४४. ज्ञेय से उपयोग प्रभावित न हो यह मूल साधना मानी जाती है।
२२४५. ज्ञेय से जब हम भिन्न है तो हर्ष-विषाद क्यों करना ? ज्ञेय से प्रभावित न होना प्रौढ़ साधना मानी जाती है।
२२४६. समीचीन दृष्टि में जीना सबसे बड़ी साधना है क्योंकि दृष्टि को संतुलित रखने पर जीवन संयत बन जाता है।
२२४७. जो मन, वचन एवं काय तीनों योगों को साधता है उसके उपयोग में स्थिरता आ जाती है, उपयोग शुद्ध हो जाता है।

२२४८. हमें इस काया के अधीन नहीं होना चाहिए। बाहुबली भगवान् की साधना की ओर दृष्टि रखो। आत्मा के स्वरूप का अवलोकन करने से ही साधना सार्थक होगी।

२२४९. मोक्षमार्ग मे ंपरीषह औषधि है कर्म रूपी रोग को निकालने के लिए।

२२५०. अपने परिणाम को मजबूत, संयत बनाने से ही हम मोक्षमार्ग पर अडिग रह सकते हैं।

२२५१. अब मोह की कथा समाप्त करो, मोक्ष की कथा प्रारम्भ हो रही है, इसी का नाम साधना है।

२२५२. तैरना तो सभी को आता है पर डूबों तो जाने, डुबकी लगाओ रत्न पाओ तो जाने कुछ साधना हुई।

२२५३. ज्ञान की अपेक्षा आत्मसाधना को प्रौढ़ता देनी चाहिए।

२२५४. तन, मन एवं धन का सदुपयोग करना ही पंचमकाल की मनुष्य पर्याय में बड़ी साधना है।

२२५५. जो दृष्टि पदार्थ को गौण करके (उससे टकराये बिना) पार कर जाती है, वही दृष्टि सही दृष्टि मानी जाती है।

२२५६. यदि कर्म के उदय, उदीरणा में अपने उपयोग को उसी रंग में रंगा दिया तो आपकी साधना कमजोर मानी जाती है।

२२५७. तात्विक दृष्टि गुप्ति की ओर ले जाती है।

२२५८. सूक्ष्म साधना से यह ज्ञात हो जाता है कि हमें दूसरों की कमजोरी न देखकर स्वयं की कमजोरी देखना चाहिए। क्योंकि छद्मस्थावस्था में उपयोग की कमजोरी बनी ही रहती है।

२२५९. आलम्बन से ही आज तक जीवन चलता आया है, अब निरालम्ब होकर जीना सीखो। तुम्बी की सहायता से तैराक हमेशा नहीं तैरता, तैरना सीख जाता है तो फिर तुम्बी का सहारा लिए बिना ही तैर जाता है।

२२६०. पहले किये गये स्वाध्याय का प्रयोग करना चाहिए फिर पुनः स्वाध्याय करना चाहिए। लेकिन जब प्रयोग होने लगेगा तो स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अभ्यास की दशा में स्वयं प्रमाण हो जाता है फिर प्रमाण ढूंढने की आवश्यकता नहीं पड़ती शास्त्र खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

२२६१. जैसे सज्जन दुर्जनों से दूर रहते हैं, वैसे ही साधु को शरीर से ज्यादा लगाव नहीं रखना चाहिए। इससे धर्म साधना करना ही सही मोह करना है।

२२६२. यह शरीर जब तक धर्म साधन में उपकार करता है, तब तक उपकरण है। जब उपकार करना बंद कर दे तब इसे वेतन (भोजन) देना बंद कर देना चाहिए, वरन् वह परिग्रह हो जायेगा।

२२६३. साधना के अलावा यदि साधक शरीर का उपयोग अन्य कार्यों में लेते हैं तो वह शरीर परिग्रह में आवेगा।

२२६४. पर का आलम्बन लेने से आत्म साधना कमजोर मानी जाती है।

२२६५. यदि भीतरी साधना जीवित है तो अभिशाप भी वरदान बन जाता है।

२२६६. मनुष्य पर्याय एक वरदान है, यदि इस शरीर से साधना नहीं की तो यह वरदान भी अभिशाप सिद्ध होगा।

२२६७. शरीर के प्रति निरीहता साधु की बहुत बड़ी साधना मानी जाती है।

२२६८. जिसका बाहरी वस्तुओं एवं शरीर के प्रति ममत्व नहीं है, वही कायोत्सर्ग कर सकता है।

सामायिक

२२६९. सामायिक में शरीर का चिंतन करें कि यह अशरण है, अशुचि है, अनित्य है, दुःखमय है, संसार रूप है और आत्मा इससे विपरीत है।

२२७०. सामायिक में मन, वचन व काय से किसी भी प्रकार से प्रतिकार नहीं किया जाता।

२२७१. रागद्वेष से रहित होना सामायिक चारित्र है।

२२७२. आर्त्त-रौद्रध्यान काई के समान है, उसे हटाओ और धर्मध्यान रूप स्वच्छ जल का पान करो, इसी का नाम सामायिक चारित्र है।

२२७३. अशुभ विकल्पों के त्याग रूप जो समाधि (ध्यान) है, ऐसा है लक्षण जिसका वह सामायिक है।

२२७४. सुख-दुःख रूप कर्मों का उदय अपने पूर्वकृत् इतिहास के आधार पर आते हैं, उन्हें समता से सहन करना उनसे माध्यस्थ्य होना ही सामायिक चारित्र है।

सिद्धान्त

२२७५. सिद्धान्त अपना नहीं होता अपने लिए होता है या यूँ कहो सिद्धान्त अपना नहीं होता अपने द्वारा अपनाया जाता है।

२२७६. सिद्धान्त का हनन नहीं होना चाहिए भले ही उसके तौर-तरीके बदल जावें।

२२७७. राग-द्वेष, प्रतिकूलता/अनुकूलता को एक समझे बिना कर्म सिद्धान्त समझ में नहीं आ सकता।

२२७८. स्वभाव के लिए तर्क नहीं होता, यह सिद्धान्त अटल है।

२२७९. सिद्धान्त के साथ समझौता नहीं होता।

२२८०. सिद्धान्त को कभी भूलना नहीं चाहिए यदि प्रयोग में गड़बड़ी आ जावे तो सुधार लेना चाहिए।

२२८१. ईश्वर और ईश्वर के बारे में उनके सिद्धान्तों के बारे में जानना ही आस्तिकता है।

सुख

२२८२. जब तपस्वी स्वाधीन हो जाते हैं, तब वे सुखी हो जाते हैं।

२२८३. सुख-दुःख दोनों अनुकूल नहीं हैं, जैसे शोर-सूतक दोनों धर्म में बाधक हैं, अनुकूल नहीं हैं।

२२८४. जो सुख चाहता है वह धर्म का आचरण करता है।

२२८५. डॉक्टर घृणास्पद शरीर में पैठा है, पूरा ऑपरेशन करके देख लेता है, फिर भी उसे वैराग्य नहीं होता, क्योंकि उन्हें पैसा ही दिखता है।

२२८६. आर्त्त-रौद्र ध्यान का कारणभूत जो शरीर है, उससे ममत्व हटाने से कष्ट, कष्ट-सा नहीं लगता।

२२८७. सभी पदार्थ सत् होते हैं, जीव सत् के साथ चित् रूप होता है, लेकिन सभी जीव आनंद रूप नहीं होते हैं। सिद्ध भगवान् ही सत्चिदानंद रूप होते हैं, अभी हम मात्र सत्चित् रूप है।

२२८८. स्वभाव वाले सभी जीव हैं पर आनंद स्वरूप मात्र सिद्ध जीव हैं।

२२८९. सत्चित् वैभाविक है और सत्चिदानंद स्वाभाविक है।

सेवा

२२९०. सेवा के माध्यम से हम आपस में सुख-दुःख समझ सकते हैं।

२२९१. अचेतन द्रव्य (धन) को जनसेवा में लगाना चाहिए।

२२९२. सेवा के समय यदि ख्याति, लाभ, नाम, बड़ाई की बात आ जाती है तो सब किरकिरा हो जाता है। कषाय अभिमान के साथ नहीं बल्कि निष्ठा के साथ दान दें।

२२९३. दूसरे के दुःख को दूर करने के भाव करते हैं तो यह अपायविचय धर्म ध्यान है।

२२९४. परमार्थ के अभाव में अर्थ का कोई मूल्य नहीं।

२२९५. पार्थिव जीवन के साथ-साथ पारमार्थिक जीवन भी जीना चाहिए।

सल्लेखना

२२९६. सल्लेखना दो प्रकार ही होती है-काय और कषाय सल्लेखना। सर्प की काँचली छोड़ना काय सल्लेखना व अंदर का जहर छोड़ना कषाय सल्लेखना है। अर्थात् शरीर काँचली की भाँति और कषाय जहर की भाँति है।

२२९७. अविनश्वर जीवन की प्राप्ति मृत्यु महोत्सव मनाने से होती है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि इस दिगम्बर मुद्रा को स्वीकारते हैं।

२२९८. इस शरीर को जेल ही मानो यह बंधन और दुःख का ही कारण है। जैसे बच्चे पुराने कपड़े को छोड़ने के लिए तैयार रहते है, वैसे ही साधक को शरीर का त्याग करने के लिए सल्लेखना के लिए तैयार रहना चाहिए वह क्षण तो एक न एक दिन जीवन में आयेगा ही।

२२९९. यदि घर में आग लग गई हो तो, आग बुझाने का प्रयास करो, यदि बुझाने में सफल न हो तो स्वयं को बचा लेना चाहिए। ठीक वैसे ही शरीर में रोग हो गया हो तो उपचार करो और यदि रोग का प्रतिकार न हो सके तो धर्म को बचा लो, सल्लेखना के माध्यम से शरीर का त्याग कर दो।

२३००. मृत शरीर में हर क्षण असंख्यात-असंख्यात जीवों की उत्पत्ति बढ़ती जाती है, इसलिए उसे

ज्यादा देर तक रखना ठीक नहीं है।

२३०१. इस मनुष्य गति में मिला शरीर और आयु का उपयोग कीजिये ताकि वह अंत में समाधि के साथ समाप्त हो।

२३०२. प्रशमभाव, वैराग्य भाव के साथ क्षण निकालो, तभी समाधि के समय समता आ सकती है।

२३०३. सल्लेखना के समय तक क्षपक (जो सल्लेखना ले रहे हैं) को मृदु शब्दों से संभाला जाता है।

२३०४. एक बार भी यदि इस जीव ने विधिपूर्वक समाधिमरण कर लिया तो उत्कृष्ट से दो-तीन भव में और जघन्य से सात-आठ भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

२३०५. सल्लेखना से डरने वालों को याद रखना चाहिए कि यह शरीर एक न एक दिन अवश्य छूटेगा।

२३०६. धर्मनिष्ठ गृहस्थ श्रावक भी अंत समय में कह देते हैं अपने घर के सदस्यों से कि यदि मुझे होश न रहे तो मुख में कुछ भी मत डालना, अस्पताल भी मत ले जाना, उसकी सही सल्लेखना हो जाती है।

२३०७. जैसे विद्यार्थी परीक्षा की प्रतीक्षा व तैयारी करता है, वैसे ही साधक को पहले से ही सल्लेखना की तैयारी करना चाहिए। जैसे ही असंतुलित गाड़ी हो, वैसे ही ब्रेक लगाना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

२३०८. साता की उदीरणा में भी निर्विकल्प समाधि में नहीं जाया जा सकता।

२३०९. जीवन के अंतिम समय में सभी को क्षमा करके, सभी से क्षमा माँगकर परिग्रह आदि त्याग कर कषाय को मंद करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए, यही श्रावक की सल्लेखना है।

२३१०. जब तन में हो व्याधि (रोग), मन में हो आधि और दिमाग में हो उपाधि तो कैसे हो सकती है समाधि ? क्योंकि आधि, व्याधि और उपाधि से रहित होती है समाधि।

२३११. अंत समय मानसिक संतुलन ही सब कुछ है, समाधि में सफलता इसी से प्राप्त होती है।

२३१२. समाधि के समय क्रमबद्ध पर्याय नहीं चलती उस समय णमोकार मंत्र ही काम आता है।

२३१३. काय सल्लेखना कारण है और कषाय सल्लेखना कार्य है, उसका फल है।

हृदय

२३१४. आँखें कान दो, दो हैं, हाथ पैर भी दो, दो हैं क्योंकि सम्बन्ध के लिए दो आवश्यक हैं। धर्म (राष्ट्र समाज) के लिए देखने सुनने से कुछ नहीं होता।

२३१५. हे प्रभु ! मैं प्रार्थना करता हूँ इन दो-दो अक्षर वाले अंग वालों को तीन अक्षर वाला अंग हृदय दे दो। किसी भी चीज में आनंद मात्र सुनने देखने से नहीं आता। हृदयंगम होने पर आता है। धर्म भी जब हृदयंगम होता है तभी उन्नति का कारण बनता है। हमने आज तक हृदय से कार्य

नहीं किया, यदि हृदय से कार्य किया होता तो दर-दर नहीं भटकना पड़ता।

२३१६. जिसका हृदय टूट जाता है वही मनमाना कार्य करने लगता है।

२३१७. हृदय के अभाव में शरीर के सभी अंग कोई महत्त्व नहीं रखते। शव की भाँति इस भारत का हृदय नहीं है बाकी सब ठीक है। स्मृति मनोयोग के माध्यम से बनी रहती है।

२३१८. धर्म का हृदय अच्छाईयाँ हैं, हृदय के साथ श्वांस लीजिए।

२३१९. आज देश में स्वतंत्रता का हृदय से कोई उपयोग नहीं हो रहा है, इसलिए शांति नहीं मिल रही है।

२३२०. आचरण, नकल से नहीं हृदय के साथ विश्वास के साथ किया जाता है।

२३२१. हृदय शून्य क्या नहीं कर सकता ? हृदय शून्य वही है, जिसको अहिंसा पर आस्था नहीं है। हृदय में सत्य, अहिंसा के प्रति आस्था है तो राम, महावीर भगवान् से हमारा सम्बन्ध आज भी निश्चित रूप से है, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

२३२२. हम भगवान् के सामने हाथ जोड़ते हैं अब हृदय जोड़ना चाहिए। हृदय कैसे जुड़ा है वह दिखाने से नहीं देखने से ज्ञात होता है।

२३२३. हृदय को मध्य कहा है वह दोनों छोर तक अपना सम्बन्ध रखता है।

२३२४. हृदय से सम्बन्ध होता है तो आँखों से आँसू आने लगते हैं।

२३२५. सौन्दर्य आँखों से दिखता है, पवित्रता मन से दिखती है।

२३२६. श्रुतकेवली के चरणों से साक्षात् सम्बन्ध हो जाता है तो दर्शनमोहनीय का दूरीकरण, क्षय हो जाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

२३२७. आँखों में पानी तभी आता है जब हृदय में कुछ पिंच (चुभे) हो। दूसरे का पत्थर-सा हृदय पिघला देते हो और खुद का मोम का है तो भी नहीं पिघलता।

२३२८. वस्तुतत्त्व को हम दिमाग से सोचते तो हैं पर दिल से, हृदय से उसे स्वीकार नहीं कर पाते।

ज्ञान

२३२९. वह सबसे कमजोर ज्ञान माना जाता है जो प्रत्येक ज्ञेय से चिपक जाता है।

२३३०. ज्ञानी ज्ञेय को जानते हुए भी ज्ञेयरूप नहीं होता और ज्ञेय को अपनाता भी नहीं है।

२३३१. सीमा रेखा का उल्लंघन ज्ञेय नहीं ज्ञान करता है और सीमा रेखा का उल्लंघन करने वाला ज्ञान, ज्ञान नहीं अज्ञान माना जाता है।

२३३२. ज्ञेय हमेशा-हमेशा ज्ञेय बना रहता है और ज्ञायक, ज्ञायक बना रहता है, वस्तु वही रहती है, बस हमारा उपयोग बदलता रहता है। दर्शक, दर्शक ही रहता है दृश्यमय नहीं होता।

२३३३. ज्ञेय तो ज्ञेय है, न हेय है, न उपादेय है बल्कि हमारा ज्ञान ही है जो ज्ञेय को हेय/उपादेय रूप स्वीकारता रहता है।

२३३४. ज्ञानी का स्वरूप यही है कि वह संसार कीचड़ में रहकर भी कीचड़पने को आत्मसात् नहीं करता।

२३३५. ज्ञान के माध्यम से तीन लोक की यात्रा एक क्षण में की जा सकती है लेकिन वर्तमान में ज्ञान पर मोह की छाया पड़ी हुई है उसे हटाते ही तीन लोक दर्पण की भाँति झलकने लगता है।

२३३६. ज्ञेय में ज्ञान अटकने से भटकने लगता है। अटका सो भटका।

२३३७. उस दृष्टि का बड़ा महत्त्व होता है जो ज्ञेय में नहीं अटकती-जैसे गेंद दीवार पर जाकर वापस लौट आती है, बाण उसी में भिंदकर रह जाता है।

२३३८. जिस समय समझना चाहिए तभी समझ में आवे तो समझदार माना जाता है। सही ज्ञान का उपयोग यही है।

२३३९. ज्ञान का फल साक्षात् उपेक्षा है। उपेक्षा का अर्थ दूसरे का अनादर नहीं है बल्कि उप निकट रूपेण ईक्षणम् उपेक्षा अर्थात् जिसके माध्यम से निकट से देखने की क्षमता आ जाती है, वह उपेक्षा है। दूसरे की उपेक्षा करने से दूसरे को कष्ट भी पहुँच सकता है।

२३४०. ये आठ कर्मों की शक्ति भी हमारी ज्ञान शक्ति को समाप्त नहीं कर सकती है यह स्वतंत्र सत्ता है।

२३४१. केवलज्ञान के सामने हमारा ज्ञान बच्चे के समान है।

२३४२. ज्ञान भी दान के रूप में प्रयुक्त होता है।

२३४३. ज्ञान को आत्मसात् करते जाओ, आचरण में ढालते जाओ तो प्रचार-प्रसार अपने आप होता चला जावेगा। ज्ञान को बढ़ाना नहीं है बल्कि मांजना है।

२३४४. ज्ञान जितना स्वाश्रित होगा उतना ही आकुलता का अभाव होता जावेगा। जितना योगों का स्पन्दन कम होगा, उतना ही हमारा ज्ञान स्वाश्रित होगा।

२३४५. अच्छे कार्य के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की मैत्री स्वीकारी है।

२३४६. ज्ञान प्रयोग करना नहीं सिखाता अंदर प्रयोग करने के भाव हों, तभी ज्ञान कार्यकारी होता है, वरन् ज्ञान खतरा पैदा करता है। ज्ञान शक्ति काम नहीं करती बल्कि काम में आती है।

२३४७. ज्ञान के माध्यम से यदि मात्र दूसरे को जानने का प्रयास करते हो तो वह ज्ञान कुछ कार्यकारी नहीं है।

२३४८. कुछ लोग जप कम करते हैं जल्प (बातें) ज्यादा करते हैं।

२३४९. ज्यादा जानने की, ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं है मात्र एकत्व को जानना है।

२३५०. ज्ञान, शिक्षण या पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं होता बल्कि श्रद्धा और समर्पण से प्राप्त होता है।

२३५१. पहले दीक्षा काल कहा है फिर शिक्षा काल लेकिन आज पहले ही ज्ञान, प्रवचन से जीवन प्रारम्भ करते हैं जिसके परिणाम ठीक नहीं निकलते।

२३५२. इन्द्रभूति का ज्ञान बहुत लम्बा चौड़ा था लेकिन संयम के अभाव में सम्यक्त्वपना प्राप्त नहीं था।

२३५३. दीक्षा होते ही मनःपर्ययज्ञान हो गया यह ज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया, संयम की कृपा से।

२३५४. ज्ञान को सम्यक्त्वपना शिक्षण से प्राप्त नहीं होता बल्कि आस्था एवं समर्पण से प्राप्त होता है।

२३५५. ज्ञान के माध्यम से मोह को हटाने का प्रयास नहीं करते तो विकल्प छूट नहीं सकते।

२३५६. जो प्राप्त ज्ञान से मोह का हनन करता है, वही मुमुक्षु माना जाता है।

२३५७. मोह जैसे ही पूर्ण समाप्त होता है, वैसे ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अंधकार हटते ही, बादल हटते ही पूर्ण प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

२३५८. मात्र ज्ञान को नमोऽस्तु नहीं किया जाता, बल्कि रत्नत्रय से युक्त ज्ञान को नमोऽस्तु किया जाता है।

२३५९. आत्मा के स्वरूप का ज्ञान जिसे हो जाता है, वह आत्मा के स्वरूप को पाने में लग जाता है, आत्मोन्नति की ओर बढ़ जाता है।

२३६०. ज्ञान सविकल्प होता है, मोह सहित होता है तो संसार का ही कारण होता है।

२३६१. मोह के अंधेरे में न धर्म दिखता है और न ही मुनि दिखते हैं, मात्र स्वार्थ दिखता है। जैसे सिंहनी ने पूर्व में अपने ही पुत्र मुनि सुकौशल का भक्षण किया था।

२३६२. सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र के द्वारा ही हम अपने दोषों को दूर कर सकते हैं।

२३६३. मार्ग का ध्यान सम्यग्ज्ञान के द्वारा रखा जाता है। स्वर्ग जाने के बाद भी यह सम्यग्ज्ञान रखना विषयों में ज्यादा मत फसाना।

२३६४. ज्ञान का क्षयोपशम नहीं है तो दीन-हीन मत होना और ज्ञान का क्षयोपशम है तो अभिमान भी मत करना।

२३६५. ज्ञानी जीव इन आरोहण, अवरोहण की दशाओं में अपने परिणामों को संतुलित बनाये रखते हैं।

२३६६. ज्ञानी जीव अपने आपको छोड़कर दूसरे की नुक्ताचीनी/आलोचना करने जाता ही नहीं, क्योंकि दूसरे की बुराई का उत्तर देने के लिए उसमें पास समय ही नहीं रहता।

२३६७. ज्ञानी का स्वभाव जानने का होना चाहिए, स्व को, पर को, क्रोध को, व बंध को भी लेकिन इन सबका वेदन नहीं करना चाहिए। क्योंकि ज्ञानी कर्म के उदय को मात्र जानता है, उसका वेदन नहीं करता। क्योंकि ऐसा किए बिना नूतन कर्म बंध होना रुक नहीं सकता।

२३६८. ज्ञानी को वस्तु ज्ञेय मात्र रह जाती है। वह उसे हेय, उपादेय मानकर ग्रहण नहीं करता।

२३६९. अतीत के साथ वर्तमान की तुलना करने से कहाँ-कहाँ गलती हुई है, यह ज्ञात हो जाता है।

२३७०. मुनियों का ज्ञान कर्म को जलाता रहता है और स्वयं ज्यों का त्यों बना रहता है।

२३७१. आज तक जो कुछ मेरे द्वारा आचरण किया गया है, वह ज्ञान आते ही अज्ञानतापूर्ण आचरण किया ऐसा प्रतीत होता है। जैसे बचपन की कृति बालबोध जैसी लगती है, परिपक्वता एकदम नहीं आती। जैसे गेंहू में शुरुआत में पानी निकलता है। फिर दूध आता है, परिपक्व होने पर आटा निकलता है, चने का होरा है तो उसमें आटा नहीं है, उसमें आटा हो रहा है इसलिए वह होरा है, (हो रहा) है।

२३७२. ज्ञान रूपी तलवार से कर्म शत्रु पर प्रहार करो और वैराग्य की ढाल से उसका बचाव करते रहो।

२३७३. ज्ञान और तप साधना में प्रौढ़ता है, लेकिन जब तक साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक भरोसा नहीं करना चाहिए। कभी-कभी किनारे पर जाकर किस्ती डूब जाती है।

२३७४. अधूरा जानना, देखना ही संसार परिभ्रमण का कारण बन रहा है।

२३७५. संसार में ज्ञान सबसे बड़ा है, क्योंकि पृथ्वी पर अनेक पदार्थ हैं और धरती वलयों पर आश्रित है। वलय आकाश में हैं और आकाश ज्ञान के एक कोने में है।

२३७६. जो विश्व को जानने की क्षमता रखते हैं, उन्हें विश्वविद्यालय में जाने की क्या आवश्यकता है। क्योंकि ज्ञान का क्षयोपशम विद्यालय में जाने से नहीं होता किन्तु जीवन को संयमित बनाने से होता है।

२३७७. मुझे कुछ नहीं आता, ज्ञान नहीं है, ऐसा कैसे बोला, ऐसा बोलना ही ज्ञान है। इस सामान्यज्ञान की धारा को निरंतर देखने से पर्याय गौण हो जाती है।

२३७८. हे आत्मन्! यदि तुम बुद्धिमान हो तो इस बात पर ध्यान दो कि आज तक जिसमें हित था उसे गौण किया और अहित को ही हित समझा, यदि इसमें सुख होता तो तीर्थंकर क्यों त्याग करते ?

२३७९. ज्ञान की प्रौढ़ता के अभाव में यह मन विषयों की ओर जाने को मचलता है।

२३८०. यदि सही-सही ज्ञान हो जाने पर भी आप विषय-भोग नहीं छोड़ते हो तो आपकी श्रद्धा पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

२३८१. जिसका मन विषयों में नहीं उलझता, कषाय नहीं करता उसका तप और ज्ञान पहुँचा हुआ माना जाता है।

२३८२. एक कुर्सी पर बैठा-बैठा कागज पर मात्र हस्ताक्षर कर देता है तो इतनी कमाई कर लेता है कि दिनभर मेहनत करने वाला भी नहीं कर पाता यह युक्ति की बात है, सम्यग्ज्ञानी की बात है।

२३८३. लोकेषणा के बिना श्रुत का अध्ययन करो, श्रुत का अध्ययन मन को वश में करने के लिए

तथा कर्मनिर्जरा के लिए किया जाता है, ख्याति, लाभ, पूजा के उद्देश्य से नहीं।

२३८४. श्रुतज्ञान का व्यवसाय करोगे तो वह सही फल नहीं देगा और भवान्तर में साथ नहीं जावेगा।

२३८५. भ्रांति के कारण हम एक पदार्थ को ग्रहण करते हैं, एक को छोड़ देते हैं, यह एक के प्रति राग हुआ और दूसरे के प्रति द्वेष। भ्रांति मिटते ही जीवन में ज्ञान का प्रकाश होते ही कुछ छोड़ने और ग्रहण करने का विकल्प रह ही नहीं जाता।

२३८६. तत्त्वज्ञान के माध्यम से जो प्रवृत्ति होती है, वह मोक्ष का कारण होती है।

२३८७. पदार्थ को पदार्थ के रूप में जानना ही सही ज्ञान माना जाता है, किसी से घृणा और किसी के प्रति आकर्षण नहीं होना चाहिए।

२३८८. भोगों का निमित्त लेकर स्वाध्याय करने का, ज्ञान प्राप्त करने का फल मलिनता ही है।

२३८९. ज्ञान रूपी अग्नि में भव्य रूपी मणि विशुद्ध होकर निकलती है, किन्तु अभव्य उस अग्नि में मलिन होकर या भस्म होकर ही निकलता है।

२३९०. ज्ञान के माध्यम से ऋद्धि, ख्याति, लाभ व पूजा की कामना नहीं करनी चाहिए।

२३९१. शोध छात्र अपने विषय को कभी भी प्रतिकूल अथवा नीरस नहीं समझता, वह उसी की वृद्धि में लगा रहता है। ज्ञान की आराधना थीसिस का काम करती है। अर्थ यह हुआ कि दर्पण नहीं देखना है बल्कि दर्पण में खुद को देखना है।

२३९२. प्रयोजन के अभाव में ज्ञान की क्या सार्थकता। ज्ञान की आराधना का अर्थ है कि कर्म बंध से छूटने का उपाय करना। समीचीन देखना/जानना ही ज्ञान की आराधना है।

२३९३. ज्ञान दशा में अंतर्मुहुर्त में ही सब कुछ छोड़ दिया जाता है और उस ज्ञानी को अंतर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान हो जाता है।

२३९४. अज्ञान दशा में कभी भी वस्तु का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता।

२३९५. ज्ञेय चिपमें, ज्ञान चिपकाता है, सो स्मृति हो आती।

२३९६. जिन पदार्थों से स्वामित्व है, उन्हें छोड़कर फिर सभी पदार्थों से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध रखना ही मुमुक्षुपना है।

२३९७. वयोवृद्ध होने से पहले आत्महितैषी को ज्ञानवृद्ध एवं तपोवृद्ध हो जाना चाहिए।

२३९८. ज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि यह जीव प्रमाद करता है तो संसार में ही भटकता रहता है।

२३९९. ज्ञान का सदुपयोग करो, दीपक लेकर कुएँ में मत गिरो।

२४००. आज अध्यात्म पढ़कर व्यवसायीकरण हो रहा है यह विद्या अध्ययन का आदर्श नहीं है।

२४०१. सम्यग्ज्ञान ऐसा टिकिट है, आप जिस स्टेशन (गति) पर उतरोगे वहाँ सम्मान होगा।

२४०२. सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का उद्देश्य यही है कि राग-द्वेष, मोह को कम करते चले जाना।

२४०३. यदि सम्यग्ज्ञान के द्वारा दोषों का उन्मूलन नहीं होता तो ऐसे ज्ञान पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

२४०४. ज्ञान का फल, अज्ञान का नाश, पाप की हानि और व्रतों का ग्रहण फिर निर्विकल्प समाधि में लीन होना ही समीचीन माना गया है।

२४०५. अनुभव वृद्ध, ज्ञानवृद्ध आत्मा को किसी के सहारे की जरुरत नहीं होती, क्योंकि जीवन में प्रयोग करने के बाद ही अनुभव आते हैं।

२४०६. जो यह सोचते हैं कि पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद संयम लूँगा, ऐसा सोचने वाले को ज्ञात कर लेना चाहिए कि पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है जो कि संयम के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

२४०७. संयम धारण करने के लिए पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जितना संयम के लिए ज्ञान पर्याप्त है, उतना कर लो फिर संयम ग्रहण कर लो। पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

२४०८. मति, श्रुतज्ञान ही मोक्षमार्ग में कार्यकारी है, वैसे तो मतिज्ञान ही पर्याप्त है, क्योंकि श्रुतज्ञान तो उसके पीछे-पीछे चलता है। जैसे गाय जहाँ जाती है, बछड़ा भी उसके पीछे-पीछे चला ही जाता है।

२४०९. जिसका जितना गहरा (प्रौढ़) तत्त्व ज्ञान होगा उसकी उतनी ही अधिक मन की स्थिरता होगी।

२४१०. ज्ञान परीषह के द्वारा जितनी निर्जरा होती है, उतनी ही निर्जरा अज्ञान परीषह सहन करने से होती है।

२४११. ज्ञान की धारा कभी भी टूटती नहीं है, उसका परिणमन त्रैकालिक चलता ही रहता है।

२४१२. ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वह देखने/जानने के अलावा और कुछ राग-द्वेष रूप परिणमन न करे।

२४१३. जिस वस्तु के प्रति कोई भी रुचि नहीं रहती उसी से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध बनता है।

२४१४. ज्ञानाभ्यास में दिन काल की एक कणिका भी व्यर्थ मत गँवाओ।

२४१५. जिस ज्ञान के द्वारा हाथ की रेखाओं की भाँति विश्व देखने में आ जाता है, उस ज्ञान को ही केवलज्ञान कहते हैं।

२४१६. ज्ञानाचार की आराधना से तीनों लोक में कीर्ति फैल जाती है।

ज्ञानी

२४१७. संसार में सुख जब चाहें जैसा चाहे, जितना चाहे नहीं मिल सकता, इस सत्य को जानकर ज्ञानी पुरुष इसकी ओर पीठ दिखाकर चले गये।

२४१८. ज्ञानी के लिए मृत्यु को आँखों से देखने का सौभाग्य सल्लेखना के समय प्राप्त होता है।

२४१९. जिससे हमारे दोष धुलें, कटें वे शत्रु कैसे ? ऐसा ज्ञानी सोचता है। वह कहता है तुमसे मेरे कर्म कटे तुमको मुझसे क्या मिला ?

२४२०. ज्ञानी जीव इस शरीर से आकर्षित नहीं होता वह इस बात को जानता है कि शरीर हमारे सारे

सत्कर्म (पुण्य) को जला देता है।

२४२१. वस्तु स्वरूप ज्ञात होते ही ज्ञानी जीव प्रत्येक क्षण का उपयोग आत्महित में ही करता है।

२४२२. ज्ञानी की दृष्टि में संसार की धन सम्पदा का कोई मूल्य नहीं रह जाता, क्योंकि उसे आत्म वैभव का परिचय हो जाता है।

२४२३. यौवन अवस्था में संयम को धारण करने वाले प्रशंसनीय हैं और वही इसलोक में ज्ञानी है।

२४२४. बैंक का मैनेजर अरबों की सम्पत्ति के बीच में रहता है, लेकिन उसे अपनी सम्पत्ति नहीं मानता। ठीक वैसे ही संसार विषयों के बीच में रहकर भी ज्ञानी उनसे प्रभावित नहीं होता, पर पदार्थ को अपना नहीं मानता।

२४२५. ज्ञानी लोग मोह रूपी मगरमच्छ के जबाड़ (मुख)में जाना नहीं चाहते, यह उनकी प्रौढ़ साधना मानी जाती है।

२४२६. ज्ञानी व्यक्ति तत्त्वचिंतन के माध्यम से संसार के दुःख को दुःख न समझकर सुख से जीवनयापन करता है।

२४२७. जब ज्ञानी कर्मों के उदय में तत्त्वचिंतन करने लगता है, उस समय कर्मोदय गौण हो जाता है, उसके संवेदन से बचा रहता है और नूतन कर्म बंध भी नहीं होता।

२४२८. ज्ञानी सोचता है एक न एक दिन वृद्धावस्था तो आनी ही है इसलिए ज्ञान और तत्त्व के साथ वृद्ध होना अच्छा है।

२४२९. ज्ञानी हंस के समान है, जो विषय रूपी कमल पत्र पर आसक्त नहीं होते। जबकि अज्ञानी भौंरे के समान उसमें आसक्त होकर जीवन खो देते हैं।

२४३०. चार संज्ञाओं के वशीभूत नहीं होना, तीन अशुभ लेश्याओं में नहीं जाना, इन्द्रियों के विषयों से एवं आर्त्त, रौद्र ध्यान से बचना तथा ज्ञान का दुरुपयोग नहीं करना सम्यग्ज्ञानी का लक्षण है।

२४३१. गाड़ी चलाते समय ड्रायवर किसी से बात नहीं करता क्योंकि उसे दुर्घटना से बचना होता है। इसी प्रकार ज्ञानी जीव हमेशा सावधान रहता है, आस्रव रूपी दुर्घटना (द्वार)से बचता है।

२४३२. आग के सम्पर्क में आते हुये भी हम आग को नहीं खाते, वैसे ही ज्ञानी जीव मोही के सम्पर्क में रहकर भी उनसे प्रभावित नहीं होते।

२४३३. कर्मों के अनुरूप ही नौ कर्मों का समागम होता है। इसलिए ज्ञानी धैर्यशाली कर्म की ओर दृष्टि रखता है, अच्छे-अच्छे कर्मों में मन लगाता है, फिर उसे उसके अनुरूप अच्छी-अच्छी वस्तुएँ प्राप्त होती जाती हैं।

२४३४. जो पराई वस्तु को अपनी नहीं मानता वह ज्ञानी माना जाता है।

२४३५. ज्ञानी वही है, जो मोह के क्षय का प्रयास करता है।

२४३६. मजबूत श्रद्धान वाला मोह की पर्त को जल्दी हटा देता है, जो हमेशा दोषों के उन्मूलन में लगा हो, वही सच्चा ज्ञानी है।

२४३७. बुद्धिमान वही है, जो सद्गति के कारणों में लगा रहता है। वे विरले ही होते हैं, जो अपने जन्म को सफल बना लेते हैं।

२४३८. संसार का मार्ग चौरासी लाख स्टेशनों वाला है, इसमें जीव आते जाते रहते हैं, इसमें ज्ञानी विस्मय नहीं करता। वह तो आत्महित की ओर बढ़ता चला जाता है, ये सब पूर्व कर्मों का फल है, ऐसा श्रद्धान बनाते हुए इस चक्कर से छूटने का प्रयास करता रहता है।

२४३९. तत्त्व ज्ञानी का मन समस्त परिस्थितियों में स्थिर ही बना रहता है।

२४४०. वस्तु का परिणमन उसके स्वरूप के अनुसार होता है, अपने मन के अनुरूप नहीं। ऐसा विचार कर ज्ञानी जीव कर्ता बुद्धि को छोड़कर ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव की ओर चला जाता है।

२४४१. ज्ञानी सोचता है वस्तु के परिणमन के बारे में, यह चर्म चक्षुएँ काम नहीं कर सकतीं यह मात्र श्रद्धान का विषय है। क्योंकि वस्तु के सूक्ष्म परिणमन को केवलज्ञानी ही देख एवं जान सकते हैं।

२४४२. ज्ञानी की दृष्टि में जीवन-मरण, आकांक्षा-भय ये सब समाप्त हो जाते हैं, उनकी दृष्टि तो ध्रुव की ओर ही होती है।

२४४३. जैसे पुराने वस्त्र छोड़ते समय दुःख नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी को सल्लेखना के समय शरीर छूटने का दुःख नहीं होता, इसलिए सल्लेखना के बाद मृत्यु महोत्सव मनाया जाता है।

२४४४. ज्ञानी हमेशा जन्म-मरण में, सुख-दुःख में साम्यभाव रखते हैं।

२४४५. औदारिक शरीर से ज्ञानी, आत्मा की साधना करता रहता है, जीने मरने की इच्छा नहीं रखता।

२४४६. जिसने कषायों का शमन और इन्द्रियों का दमन कर दिया, वह सबसे बड़ा ज्ञाता है, ज्ञानी है।

२४४७. जिसने पाप को शत्रु समझकर छोड़ दिया और कषायों के शमन में लग गया, वही ज्ञानी माना जाता है।

२४४८. पर के मंथन से श्रुत नहीं मिलता जैसे नीर के मंथन से नवनीत नहीं मिलता ज्ञानी ऐसा श्रद्धान रखता है।

२४४९. ज्ञानी के कर्म के संवर को कोई नहीं रोक सकता और अज्ञानी के कर्म आस्रव को भी कोई नहीं रोक सकता क्योंकि ये सब अपने-अपने भावों पर आधारित है।

२४५०. मेरा मुझसे मेरे द्वारा ही होता रहता है, ज्ञानी ऐसा श्रद्धान रखता है।

२४५१. ज्ञानी विवेकी वही है, जो कषाय का हमेशा शमन करता रहता है।

२४५२. श्वान पत्थर पर टूटता है, मारने वाले पर नहीं। यह अज्ञानी की वृत्ति है। जबकि सिंह पत्थर

पर नहीं, पत्थर मारने वाले पर टूटता है यह ज्ञानी की वृत्ति है, यह कार्य–कारण का सही ज्ञान है।

२४५३. जब तक सल्लेखना न हो जाये तब तक अतिविश्वास में नहीं आना चाहिए, हमेशा सावधानी रखना चाहिए। भले ही कोई ज्ञानी क्यों न हो, लेकिन वह आशा रूपी देवी को अपने पास रखता है तो उसे जीवन में कभी भी शांति का अनुभव नहीं हो सकता।

दशलक्षण

२४५४. दशलक्षण धर्म उस मानसरोवर में रहते हैं, जहाँ कषाय रूपी मगरमच्छ नहीं रहते, इसलिए अपने मन रूपी सरोवर को कषाय रूपी मगरमच्छ से रहित निःशंक बनाओ तभी धर्म को प्राप्त कर पाओगे।

२४५५. दशलक्षण धर्म को अपने जीवन में धारण करने के बाद पूरा जीवन पर्वमय हो जाता है।

क्षमा

२४५६. क्रोध ही शत्रु है, उसे दांत किटकिटाते हुए बाहर कर दो।

२४५७. गुस्सा के ऊपर गुस्सा करने वाला कुछ कर सकता है पर गुस्सा करने वाले पर गुस्सा करने वाला कुछ नहीं कर पाता।

२४५८. क्रोधाग्नि स्व एवं पर दोनों को जला देती है।

२४५९. क्रोध के कारण से हम स्व को भूल जाते हैं।

२४६०. क्रोध एक बहुत बड़ा नशा है। जो व्यक्ति की बुद्धि को गाफिल कर देता है।

२४६१. राख के द्वारा अग्नि बुझती तो नहीं पर ढक अवश्य जाती है। उसी प्रकार क्रोध में उपयोग समाप्त तो नहीं होता किन्तु ढक अवश्य जाता है।

२४६२. आत्मानुभूति करने के लिए क्रोध को निकालना आवश्यक होता है।

२४६३. उत्तम क्षमा रखना ही पर्व मनाना है। मन का विजेता बनना ही पर्व का सार है।

२४६४. आज आपस में आप क्षमा को स्वीकार रहे हैं, इससे बड़ा और कोई धर्म नहीं होगा।

२४६५. क्षमा ऐसी वस्तु है, जिससे सारी ज्वलनशीलता समाप्त हो जाती है और चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखने लगती है।

२४६६. भगवान् पार्श्वनाथ के जीव ने क्षमा रूपी महा शीतल धर्म के द्वारा ही सारी कठिनाईयों को सहा। क्योंकि वे इस बात को जानते थे कि अपने अपने कर्म का फल सभी भोगते हैं।

२४६७. अपने–अपने कर्म का फल भोगे संसार। एक खस टट्टी सींचता एक लेता बहार॥

२४६८. अगरबत्ती जलकर ही सुगंधी फैलाती है, हमको भी समता धारण करके आगे बढ़ना चाहिए महाभारत पढ़ने के बाद नवभारत के बारे में सोचें ? मैं कौन हूँ ?

२४६९. सम्बन्ध क्या है? वात्सल्य के साथ निभाना बाद में तो टूटना ही है। यह सम्बन्ध नहीं, संयोग

है उस दूध और पानी की भांति आप लोगों को रहना चाहिए।

२४७०. भगवान् को छोड़कर सभी से गलती होती है।

२४७१. संसारी प्राणी बाहर से सब ठंडे हैं पर भीतर से सभी गरम हैं (क्रोध सत्व में है इस अपेक्षा से)।

२४७२. इस जीवन में तापमान (क्रोध)पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकता लेकिन भीतर रहते हुए भी बाहर तापमान (क्रोध) नहीं आने देना, यह एक महान् पुरुषार्थ है।

२४७३. क्रोध ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हाथ में लेकर फेंक दो, बल्कि चाहो तो उसका उपयोग करने से रोका जा सकता है।

२४७४. वृद्धावस्था में भी क्रोध जीर्ण नहीं होता। चाहे वह आठ वर्ष का हो या अस्सी वर्ष का सभी में क्रोध भरा हुआ है, क्योंकि क्रोध कभी बूढ़ा नहीं होता।

२४७५. क्रोध अपने आप कुछ नहीं करता हम उस रूप परिणमन कर हो जाते हैं इसलिए वह अपना प्रभाव दिखा देता है।

२४७६. क्रोध के सत्त्व में बहुत ही शक्तिशाली बारूद भरी रहती है जिसका कभी भी विस्फोट हो सकता है।

२४७७. मान्यता मन में बनाये बिना क्रोध की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हो सकती।

२४७८. विषैले शस्त्र कभी अपने आप नहीं चलते, चलाने वाले पर आधारित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के पास फटाके (क्रोध) की दुकान है और वह स्वयं उसमें बैठकर चला रहा है। यदि विस्फोट हो गया तो पहले स्वयं जलेगा बाद में कोई जले भी या नहीं भी।

२४७९. कषाय को जीतना है तो क्षमा को धारण करो।

२४८०. साधुओं ने सबसे पहले संकल्प लिया है कि हम क्रोध रूपी बम का प्रयोग नहीं करेंगे। भीतर क्रोध होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं करेंगे तो शांति का वातावरण बना रहेगा।

२४८१. जिस प्रकार माचिस बाक्स में रखी हुई तिल्लियाँ बरसात में काम नहीं करतीं हैं बल्कि सभी घिसकर समाप्त हो जातीं हैं, इसका कारण नमी, आर्द्रता है। ठीक उसी प्रकार हमारे भीतर कषायों की तिल्लियाँ भरी पड़ी हैं, हम बाहर का वातावरण क्षमा का बना लें तो कषायों की तिल्लियाँ उदय में आकर चली जावेगी, कोई हानि नहीं होगी।

२४८२. क्रोध रहित वीतराग मुद्रा के सामने सिंह भी अपना हिंसत्व छोड़कर उनके चरणों में बैठ जाता है क्योंकि मान्यता के ऊपर ही क्रोध की उत्पत्ति होती है, क्रोध का विस्फोट मान्यता पर आधारित है।

२४८३. यदि कोई अपने ऊपर बरस (गरज) रहा है तो यह मेरे ऊपर नहीं गरज रहा है, यह तो अज्ञानी है ऐसी मान्यता बना लो। क्रोध बाहर नहीं आवेगा और आपने इसकी विपरीत मान्यता बना

ली तो आप अज्ञानी हो गये।

२४८४. क्रोध छोड़ने की भूमिका यही है कि अपनी विपरीत मान्यता को बदलिए।

२४८५. अज्ञान दशा में किए गए कार्य ज्ञान दशा में क्षमा करने योग्य होते हैं।

२४८६. स्वभाव को भूलने वाला ही क्रोध कर सकता है। क्रोध हमारा स्वभाव नहीं है, इस विश्वास को मूर्तरूप देते जाओ, धीरे-धीरे क्रोध पर विजय प्राप्त होती जावेगी।

२४८७. ज्ञानी के पास सदा स्वाभिमान रहता है। वह क्रोध में, उतावली में कभी अनुचित कार्य नहीं कर सकता।

२४८८. संघर्ष से जल में भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

२४८९. जब बादल जल से नहीं जलन से भरे होते हैं, तब आपस में संघर्ष कर लेते हैं तो वज्रपात हो जाता है।

२४९०. क्रोध का तूफान स्वयं एवं पर दोनों को उड़ा ले जाता है।

२४९१. हमारे परिणामों में यह क्षमता है कि हम सभी को जीत सकते हैं और चाहें तो सभी हमारे विरोधी हो सकते हैं।

२४९२. जिन वस्तुओं से क्रोध (कषायादि) उत्पन्न होते हैं, उन्हें पहले ही त्याग कर देना चाहिए।

२४९३. मान लो क्रोध रूपी अग्नि लग गयी है तो पानी डालो, पानी नहीं है तो धूल डालो, धूल नहीं डाल सकते तो अग्नि से ईंधन का सम्पर्क तो हटा सकते हो। फिर अग्नि धीरे-धीरे स्वतः शांत हो जावेगी।

२४९४. क्रोध करना अज्ञान का ही प्रतीक है, उस समय अपने को अज्ञानी समझना चाहिए।

२४९५. क्रोध रूपी अज्ञान को नष्ट करने के लिए क्षमा रूपी शस्त्र ही उपयोगी है।

मार्दव

२४९६. मान के खण्डन के बिना प्रदर्शन तो चलता रहेगा, किन्तु यह जीव अंदर के दर्शन से वंचित रह जावेगा।

२४९७. अभिमान नहीं बहुमान होना चाहिए।

२४९८. आत्म स्वरूप का ज्ञान होते ही बाहरी रूप का अभिमान टूट जाता है।

२४९९. क्रोध को पहचानने के लिए विशेष मेहनत नहीं लगती मान को पहचानने में देर लगती है। मान से बचने के लिए विवेक आवश्यक है।

२५००. ज्वर अंदर खून को जलाता है, वैसे ही यह मान है। हड्डी का ज्वर बहुत दिनों में निकलता है। मान भी मोतीझिरा जैसा अंदर प्रवेश कर गया है।

२५०१. देव, शास्त्र व गुरुओं के समागम से, उनके दर्शन से अनन्तानुबन्धी कषाय नष्ट हो जाती है। जैसे इन्द्रभूति समवशरण में गया और उसका मान खंडित हो गया।

२५०२. मानी व्यक्ति अच्छी-अच्छी हस्ती को डुबो देता है।
२५०३. मान के पीछे लग जाना बहुत बड़ा पागलपन है।
२५०४. जो मान रूपी हाथी पर आर्जव का अंकुश लगाकर उस पर बैठ जाते हैं, उनको नमस्कार है, वे तीन कम नौ करोड़ मुनिराज उसी में लगे हुए हैं। महान् व्यक्ति ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, वे उम्र में छोटे होते हुए भी महान् हैं।
२५०५. मान को खारेपन से ही तृप्ति मिलती है।
२५०६. आत्म तत्त्व, कषायों के कारण भव-भव तक विषाक्त होता चला जाता है।
२५०७. ज्ञान का प्रदर्शन करना बौनापन है। गहराई में जाने पर बताने की बात ही नहीं होती।
२५०८. ज्ञान, मान प्रतिष्ठा का विषय नहीं बनना चाहिए।
२५०९. संसार में, मैं और मेरेपन को लेकर संघर्ष चल रहा है यह विश्व में संघर्ष का स्रोत है।
२५१०. मान को जिसने मार दव (मार दिया) उसके मार्दव धर्म उत्पन्न होता है।
२५११. चेतन स्वभाव को छोड़कर घनत्व (मान) को स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह अपने अस्तित्त्व को संसार में अलग से कायम रखना चाहता है, जैसे बर्फ जल से पृथक् अस्तित्त्व बनाये रखना चाहता है।
२५१२. बर्फ जब अपने घनत्व को (मान को) मार देता है, छोड़ देता है तब वह पानी-पानी हो जाता है।
२५१३. मान बहुत बड़ा योद्धा है, वह अपने आपको सब कुछ मानता है सामने वाले की कीमत नहीं समझता। अभिमान यहाँ पर चूर-चूर हो जाता है कि पुद्‌गल (कर्म) के पास ऐसी शक्ति है कि जिसने केवलज्ञान के स्वभाव को नष्ट कर दिया है। वह कहता है मेरे राज्य में केवलज्ञान रूपी सूर्य की एक किरण भी नहीं फूट सकती। बारहवें गुणस्थान के अंत तक वह अपना अधिपत्य जमाये रहता है। यह देखकर मानी प्राणी का मान पानी पानी हो जाता है।
२५१४. अनंत शक्ति वाला चैतन्य तत्त्व इन मानादि कषायों के कारण कहाँ छिपा है पता नहीं।
२५१५. मान इंद्रियों की नहीं बल्कि मन की खुराक है।
२५१६. मन को मान से बचाना ही साधना की एक चरम सीमा है।
२५१७. तीर्थंकर चक्रवर्ती होते हुए भी नव निधि, चौदह रत्नादि के स्वामी मुनि बनने के बाद जब नवधाभक्ति के माध्यम से तप में वृद्धि के लिए एक गरीब की कुटिया में आहार लेने जाते हैं। चक्रवर्ती तीर्थंकर का इससे बड़ा और मान का हनन क्या होगा ? साधना वही है जो अपने मान को समाप्त कर दे।
२५१८. जब आत्मतत्त्व के प्रति बहुमान प्राप्त हो जाता है तब मान के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।
२५१९. मान को जीतने की आंतरिक साधना महत्त्वपूर्ण है।

२५२०. ख्याति, लाभ, पूजा एवं यशकीर्ति को छोड़ना बहुत कठिन है, ये संसारी प्राणी क्या कीर्ति-कीर्तन कर पावेंगे, इन्हें हमारा वास्तविक स्वभाव ज्ञात ही नहीं है।

२५२१. मान के लिए, तुलना के लिए दूसरा पदार्थ आपेक्षित होता है लेकिन आत्मा के लिए, स्वभाव में आने के लिए पर पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। मान द्वंद पैदा करता है।

२५२२. आठ चीजों (ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, तप, रूप और ऐश्वर्य) को लेकर मान हो सकता है यह विस्मय की नहीं अस्मय की बात है।

२५२३. वह अपना ही अस्तित्त्व समाप्त करना चाह रहा है, जो मान के कारण धर्मात्मा को नीचे दिखाना चाह रहा है। सम्यग्दृष्टि ही स्व-पर के अस्तित्त्व को समझ सकता है, जिसे आत्मा के अस्तित्त्व के बारे में पहचान हो जाती है वह मान के पीछे क्यों भागेगा ?

२५२४. मानी मानव दूसरे पर डिपेन्ड रहना चाहता है, दूसरे पर डिपेन्ड जो आनंद है, उसे पाने वाला भिखारी है। मान से सुख नहीं मिलता, वह सुखा देता है। मैं बड़ा हूँ, यह भी एक चिंता है।

२५२५. ऐसा स्वाध्याय, तप-साधना आदि करें ताकि मान प्रमाण के रूप में परिवर्तित हो जावे।

२५२६. अभिमान करने का उद्देश्य अपने को बड़ा मानना है और दूसरे को छोटा मानना यह एक खतरनाक उद्देश्य है और यही हमारा अज्ञान है।

२५२७. अध्यात्म के क्षेत्र में दूसरे को छोटा मानने वाले का स्वागत नहीं है।

२५२८. यदि मान की एक भी तरंग है, लकीर है तो लकीर के फकीर माने जाते हैं।

२५२९. मान का मर्दन करने वाला वीर माना जाता है, वही बाद में हमारे सामने महावीर बनकर आता है।

२५३०. बालक अच्छे कपड़े पहन ले तो उसकी चाल ही बदल जाती है, यह मान का प्रतीक है।

२५३१. हे प्रभु ! आपने ऐसे कौन से शस्त्र का प्रयोग किया कि आपका मान प्रमाण बन गया ? अधूरापन समाप्त हो गया।

२५३२. छोटे, बड़े की मान्यता हमारे ही दिमाग की उपज है, प्रत्येक जीव का अस्तित्त्व अनादि अनिधन है।

२५३३. अधूरे व्यक्तियों के पास जाओगे तो मान खड़ा होगा ही इसलिए मान से बचना हो तो भगवान् के पास बैठ जाओ।

२५३४. हम कभी भी दूसरे को छोटा नहीं मानेंगे यह छोटा-सा व्रत ले लो। फिर मान अपने आप समाप्त हो जावेगा।

२५३५. दूसरे को छोटा मानना अस्तित्त्व गुण में दोष है।

२५३६. कष्टों को सहते हुए साधना करें, बहुत कुछ प्राप्त हो जावेगा, मान के साथ नहीं।

२५३७. अभिमान में अड़ जाने पर संघर्ष छिड़ जाता है।

२५३८. अभिमानी धर्म नहीं कर सकता, क्योंकि पाप का मूल अभिमान है।

२५३९. यदि आप अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो, हमेशा-हमेशा रामायण का वाचन करते रहना चाहिए।

२५४०. लघु बने बिना दूसरे से प्रेरणा नहीं ली जा सकती और लघु बने बिना राघव नहीं बन सकते।

२५४१. नाम की तृष्णा, भूख एक प्रकार से हमें कर्त्तव्य से विमुख कर देती है।

२५४२. हे प्रभु! मुझे ऐसा पुण्य बंध न हो, जिससे में अभिमानी बन जाऊँ, मोक्षमार्ग ही छिन जाये।

२५४३. जिस साबुन से (दानादि से) कपड़ा साफ होता है, उससे कपड़ा (आत्मा) गंदा भी हो सकता है, अभिमान करने से। मान की तरंग उठने से अंतरंग बदल जाता है, मटमैला हो जाता है।

२५४४. लघुपना स्वीकारने से कषायों का शमन होता है। जिसके माध्यम से जीवन में विकास होता चला जाता है।

२५४५. पर्वत पर (बड़प्पन के पर्वत पर) चढ़ने से अहंकार की लू लग जाती है, नीचे रहने पर लू नहीं लगती।

२५४६. मानी की प्रेरणा संसार में भटकाने के लिये होती है और मानातीत दृष्टि वालों की प्रेरणा संसार से पार लगा देती है।

२५४७. मोहमार्ग वालों को मान अच्छा लगता है, श्रुत नहीं।

२५४८. मान की सामग्री मनुष्य ही सूंघता है, जंगली प्राणी नहीं।

२५४९. आत्मा के स्वरूप के बारे में सोचोगे तो रूप का मद नहीं होगा।

आर्जव

२५५०. हमारी दृष्टि में सरलता नहीं है, दृष्टि में सीधापन होना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

२५५१. सूक्ष्म की बात करते हैं, लेकिन सूक्ष्म-दृष्टि भी रखना चाहिए। आत्मा को देखने के लिए सूक्ष्म-दृष्टि की आवश्यकता है। भीतर से दृष्टि में एकाग्रता आनी चाहिए।

२५५२. संतुलन में ऋजुता रहती है। आज संतुलन के अभाव में बातों में भी सीधापन नहीं आ रहा है।

२५५३. दृष्टि में ध्रुव, लक्ष्य दिखना चाहिए, अर्जुन की भाँति।

२५५४. दृष्टि एक पर लगी रहती है तो बाह्य पदार्थ बाधक नहीं हो सकता।

२५५५. बहुत दूर तक न चलो, थोड़ा चलो पर सीधा तो चलो। युक्ति से, भक्ति से चलो। जैसे टेड़ी नली में धागा डालना है धागा के कार्नर में गुड़ लगा दिया चींटी उसे पकड़कर उस पार ले गयी।

२५५६. आर्जव धर्म सीधे होने की बात सिखाता है। हमारे, मन, वचन, काय में सीधापन होना चाहिए।

२५५७. जो सीधा होता है, वह सादा भी होता है, लेकिन आज हाई लिविंग विदाऊट थिंकिंग हो गया है। हाईलेविल पर आज कोई नहीं जी सकता मात्र भगवान् जीते हैं क्योंकि उनका अकालमरण नहीं होता।

२५५८. अतीत, अनागत वक्र है, वर्तमान सीधा है वर्तमान में जीना ही सीधा सरल माना जाता है।

२५५९. अतीत की स्मृति के कारण वर्तमान से वंचित होना पड़ता है। वर्तमान की मृति (मरण) और अतीत की स्मृति एकार्थवाची है। स्व की अनुभूति के लिए वर्तमान चाहिए। मन, वचन व काय की समष्टि में आनंद आता है।

२५६०. उस समय एक का ही अनुभव होता है, भविष्य जब भी आवेगा तो वर्तमान में ही आवेगा। इसलिए था, थे, थी, गा, गे, गी छोड़ दो। रहा, रही, हैं (वर्तमान) में आ जाओ यही सरल मार्ग है।

२५६१. मन जिनवाणी की गोद से उछलना चाहता है लेकिन जिनवाणी की गोद में ही हमेशा आर्जव धर्म बना रह सकता है।

२५६२. आप जिनवाणी को बच्चे की तरह सुनोगे तो ज्यादा सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, किसी एक का भी केवलज्ञानी पूर्ण अतीत नहीं कह पावेगे तो फिर उसे जानने की आप इच्छा क्यों रखते हो ?

२५६३. सीधा सादा जीवन जीने के लिए सीधा सादा रास्ता है।

२५६४. सीधा बोलना, सीधा चलना, सीधा सोचना सीखो। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो शांति से बैठ जाओ, फिर सीधापन अपने आप आ जावेगा।

२५६५. हर बात में टेड़ापन, हमारा जीवन कुत्ते की पूँछ की तरह है।

२५६६. हम दुनियाँ को तो सीधा करने में लगे रहते हैं पर अपने को सीधा करना नहीं सीख पाये। यही तो सबसे बड़ी विडम्बना है।

२५६७. साधु अपना टेड़ापन निकालता है, भगवान् के सामने रोते हुए कहता है कि हे भगवान्! मुझे कुछ हठात् करना पड़ता है न चाहते हुए भी।

२५६८. अपने को ही कर्म, कर्ता व साधन बनाओ मात्र एकत्व की भावना भाओ यही एक श्रेय मार्ग है, आर्जवधर्म है।

२५६९. वर्तमान है तो संवेदन है, अतीत का संवेदन करने का अधिकार किसी को नहीं है, अनागत का तो सवाल ही नहीं उठता।

२५७०. सरल कोण बन जाता है तो रेखा में एक भी अंश की कमी नहीं आती। आपका जीवन Triangle है। सीधा सरल बनाने का प्रयास करें।

२५७१. अपना ही उपयोग आनंद का धाम है और आक्रंदन का भी।

२५७२. उन प्रभु को बार-बार नमस्कार करते हैं, जिनका शांति का रूप हमें शांति का उपदेश देता रहता है।
२५७३. दृष्टि की वक्रता धर्म में बाधक है क्योंकि थोड़ी-सी भी वक्रता मोक्ष मार्ग में सहनीय नहीं है।
२५७४. वर्धमान कहते हैं कि वर्धमान मिलेंगे तो वर्तमान में मिलेंगे।
२५७५. हमें अपनी दृष्टि सब ओर से हटाकर वर्तमान में ही केन्द्रित करना चाहिए। जब हम वर्तमान को पकड़ लेंगे तो वर्धमान बनने में देर नहीं लगेगी।
२५७६. कल को पाने वाली दृष्टि टेड़ी मानी जाती है दृष्टि को चलाने की नहीं बल्कि स्थिर करने की आवश्यकता है।
२५७७. अपने उपयोग का टेड़ापन हमें अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता।
२५७८. हम अपनी दृष्टि को वर्तमान से हटाकर भविष्य के मूल्यांकन में लगा देते हैं, यही तो हमारी दृष्टि का टेड़ापन है।

शौच

२५७९. संतोष अमृत है, तृष्णा विष है।
२५८०. आवश्यक है अमृत और विष की पहचान करके विष के त्याग करने की।
२५८१. दूसरे को कितना मिल रहा है, यह मत देखो। तुम्हें कितना मिल रहा है उसे लेकर संतोष धारण करो।
२५८२. लोभी व्यक्ति धर्म को भी खा जाता है, धर्म के साथ खाओ पर धर्म का मत खाओ। निर्माल्य द्रव्य का भक्षण मत करो, इस महान् पाप से बचो।
२५८३. मन, वचन व काय की शुचिता के लिए खानपान की शुचिता अनिवार्य है।
२५८४. पवित्र भाव के द्वारा ही अशुद्ध द्रव्य पूर्णतः शुद्ध हो सकता है।
२५८५. शुद्ध हुए बिना अनगढ़ पत्थर की कोई कीमत नहीं। चारित्र रूपी शान के ऊपर चढ़ता है तो ज्ञान रूपी अनगढ़ पत्थर गले का हार बन जाता है।
२५८६. धर्म का लोभ जिसे होगा वही निर्लोभी होगा।
२५८७. शौचधर्म वह धर्म है, जिसमें शरीर को गौण किया जाता है।
२५८८. लोभ से चिपकने वाले के मन में अशुद्धि रहती है। लोभ हमेशा असंतुलन की ओर ले जाता है।
२५८९. लोभ को जिसने सुधारा नहीं, छोड़ा नहीं समझो उसने धर्म करना शुरू ही नहीं किया।
२५९०. शौच धर्म का अर्थ ही है अपरिग्रह के साथ मन को प्रसन्न बनाना।
२५९१. जो दीवाल मिट्टी की हो वह साफ नहीं हो सकती, उसी प्रकार यह शरीर है।
२५९२. मेरे अंदर अशुचिता है, ऐसा जो स्वीकारता है, वही शौच धर्म अंगीकार करता है। जो पहले

से अपने आप को शुद्ध मानता है, वह कैसे स्वीकारेगा ?

२५९३. सही सोला तो ऑप्रेशन थियेटर में रहता है।

२५९४. बहुमूल्य शक्ति अनगढ़ पत्थर में रहती है। अनगढ़ को शुद्ध कहोगे तो खदान में और जौहरी बाजार में कोई अंतर नहीं ?

२५९५. जीना है तो चढ़ो, संयम के जीना पर बिना स्नान के चढ़ना है। यहाँ शारीरिक शुचिता गौण हो जाती है आत्मिक शुचिता मुख्य हो जाती है। (जीना=सीढ़ी)

२५९६. तप, संयम की शुद्धि के बाद बाह्य शुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती।

२५९७. लोभ का त्याग करने पर ही शौच धर्म आ सकता है।

२५९८. लोभ पाप का बाप बखाना न जाने क्या-क्या खाना। लोभी, गेहूँ के साथ-साथ भूसा भी खा लेता है।

२५९९. श्मशान में भी मुनि शुचि धर्म की आराधना करते हैं।

२६००. मन से शुद्ध, लोभ रहित को नमोऽस्तु-निर्लोभी को कोई शोर/सूतक नहीं लगते।

२६०१. जिनका मन पवित्र होता है उनके सामने हमारे लोभ भी भय खाते हैं।

२६०२. संसार में परिग्रह का जाल हमेशा-हमेशा भटकाता रहता है।

२६०३. हम अनादिकाल से बाह्य की सफाई करते रहें लेकिन अंदर कभी दृष्टि ही नहीं डाली।

२६०४. दीवाल बाहर से पोत दी भीतर तो धूल ही धूल है।

२६०५. सम्यग्दर्शन और परिग्रह दोनों का सर्प-नेवला जैसा बैर है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, उसके लिए अनंतानुबंधी लोभ का त्याग करना अनिवार्य है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद दूरी भले हो पर मुख मंजिल की ओर होता है।

२६०६. तिर्यंच अपने पास लाकर कुछ नहीं रखते, संग्रह वृत्ति मनुष्य के पास ही जबरदस्त होती है।

२६०७. दूसरे को कुछ नहीं देना अपने सम्बन्धी को ही देना यह भी लोभवृत्ति है।

२६०८. जो अपना नहीं है, उसे दिन डूबने से पहले छोड़ दो, वरना खुद डूब जाओगे संसार समुद्र में।

२६०९. पक्षपात की जड़ लोभ है।

२६१०. बाह्य अशुचिता सागर के जल से भी धोओ तो कोई महत्त्व नहीं, भीतरी शुचिता के अभाव में। भीतरी शुचिता के लिए एक भी बार प्रयास नहीं किया, भीतर क्या हो रहा है जरा सोचो ?

२६११. अपने घर की सफाई की जाती है बाहर सड़क की नहीं।

२६१२. आत्मा को मांजने का विकल्प आज तक नहीं किया, सोचो कैसा विकृत हो रहा होगा।

२६१३. आप बिना स्नान भोजन नहीं करते और मुनिराज लोग इतने व्यस्त हो जाते हैं भीतरी सफाई करने में कि बाहरी सफाई के लिए विकल्प ही नहीं उठता।

२६१४. यदि हमारा अंदर की सफाई के लिए एक बार भी हाथ नहीं उठता, उस ओर कदम नहीं बढ़ता तो मानना होगा कि हम अंतर्जगत से अपरिचित हैं।

२६१५. चश्मे के काँच पर धूल जमी हो तो वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार आत्मा के ऊपर पड़ी कर्म रूपी धूल को नहीं हटाओगे तो आत्म तत्त्व के दर्शन नहीं हो सकते।

२६१६. यदि जल से शुचिता प्राप्त होती तो मछली और मेंढ़क तो उसी पानी में ही रहते हैं अभी तक तो वे शौच धर्म को प्राप्त कर चुके होते।

२६१७. आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त से प्रारम्भ होता है, जिससे उपयोग के मन की शुद्धि प्राप्त होती है।

२६१८. बर्तन को तपाकर उसके भीतरी स्थान को साफ-सुथरा करते हैं, वैसे ही भीतरी शुचिता के लिए आचार्यों ने बारह तप रखे हैं। जिसके माध्यम से जो भीतर लोभ बैठा है, वह बाहर निकल जाता है।

२६१९. कदाचित् लोभ ठीक है, कथंचित् नहीं। साधु संगति का लोभ, रत्नत्रय का लोभ, भगवान् के भजन का लोभ अच्छा है। धन का, पद का लोभ अच्छा नहीं है।

२६२०. लोभ छोड़ो नहीं उसका परिवर्तन कर दो। (पाप की जगह पुण्य में)।

२६२१. कुछ लोगों को भोजन करने का लोभ होता है तो कुछ लोगों को भोजन कराने का लोभ रहता है।

२६२२. आहार देने का लोभ यह बहुत बड़ा लोभ है वह आगे का प्रबंध कर रहा है।

२६२३. धार्मिक कार्यों में, अनुष्ठान में लोभ हो जावे तो इससे बढ़कर कोई दूसरी प्रभावना नहीं है।

२६२४. पवित्र भावना के माध्यम से धर्म की सुगंधी दूर-दूर तक फैल जाती है।

२६२५. आत्मा के ऊपर ऐसे संस्कार डालते जाओ जिससे लोभ अच्छे क्षेत्र में वृद्धिगत होता जावे। डॉ. को, वैद्य को पैसे का नहीं सेवा का लोभ होना चाहिए।

२६२६. यदि पर की सेवा नहीं कर सकते तो अपनी सेवा तो करो।

२६२७. यदि आपको अपने स्वयं के बारे में जानकारी हो गयी है तो क्या छोड़ना है ? क्या मांजना है ? उसे प्रारम्भ करिये।

२६२८. दुनिया अनावश्यकता के कारण दुःखी है और इसका कहीं स्टॉप (अन्त) ही नहीं।

२६२९. पेट अंदर साफ नहीं है और भोजन डाल लिया तो डकार में खट्टापन आवेगा ही।

२६३०. लोभ ही लोभ करते-करते जब कभी आत्मा की बात करते हैं, तब ऊँवासी (नींद) आने लगती है।

२६३१. हमें दुनियाँ का लोभ एवं धर्म में लोभ कितना है, विचार करो।

२६३२. हमारा धर्म के प्रति लोभ बढ़ जाये यही सबसे बड़ा शौचधर्म होगा। ये लोभ सही दिशा में होना चाहिए सेवा का लोभ, वैय्यावृत्ति का लोभादि।

२६३३. क्षयोपशम पढ़ने-पढ़ाने से नहीं बढ़ता बल्कि जितना मोह का अभाव होता जाता है उतना ही क्षयोपशम बढ़ता जाता है।

२६३४. हमें खोजना नहीं, खोदना है। संसार में धर्म खोजने से भागने से नहीं मिलेगा बल्कि रुकने से अपने अंदर खोदने से मिलेगा। पानी खोदने से मिलेगा भटकने से नहीं।

२६३५. आत्मा के लोभी को, आत्म-संतोषी को संसार के बाहरी प्रलोभन कभी लुभा नहीं सकते।

२६३६. दूसरे की वस्तु की माँग करना ही अपने धर्म को, स्वाभिमान को खोना है।

२६३७. अपनी आत्मा में ही सब कुछ है, यह श्रद्धान होने पर फिर आत्मा में ही खोदने का लोभ आ जावेगा और आत्म धन जो अंदर खदान है उससे प्राप्त कर लेगा।

२६३८. आत्म भान, वस्तु स्वरूप का ज्ञान होने पर शुचिता क्या वस्तु है, यह ज्ञात हो जाता है। जैसे आप बिना कहे स्नान कर लेते हो वैसे ही बिना कहे कषायों को धोने का कार्य भी करना चाहिए। भीतरी स्नान का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

२६३९. आप लोगों का लोभ ऐसा है कि एक हाथ से दान देते हो और दूसरे हाथ को आगे फैला देते हो कि इसका फल मिलेगा या नहीं। जो देता है, वह देखता नहीं जो देखता है वह देता नहीं। लोभ मंद हुआ है कि नहीं यह देखो, लोभ नहीं हो रहा है तो समझना मंथन अच्छा चल रहा है।

२६४०. लोभ के अत्यन्त अभाव में ही शौच धर्म प्राप्त हो जाता है।

२६४१. आप लोगों ने मन में ऐसे संस्कार डाल रक्खे हैं कि अनावश्यक का भी लोभ कर जाते हो।

२६४२. अनावश्यक के प्रति झुकाव होना ही तो लोभ है।

२६४३. संसारी प्राणी लोभ के कारण पर के (बच्चों आदि में) बारे में सोच रहा है अपने बारे में नहीं।

२६४४. लोभी प्राणी को अंत समय पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

२६४५. पुरुषार्थ स्वयं अपने क्षेत्र में कर सकते हैं यही मात्र नियति है, पर के क्षेत्र में लगना लोभ है।

२६४६. हाथ डालकर बर्तन साफ करिये आत्मतत्त्व रूपी दही को विकृत मत करिये।

२६४७. जो कर्म कालिमा अनादिकाल से जमी है उसकी थोड़ी-थोड़ी सफाई करते जाओ।

२६४८. वैभव मिलने पर लोभ बसने लगता है।

२६४९. पाई-पाई के लिए भाई ने भाई को नहीं छोड़ा, चक्रवर्ती ने अपने भाई पर चक्र चलाया।

२६५०. संतोष के बिना संयम प्राप्त नहीं हो सकता। संतोष संयम के पूर्व की भूमिका है और लोभ, संयम मार्ग का खतरनाक शत्रु है।

२६५१. मन पवित्र हो तो शरीर पवित्र हो ही जाता है, देव भी उस वीतराग रूप को देखने जमीन पर उतर आते हैं।

२६५२. ऊपरी साफ-सफाई आत्मानुभूति का कारण नहीं बन सकती बल्कि जो आत्मा पर कषाय रूपी गंदगी जमी हुई है, उसे साफ करने से आत्म लाभ होता है।

२६५३. रूप का मद देव और मनुष्यों को सताता रहता है।

सत्य

२६५४. सत्य को स्वीकारते हुए भी हम उसका अनुसरण नहीं कर पाते, इसलिए हमारा उद्धार नहीं हुआ है।

२६५५. जीभ दो न हों, जीवन में सत्य ही, सब कुछ है। जीभ दो न हों का अर्थ है, झूठ ना बोलो क्योंकि सत्य ही जीवन में सब कुछ है।

२६५६. हम सभी का सच्चा-सच्चा नाम है, आत्माराम।

२६५७. असत्य के साथ जीने वालों को कभी भी सत्य का दर्शन नहीं हो सकता।

२६५८. अहं (अहंकार) को छोड़ अहं (मैं) को पाना ही सत्य है, ऐसे सत्य को बार-बार नमस्कार हो। सत्य महाव्रत का अर्थ सत्य बोलना नहीं है बल्कि असत्य का त्याग करना है। सत्य कभी कटु नहीं होता लेकिन जो असत्य के आदी हो गये हैं, उन्हें सत्य कटु लगने लगता है और असत्य मधुर।

२६५९. जीवन में यदि कुछ प्राप्तव्य है तो वह है-सत्य।

२६६०. सत्य को प्रकट नहीं करना बल्कि असत्य की परतों को हटाना है, सत्य स्वतः प्रकट हो जावेगा।

२६६१. जिसे जीवन का प्राप्तव्य ज्ञात नहीं है, वह कभी सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

२६६२. राम नाम सत्य है, यह अंतिम मंत्र है।

२६६३. संकल्प न लेने वाले को सत्य पाना कठिन होता है। सत्य का उद्घाटन होना कठिन है।

२६६४. सत्य का पार नहीं पाया जा सकता, सत्य को देखा जा सकता है।

२६६५. सत्य को याद रखने की आवश्यकता नहीं होती जब सत्य आत्मसात् हो जाता है तो वह अपने आप याद हो जाता है।

२६६६. राम नाम सत्य होने के पूर्व में रावण को छोड़ दो राम हमेशा साथ हैं।

२६६७. जब सत्य दृष्टि हो जाती है, तब सारी धरती समग्र/अखण्ड दिखने लगती है।

२६६८. अपना सत्य जानो, सभी को अपना ही सत्य जानना है दूसरे का नहीं।

२६६९. सत्य हमारे बहुत पास है माया से धुंधला हो जाता है दिखाई नहीं देता।

२६७०. जल्दी की अपेक्षा ईमानदारी रखिए भले लम्बा चलना पड़े। प्रतीक्षा करिये सत्य अवश्य ज्ञात/प्राप्त होगा।

२६७१. सत्य तो सत्य है। दवाई की तरह है न मीठा है, न कड़वा है।

२६७२. सत्य को कटु सत्य इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसे अमल में लाते समय बहुत कठिनाई जाती है।
२६७३. सत्य हमेशा वाद-विवाद से परे होता है।
२६७४. सत्य वचन बोलने से मार्ग की प्रभावना होती है।
२६७५. दूसरे का नाम बदनाम हो जावे ऐसा बोलना असत्य है।
२६७६. सत्य पाना कठिन नहीं है, बल्कि असत्य छोड़ना कठिन है।
२६७७. दुनिया असत्य की सेवा करती है किन्तु सम्यग्दृष्टि सत्य की सेवा करता है।
२६७८. असत्य बोलने से मैं बच जाऊँगा ऐसा सोचने वालो सत्य तो यह है कि तुम कभी मर ही नहीं सकते। तुम तो अमर हो।
२६७९. यदि आपकी बात सत्य है तो उसे सिद्ध करने का प्रयास मत करो।
२६८०. सत्यवादी से लाखों लोग प्रकाश पा सकते हैं।
२६८१. जिसके माध्यम से हिंसा हो ऐसा सत्य भी ना बोलें।
२६८२. एक बार का बोला गया झूठ हमेशा का सत्य खो बैठता है।
२६८३. असत्य बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता।
२६८४. सत्य बोलने से वचन सिद्धि हो जाती है।
२६८५. अज का अर्थ बकरा होता है ऐसा असत्य बोलने से युगों-युगों तक हिंसा चल रही है।
२६८६. सत्य और अनुभय वचन संसार सुख के निर्माता हैं, ये वचन पाप से रहित हैं और धर्म सहित हैं, बोलने योग्य हैं तथा सारभूत हैं।
२६८७. असत्य का त्याग सत्य महाव्रत है और सत्य बोलना भाषा समिति है, गुप्ति भी है।
२६८८. अप्रिय और अहित करने वाले दोनों वचन स्वयं एवं पर के लिए दु:ख देने वाले होते हैं।
२६८९. कभी-कभी वह असत्य भी सत्य माना जाता है, जिससे जीवों की रक्षा होती है।
२६९०. सत्य, मिष्ट वचन बोलो तो बोलो नहीं तो मुख मत खोलो।
२६९१. सत्यनिष्ठ व्यक्ति के पास सरस्वती का वास होता है।
२६९२. क्षयोपशम बढ़ाने से नहीं बल्कि सत्यनिष्ठ होने से बढ़ता है।
२६९३. शब्दकोष में मधुरता नहीं होती बल्कि मुख और भावों में मधुरता होती हैं।
२६९४. सत्य की प्राप्ति के पूर्व असत्य क्या है, यह पहचानना सत्य की प्राप्ति का पहला कदम है।
२६९५. कषाय और विषयों से संसार का विकास होता है और दु:ख का लाभ होता है, यह भी एक सत्य है।
२६९६. हेय का विमोचन कर उपादेय की ओर कदम बढ़ाने का नाम सत्य है।
२६९७. सार-सार को निकाल लो असार को फटकार दो, इसी का नाम सत्य है।

२६९८. आज तक हमने असत्य को नहीं फटकारा इसलिए सत्य प्राप्त नहीं हुआ।

२६९९. सत्य बोलने का नाम सत्य व्रत नहीं है, बल्कि झूठ बोलने के त्याग का नाम सत्य व्रत है। असत्य को उपयोग में नहीं लाना ही सत्य है।

संयम

२७००. शरीर के बिना गाड़ी आगे नहीं जा सकती इसलिए औदारिक शरीर का बड़ा महत्त्व है, चूँकि औदारिक शरीर के बिना ''संयम का दर्शन नहीं हो सकता''। औदारिक शरीर छूटते ही असंयम में (देवगति) जाना पड़ता है, इसलिए शरीर की एकदम उपेक्षा करने से पाप का/असंयम का समर्थन हो जाता है।

२७०१. रोग होने पर औषधि न ली जायेगी तो शरीर जल्दी छूट जायेगा तो कहाँ जाओगे, स्वर्ग में। वहाँ क्या है ? असंयम! तो ध्यान रखो, असंयम का समर्थन हो जायेगा। टायर पंचर हो जाने पर गाड़ी नहीं बदली जाती बल्कि पंचर सुधार कर गाड़ी से काम लेते रहते हैं।

२७०२. संयम की रक्षा के लिए थोड़ा दोष क्षम्य होता है। जैसे लेख में (अल्प विराम, पूर्ण विराम।) क्षम्य होता है। पैराग्राफ (गद्यांश) छोड़ देना क्षम्य नहीं है।

२७०३. असंयमियों के बीच में रहकर संयम का पालन करना बहुत कठिन होता है।

२७०४. मनुष्य पर्याय को इन्द्र भी तरसते हैं, क्योंकि मनुष्य पर्याय में ही पूर्ण संयम को धारण किया जा सकता है।

२७०५. स्वर्गों में तो संयम की गंध तक नहीं आती।

२७०६. संयम और आचरण से ही धर्म का प्रारम्भ होता है।

२७०७. कषायों से घिरा मन विश्वास के योग्य नहीं है, मन वही है जो संयत है।

२७०८. मन पागल हो गया और काट रहा है तो कोई इंजेक्शन नहीं है, मात्र एक संयम ही उसके लिए इंजेक्शन है।

२७०९. आपकी गाड़ी का ब्रेक फेल है और गाड़ी वेगवान है, बस भगवान् का नाम लो, कहाँ जावेगी यह गाड़ी? पता नहीं।

२७१०. आत्मा को स्वच्छ, स्वतंत्र बनाना चाहते हो तो मन पर लगाम लगाओ।

२७११. विकल्पों को तोड़ने का एवं इच्छाओं को संयत बनाने का प्रयास करते रहना चाहिए।

२७१२. आत्मा की उन्नति चाहते हो तो संयम से डरना नहीं चाहिए बल्कि मन को दण्डित करते रहना चाहिए।

२७१३. मन पर लगाम लगाने का नाम संयम है। हमारा मन हमेशा पतन के गड्ढे में गिरा देता है। तत्त्व को पढ़ा नहीं जाता, प्राप्त किया जाता है।

२७१४. वैराग्य के समय भगवान् की पालकी असंयम की सेवा करने वाले देवतागण नहीं उठा

सकते।

२७१५. ज्ञान पाने का नहीं ज्ञान को रोकने का नाम संयम है।

२७१६. संयम के अभाव में जीवन खतरनाक सिद्ध होगा।

२७१७. जीवन का पतन जिससे हो वह विराधना है, साधना नहीं। बिना साधना के जीवन भारमय हो जावेगा।

२७१८. संयम के माध्यम से ही महान् आत्माओं ने स्वयं का एवं दूसरों का कल्याण किया है।

२७१९. संयम अनंतकालीन असंयम को दूर कर देता है। सहारा मिलने पर भी दुरुपयोग करोगे तो कल्याण नहीं होगा।

२७२०. असंयमी को संयमी से डर नहीं, संयमी को ही असंयम से डर रहता है।

२७२१. जो असंयम से डरता है वह सम्यग्दृष्टि है, पाप भीरुता होनी चाहिए।

२७२२. असंयम जीवन के लिए अभिशाप है।

२७२३. सम्यग्दृष्टि असंयम की सतह पर रहता है, उसमें डूबता नहीं है, क्योंकि वह संयम की तलाश में रहता है।

२७२४. अध्ययन के बाद की परीक्षा में जैसे कठिनाई होती है, वैसे ही सम्यग्दर्शन होने पर भी संयम लेने में कठिनाई होती है। संयम से ही श्रद्धा का विषय साक्षात् देखने को मिलता है। १२वें गुणस्थान तक परोक्ष ही सम्यग्दृष्टि रहता है। दूध में कभी भी घी का स्वाद आने वाला नहीं है चाहे तो उसे वर्षों तक रखे बैठे रहो।

२७२५. सम्यग्दृष्टि वह है जो संयम की ओर दृष्टि रखता है।

२७२६. संयम ही है जो ज्ञान को क्षायिक बनाता है, सम्यग्दर्शन को परम अवगाढ़ बनाता है।

२७२७. पहले दीक्षा की बात कही है फिर शिक्षा लेकिन आज पहले शिक्षा फिर दीक्षा की बात करते हैं। (पहले दीक्षा काल है फिर शिक्षाकाल)।

२७२८. जीवन में अशुभता तभी आती है जब असंयम आ जाता है।

२७२९. सम्यग्दर्शन अनगढ़ पत्थर है उसे गले में मत पहिनना, उसमें चमक लाना महत्त्वपूर्ण है। चारित्र रूपी शान पर चढ़ता है तो गले का हार बन जाता है। मटमैलापन दूर हो जाता है। परम अवगाढ़ सम्यक्त्व बनाने के लिए उसे चारित्र रूपी शान पर चढ़ाना आवश्यक है।

२७३०. पशु न बोलने से दुःख उठाते हैं और मनुष्य बोलने से दुःख उठाते हैं।

२७३१. मन पर लगाम लगाना दुःख का कारण मानते हो तो यह मोक्षमार्ग का विपरीत श्रद्धान है। मन बेटे के समान है, ताड़ने से पुत्र, शिष्य व मन में गुण आते हैं लाड़ करने से दोष आते हैं।

२७३२. उसी की बुद्धि ठीक अथवा स्थिर रह सकती है, जिसकी इंद्रियाँ उसके वश में हों।

२७३३. जड़ें मन में, रोग तन में। रोग का पहला घर मन ही है।
२७३४. जिसके मन में संयम रहता है, उसी के वचन व काय संयम रह सकते हैं।
२७३५. जो शिल्पी होते हैं, उनका भी एक संयम होता है, साधना होती है तभी उनकी कला की पूजा होती है। जो संयम को सौभाग्य समझकर स्वीकारता है उसका संसार थोड़ा-सा बचता है। वह संसार समुद्र से जल्दी पार हो जाता है।
२७३६. भगवान् की प्रतिछवि, वीतरागता का आदर्श हमारे सामने हमेशा बना रहे तो हमारा सम्यग्दर्शन एवं संयम सुरक्षित बना रहता है।
२७३७. संयम, ज्ञान और दर्शन को विकसित कर देता है।
२७३८. संयमी के पीछे दुनियाँ का संघर्ष नहीं आ सकता।
२७३९. संयम में आवरणी कर्म को हटाने की प्रक्रिया होती है।
२७४०. मन को संयत बनाने के लिए मन में यह विश्वास जगाना होगा कि विषयों में सुख नहीं है।
२७४१. संयम लेने के उपरान्त संसार वैभव इन्द्रधनुष के समान क्षणिक प्रतीत होते हैं।
२७४२. वह संकल्प का ही परिणाम है जो आपकी २४ घंटे रसोई घर में रहते हुए भी भोजन की ओर दृष्टि नहीं जाती है। लगाम (संयम) हाथ में है तो घोड़ा (मन) कहीं जा नहीं सकता। मन पर ऐसा लगाम लगाओ कि ध्रुव ही दिखे।
२७४३. वृद्धों को जैसे खेलकूद नहीं रुचते वैसे ही संयमी को इस संसार की क्रियाओं में कोई रुचि नहीं रहती। संयम रूपी निधि को उपलब्ध करने का सौभाग्य मनुष्य पर्याय में उपलब्ध होता है।
२७४४. संयम स्वतंत्रता के लिए होता है किसी के आश्रित नहीं रहता। संयमी किसी से डरता नहीं और किसी को डराता भी नहीं।
२७४५. संकल्प के बिना विचारों को मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता, संकल्प के बल पर पूर्व कोटि वर्ष तक मर्कट (बंदर) और कुक्कुट भी संयमासंयम का पालन करते हैं।
२७४६. विचारों को संकल्प का रूप नहीं देते तो वे अस्थिर रहते हैं, संकल्प से परिणामों में दृढ़ता आ जाती है।
२७४७. जिसका जीवन संयमित होता है, वह कर्म के उदय में गाफिल नहीं होता।

तप

२७४८. तप कर्मों के क्षय के लिए/किए जाते हैं ख्याति-लाभ पूजा में लिए नहीं।
२७४९. तपों के उद्देश्यों के बारे में सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि साधना का फल अलौकिक होता है।
२७५०. इच्छा निरोधः तपः। इच्छा पर वस्तु की होती है, इच्छा निरोध होते ही निर्जरा प्रारम्भ हो जाती

है।

२७५१. इच्छा मन का ही नाम है, उसी का निरोध करना तप कहा है।

२७५२. प्रभाकर (सूर्य) जब तक धरती को नहीं तपाता तब तक वर्षा नहीं होती।

२७५३. नौ दिन तपते हैं तपा, बीच में न चूयें तो अच्छा पानी गिरता है। आप भी जब तक मुक्ति नहीं पाओगे तब तक १२ तप तपने ही होंगे, तभी शांति उपलब्ध होगी।

२७५४. तपस्या कठिन-सी लगती है, लेकिन जिसे इसका फल एवं इस पर श्रद्धान रहता है वह कभी कठिन नहीं मानता।

२७५५. २८ मूलगुणों को तप नहीं कहा वे तपा के पूर्व के दिन है, तप तो १२ होते हैं। इस हीन संहनन के साथ आज जो अंतर्मुहुर्त साधना कर लेता है तो उस काल से कई गुणी मानी जाती है। आज रेत के ढेर में एक हीरे की कणिका की भाँति यह तप दुर्लभ है।

२७५६. मूल्यहीन मिट्टी में घड़ा बनने की क्षमता तप के कारण ही उद्घाटित हुई है।

२७५७. तपस्वियों के चरणों में जाओ यदि संसार सागर से पार होना चाहते हो तो, क्योंकि वे जहाज हैं संसार सागर से पार लगाने में।

२७५८. तप साधना के माध्यम से उत्कृष्ट अवस्था का अनुभव किया जा सकता है।

२७५९. जिस प्रकार अग्नि के माध्यम से पाषाण में से स्वर्ण पृथक् किया जाता है वैसे ही हम तप रूपी अग्नि के माध्यम से शरीर से आत्मा को पृथक् कर सकते हैं।

२७६०. तप रूपी अग्नि से शरीर नहीं जलता बल्कि कर्म वर्गणायें जलने लगती हैं।

२७६१. ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को जलाने के लिए भिन्न-भिन्न तप रूपी भट्टियाँ (अग्नि) हैं।

२७६२. तप कर्मों को नष्ट कर देता है और रागद्वेष, क्रोध तप को नष्ट कर देते हैं। जैसे दवाईयाँ रोग को ठीक भी करती हैं और अनुपात गड़बड़ाने से प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) भी करती हैं।

२७६३. इच्छाओं के माध्यम से स्व एवं पर को नष्ट भी किया जा सकता है, लेकिन तप के द्वारा स्व पर का कल्याण भी किया जा सकता है, इसलिए कहा है इच्छा निरोधः तपः।

२७६४. तप में जोखिम बहुत है, यदि उस समय हमारी दृष्टि साधना की रहती है तो ठीक है वरना तप स्वयं को भी हानिकारक हो सकता है। अपना ही शस्त्र अपने को ही घातक सिद्ध हो सकता है।

२७६५. वीतराग दृष्टि समाप्त हो जाने पर तप जल जाता है।

२७६६. जलाने वाला भी बुझ सकता है। जिस प्रकार अग्नि भगोनी में रखे दूध को तपा/जला रही है लेकिन असावधानी से यदि भगोनी लुढ़क गयी तो वही दूध/पानी अग्नि को भी बुझा देगा।

२७६७. संसार में आत्मा को कंचन का रूप यदि कोई दे सकता है तो वह है तप रूपी अग्नि।

२७६८. तप, ध्यान करने के लिए पहले भूमिका चाहिए। चार संज्ञाओं से ऊपर उठना, पंच पापों का

त्याग करना, मन और इंद्रियों को जीतना, समता रखना, फिर ध्यान लगेगा।

२७६९. तप करते समय लक्ष्य ध्रुव की ओर ही होना चाहिए वरन् दिशा बदलने से दशा ही बदल जाती है। मंत्रसिद्धि वालों को मैंने देखा है दिशा बदलने से उनकी दशा ही गड़बड़ा जाती है।

२७७०. तप को अनुपात से करना चाहिए एवं उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

२७७१. इंद्रिय और मन के उद्रेक को हटाने की अपेक्षा से तप करिये शरीर को नष्ट करने के लिए नहीं।

२७७२. शक्ति के साथ-साथ युक्ति से तप करना चाहिए, तभी मुक्ति का लाभ होता है।

२७७३. तप के माध्यम से मन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? यह भी देखना चाहिए। मन का उद्रेक कम हुआ कि नहीं, कषायों में मंदता आयी है कि नहीं, कर्म ढीले हुए हैं कि नहीं।

२७७४. प्रारम्भ में अग्नि सुलगाते समय थोड़ी-सी हवा की फूँक दी जाती है और जब अग्नि सुलगने लगती है तो उसे (सिगड़ी को) खुली हवा में रख देते हैं, ठीक यही प्रक्रिया तप करने की है।

२७७५. जलते हुए स्टोव में बर्नर में कचरा आने पर अग्नि गड़बड़ा जाती है उसी प्रकार तप करते समय प्रलोभनादि कचरा मन में आ जाता है तो तप गड़बड़ में आ जाता है।

२७७६. इच्छा का निरोध करना कठिन है, बंधुओं यही कार्य करने योग्य है और इस भव में यही करना है, इच्छा करना तो बहुत आसान है।

२७७७. तप करते समय (विकृती न होवे) तन और मन विकृत न हो यह ध्यान रखना चाहिए, तभी तप करना सार्थक होगा।

त्याग

२७७८. स्वस्थ यानि अपने आपका त्यागकर दूसरे का कष्ट दूर हो, ऐसी भावना आना/भाना दान धर्म माना जाता है।

२७७९. जिनायतनों की सुरक्षा में भावना के साथ-साथ धन भी लगाइए आप दान दे रहे हैं लगा नहीं रहे हैं।

२७८०. कुछ ग्रहण हुआ/किया कि समझो ग्रहण लग गया।

२७८१. स्व का कभी त्याग होता नहीं और पर का त्याग, त्याग माना नहीं जाता।

२७८२. अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र का त्याग नहीं होता। पर का क्या त्याग ? पर तो था ही नहीं।

२७८३. गृहस्थ को भी आवश्यकता से अधिक परिग्रह नहीं रखना चाहिए, नहीं तो संसार सागर में डूबना होगा/पड़ेगा।

२७८४. जब शरीर से ममत्व रखना भी परिग्रह है फिर कौन अपना होगा ?

२७८५. जिसने त्याग की ओर कदम उठाया है, वह मोह पर प्रहार कर रहा है। मोह को हराने का एक ही उपाय है अपनी ओर आना।

२७८६. कुछ द्रव्य के वियोग में जीव को पीड़ा जैसी होती है पर उस वस्तु द्रव्य को कोई पीड़ा नहीं

होती।

२७८७. धन का मोही वहीं अगले भव में कुंडली मारकर बैठ जाता है ताकि कोई उसका धन न ले सके।

२७८८. गृहस्थ का धन के बिना जीवन नहीं चलता लेकिन जिस धन के कारण जीवन अंधकार में चला जावे उससे क्या तात्पर्य ?

२७८९. थोड़ा-सा त्याग बीजारोपण की तरह हमेशा करते रहना चाहिए, जिससे भविष्य में पुण्य की फसल लहलहावेगी।

२७९०. राग का त्याग ही सही त्याग माना जाता है मात्र बाह्य परिग्रह का त्याग नहीं। जब राग छूट जाता है तब परिग्रह छूट ही जाता है।

२७९१. त्याग के संस्कार स्वर्गों में भी पाये जाते हैं, लौकान्तिक देव बन सकते हैं।

२७९२. परिग्रह त्याग का पाठ समझ में आ गया तो त्याग में लगे रहो दूसरों को भी लगाये रहो।

२७९३. धन कमाने की स्पर्धा की जगह धर्म कमाने की स्पर्धा में लगे रहो।

२७९४. प्रचलन में धन आवेगा तो बढ़ेगा। इच्छा का निरोध होते ही कर्म निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है।

२७९५. इच्छाओं का निरोध एक मौलिक वस्तु है, अद्‌भुत वस्तु है।

२७९६. राग संसार है तो त्याग मोक्षमार्ग है।

२७९७. पर को हाथ में ले रखा है इसलिए परास्त होते हो क्योंकि पराश्रय परास्त कर देता है।

२७९८. संयम के साथ-साथ दान भी आवश्यक होता है। अर्थ का लोभी जो होगा उसका संयम नहीं पलेगा।

२७९९. बांध में थोड़ा-सा पानी के लिए लीकेज रखा जाता है, आप भी थोड़ा-सा संविभाग करिए उसी को दान कहते हैं।

२८००. प्रभावना के लिए अर्थ का दान/त्याग करना चाहिए।

२८०१. पर के साथ आत्मीयता रखना प्रमाद कहा है, जिसे आत्मीयता के साथ स्वीकार कर लिया फिर उसे छोड़ना कठिन होता है। यह बात कटु सत्य है लेकिन दातून कड़वी ही होती है।

२८०२. निश्चयी (निश्चय नय वाले) को त्याग कोई वस्तु ही नहीं है। पर वस्तु मेरी है, यह कहना भी उसे अच्छा नहीं लगता।

२८०३. पानी कहीं अन्यत्र से नहीं लाना है, उसके ऊपर पड़ी मिट्टी की परतों को हटाना है इसी प्रकार आत्मा को कहीं से लाना नहीं है, उसके ऊपर जो राग की परतें जमीं हैं, उन्हें हटाना है। त्याग हमारा स्वभाव है, यह मन में ठान लेना चाहिए।

२८०४. योजनाओं को मूर्तरूप देने के लिए बहुत कुछ त्याग, संकल्प की आवश्यकता होती है।

२८०५. संसार का रोग जिससे बढ़ रहा है, उसे छोड़ दो बस, दवाई की आवश्यकता ही नहीं।

२८०६. त्याग भी एक उद्देश्य को लेकर होना चाहिए, बिना उद्देश्य के किया गया बहुत बड़ा त्याग भी कुछ कार्यकारी नहीं होता।

२८०७. दान और वरदान की घोषणा के बाद वापस नहीं लिया जाता यह क्षत्रियों का काम है।

२८०८. त्याग को व्यवसाय का रूप नहीं देना चाहिए।

२८०९. द्वेष छोड़ने से सभी जीवों से मित्रता हो जाती है और राग छोड़ने से भगवान् की ओर बढ़ जाते हैं।

२८१०. जब विकार बाहर निकल जाता है, तब प्रकृति से मुलाकात होती है।

२८११. पाँच पापों का त्याग कर दिया अब इसमें अहंकार का भी त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि बाह्य त्याग अंतरंग की वृद्धि के लिए किया जाता है।

२८१२. जिस वस्तु से राग हो रहा है, उस वस्तु का त्याग करना अनिवार्य है।

आकिंचन्य

२८१३. जब हम अकेले हो जावेंगे तो दुनिया अपने आप अपनी हो जावेगी।

२८१४. मन जितना हल्का होगा तो परिग्रह छोड़ने से ही होगा।

२८१५. धन, लक्ष्मी आत्मा की आराधना में बाधक हैं, शरीर भी बिगड़ जाता है। जितने भी दुःख, संक्लेश परिणाम होते हैं, उसका मूल कारण संयोग है। लक्ष्मी (धन परिग्रह) रखते हो तो रौद्र-ध्यान (संरक्षणानंद) से नहीं बच सकते हो।

२८१६. भय संज्ञा के योग्य जो पदार्थ अपने पास रखता है, उसका अकाल मरण हो सकता है। हृदयगति हमारे भावों पर चलती है, यह बीमारी नहीं है भय है, कषाय है।

२८१७. जो भय से मुक्त होना चाहता हो, निशंक ध्यान करना चाहता हो, उसे परिग्रह रहित होना अनिवार्य है। भार छोड़ने से मन लगेगा वरना नहीं।

२८१८. जिसके पास कषाय अधिक होती है, प्रायः उसी को असाध्य रोग होते हैं।

२८१९. प्रशस्त मन को दवाई की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं स्वास्थ्य के निर्माता हैं यहाँ पर शारीरिक, मानसिक दोनों चिकित्सा होती है।

२८२०. जिससे विकल्प हो रहा हो, उसे छोड़ दो।

२८२१. तिलतुष् मात्र भी मेरा नहीं है यह दुकान, घर में बैठकर सोचो तब सब छूट जावेगा मात्र ग्रन्थ में पढ़ने से नहीं।

२८२२. ताला लगाना रौद्र-ध्यान का प्रतीक है। ताले से रौद्र-ध्यान का अनुपात ज्ञात होता है। रौद्र-ध्यान को कम करोगे तो ऊर्ध्वगमन स्वभाव की ओर बढ़ते जाओगे।

२८२३. अध्यात्म में जिनका जितना अधिक परिग्रह कम होगा वे उतने ही बड़े माने जावेंगे। श्रमण शरीर की रक्षा करते हैं लेकिन वह परिग्रह के अंतर्गत नहीं आता। वे मठाधीश बने बिना

चातुर्मास स्थापना करते हैं।

२८२४. मात्र आत्मतत्त्व ही हमारा है उसी की रक्षा, व्यवस्था में लगे रहो।

२८२५. स्थान के प्रति मोह भाव परिग्रह का रूप धारण कर लेता है। आप पद की नहीं रत्नत्रय से विभूषित पद के धनी बनें।

२८२६. परिग्रह से रहित आत्मा ऊर्ध्वगामी होती है।

२८२७. आकिञ्चन रूप घी को, छटॉक भर घी को, नीचे डाल दो और पचास किलो दूध डाल दो फिर भी वह ऊपर आ जावेगा।

२८२८. आकिञ्चन वही है जो किसी में नहीं मिलता। किसी से मिल तो सकता है, पर किसी में मिलता नहीं। क्योंकि स्वभाव का यह स्वभाव है कि स्वभाव किसी में मिलता नहीं।

२८२९. आकिञ्चन धर्म का जो मौलिक महत्त्व समझते हैं, वे ही इसे स्वीकारते हैं।

२८३०. वैष्णव धर्म में इसे दारिद्र व्रत कहा है।

२८३१. जोड़ने वाला नहीं खाली करने वाला बड़भागी/ सौभाग्यशाली होता है।

२८३२. मोह गले तो आकिञ्चन प्राप्त हो।

२८३३. इस शरीर रूपी जेल से छूटने के लिए आकिञ्चन धर्म को स्वीकारा जाता है।

२८३४. इस मौलिक पदार्थ के सामने सारे पदार्थ कौड़ी के मोल दिखते हैं।

२८३५. यदि जीव बाह्य से भी आकिञ्चन धारण कर लेते हैं, भले अंदर के कर्म नहीं छूट पाते तो भी वे स्वर्ग में अंतिम ग्रैवेयक तक जा सकता है और कोई उपाय से नहीं जा सकते।

२८३६. पर को हाथ में मत रखो फेंक दो वरना ताली नहीं बजा पाओगे।

२८३७. पर द्रव्य का आश्रय जितना कम करोगे उतने स्वस्थ्य होते जाओगे। आवश्यकता से बाहर कोई भी कार्य करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

२८३८. पानी का अंश होने से दूध की आरती नहीं बनती बल्कि अग्नि परीक्षा के बाद घी से आरती बनती है।

२८३९. घी में चेहरा दिखता है वैसे ही आकिञ्चन होने पर ही वस्तु स्वरूप झलकता है।

२८४०. तीन लोक में एकत्व ही मात्र दुर्लभ वस्तु है, इसे जो स्वीकार करता है उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है।

२८४१. मुक्ति उन्हीं को मिलती है, जिसके पास कुछ नहीं होता। अकेले का महत्त्व अलग ही होता है, यह तृष्णा की रेखा तो विश्ववन की व्याली (सर्पिणी) है।

२८४२. जिस दिन आचरण में आकिञ्चन धर्म आ गया समझो वह अभूतपूर्व घटना होगी।

२८४३. अध्यात्म के शरीर में ममत्व को भी परिग्रह कहा है। प्रतिभासम्पन्न वही होता है जो दूसरे पर आधारित नहीं होता।

२८४४. आकिञ्चन ही प्रारम्भ दशा है और अंतिम दशा है, बीच में तो यह नाटक अज्ञान दशा का है।

२८४५. यह जीव वस्तु स्वरूप के अभाव में विश्व की मूर्च्छा के पीछे भागता रहता है।

२८४६. तीन लोक की सम्पदा आपदा है, विपत्ति का घर है। बाहुबली अकेले ही जंगल में खड़े हो गये। उन्होंने सोचा जिस सम्पदा को लेकर भाईचारा समाप्त हो गया, प्रजा का मैत्रीभाव चला गया धिक्कार है इसे। मुझे राज्य मार्ग नहीं चाहिए और महाराज मार्ग की ओर बढ़ गये। संख्या में १ को राम कहते हैं, राम मतलब एक अकेला। अंत में तो राम नाम सत्य है।

२८४७. यह प्राणी परिग्रह (मूर्च्छा) के लिए सात-समुंदर पार कर जाता है। चक्रवर्ती एक आम के पीछे पागल हो जाता है, अपने पद को भूल जाता है।

२८४८. एक बार आकिञ्चन बनकर देख लो तीन लोक के नाथ बन जाओगे।

२८४९. त्याग के बाद आकिञ्चन क्यों ? क्योंकि योग्य का भी त्याग करना है।

ब्रह्मचर्य

२८५०. धर्म की आराधना करते जाओ, उसकी सिद्धि करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह किसी के देखने में नहीं आता।

२८५१. प्रभु ने सुना कि प्रभु की भक्ति ने सुना, भक्ति के माध्यम से प्रभु तक पहुँच जाते हैं। वह वस्त्र शील रक्षा के लिए शस्त्र का काम कर गये द्रौपदी के लिए।

२८५२. भक्ति में इतनी शक्ति थी कि उनको, साड़ी भेजना पड़ी। यहाँ शील है तो वहाँ साड़ी है। विज्ञान इस दिशा में नहीं पहुँच पावेगा।

२८५३. आज अनर्थ की जड़ टी.वी. है, जिसके माध्यम से संतान पतन की ओर बढ़ जावे उसे छोड़ने में क्या बाधा? टी.वी. से बुद्धि का नहीं वासना का विकास हो रहा है। जिसके माध्यम से शीलव्रत में कलंक लग रहा हो उसे घर में रखते ही क्यों हो ?

२८५४. शील व्रत की कथा पढ़ने की प्रथा रखनी चाहिए।

२८५५. शील की उपासना करने वालों को शील भंग के कारणों (टी.वी. आदि) का त्याग कर देना चाहिए। शील की रक्षा इसके बिना सम्भव नहीं है।

२८५६. टी.वी. के डिब्बे को अलग कर दो, वह शैतान का डिब्बा है, उसे देखने वाले भी शैतान हो जाते हैं। घर में जिससे अनेक प्रकार के तूफान उठते हैं, उन्हें बाहर निकालिये और मन की शुद्धि के लिए प्रथमानुयोग का स्वाध्याय करिये, माला फेरिये।

२८५७. वासना हमारे और भगवान् के बीच में अभिशाप सिद्ध हो जाती है।

२८५८. जो पर में तत्पर रहता है वह परास्त हो जाता है।

२८५९. मैं अंदर से इतना स्वच्छ रहूँ ताकि कोई बाह्य का असर न पड़े, यह प्राकृतिक चिकित्सा है।

शादी के बाद अन्य के प्रति माँ, बहिन का भाव आना भारतीय संस्कृति है। रावण ने भी व्रत लिया था हठात् किसी स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा।

२८६०. योग और उपयोग में इतनी शक्ति है कि अन्य की आवश्यकता ही नहीं मात्र दृढ़ विश्वास चाहिए।

२८६१. माँ को माँ बहिन को बहिन समझना यह उपयोग का ही वरदान है।

२८६२. कई व्यक्ति परिवार के बंधन में बंधे रहते हैं, यह योग/उपयोग की साधना है यह अन्यत्र भी करें, फिर सारा संसार परिवार नजर आने लगेगा।

२८६३. इमली का पेड़ बूढ़ा हो जाता है, पर उसकी खटाई बूढ़ी नहीं होती, यही दशा वासना की है।

२८६४. वस्तु स्वरूप समझ में आ जाता है तो फिर शरीर पर आवरण की बात ही नहीं रह जाती, दिगम्बरत्व प्राप्त हो जाता है।

२८६५. आत्मा का स्वरूप समझ में आ जाता है तो वस्त्र को स्वीकारना लज्जा जैसी लगती है।

२८६६. पर की अपेक्षा मोक्षमार्ग में नहीं होती, पर को स्वीकारना मोक्षमार्ग को सहनीय नहीं इसलिए मोक्षमार्गी को भी वस्त्र पहनना सहनीय नहीं है।

२८६७. मोक्षमार्गी पेट के लिए कुछ आहार लेता है, तब उसे लज्जा आती है, जल्दी-जल्दी चौके से बाहर निकलने के भाव रहते हैं, यह भी ग्रहण करना उसे सह्य नहीं होता। वस्त्र ग्रहण करना तो इष्ट है ही नहीं।

२८६८. अन्न के बिना जीवन चल नहीं सकता इसलिए अन्न को ग्रहण करना पड़ता है।

२८६९. वीतरागी को विष भी अमृतमय हो जाता है, वीतरागता के सामने राग नीचे बैठ जाता है।

२८७०. तात्त्विक दृष्टि आने के बाद भी यदि विषयों का जहर नहीं निकला तो समझना अभी तत्त्वज्ञान हृदयग्राही नहीं हुआ है।

२८७१. स्वभाव तो त्रैकालिक है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता मात्र उसका अनुभव किया जा सकता है।

२८७२. तृष्णावान हमेशा भविष्य जानना चाहता है लेकिन भविष्य की बात करने वाला अंधकार में है, यह नहीं जानता।

२८७३. साधु की सेवा करने वाला श्रावक भी साधु का अनुचर (अणुव्रती) होता है, उसके पास भी वासना सीमा होती है (स्वदारसंतोष व्रत होता है) उसका वह उल्लंघन नहीं करता।

२८७४. भारतीय आचार-संहिता पढ़ने से ज्ञात होता है, श्रावक धर्म रागमय है पर उसकी दृष्टि हमेशा वीतरागता की ओर रही है।

२८७५. श्रावक तीनों संध्याओं में शुद्धोपयोगी मुनिराज के जीवन चर्या के बारे में चिन्तन करता रहता है।

२८७६. श्रमण साधु जन स्वयं शोध करते हैं लेकिन श्रावक सहयोगी पति-पत्नि के साथ एक दूसरे की कमजोरी को दूर करते रहते हैं, एक दूसरे का निर्देशन तब तक नहीं छोड़ते जब तक थीसिस पूर्ण न हो जाये। जब तक घर में है, तब तक साथ है, वैराग्य हो गया (थीसिस पूर्ण) बस चल दिये संन्यास की ओर।

२८७७. धर्म परम्परा को संचालित करने के लिए स्वदारसंतोष व्रत लिया जाता है। एक के अलावा अनंत का विकल्प हट जाता है, अनंत वासना चुल्लु भर रह जाती है।

२८७८. वासना के लिए विवाह नहीं होता बल्कि संस्कारित संतान के लिए, धर्म परम्परा चलाने के लिए विवाह होता है।

२८७९. मुनिराज या भगवान् ऊपर से नहीं आते बल्कि उन्हीं आदर्श गृहस्थ के यहाँ उत्पन्न संस्कारित शिशु हुआ करते हैं, वे ही महाराज व भगवान् बनते हैं।

२८८०. भारतीय संस्कृति में चार आश्रम होते हैं-श्रावक गृहस्थाश्रम वासी है।

२८८१. आप लोग भी पूर्वजों के पद चिह्नों पर ही चलिए अपना नया रास्ता मत बनाइए।

२८८२. श्रावक धर्म में कमी आ गयी तो, श्रमण धर्म नहीं रह सकता।

२८८३. रेल में श्रावक पीछे गार्ड बाबू जैसा है ड्रायवर (साधु) इसके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता।

२८८४. स्वदारसंतोष व्रत को कुशील नहीं कहा सुशील कहा है। ब्रह्मचर्य व्रत कहा है। (स्वदार संतोष व्रत का अर्थ है-अपनी स्त्री में ही संतुष्ट रहना)।

२८८५. आप लोग नाप-तौल छोड़कर अपना कर्तव्य पूरा करें, दहेज से संघर्ष शुरू हो जाते हैं और धार्मिक संस्कार समाप्त हो जाते हैं। गर्भपात अधर्म कर्म है, निकृष्ट कर्म है, अन्याय है।

२८८६. काम पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त फल को नष्ट करना ठीक नहीं।

२८८७. दीनहीन व्यक्तियों के माध्यम से धर्म नहीं चलता क्योंकि यह क्षत्रियों का धर्म है।

२८८८. पुरुषार्थ के माध्यम से धन कमाओ। पैसों से घर नहीं चलने वाला बल्कि संस्कारों से घर चलेगा।

२८८९. दान, पूजा, शील एवं उपवास ये चार धर्म श्रावक के लिए बताये हैं। शील का अर्थ स्वभाव होता है, ब्रह्मचर्य होता है।

२८९०. जब तक श्रावक ब्रह्मचर्य के साथ रहता है, तब तक उसे घर गृहस्थी का दोष (पाप) नहीं लगता।

क्षमावाणी

२८९१. श्रमण की दैनिक चर्या में प्रतिक्रमण आता है, प्रतिक्रमण का अर्थ ही है, प्रत्यक्ष कोई सामने हो या न हो तीन लोक में किसी भी जीव के प्रति अपराध हो गया हो तो क्षमा मांगना। वस्तुतः

हमें क्षमा मांगना है और हमें क्षमा करना है। दूसरे क्षमा मांगे, या न मांगे क्षमा करें या न करें इससे कोई मतलब नहीं, क्योंकि क्षमा तो हमारा स्वभाव है।

२८९२. क्षमा धारण किये बिना मोक्षमार्ग ही नहीं बनता।

२८९३. क्षमा मांगने जैसा पवित्र भाव और दुनियाँ में कोई भाव नहीं हो सकता।

२८९४. साधु हर क्षण क्षमा मांगता है प्रत्येक क्रिया में कायोत्सर्ग करता है।

२८९५. जिनके जीवन में क्षमा अवतरित हो जाती है, वह पूज्य बन जाता है। जरा सोचो तो जो वस्तु तीन लोक में पूज्यता प्रदान करा दे, वह कितनी मौलिक वस्तु होगी।

२८९६. कषाय सहित होने से लोग देखना भी पसंद नहीं करते और यदि कषाय रहित हो गया तो उसे देखने के लिए, दर्शन करने के लिए दूर-दूर से लोग आ जाते हैं।

२८९७. क्षमा हमारी ही वस्तु है, जब क्षमा की अभिव्यक्ति हो जाती है तो उस क्षमा की मूर्ति के सामने हत्यारा भी हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। उसके नाम की जाप देता है, णमो लोएसव्वसाहूणं कहता है।

२८९८. अष्टपाहुड ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने क्षमाधारी मुनिराज को, जिनायतन, जिनबिम्ब, तीर्थ आदि कहा है जिनलिंग कहा है, उन्हें जिन प्रतिमा में दर्शन की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं जिनेन्द्र भगवान् के प्रतिबिम्ब हैं। क्षमाधारण करने के बाद जीव का महत्त्व कितना बढ़ जाता है इसे हम मुख से वर्णन नहीं कर सकते हैं। साधु का जीवन उज्ज्वल होता है।

२८९९. दीपक है उसकी लौ है तो धुआँ भी जुड़ा रहता है, वैसे ही संसारी प्राणी के साथ अज्ञान जुड़ा होता है।

२९००. स्वभाव की प्राप्ति होते ही यह जीव निर्विकार हो जाता है।

२९०१. जो क्षमा के अवतार होते हैं, उससे क्षमा मांगने और क्षमा करने की बात ही नहीं क्योंकि उनके पास क्षमा हमेशा रहती है।

२९०२. क्षमा और प्रतिक्रमण के आँसू से साधु अपना सारा अपराध बहा देता है, धो लेता है, फिर स्वयं क्षमा की मूर्ति बन जाता है। (क्षमा मांगना नहीं क्षमामय बनना चाहिए)।

२९०३. पश्चात्ताप की घड़ियाँ जीवन में हमेशा नहीं आया करतीं, ये अपने स्वरूप तक ले जाने वाली घड़ियाँ हैं, स्वरूप प्राप्ति का प्रवेश द्वार है।

२९०४. जब तक प्रतिक्रमण नहीं करता तब तक निश्चय में नहीं डूब सकता।
क्योंकि बाहरी लीनता के हटाने का नाम ही आत्मा में लीन होना है।

२९०५. ग्रामीण लोग कजलियाँ भेंट करते हैं, यह कटुता समाप्त करने का त्यौहार है।

२९०६. कषायों के वातावरण के साथ तो अनंत समय बिताया है, अब आत्मीयता के (वातावरण के) साथ जियो।

२९०७. मतभेद और मन भेद को समाप्त करके एक हो जाओ, भगवान् के मत की ओर आ जाओ फिर सारे संघर्ष समाप्त हो जायेंगे।

२९०८. कषायभाव हमारे जीवन से समाप्त हो जावें, इसलिए यह क्षमावाणी का त्यौहार मनाया जा रहा है।

२९०९. क्षमाभाव को आत्मसात् करने का आनंद अद्भुत ही हुआ करता है।
आप लोग क्षमाधर्म का अभ्यास करो।

२९१०. हमारा ही उपयोग बड़ी महत्त्वपूर्ण वस्तु है, यह हमें अविनश्वर फल देने वाली योग्यता रखता है। इसमें उत्पाद विष्णु, व्यय शंकर, ध्रुव ब्रह्मा सब कुछ मौजूद है।

२९११. रक्षक, भक्षक, अविनश्वर इसी जीव में सब कुछ विद्यमान है।

२९१२. क्षमा ऐसी वस्तु है जिससे सारी ज्वलनशीलता समाप्त हो जाती है एवं चारों ओर हरियाली का वातावरण दिखाई देने लगता है।

२९१३. क्रोध में उपयोग नहीं रहता और उपयोग क्रोध में नहीं रहता। इसका तात्पर्य यह है कि क्रोध के समय उपयोग क्रोध रूप परिणत हो जाता है।

२९१४. साधु क्रोध रूपी शत्रु को क्षमा रूपी तलवार से नष्ट कर देते हैं।

२९१५. क्षमा कल्पवृक्ष के समान है, क्षमा के समान कोई धर्म नहीं है।

सम्यग्दर्शन में आठ अंग

निःशंकित अंग

२९१६. जैसा देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप आगम में कहा गया है वैसा ही है, अन्य भी नहीं है और अन्य प्रकार भी नहीं है, ऐसा श्रद्धान रखना निशंकित अंग है।

२९१७. जिनेन्द्र भगवान् के वचनों पर शंका न रखना (करना) निशंकित अंग है।

२९१८. तलवार की धार पर लोहे में पानी की बूँद अकम्प रहती है, इसी प्रकार निःशंकित अंग वाले का सम्यग्दर्शन संशय रहित अकंप होता है।

२९१९. निशंकित अंग वाले की पहले की अपेक्षा दृष्टि बलवती बनी रहती है।

२९२०. बार-बार उपयोग करने से तलवार की धार में कमी आ जाती है, लेकिन सम्यग्दर्शन रूपी दृष्टि बार-बार श्रद्धान से बलवती होनी चाहिए।

२९२१. जिसका जो स्वरूप आगम में कहा है-उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए वरन् बड़ों की आसादना हो जावेगी और ऐसा होना व्यवहार-कुशलता नहीं मानी जाती।

२९२२. मिथ्यात्व के ऊपर भी हेय रूप श्रद्धान रखो कि ये संसार का कारण है ऐसा निःशंक होकर श्रद्धान रखो।

२९२३. निःशंकित अंग में अंजनचोर प्रसिद्ध है जिसने जिनदत्त सेठ पर श्रद्धा रखकर णमोकारमंत्र का

उच्चारण करते हुए सींके को काट दिया और आकाशगामिनी विद्या सिद्ध कर ली।

निःकांक्षित अंग

२९२४. पूजा, ज्ञान, तपश्चरण आदि अनुष्ठान मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्जरा के लिए होना चाहिए, इस लोक-परलोक सम्बन्धी भोगाकांक्षा रूप निदान से रहित होना निकांक्षित अंग है।

२९२५. धार्मिक कार्यों में आत्म संतुष्टि का होना ही निःकांक्षित अंग है।

२९२६. धर्म करते हुए पंचेन्द्रिय विषयक सुख में आस्था नहीं रखना निःकांक्षित अंग है, क्योंकि यह सुख-दुःख से मिश्रित है और कर्माश्रित है।

२९२७. संसार सुख, दुःख का बीज है एवं पराधीन है व अंत सहित है, इसकी (संसार सुख की) कांक्षा न करना निःकांक्षित अंग है।

२९२८. बाहुबली और भीमसेन ने पूर्व भव में बिना आकांक्षा के देव, शास्त्र व गुरु की आराधना की थी उसी के परिणाम स्वरूप उन्हें संसार में सुख एवं प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

२९२९. जिसे आत्मसंतुष्टि प्राप्त नहीं है, वही तुष्टिकरण की नीति को अपनाता है।

२९३०. निःकांक्षित अंग में अनंतमति एवं सीतासती प्रसिद्ध हैं।

निर्विचिकित्सा अंग

२९३१. प्रतिकार करना अपने आप में हिंसा है, चिकित्सा का अर्थ प्रतिकार होता है, स्वयं के रोग के प्रति चिकित्सा ग्लानि के रूप में आती है। सम्यग्दृष्टि में निर्विचिकित्सा अंग होता है।

२९३२. सम्यग्दर्शन निर्विचिकित्सा अंग के अभाव में नाक रहित मुख के समान है।

२९३३. जो रत्नत्रय से पवित्र हैं, उनके मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न करते हुए यथायोग्य सेवा, वैय्यावृत्ति करना निर्विचिकित्सा नाम का गुण कहलाता है।

२९३४. निर्विचिकित्सा का अर्थ है-गुणों के प्रति प्रीति होना या ग्लानि रहित होना।

२९३५. शरीर गौण होगा और गुण दृष्टि में प्रधान होंगे तभी निर्विचिकित्सा अंग का प्रादुर्भाव होगा। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में शरीर की मलिनता नहीं बल्कि रत्नत्रय की पवित्रता आती है।

२९३६. निर्विचिकित्सा अंग वाले का श्रद्धान रहता है कि सुगंध-दुर्गंध तो पुद्‌गल की पर्यायें हैं, इससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

२९३७. बाहुबली व भीमसेन ने पूर्वभव में निर्विचिकित्सा अंग का पालन करते हुए मुनिराजों की वैय्यावृत्ति की थी उसके फलस्वरूप ऐसा शरीर पाया था कि अस्त्र-शस्त्र और विष भी प्रभावहीन हो गये।

२९३८. रत्नत्रय की आराधना करने वाले जो भव्य जीव हैं, उनके शरीर की आकृति व शरीर से आने वाली दुर्गंध को न देखते हुए धर्म बुद्धि से उनकी यथायोग्य चिकित्सा करना निर्विचिकित्सा गुण कहलाता है।

२९३९. शरीर के (पदार्थ) अनेक गुण धर्म हुआ करते हैं, उन सभी धर्मों के प्रति ग्लानि का न होना निश्चय निर्विचिकित्सा अंग है।

२९४०. जैनधर्म में सब बातें अच्छी हैं, लेकिन नग्नपना ठीक नहीं है, ऐसा किसी के मन में भाव आने पर ज्ञान के बल से दूर करना निर्विचिकित्सा कहलाती है।

२९४१. मोक्षमार्ग पर आने के बाद केशलौंच न करना पड़ें, दूसरे के यहाँ भोजन करना न जाना पड़े, ऐसे भावों का न होना निर्विचिकित्सा अंग है।

२९४२. ग्लानि करने वाला कभी रोगी का इलाज नहीं कर सकता।

२९४३. ग्लानि जीते बिना वैय्यावृत्ति नहीं की जा सकती।

२९४४. समस्त राग-द्वेष आदि विकल्प रूप तरंग समूह का त्याग करके निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्ध स्वरूप आत्मा में स्थिति करना निश्चयनय से निर्विचिकित्सा गुण कहा है।

२९४५. निर्विचिकित्सा अंग में उद्यायन राजा व रुक्मणी रानी प्रसिद्ध है।

अमूढ़दृष्टि अंग

२९४६. मिथ्यादृष्टि को भी रोहिणी आदि बारह सौ विद्यायें प्राप्त हो जातीं हैं, ऐसे चमत्कारी को धर्म मानकर नहीं स्वीकारना अमूढ़दृष्टि अंग है।

२९४७. कर्म के उदय में भाव उत्पन्न होते हैं, इनमें गहल भाव नहीं रखना, इनसे प्रभावित नहीं होना अमूढ़दृष्टि अंग है।

२९४८. विपरीत मार्ग को न मानते हुए उन्हें (कुमार्गियों को) मन, वचन एवं काय से अग्रेसर न करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

२९४९. अमूढ़दृष्टि अंग में रेवती रानी प्रसिद्ध है।

२९५०. छह खण्ड का अधिपति होकर भी सुभौम चक्रवर्ती एक आम फल के पीछे पड़ गया और णमोकारमंत्र पर पैर रखने के भाव भी कर दिए यही तो मूढ़दृष्टि है।

२९५१. जो कर्म निर्जरा में सहायक नहीं है, ऐसी लौकिक मान्यताओं को धर्म नहीं मानना अमूढ़ दृष्टित्व है।

उपगूहन अंग

२९५२. जो धर्म पालन में असमर्थ हैं और जिनके निमित्त से धर्म की अप्रभावना हो रही है, उनके दोषों को ढ़कना या उनका निराकरण करना उपगूहन अंग है।

२९५३. उपगूहन अंग वाला इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि धर्मात्मा की निंदा सो धर्म की ही निंदा है।

२९५४. उपगूहन का अर्थ दूसरों के दोषों का समर्थन करना नहीं है, बल्कि धर्म की अप्रभावना से बचाकर दूसरे के दोषों का निराकरण करना है।

२९५५. दूसरों के दोषों को ढ़कने से अपना सम्यग्दर्शन शुद्ध (दृढ़) होता है।

२९५६. दूसरे के दोष ढ़कने से दूसरे को क्या मिलेगा, उसे कुछ मिले या न मिले लेकिन अपने गुणों का तो विकास होता ही है।

२९५७. दूसरे के दोषों को ढ़कना यानि अपने गुणों को विकसित करना है।

२९५८. यदि उपगूहन अंग का पालन करने से हमारे गुणों में वृद्धि होती है तो आत्म-हितैषी को इसका पालन अच्छी तरह से करना चाहिए।

२९५९. जो निरंजन आत्मा को ढ़कने वाले राग-द्वेष मिथ्यात्व रूप परिणाम है उनको नष्ट करना निश्चिय उपगूहन अंग है।

२९६०. अपनी आत्मा में जो दुर्भाव उत्पन्न हो रहे हैं, उन्हें उत्पन्न न होने देने करने का प्रयास करना स्वयं का उपगूहन करना है।

२९६१. व्यवहार उपगूहन अंग श्रावकों की अपेक्षा से है और निश्चय उपगूहन अंग मुनियों के लिए है।

२९६२. उपगूहन अंग में जिनेन्द्र भक्त सेठ प्रसिद्ध हुए।

स्थितिकरण अंग

२९६३. धर्म स्नेही जनों के द्वारा सम्यग्दर्शन अथवा चारित्र से भी विचलित होते हुए पुरुषों का पुनः धर्म में स्थिर करना स्थितिकरण अंग है।

२९६४. यदि हम दूसरे को उठाना चाहते हैं तो हमें ऊँचे स्तर पर खड़े होना आवश्यक है।

२९६५. कर्मों के योग में ऐसे निमित्त जुड़ते हैं कि जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन में स्खलन आ जाता है, वैसे भी स्खलित होना तो मानव का स्वभाव ही है।

२९६६. धर्मात्मा पर आई हुई आपत्ति को श्रद्धा, विवेक व चारित्र के माध्यम से दूर करना स्थितिकरण अंग कहलाता है।

२९६७. राहगीर गिरे को उठाता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में साथ चलने वाले गिर जावें तो उन्हें उठाकर साथ लेकर चलते जाओ, इसी का नाम स्थितिकरण है।

२९६८. निश्चय से उन्मार्ग में जाते हुए अपने मन को पुनः सन्मार्ग में स्थिर करना स्थितिकरण कहलाता है।

२९६९. अपने भाव बार-बार गिर जाते हैं, उन्हें पुनः स्वयं संभाल लेना बुद्धिमत्ता है।

२९७०. स्थितिकरण के लिए ज्यादा ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, अंदर से भाव होना चाहिए, वात्सल्य के साथ टूटे-फूटे शब्द भी काम कर जाते हैं।

२९७१. स्थितिकरण अंग में वारिषेण मुनिराज प्रसिद्ध हैं।

वात्सल्य अंग

२९७२. माँ का प्रेम बेटे पर अकृत्रिम होता है गाय का बछड़े से जो स्नेह है, वह बिना प्रशिक्षण के सहज होता है, इसी का नाम वात्सल्य है।

२९७३. सहजता में जो रस आता है वह कृत्रिमता में नहीं आता। जैसे पेड़ के ही पके आम के रस एवं पाल में पके आम के रस में अंतर होता है।

२९७४. श्री रामचन्द्रजी ने वज्रकर्ण के प्रति वात्सल्य होने के कारण राजा सिंहोदर को बाँध लिया था।

२९७५. आज वात्सल्य के अभाव में धर्म की अप्रभावना हो रही है।

२९७६. भटके हुए को सहारा सहानुभुति देते हुए पुनः रास्ते पर लाना ऐसा कार्य वात्सल्य अंग वाला ही कर सकता है।

२९७७. गुरुओं के प्रति वात्सल्य नहीं रखा जाता बल्कि उनके प्रति भक्ति भाव से समर्पित होना होता है।

२९७८. वात्सल्य अंग का पालन करने से हमारा सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है।

२९७९. गाय जो अपने बछड़े के प्रति भाव रखती है, वह अन्य किसी पशु से ज्ञात नहीं होता।

२९८०. वत्स से वात्सल्य शब्द की उत्पत्ति होती है।

२९८१. वत्स के प्रति जो गाय का प्रेमभाव है, वही वात्सल्य है।

२९८२. सभी जीवों के प्रति वात्सल्य एवं मैत्री का भाव रखने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

२९८३. सोलहकारण भावनाओं में जो वत्सलत्व शब्द आया है, उसका अर्थ है प्रकर्ष रूप से जो भगवान् के वचन मिले हैं, उसके प्रति एवं उसमें आस्था रखने वालों के प्रति वात्सल्य भाव का होना।

२९८४. जब तक मुक्ति न हो तब तक मोक्षमार्गी को अपने साधर्मियों से हिल-मिल कर रहना चाहिए।

२९८५. चारणऋद्धिधारी मुनिराज कभी अकेले नहीं मिलते, वे सहधर्मी साथ-साथ ही चलते हैं।

२९८६. सधर्मी से कभी विसंवाद न करें, वात्सल्य की कमी के कारण ही विसंवाद होता है।

२९८७. वात्सल्य अंग आपस की कलुषताओं से बचा लेता है।

२९८८. व्यवहार में वात्सल्य के बिना एक पल भी चल नहीं सकता।

२९८९. व्यवहार में एक-दूसरे के साथ हिल-मिलकर चलेंगे तो विश्व का कल्याण होने में देर नहीं लगेगी।

२९९०. जिसने पूर्व पर्याय में वात्सल्य की भावना भायी ऐसे तीर्थंकर बालक को अब शचि आदि गोद से नीचे नहीं रखने देती।

२९९१. जब छोटे बड़ों की विनय/आदर करते हैं, उन्हें सम्मान देते हैं तब बड़ों से उन्हें अपने आप वात्सल्य मिल जाता है।

२९९२. वात्सल्य के अभाव में हमारा व्यवहार तपे हुए दूध के समान है, उसे कोई छूना भी पसंद नहीं करेगा।

२९९३. वात्सल्य अंग के धारी गुरुदेव खोट पर चोट लगाते हैं और अंदर से सपोर्ट देते रहते हैं।

२९९४. वात्सल्य के अभाव में व्यवहार अभिशाप सिद्ध हो जायेगा।

२९९५. धर्म की प्रभावना वात्सल्य के बिना हो ही नहीं सकती।

२९९६. मिथ्यात्व रागादि सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों में प्रीति को छोड़कर रागादि-विकल्पों की उपाधि रहित अभेद रत्नत्रय में प्रीति करना निश्चय वात्सल्य अंग है।

२९९७. जो व्यवहार वात्सल्य में निष्णात रहता है, वही निश्चय वात्सल्य को प्राप्त करता है।

२९९८. वात्सल्य अंग में विष्णुकुमार मुनिराज प्रसिद्ध हुए हैं।

२९९९. वीतराग मार्ग पर बढ़ने पर भी कुछ राग विद्यमान रहता है, इस वात्सल्य पर्व (रक्षाबंधन पर्व) से ज्ञात होता है।

३०००. वीतरागी अपने लिए कठोर होते हैं लेकिन सबके लिए नहीं यह भी इस वात्सल्य पर्व (रक्षाबंधन पर्व) से ज्ञात होता है।

३००१. जैसे शरीर में आठ अंग होते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन में आठ अंग होते हैं, उनमें वात्सल्य को हृदय की उपमा दी गई है।

३००२. गाय वत्स (बछड़े) को सींग नहीं दिखा सकती बल्कि जिव्हा के माध्यम से लाड़ करती है लार (जीभ से चाटती है) के माध्यम से प्यार करती है।

३००३. लाड़ सारी कलुषताओं से बचा देता है। गरिष्ट से गरिष्ट पदार्थ भी लार के माध्यम से पच जाता है।

३००४. वात्सल्य अंग से रोता हुआ व्यक्ति भी हँसने लगता है।

३००५. वात्सल्य के बिना एक पल भी चल नहीं सकता इसके माध्यम से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

३००६. लार को लालारस कहा जाता है, लालारस के स्थान पर लावारस आ जावेगा तो क्या होगा ? लावा से समुद्र भी सूखने को हो जाता है।

३००७. प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में लालारस, वात्सल्य से परिचित हो।

३००८. एक दूसरे का व्यवहार पच जाए इसलिए सम्यग्दर्शन में वात्सल्य अंग रखा है।

३००९. छोटे बड़ों की विनय करें और बड़े छोटों को वात्सल्य दें, तभी समाज में विकास हो सकता है।

३०१०. जिसके प्रति वात्सल्य रहता है, उन्हें सिर पर ना बिठायें।

३०११. भगवान् से वात्सल्य नहीं होता उनके प्रति भक्ति की जाती है।

३०१२. दूसरे के दुःख को देखकर आँखों में पानी आना धर्म प्रिय की निशानी है।

३०१३. धन प्रिय बहुत बन लिया अब धर्म प्रिय भी बनो।

३०१४. स्व के साथ पर को भी देखना चाहिए। आज विष्णुकुमार महाराज जैसा नहीं कर सकते क्योंकि उतनी ऋद्धि, सिद्धि नहीं है, फिर भी जितना है उतना सहधर्मी के प्रति तो कर सकते हैं।

३०१५. अन्य जीवों को भी सहारा देकर ऊपर उठाना चाहिए यदि उनके पास निजी उपादान होगा तो वह उन्नति कर जावेंगे।

३०१६. वे सैनिक सीमा के पार रहकर विपक्षियों को भगाते रहते हैं, तब कभी हम और आप यहाँ शांति से धर्मध्यान कर सकते हैं।

३०१७. सक्रिय अनुकम्पा के बिना सम्यग्दर्शन टिक नहीं सकता।

३०१८. काव्य में भी यदि वात्सल्य रस नहीं है तो सूखा, नीरस-सा लगता है, आनंद नहीं आता।

३०१९. गुरु का वात्सल्य अनुशासन से भरा हुआ होता है, वे खोट पर चोट करते हैं और अंदर से सपोट भी देते हैं।

३०२०. आप विनय करिये तो आपको वात्सल्य मिलेगा। पाने में लिए कुछ तो देना पड़ेगा। दूसरे के गुणों को देखने का प्रयास करिये यही वात्सल्य भावना है।

३०२१. रुक्मणि से प्रद्युम्न को वात्सल्य तब मिला जब वह विद्या के माध्यम से बच्चा बन गया।

प्रभावना अंग

३०२२. प्रभावना अंग का पालन करना श्रावक और साधु दोनों के लिए अनिवार्य है।

३०२३. जिनधर्म के माहात्म्य का ज्ञानादि के द्वारा प्रकट करना प्रभावना अंग है।

३०२४. श्रावकों को दान, पूजा आदि के माध्यम से धर्म की प्रभावना करना चाहिए और साधु को ज्ञान और तप आदि से जैनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

३०२५. पूजा, विधानादि के माध्यम से श्रावक धर्मध्यान करता हुआ अपने प्रभावना अंग को पुष्ट बनाता रहता है।

३०२६. शास्त्र स्वाध्याय का उद्देश्य कर्मनिर्जरा होना चाहिए एवं जिनशासन की प्रभावना में इसका उपयोग करना चाहिए तभी इसका यथोचित फल प्राप्त होता है।

३०२७. प्रभावना किसी को नीचे दिखाने के लिए नहीं बल्कि वीतराग धर्म की महिमा दर्शाने के लिए की जाती है।

३०२८. मंदिर आदि निर्माण करवाने में भावना गलत नहीं होनी चाहिए, बल्कि उससे धर्म की प्रभावना होनी चाहिए।

३०२९. धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से अपनी प्रभावना नहीं बल्कि धर्म की प्रभावना हो, ऐसी

भावना रखना चाहिए।

३०३०. भगवान् ने तो धर्म की प्रभावना की है, हम नहीं करेंगे तो क्या होगा ? ऐसा नहीं सोचना चाहिए बल्कि यथाशक्ति धर्म की प्रभावना करना चाहिए तभी हमारा सम्यग्दर्शन निर्मल होगा।

३०३१. आलस्य से बचने का सबसे अच्छा तरीका है धर्म की प्रभावना करते रहना।

❑ ❑ ❑

विशेष

१. उपयोग की भूमिका में राग-द्वेष का उत्पन्न न होना ही सही स्वाध्याय है।

२. निमित्त बनता नहीं, बनाया जाता है। सिद्धों को असंख्यात गुणी निर्जरा का निमित्त बना सकते हैं।

३. भीतरी साधना के लिए विशेष क्षयोपशम की नहीं, किन्तु रुचि की आवश्यकता होती है।

४. समता ही परम ध्यान है, शास्त्र का विस्तार समता के लिए ही है।

५. सम्यग्दृष्टि से संयम दृष्टि और संयम दृष्टि से साम्य दृष्टि अति दुर्लभ है।

६. कुछ भी ज्ञान न होने पर चिन्ता न करना यही धर्मध्यान है।

७. तत्त्व ज्ञान के क्षेत्र में एक श्लोक भी पर्याप्त है।

८. दूसरों के निमित्त अपने परिणामों को बिगाड़ना, सबसे बड़ी मूर्खता है।

९. मोक्षमार्गी की शोभा प्रवृत्ति नहीं निवृत्ति है।

१०. मोक्षमार्ग में मन की भूख मिटाने के लिए ही पुरुषार्थ है।

११. व्यवहार की उलझनों के कारण ही हम अपने परिणाम बिगाड़ लेते हैं। पर पदार्थों से निर्लेप होना ही आध्यात्मिक साधना का फल है।

१२. हमारे लिए ध्यान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि भेद-विज्ञान, भेद-विज्ञान हमेशा रहना चाहिए।

१३. कर्म उतना बलवान नहीं जितनी की असावधानी।

१४. अध्यात्म में ज्ञान का उतना महत्त्व नहीं जितना संवेदन का, ज्ञान पर का हो सकता है, किन्तु संवेदन स्व का ही।

१५. ज्ञानी वही है, जो गलती को न दोहराये।

१६. व्रती को एकान्त प्रिय होना चाहिए, कोलाहल नहीं।

१७. दुनियाँ की ओर से आँख बन्द करना ही अध्यात्म की सही पहल है।

१८. अध्यात्म में उतरने वाले को जाति, लिंगादि से दूर रहना चाहिए।

१९. स्पर्धा नहीं करना चाहिए, स्पर्धा में शांति नहीं मिलती है, स्पर्धा में सुख आधा हो जाता है।

वर्तमान सुख संतोष भी मिट जाता है।

२०. पर द्रव्य का अध्यवसान के द्वारा कर्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामित्व के रूप में स्वयं को स्वीकार नहीं करना ही समयसार का सार है। इनसे सम्पर्क ही संसार और इनसे छूटना ही मुक्ति है।

२१. जीवन के हर क्षण समान नहीं होते, ज्यों जल का बहाव हर जगह एक जैसा नहीं होता।

२२. साधना धारणा के ऊपर ही आधारित है, भीतर की शक्ति पर बाहरी ढांचा खड़ा हो जाता है।

२३. निष्पृहता और निरीहता ही साधना में उतरने के लिए वरदान है, न कि दान।

२४. साधना का सूत्र प्रतीक्षा करना है, जल्दबाजी नहीं।

२५. अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश करना ही आर्तध्यान है।

२६. जो स्वयं सम्हला है, वही दूसरों को सम्हाल सकता है।

२७. आत्मा अजर-अमर है, संयम के लुटने पर रोड पर आ जाता है।

२८. मोक्षमार्ग में मात्र कर्त्तव्य है और गृहस्थ के पास कर्तृत्व व भोक्तृत्व भी है।

२९. ज्ञान के साथ जो अनुभूति होती है, वह अपनी मानी जाती है। संकेत को अनुभव मानना गलत धारणा है।

३०. मोक्षमार्ग में बाहरी साधनों से नहीं भीतरी साधनों से शान्ति मिलती है।

३१. सहना मोक्षमार्ग है प्रतिकार करना नहीं, क्योंकि प्रतिकार के समय प्रतीति/अनुभव समाप्त हो जाता है।

३२. ज्ञान अर्जन से ज्यादा ज्ञान प्रयोग में प्रयत्न करना चाहिए।

३३. तत्त्व चिन्तन कीजिए, विषय चिन्तन नहीं, तत्त्व चिन्तन में अर्थ-अर्थान्तर भाव होता है, राग-द्वेष नहीं।

३४. मोक्षमार्ग में मित्रता प्रमाद का रूप धारण कर सकती है।

३५. तत्त्वानुकूल मन ही सबसे बड़ा साथी है एवं विषयानुकूल मन ही सबसे बड़ा शत्रु है।

३६. प्राण टिकते हैं तो व्रत पाल लेंगे, व्रत नहीं तो प्राण की कोई आवश्यकता नहीं, यही तत्त्व दर्शन है।

३७. उपदेश देना आदेश नहीं, आदेश मृत्यु तुल्य होता है।

३८. अपने मन को जीतो, दूसरों को नहीं, दूसरों को कभी जीता नहीं जा सकता, सबसे बड़ी भूल दूसरों को जीतूँ यही भाव है।

३९. राग-द्वेष रूपी घास के कारण ही ज्ञान का बीज पुष्ट नहीं हो पाता है, इसलिए चित्त रूपी खेत से राग-द्वेष रूपी घास को अलग करते रहना चाहिए।

४०. किसी के कहने पर नहीं, अपने कल्याण के लिए करना, धार्मिक कार्य वही है जो बाहर कम किन्तु भीतर से ज्यादा सम्बन्ध रखता है।

संकलन

पीयूष वाणी वर्षा
आचार्य गुरुदेव भगवन्त श्री विद्यासागरजी महाराज

संकलन
एक साधिका

अध्यात्म

१. अध्यात्म से बढ़कर इस संसार में और कोई वस्तु नहीं है।

२. जितने तुम दूसरे के संयोग से बचोगे उतने ही आप अध्यात्मनिष्ठ बनते जाओगे। लेकिन हम जितने संयोग की ओर गये दूसरे के तो फिर अध्यात्म उससे बहुत दूर हो जाता है।

३. संयोग से छूटने का नाम मुक्ति है। जितने हम संयोग को पीठ दिखायेंगे उतने ही हम अपने पास आयेंगे।

४. उपयोग के द्वारा सोचा जाता है तो बाहर का सोचा जाता है और जितने हम बाहर की सोचेंगे उतने ही हम अपने आपके अध्यात्म से हटेंगे। इसलिए हमें सबसे पहले संयोग को हटाना है।

५. दूसरे के कर्त्ता, भोक्ता, स्वामी कभी मत बनो क्योंकि स्वामी बनने के बाद एक मात्र अभिमान की लहरें उस व्यक्ति के अंदर हिलोरें लेती हैं।

६. हम इस शरीर रूपी घर में आकर बैठे हैं, ये घर तुम्हारा नहीं हैं। तुम तो घुसपैठियों की तरह आकर बैठे हो। यह अध्यात्म की परिभाषा है।

अनुकूलता-प्रतिकूलता

७. संसारी प्राणी अनुकूलता चाहते हैं जितनी-जितनी अनुकूलता चाहते हैं उतना-उतना कूल (किनारा) दूर हो जाता है।

८. अनुकूलता-प्रतिकूलता में हमारी दृष्टि कूल (किनारे) की ओर होना चाहिए।

९. प्रतिकूलता में ही भगवान् याद आते हैं।

१०. जो व्यक्ति कष्ट से डरता है उसे सफलता नहीं मिलती चाहे छोटा हो या बड़ा हो, उसे ये बात याद रखना है।

११. कंकड़-पत्थर-शूल आदि पथ में रहते हैं, तो सावधानी से एक-एक पैर रखता है। फूल की महक आ जाये तो नशा चढ़ जाता है, आँखें बंद हो जाती हैं सुगंध में।

अनुशासन

१२. श्रावक को मर्यादा एवं अनुशासन का पालन किसी के भय से नहीं बल्कि पाप के भय से करना चाहिए।

१३. जो पाप के भय से त्याग किया जाता है या अनुशासन में रहा जाता है वही सच्ची त्याग एवं अनुशासन माना जाता है।

१४. गुरु से, कानून से मत डरो, डरना ही है तो पाप से डरो।

१५. अनुशासन में रहना ही पाप भीरुता का प्रतीक है और पाप से भयभीत होने से सम्यग्दर्शन का संवेग भाव नाम का गुण प्रकट होता है।

१६. हम अनुशासन प्रिय है और हम अनुशासन ही चाहते हैं। लाड़ प्यार अलग वस्तु है, अनुशासन

अलग वस्तु है इसलिए अनुशासन के स्थान पर अनुशासन करना और लाड़ प्यार के स्थान पर लाड़ प्यार। बच्चों को हमेशा लाड़ प्यार देते हैं तो वो बिगड़ जाते हैं।

१७. अनुशासन हीनता होगी तो कभी भी पाप का अन्त नहीं होगा।

१८. भगवान् महावीर ने अनुशासन नहीं चलाया, आत्मानुशासन चलाया और आत्मानुशासन के लिए न देश की, न पर (दूसरे) की न वित्त (धन) की, न वैभव की और न किसी की आवश्यकता है। एक मात्र आवश्यकता है अपनी कषायों पर कुठाराघात करने की।

१९. अनुशासन और आत्मानुशासन अद्भुत चीज है। अनुशासन चलाने वाले के भाव में कषाय भाव, मैं बड़ा और दूसरा छोटा इस प्रकार की कल्पना है और इस कल्पना को मिटाने के लिए महावीर भगवान् का अवतरण हुआ, उन्होंने अनुशासन नहीं आत्मानुशासन चलाया।

२०. यह आत्मानुशासन ही विश्व में शांति, आनंद फैला सकता है।

२१. जो मात्र कषाय के वशीभूत होकर आत्मानुशासन न करके विश्व के ऊपर शासन चलाना चाहता है वह व्यक्ति खुद ही शासित नहीं। इसलिए विश्व को शासित कैसे होने देगा ? वह अनुशासन के लिए मात्र कहता जा रहा है।

२२. आत्मानुशासन मुझे बहुत प्रिय है। आपको भी प्रिय होना चाहिए और भगवान् महावीर को तो अत्यंत प्रिय था ही।

२३. दूसरे पर अनुशासन करने के लिए तो बहुत परिश्रम उठाना पड़ता है पर आत्मा पर शासन करने के लिए किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं एक मात्र संकल्प की आवश्यकता है।

२४. जिस जीवन में अनुशासन का अभाव है वह सर्वथा निर्बल है।

२५. अनुशासन विहीन व्यक्ति सबसे गया बीता व्यक्ति है।

२६. शासन प्रशासन की तब आवश्यकता होती है जब अनुशासन और आत्मानुशासन नहीं रहता।

२७. लोकतंत्र शासन और राष्ट्रपति शासन की बात की जाती है कि कौन-सा शासन अच्छा है? तो आत्मानुशासन ही सर्वोपरि है।

२८. जिस प्रकार फूल की सुरक्षा काँटों से होती है वैसे ही व्रतों की रक्षा अनुशासन से होती है।

अपव्यय

२९. जल्दबाजी बहुत बड़ी बीमारी है। स्वयं को खपाओ समय को बचाओ क्या करोगे?

३०. समय का अपव्यय न हो जितना आवश्यक है उतना समय दे दो।

३१. अपव्यय का अर्थ है जो ठीक-ठाक उपयोग न करके दुरुपयोग करें।

३२. आय के अनुसार व्यय करो, व्यय के अनुसार आय।

३३. अपव्यय के कारण आज लोग पीड़ित हैं।

३४. हम जिस ओर जा रहे हैं उसी ओर हवा चल रही है यह शुभ का प्रतीक है। हमारे कदम जल्दी-

जल्दी आगे बढ़ते हैं।

३५. हम समय से बंधे हुए हैं समय को व्यर्थ नहीं करना।

३६. यंत्र का युग आ गया मंत्र-तंत्र चला गया और जीवन भटक गया। यंत्र जीवन नहीं देता।

३७. सबसे ज्यादा अपव्यय यंत्र से हो रहा है।

३८. सेठ साहूकार, गरीबों के उद्धार में अपने धन का उपयोग न करके घूमने और वाहनों के उद्धार में उपयोग करते हैं। एक अरब १५ करोड़ जनता की आपको चिन्ता नहीं है।

३९. गरीबों के पास शुद्ध हवा और भगवान् की दुआ है।

अपवाद

४०. अपवाद से जो व्यक्ति नहीं बचता वह कुछ काम नहीं कर सकता, भले ही उसमें सारी की सारी योग्यता हो।

४१. अपवाद होने के बाद अनुभव होते हैं तो वे अनुभव अच्छे नहीं माने जाते। औचित्य गुण मैंने इसलिए पकड़ रखा है कि कोई भी निर्णय जल्दी-जल्दी मत लो, सोच समझ कर विचार कर कोई कार्य करो।

आवश्यक

४२. सामयिक के प्रति रुचि हो तो नींद आ नहीं सकती। रुचिपूर्वक आवश्यक करेंगे तो निर्जरा होगी अन्यथा कर्म निर्जरा का कोई साधन नहीं बनेगा। कर्म निर्जरा में कोई भी पीछे न रहे, इसमें आगे रहने का/बढ़ने का ही प्रयास करना चाहिए।

४३. जैसे भोजन थाली में विभिन्न व्यंजन अलग-अलग होते हैं, उनका स्वाद अलग-अलग आता है। उसी प्रकार प्रतिदिन षट् आवश्यकों का अलग-अलग आनंद लेना चाहिए। उत्साहपूर्वक ही संभव है यह प्रफुल्लता के साथ होना।

४४. अनावश्यक में मन लगता है इसलिए तो आवश्यक में मन नहीं लगता।

४५. जिनको आवश्यक के दोषों का डर नहीं इसलिए उनको आवश्यकों में निद्रा आदि आती है। आवश्यकों में अगर निद्रा आती है तो वह अनावश्यक हो गया। आवश्यकों में निद्रा के वशीभूत होने से भी वह अवश नहीं रहा अनावश हो गया। शरीर को ऐसी आदत में मत डालों।

४६. छह आवश्यकों में प्रमाद नहीं होना चाहिए।

४७. पहले निर्दोष सामयिक का प्रयास करना चाहिए उत्कृष्ट का नहीं।

४८. सामयिक के समय शुद्धात्मा का चिंतन कर ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए।

४९. आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान दूसरे के लिए नहीं अपने लिए होते हैं।

५०. उतना ही सीखो जो जन्म मरण के अभाव के लिए आवश्यक है। वही सीखने योग्य है जिसके द्वारा जन्म मृत्यु का क्षय हो जाता है।

५१. आवश्यकों में रत रहना भी बड़ी साधना है। ये पुण्य का उदय समझना।
५२. केवलज्ञान सामयिक में ही हुआ करता है भगवान् जैसे बैठना शुरु कर दो। दृढ़ता और निष्ठा के साथ सामयिक करना चाहिए।
५३. आसमान को छूना आसान है लेकिन अंतर्मुहूर्त तक मन को स्थिर करना बहुत कठिन है। संसार में वश एक ही कार्य बचा है हम लोगों को करने को वह है समता सामयिक।
५४. सामयिक व्रत, व्रत शिरोमणि है क्योंकि सारे व्रतों में निर्दोषता इसी से आती है। निश्चय स्वाध्याय तप इसी में है।
५५. सभी विकल्पों का कारण यह देह है। अन्य व्रतों के साथ हमारा उपयोग बाहर रहता है लेकिन सामयिक के समय हमारा उपयोग अंतर्मुखी होता है।
५६. सामयिक अपनी ओर आने का सौभाग्य है।

आस्था

५७. आस्था के बिना भी जो चारित्र का पालन है, उससे भी कर्म निर्जरा नहीं होगी। अतः आस्था भी आवश्यक है। जैसे पृथ्वी आदि स्थावर जीवों का विस्तृत ज्ञान तो था अभव्यसेन मुनि को, लेकिन आस्था नहीं थी इसलिए कर्मनिर्जरा नहीं हुई। रेवती रानी ने उनको नमस्कार नहीं किया। हरी पर चले, झरने का जल लिया आदि।
५८. आस्था में प्रवेश करने के बाद निष्ठा दृढ़ होती है।
५९. आस्था का विषय भूलने में न आए प्रतिष्ठा से बचना है।
६०. श्रद्धा के आधार पर ही चारित्र का भवन निर्माण होता है। आस्था और बोध संयम के उपासक है।
६१. देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धा निष्ठा से कीर्ति अपने आप बढ़ती जाती है।
६२. गुणों के प्रति ही श्रद्धा होती है, शरीर के प्रति नहीं शरीर से तो मोह होता है।
६३. भक्ति करने से बाह्य रूप एवं अंतर का स्वरूप सुंदर स्वच्छ प्राप्त होता है।
६४. वैभव प्राप्त होना ही भक्ति का प्रयोजन नहीं है बल्कि भव बंधनरूपी कर्मों का क्षय होना मुख्य प्रयोजन है।
६५. धर्म की शुरूआत तब होती है जब लिए गये संकल्प के प्रति दृढ़ता और आस्था होती है।
६६. जब तक अहिंसा धर्म में आस्था और आत्मा की भावना नहीं होगी तब तक उन्नति नहीं होगी।
६७. जो आस्था और प्रतिज्ञा में कमजोर होता है वह कभी आत्मोन्नति नहीं कर सकता है। धारणा जिसकी पक्की होती है वह मंजिल प्राप्त कर लेता है।
६८. आस्था में कमी आने से ज्ञान में कमी आ जाती है और लिया हुआ संयम डाँवाडोल होने लगता है।

६९. आस्था ज्ञान और संयम में कमी होने से विकास तो दूर रहा उल्टे विनाश की ओर कदम बढ़ जाते हैं।

७०. आस्था कम आशा अधिक रखकर जीवन जीना ही भविष्य की चिन्ता का कारण है।

७१. आशा कम और आस्था/विश्वास अधिक होने पर भविष्य निश्चिंत होगा।

७२. विफलता हाथ लगने से मनुष्य निराश हो जाता है जबकि विश्वास/आस्था से ओतप्रोत चींटी भी पर्वत पर चढ़ जाती है।

७३. आस्था/विश्वास ही सफलता की नींव है।

७४. आस्था दु:ख सुख की अनुभूति से परे होती है।

७५. आस्था एवं प्रयोग के कदमों से सफलता की सीढ़ी सरलता से चढ़ सकते हैं।

७६. दृश्य को पाने के पहले दृश्य को देखने से भी सुख प्राप्त होता है इसी को आस्था कहते हैं।

७७. सांसारिक सुखों में निकांक्षित सम्यग्दृष्टि आस्था नहीं रखता। सम्यग्दृष्टि तो अर्थ सम्पत्ति में नहीं परमार्थ में आस्था रखता है।

७८. श्रद्धान उन गुप्त स्थानों तक ले जाता है, जहाँ आज तक नहीं गये।

७९. आचार्यों के वचनों पर जब विश्वास हो जाता है तब फाउण्डेशन/आधार हो जाता है फिर प्रासाद भी खड़ा होने में देर नहीं उद्धार होने में देर नहीं।

८०. विश्वास विषयों में नहीं होना चाहिए अपनी तरफ होना चाहिए।

८१. विश्वास के बिना निर्जरा नहीं होती।

८२. आस्था को अविनाशी बनाने के लिए परिणामों में कमी है।

८३. जो आस्था आप लोगों को हुई है उसको सुरक्षित रखने के लिए मदों से दूर हटने की चेष्टा करें।

८४. जब तक धर्म के प्रति आस्था नहीं होती तब तक धर्म की सुरक्षा भी नहीं होती है।

८५. आस्था को मजबूत करने के लिए आपको कोई दवा खाने की आवश्यकता नहीं। दृढ़ संकल्प ही आस्था को मजबूत करता है।

८६. आस्था की मजबूती ही जीवन की सफलता है आस्था को कमजोर मत होने दो। संकल्पों व्रतों को कमजोर मत होने दो।

८७. यदि आप अपनी आस्था को मजबूत करना चाहते हो तो आत्म संयम के मार्ग में अपने कदम आगे बढ़ाओं अन्यथा आस्था मजबूत नहीं हो सकती।

८८. मोक्षमार्ग कोई पत्थरों का मार्ग नहीं है वह तो आस्था/विश्वास का मार्ग है। संकल्प, त्याग, वैराग्य, ध्यान, तप का मार्ग है और जिसमें आस्था ही प्रधान होती है।

८९. विश्वास, श्रद्धा, आस्था के आधार पर हम किसी भी जिज्ञासा को शान्त कर सकते हैं।

आत्मा

९०. नाम के पीछे, दाम के पीछे और काम के पीछे सभी लोग आतम राम को भूले हुए हैं।

९१. पर घर आत्मा के लिए परतन्त्रता है।

९२. अर्थ की पगचम्पी न करो, वह अर्थ तो सेवा के लिए हाजिर हुआ है उसकी आप सेवा न करो। अपनी सेवा करो।

९३. अपनी आत्मा के स्वभाव को भूल जाना और दूसरे पदार्थ को पकड़ना चोरी है। हम अनादिकाल से दूसरे पदार्थों को पकड़ने के कारण चोर ही बने हैं,साहूकार नहीं बने।

९४. 'खुदा का बन्दा' बनना असान है किन्तु 'खुद का बन्दा' बनना कठिन है। खुद के बन्दे बनो।

९५. शरीर की ओर नहीं आत्मा की ओर दृष्टि रहे। जैसे–ऋषभनाथ भगवान् की काया ५०० धनुष और भगवान् महावीर की काया ७ हाथ लेकिन आत्मिक दृष्टि से समान थे।

९६. दृढ़ विश्वास रखो। स्वाश्रित रहने का स्वप्न देखा करो दिन में भी रात में ही नहीं।

९७. अनासक्त भाव सांसारिक विषयों से आसक्त भाव अपने प्रति रखो। स्वप्न से ही विकास अधिक होगा।

९८. स्वप्न साकार हो इसके लिए सावधानी आवश्यक है। स्वप्न में एकाग्रता रहती टेंशन नहीं होता।

९९. स्वयं को पहले सम्हालो फिर दूसरे को। दूसरा संभलें या नहीं लेकिन अपने आपको तो सम्हाले रखो इससे पल पल वेतन बढ़ रहा है।

१००. अपने आपको नियंत्रण में रखते हुए दूसरे को भी नियंत्रण में रखना कठिन है।

१०१. वेग कितना भी तेज हो लेकिन नियंत्रण में वह गिर नहीं सकता। जैसे–सरकस में मौत का कुँआ।

१०२. वह सरकस वाला असंयमी होकर भी मौत से नहीं डरता हम तो संयमी हैं। उसे ये भरोसा रहता है मैं मरूँगा नहीं तभी तो वह दिखा रहा है।

१०३. आत्मा भार रहित है शरीर के कारण भार रखता है। इसको हल्का करना है, ऊपर उठना है तो जो कमियाँ हैं उन्हें अलग करो।

१०४. दुनिया की छोटी से छोटी वस्तु भी हमारे आकर्षण का केन्द्र बन जाती है और तीन लोक की सम्पदा से भरा हुए ये व्यक्तित्व भी जो छिपा हुआ है, उसके बारे में हम कभी भी सोचते तक नहीं।

१०५. विषय सामग्री जितनी फैलती चली जायेगी इस धरती पर व्यक्ति उतना ही परांगमुखी होता चला जायेगा, आत्मोन्मुखी तो हो ही नहीं सकता।

१०६. पहले अन्तर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी हुआ करते थे, आज बहिर्मुखी हो रहे हैं और बहिर्मुखी होना

इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप है।

१०७. आज दूरदृष्टि की आवश्यकता है दूरदर्शन की नहीं क्योंकि दूरदर्शन को देखने से आंखों की ज्योति खराब होती है और दूरदृष्टि रखने से हमारा मानसिक स्तर बढ़ता चला जाता है।

१०८. जितनी दूरदृष्टि रखोगे, चिंतन की धारा उतनी ही डीप तक पहुँच जायेगी और जितनी गहराई में पहुँचोगे उतने ही माणिक मोतियों का खजाना आपको मिलेगा।

१०९. अंग से हटकर अंतरंग में भी जाने का प्रयास करो।

११०. वेग बढ़ाओ आवेग/उद्वेग नहीं। वेग बढ़ाओ, निर्वेग बढ़ाओ और संवेग बढ़ाओ। संवेग और निर्वेग का विकास यदि होता है तो अपने आप ही वह अपने आप में लीन हो जाता है।

१११. हमेशा-हमेशा आत्म तत्त्व को/ परमात्मतत्त्व को मुख्य बनाओ। जड़ गौण हो जाये, उस पर हाइलाईट मत दो।

११२. जड़ के ऊपर हाइलाईट देने से आत्मतत्त्व व प्रभुतत्त्व, ये दोनों गौण होने से अंधकार सामने आ जायेगा।

११३. आज जड़ लक्ष्मी का आदर और चेतन लक्ष्मी का अनादर हो रहा है।

११४. आज तक जड़ (अचेतन) को कभी पसीना नहीं आया, आत्मा को ही आयेगा। जिसका सीना है उसी को पसीना आता है।

११५. स्वहित के बिना विश्व हित सम्भव नहीं।

११६. अविनश्वर सुख शांति का वैभव, अनन्त गुणों का भण्डार तो हमारे भीतर ही है और हम इसे भूलकर बाहर हाथ पसार रहे हैं।

११७. अस्सी साल का वृद्ध भी दिन भर में कम से कम एक बार दर्पण देखने का अवश्य इच्छुक रहता है किन्तु आत्म-तत्त्व देखने के लिए आज तक किसी ने विचार नहीं किया।

११८. दूसरे का खण्डन नहीं, अपना मण्डन होना चाहिए।

११९. यह कोई नहीं सोचता कि ऐसा कौन सा दर्पण खरीद लूँ जिसमें मैं अपने आपका वास्तविक रूप देख सकूँ।

१२०. आकर्षण का केन्द्र शरीर न होकर उसमें रहने वाली आत्मा ही हो जाये।

१२१. संसारी प्राणी ने आज तक पवित्रता का आदर नहीं किया है और अपवित्रता को ही गले लगाया है। यही कारण है कि उसे आत्म-तत्त्व का परिचय नहीं हुआ, जो ज्ञान दर्शन लक्षण वाला आत्मा है उसका दर्शन नहीं हुआ।

१२२. पदार्थों की ओर होने वाली दौड़ ही व्यक्ति को कंगाल बनाती है, जो अपने में है स्वस्थ है, उसके पास ही मौलिक सम्पदा आज भी है।

१२३. बाहरी विषयों के साथ सम्बन्ध रखने वाला शुद्ध आत्मतत्त्व के बारे में स्वप्न में भी नहीं सोच

सकता।

१२४. जो दुर्लभ वस्तु होती है उसको प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है, इन कठिनाइयों को पार करना ही कुशलता है क्योंकि ध्रुव की ओर जाना है इसलिए इधर उधर की बातों से बचिए।

१२५. जिसको अपनी कीर्ति, नाम की इच्छा नहीं रहती है, वही आत्मा की भक्ति कर सकता है।

१२६. जब तक बालक कमजोर है तभी तक ही पिता जी का हाथ पकड़ कर चलता है, बाद में स्वयं चलता है। इसी प्रकार प्रभु की भक्ति भी जब तक मोक्ष का रास्ता नहीं दिखे तब तक करना है, उसके बाद आत्मा की भक्ति करना है।

१२७. जो आत्मा का दास है वह तकलीफ नहीं देता, जो आत्मा को दास बनाता है फिर उसका दुर्भाग्य ही है।

१२८. ब्रह्मचारी आत्मा की ओर देखता है और विषयी शरीर की ओर देखता है।

१२९. ब्रह्मचारी वह है जो दूसरों को पकड़ने की चेष्टा न कर अपने आपमें रमण करने की चेष्टा करे।

१३०. आत्म-पथ में कठिनाइयाँ ही तो सफलता का भवन बनाती है अतः हमको आत्म प्रकाश की खोज हमेशा करना चाहिए।

१३१. जो अपने निकट नहीं रहता वह अभ्यस्त और अभ्यास से दूर है।

१३२. अपने आपको याद करना सबको आता है, स्वभाव को याद करना नहीं आता है। अपने आपको याद करते हैं तो भी पर्याय को, द्रव्य को, गुणों को लेकर नहीं करते। गुणों को याद करना ही दया है।

१३३. मोह के उदय में स्वयं को गाफिल न होने देना ही आत्म पुरुषार्थ है।

१३४. आत्मा समझ में नहीं आता तो अनात्मा को तो समझ लो।

१३५. अन्य सम्पदा से प्रभावित होने पर आत्म सम्पदा अनादर को प्राप्त होती है।

१३६. आत्मा के वैभव का दर्शन बाह्य सम्पदा के रहते हुए नहीं हो सकता। चक्रवर्ती को भी यह सम्पदा फेंकना पड़ी तभी आतम का वैभव मिला।

१३७. सभी आत्म निर्भर हो जाओ, भार रहित हो जाओगे।

१३८. आत्म परायणता मात्र व्रती का ही कार्य है।

१३९. आत्म तत्त्व में परायण करने वाला पंचेन्द्रिय विषयों का रस छोड़ देता है।

१४०. पर को भूलने की कला सीख लो स्व (आत्मतत्त्व) प्राप्त हो जायेगा।

१४१. भीतर आगमन नहीं हुआ तो आगम से कुछ प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा।

१४२. यह मेरा है, मैं इसका हूँ ऐसा भाव जब तक नहीं छूटता तब तक आत्मा नहीं दिखेगी। स्व संवेदन को छोड़कर अन्य कुछ हमारा व्यक्तित्व नहीं है।

१४३. बाह्य चित्र को देखते हुए उसे गौण करिये तभी अंतरंग दिखेगा।

१४४. स्व में स्थिर होना स्वस्थ होना है स्वस्थ का जो भाव है वह स्वास्थ्य है।

१४५. ऐश्वर्य का मोह सत्य से विचलित कर देता है।

१४६. चारों गति रूप आवागमन से मुक्त होना ही सच्चा पुरुषार्थ है। यही कल्याणकारी है। शरीर का कल्याण नहीं करना है, हमें आत्मा का कल्याण करना है।

१४७. वास्तव में आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए ही तुमने मानव शरीर धारण किया है। यदि तुम उस ओर नहीं चले तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ ही चला जायेगा।

१४८. देखो। अब तक जो भूल हो गई है उसके लिए पछताने से कोई लाभ नहीं है। जीवन के जितने दिन बाकी हैं उन्हीं को दृढ़ संकल्प करके 'आत्म-चिंतन' में लगाकर जीवन को सफल कर लो। ऐसा नर भव बार-बार नहीं मिलने वाला।

१४९. आकाश के फूलों से बन्ध्या के पुत्र के लिए सेहरा (मुकुट) बनाने का प्रयास करने वाला जैसे मूर्ख माना जाता है, वैसे ही रत्नत्रय अर्थात् महाव्रत को स्वीकार किये बिना जो आत्मध्यान करने की इच्छा करता है वह मूर्ख माना जाता है।

१५०. शरीर के प्रति वैराग्य और जगत के प्रति संवेग ये दो बातें ही आत्म कल्याण के लिए आवश्यक है।

१५१. लक्ष्य बनाओ भार उतारने का, बढ़ाने का नहीं और यह तभी हो सकता है जब आप याद रखेंगे-तेरा सो एक, जो तेरा है वह एक।

आस्था, अनुभव

१५२. अविनश्वर सुख के लिए आस्था की आवश्यकता है। आस्था हमेशा परिस्थिति लेकर चलती है।

१५३. आस्था का वास्ता मिलेगा और वह रास्ता मिलेगा मार्ग में नहीं मंजिल में मिलेगा।

१५४. अहित में हित का श्रद्धान जो हम कर चुके हैं उसे पहले छोड़ें।

१५५. आस्था को मजबूत करो। संवेग निर्वेग भाव को रखते हुए अनुभव वृद्धों की ओर भी देखा करो।

१५६. अनुभव तक पहुँचने के लिए आस्था रखकर निरंतर अध्ययन की आवश्यकता होती है।

१५७. राग का अनुभव हो और वीतरागता विज्ञान की बात करो तो वह हल्की फुल्की सी लगती है।

१५८. अनुभव की बात नहीं होती अनुभव तो किया जाता है मंथन के द्वारा वह दूसरे के काम नहीं आता।

१५९. अनुभव हीन जीवन होने से आस्था जिस विषय में होनी चाहिए थी वह नहीं हो पाती।

१६०. जहाँ अनुभव, विश्वास की कमी होती है वहाँ शिक्षा कोई काम की नहीं होती।

१६१. भारत में टाइम नहीं समय चलता है। समय एक प्रकार से द्रव्य का स्वभाव है।

१६२. समय का जो मूल्यांकन करता है वह मौलिक अनुभवी माना जाता है।

१६३. मोक्षमार्ग में आस्था हो लेकिन विषयी सुख में नहीं क्षणिक सुख के गर्भ में दुःख का ही अनुभव होता है।

१६४. यदि हमारे पास श्रद्धा नहीं है तो हमारा वैराग्य किसी काम का नहीं है। श्रद्धान के साथ वैराग्य होता है।

१६५. अस्थिरता व अनास्था होती है तो फल नहीं मिलता आस्था स्थिर हो जाती है तो उसका फल सामने आ जाता है।

आज्ञा

१६६. जो यहाँ पर आज्ञा पालन करता है वही किसी दूसरे को आज्ञा देगा तो उसकी आज्ञा का पालन दूसरे लोग करेंगे। अतः आज्ञा पालन करते रहना चाहिए। दूसरे अगर अपनी आज्ञा का पालन नहीं करते तो समझना या समाधान करना कि हमने कभी आज्ञा का पालन नहीं किया होगा इसलिए तो दूसरे भी हमारी आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं। देवों में इन्द्रों के यहाँ आज्ञाभंग माला मुरझाना आदि लक्षण ये बताते हैं कि पुण्य क्षीण हो रहा है, आयु समाप्त होने वाली है ऐसा एक चिह्न है।

१६७. इन्द्र वही बनता है जो देव, गुरु, शास्त्र की आज्ञा का पालन करता है अथवा करके गया है। स्वर्गों में भी इन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके ही कार्य करने का अनुशासन रहता होगा।

१६८. स्वयं जो आज्ञा में रहता है उसके साथ अनेकों लोग आज्ञा में रह जाते हैं। जो स्वयं आज्ञा में नहीं रहते उसके साथ कौन रहेगा सोचो- स्वप्न में क्या दिन में भी सोचो तो भी नहीं होगा वैसा जैसा तुम स्वयं सोचोगे।

१६९. सम्बल तो उस व्यक्ति को दिया जाता है जो आज्ञा मानता है। आज्ञा नहीं मानने वालों को क्या सम्बल दूँगा?

१७०. समाज, संघ, गुरु की प्रभावना तभी होती है जब गुरु या बड़ों की आज्ञा के अनुकूल रहते हैं।

१७१. आज्ञा अमृत की तरह होती है जो बहुत सोच विचार कर दी जाती है।

१७२. मन मारकर नहीं खुशी-खुशी आज्ञा का पालन होगा तो उन्हीं से सम्बन्ध रखोगे उन्हीं को आज्ञा प्रायश्चित देंगे।

१७३. जिसने आज्ञा का उल्लंघन किया उसने आगम का उल्लंघन कर दिया। आज्ञा पालन करने पर ऐसे ऐसे पल्लवित होते हैं कि हजारों को मार्ग मिल जाता है।

१७४. जैसे घर परिवार में बड़े होते हैं उनकी आज्ञा में सब चलते हैं। ऐसे ही मोक्षमार्ग में जो बड़े होते हैं उनकी आज्ञा में छोटों को चलना चाहिए।

१७५. जो देव, शास्त्र, गुरु की अविनय अवज्ञा करेगा तो कितना भी क्षयोपशम हो उसकी कोई महत्ता नहीं होती है। जो गुरु कहते हैं उसमें हओ, हाँ होता है तो क्षयोपशम बढ़ता है।

१७६. वात्सल्य और बड़ों की विनय के बिना कोई भी कार्य प्रशस्तता से नहीं हो पाते हैं। बड़ों की आज्ञा मुख्य होना चाहिए।

१७७. जो आज्ञा में स्वयं नहीं रहता है उसकी आज्ञा में अन्य कोई भी रहना नहीं चाहता है।

१७८. आज्ञा पुण्य के कारण मिलती है।

१७९. गुरु शिष्य का इतना ही सम्बन्ध है, गुरु आज्ञा देते हैं शिष्य आज्ञा लेता है बस इतना ही ये कटु सत्य है। सत्य इतना सूक्ष्म होता है उसे समझना बहुत कठिन होता है।

१८०. एक बार जो भोजन करता है वह योगी, दो बार जो भोजन करे वह भोगी, तीन बार जो भोजन करता है, वह रोगी और जो चार बार भोजन करे तो मृत्यु होगी। ८० साल के हो गये हैं जो उनको कम से कम अपना मुंह दो बार चलाने का अधिकार है यह आगम की आज्ञा है।

१८१. आज्ञा न सामान्य रहती है और न विशेष। आज्ञा तो आज्ञा है।

१८२. धरती पर ही आज्ञा रहती है, ऐसा भी नहीं है। किन्तु देवगति में भी आज्ञायें रहा करती हैं।

१८३. आगम की आज्ञा पालन करने के फलस्वरूप उनके पास ऐसी शक्ति आ गई है कि देव, दानव, असुर या सुर सभी उनकी आज्ञा में २४ घंटे रहते हैं।

१८४. हम आज्ञा देना तो चाहते हैं, लेकिन आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते।

१८५. हम बड़े तो बनना चाहते हैं, किन्तु बड़ों का काम नहीं करना चाहते।

१८६. इन्द्र की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला कोई देव नहीं, सभी आज्ञाकारी हैं। पहले उन्होंने (इन्द्र ने) अपने जीवन को असंयम में व्यतीत न करके, संयम से व्यतीत किया और आज्ञा का ऐसा पालन किया, जिसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं।

१८७. जब तक आज्ञा सम्यक्त्व नहीं होगा, तब तक हमारा चारित्र, चारित्र की संज्ञा नहीं पा सकता।

१८८. आज्ञा के माध्यम से ही हमारा संयम असंख्यात गुणी निर्जरा के लिए कारण हो सकता है।

१८९. विधि-विधान/संविधान का उल्लंघन एक प्रकार से महान् आपत्तिजनक हुआ करता है। आज्ञा के माध्यम से ही शासन सुचारु रूप से चलता है। जिसके माध्यम से स्व और पर का जीवन संरक्षित होता है, हजारों, लाखों, करोड़ों जनता का उसी में हित निहित रहता है।

अहिंसा

१९०. कर्णेन्द्रिय भी एक प्राण है आप लोगों के जोर से या ज्यादा बोलने से मान लो किसी के कर्ण को आघात पहुँच गया तो आघात से कर्णेन्द्रिय प्राण की हिंसा का दोष लगेगा कि नहीं? आप तो अहिंसा व्रत के धारी हैं फिर उसकी सुरक्षा कैसे होगी? अत: कम से कम और धीरे धीरे बोलने का प्रयास करना चाहिए। आपरेशन थियेटर में इशारों से बिना बोले काम किया जाता

है।

१९१. अहिंसा तभी पलती है जब हम सावधान रहें। विवेक के बिना दया नहीं पलती।

१९२. अहिंसा पुस्तक में देखने से नहीं मिलती, क्रिया में होती है।

१९३. प्रत्येक बात में अहिंसा को लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए। कषाय से नहीं, नहीं तो उल्टी भाव हिंसा हो गई।

१९४. अंतरंग में राग-द्वेष नहीं होना ही अहिंसा है और राग-द्वेष, विषय-कषाय करना ही हिंसा है।

१९५. पाप से डरे बिना अहिंसा का पालन नहीं हो सकता।

१९६ जितनी आप चेतन की सेवा करके अहिंसा को सामने ला सकते हैं उतना आप धन की सेवा करके अहिंसक नहीं हो सकते हैं। इसलिए गोदाम नहीं गोधाम की बात करो। जितना पशु सन्तुष्ट रहेगा उतना सुभिक्ष होगा।

१९७. सत्य का अर्थ है अहिंसा और असत्य का अर्थ है हिंसा।

१९८. अहिंसा के अभाव में आत्मोपलब्धि असंभव है। बाहर आना ही हिंसा है और अंदर रहना अहिंसा है। आत्म विकल हो जाना, आत्मा में आकुलता हो जाना ही हिंसा है।

१९९. जो व्यक्ति संतोषी है, उसे शासन भी तंग नहीं कर सकता है। नर से नारायण बनो, नारकीय मत बनो। महात्मागाँधी ने भी जैनधर्म से अहिंसा सीखी है।

२००. जन-जन में अहिंसा का बीजारोपण करेंगे तो भारत ही क्या सारा विश्व भी शांति की श्वास लेगा, अतः अहिंसा का महत्त्व समझो।

२०१. अहिंसा खेती है, व्रत बाड़ी है जिससे उस खेती का रक्षा होती है। जब तक बीज नहीं बोया जाता तब तक बाड़ी नहीं लगाई जाती।

२०२. अहिंसा का पालन मनुष्य ही समीचीन रूप से कर सकते हैं। देव भी उस अहिंसा धर्म को नमस्कार करते हैं।

२०३. हिंसा का अभाव ही अहिंसा का अवतार है।

२०४. संस्कृति को सुरक्षित रखना, अहिंसा को सुरक्षित रखना है।

२०५. अहिंसा और अभय के भावों को प्रत्येक प्राणी समझ जाता है।

२०६. सबसे कम हिंसा एकेन्द्रियों से होती जहाँ पाँच इन्द्रिय होतीं है वहीं पंचायत बैठती है पंचेन्द्रिय यदि सबसे ज्यादा हिंसा कर सकता है तो अहिंसा का पालन भी अच्छे ढंग से कर सकता है।

२०७. अहिंसा धर्म के माध्यम से ही देश का संरक्षण हो सकता है। गोला बारूद से नहीं यदि अहिंसा धर्म रहेगा तो हम स्वयं उन्नत होंगे और देश भी उन्नत होगा।

२०८. भाव अहिंसा आत्मा के उत्थान के लिए सोपान एवं मंजिल है।

२०९. और द्रव्य अहिंसा अड़ोसी पड़ोसी में सुख शांति का विस्तार करने वाली है।

२१०. अहिंसा के माध्यम से ही स्व-पर कल्याण संभव है।

२११. अहिंसा धर्म अपनाते ही राग कम होता जाता है तथा जीवन में खुशबू आने लगती है।

२१२. यदि हम अपना सर्वांगीय चहुँमुखी विकास चाहते हैं तो हमको अहिंसा धर्म की वेदी पर अपना माथा टेक जीवन में उसको ट्रांसलेट (परिवर्तित) करना होगा।

२१३. यदि हमारी राष्ट्रीय मुद्रा अहिंसा की प्रतीक है तो हमको भी अहिंसा का अनुपालन करना चाहिए। अन्यथा राष्ट्रीय मुद्रा का अपमान है।

२१४. अहिंसा केवल श्रद्धा की बात नहीं यह व्यक्ति के आचरण के साथ होती है वह उसे महान् बना देती है।

२१५. यदि अहिंसा के लिए हमारा जीवन मिट भी जाता है तो हमें अमर बनने में देर नहीं लगेगी।

२१६. मुख सबके पास है जिह्वा सबके पास है, वाणी सबके पास है लेकिन सबकी वाणी में वजनदारी नहीं होती, हर लेखनी में जान नहीं होती। इस वजनदारी का स्रोत क्या है? यह सत्य, अहिंसा, दया से ओतप्रोत भावना ही परिणाम है, जो वाणी में वजनदारी आ जाती है।

२१७. सत्य और अहिंसा का बहुत गहराई से सम्बन्ध है यदि एक हाथ में हमारे सत्य है तो दूसरे में अहिंसा होनी चाहिए।

२१८. सत्य और अहिंसा दोनों मिल जाते हैं तो बड़े से बड़े राष्ट्रों की भी रक्षा की जा सकती है, उनका विकास किया जा सकता है।

२१९. हिंसा की मात्रा जितनी कम होगी, चारों ओर उतनी हरियाली छाती चली जायेगी।

२२०. हिंसा की मात्रा जितनी बढ़ती चली जाती है, तो बाहर भी उसकी लपटें आना प्रारम्भ हो जाती हैं।

२२१. भारत की संस्कृति अहिंसा है। इस अहिंसा में सारी संस्कृतियाँ अपने आप समाहित हो जाती हैं।

२२२. अहिंसा धर्म में जिसका चित्त लीन रहता है इस धरती पर वह मानव देवों से भी पूज्य है।

२२३. हिंसा से दूर रहकर अहिंसा का पालन करते हुए तो व्यक्ति धर्म का श्रवण-चिंतन-मनन करता है, उन्हें प्राप्त करने का भाव रखता है, वह अवश्य ही अपने जीवन में आत्म-स्वभाव का अनुभव करने की योग्यता पा लेता है और जीवन को धर्ममय बना लेता है।

२२४. अहिंसारूपी तेल के अभाव में दीपक से प्रकाश मिलना असंभव है, केवल दम घुटने वाला धुँआ ही मिलेगा।

२२५. शरीर को जो बिगाड़ता है वह भी हिंसक है। शरीर का शोषण भी नहीं तो पोषण भी नहीं। उसे अपने अधिकार में रखो ताकि आत्मिक विकास के काम आ सके।

२२६. अज्ञानरूपी अंधकार को निकालने के लिए जो प्रयास किया जाता है उसका नाम अहिंसा है।

वस्तु तक पहुँचाने वाली व्यवस्थिती है।

२२७. दया अहिंसा के माध्यम से अनंत परिस्थिति से बच सकते हैं।

२२८. जैसे भगवान् की विमान यात्रा निकालते हैं तो पालकी (विमान) भारी होने के कारण एक दूसरे के कंधों पर देते रहते हैं, वैसे ही आप लोग भी अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए एक दूसरे का उपकार करते चलो।

उपकार

२२९. गुरु दिशाबोध देकर शिष्य पर उपकार करते हैं, लेकिन शिष्य गुरु आज्ञा का पालन करके गुरु पर उपकार करते हैं।

२३०. जो कम से कम अपनी गलती बता देता है, उसका बहुत महान् उपकार मानना चाहिए। जो बड़े हैं और यदि अपनी गलती बता देते हैं तो उन्हें अपना मित्र मानना चाहिए नहीं तो कैसे दोष निकलेंगे?

२३१. अपने द्वारा किसी को तकलीफ न हो ये सबसे बड़ा उपकार है। उपकार की परिभाषा हमको सिखाना नहीं।

२३२. जैसा हमारे बड़े कह गये हैं वैसा ही करना, वैसा ही चलना यह हमारा उन बड़ों के प्रति उपकार है।

२३३. अपनी आत्मा, अपने लिए, अपने द्वारा, अपने का उपकार करती है यह निश्चय उपकार है।

२३४. अध्यात्म और आचारपरक महान् ग्रन्थों को लिखकर आचार्यों ने हमारे ऊपर महान् उपकार किया है। कल्याण करने के लिए दिशा-बोध दिये गये हैं, बड़े-बड़े शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी अनुभूति के नाम पर हम कुछ नहीं कर पाये।

२३५. भगवान् ने हमें मार्ग बताया यह उनका उपकार है और भगवान् ने जो मार्ग बताया उस मार्ग पर निर्दोष रीति से चलना भगवान् के ऊपर हमारा उपकार है।

२३६. गुरु की आज्ञा का पालन करना गुरु के ऊपर उपकार है।

२३७. परोपकार से बढ़कर भी यदि कोई चीज है तो वह है 'स्व' के ऊपर उपकार करना।

२३८. दु:खी व्यक्ति को सुखी बनाना ही उपकार है। चाहे वह 'स्व' हो या पर।

२३९. किसी के साथ रागद्वेष, मोह नहीं करना। केवल यदि करना है तो उपकार के भाव करना। वह भी मेहरबानी नहीं कर्तव्य समझ के करना।

२४०. जिसके ऊपर उपकार किया जा रहा है उसको दीन-हीन बनाने के लिए उपकार नहीं करना और स्वयं भी अभिमान नहीं करना।

२४१. उपकार करना कर्तव्य है कर लिया। नहीं करते तो अपने में रहो, इसमें कोई बाधा नहीं लेकिन रागद्वेष नहीं करो।

२४२. भगवान् का उपकार भी उसी को प्राप्त हो सकता है जो अपना उपकार करने में स्वयं तत्पर और तल्लीन है।

उपकरण मोक्षमार्ग

२४३. जिनलिंग, गुरुवचन, विनय और सूत्राध्ययन ये सभी उपकरण हैं। इन चारों आगमिक उपकरणों का आनुपूर्वी के साथ पालन करके सुरक्षित रखना चाहिए।

२४४. शरीर परिग्रह भी बन सकता है और उपकरण भी बन सकता है। उपकरण बनाओ। एक-एक कष्ट सहो एकदम आगे बढ़ जाओगे।

२४५. बुराइयों से बचना और अच्छाइयों में लग जाना यह कोई रागद्वेष नहीं है इसलिए एक ही पदार्थ से ज्यादा चिपकना नहीं चाहिए। अन्न रुका नहीं, कि विष हुआ तो जितना आप चिपकोगे तो वह जहर का काम करेगा अन्यथा अमृत था। इसी प्रकार मोक्षमार्ग में उपकरण से चिपके नहीं, क्रम से उपयोग करते चले जायें।

२४६. मोक्षमार्ग में पूर्ण ज्ञान की नहीं बल्कि पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता है। संयम लेने के बाद पूर्णज्ञान अपने आप प्राप्त हो जायेगा।

२४७. मोक्षमार्ग में श्रद्धान मजबूत रखो, निर्दोष चारित्र पालो अक्षर ज्ञान कम भी हो तो भी कल्याण हो जायेगा।

२४८. आप लोग कहते हैं–हम मोक्षमार्ग पर बढ़ना तो चाहते हैं पर संहनन नहीं हैं तो हम कहते हैं आप लोगों को भोगते समय याद नहीं आता धन कमाते समय संहनन याद नहीं आता।

२४९. श्रावकों के ऊपर अति विश्वास करना ही गुरु आज्ञा का उल्लंघन है।

२५०. गुरु की आज्ञा पर तो विश्वास नहीं और श्रावकों के ऊपर अति विश्वास कर लिया ये भी पथ भ्रष्ट होने के लिए कारण हो सकता है यही कारण हुआ था श्वेताम्बर की उत्पत्ति में।

२५१. मोक्षमार्ग विकास की ओर होना चाहिए विनाश की ओर नहीं।

२५२. आलोचक तो मोक्षमार्ग में अपना परम मित्र है उनसे कर्म की निर्जरा होती है। मोक्षमार्गी को आलोचकों के प्रति क्रोधित नहीं होना चाहिए बल्कि आलोचना को शांति से सहन करना चाहिए।

२५३. संसारी प्राणी जितनी हाई क्वालिटी की सोचता है उतना ही हाय हाय करता है और मोक्षमार्गी शांति की सोच के साथ सामान्य रहता है।

उपवास

२५४. अकेले उपवास करने से ही सब कुछ नहीं होता प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रसन्नता से सब सहन करते चलो इससे साता का बंध होता है। असाता की निर्जरा होती है भले ही रोज-रोज आहार करके आयें और उपवास करने के बाद भी आर्त्तध्यान बना रहे तो उपवास की सार्थकता नहीं।

उपवास करने के बाद आर्त्तध्यान न हो तो उपवास की सार्थकता है अन्यथा नहीं।

२५५. विहार और उपवास से स्वास्थ्य संतुलित रहता है इसलिए इन दोनों का अच्छे से अभ्यास करते रहना चाहिए।

२५६. तप कर्म निर्जरा के लिए कारणभूत है। गुस्से में उपवास आदि करना तप को शस्त्र बनाना है। इसलिए तप उपवास आदि को धोखा आदि का साधन शस्त्र मत बनाया करो।

२५७. उपवास का अर्थ है हम आत्मा के पास रहें।

२५८. जो जल उपवास करता है वह सल्लेखना के लिए बहुत उपयोगी है। वही सल्लेखना में सक्षम हो सकता है।

२५९. उपवास के बाद ठण्डा रस आदि नहीं लेना चाहिए क्योंकि रस आदि लेने से किडनी पर सीधा प्रभाव पड़ता है, अनुकूल ज्यादा लेने पर प्रतिकूल हो जाता है।

२६०. मन और इन्द्रियों को अपने पास रखना, भोग की ओर न जाने देने का नाम उपवास है।

२६१. उपवास का अर्थ है–मन आत्मा के पास आ जाता है यानि कि मन भी आत्मा के अनुरूप कार्य करने लगता है।

२६२. सम्यग्ज्ञान कितना दृढ़ है यह उपवास आदि करने से ज्ञात होता है अनुभव भी तभी आता है शरीर और आत्मा का सम्बन्ध कैसा किस रूप में है।

२६३. उपवास करते हुए भी समता में कमी नहीं आनी चाहिए। कषाय के उपशमन के लिए ही उपवास किये जाते हैं।

२६४. वैज्ञानिकों ने भी कहा है–उपवास के दिन शरीर में एक विशेष ग्रंथी खुलती है जिससे शरीर में से रोग निष्कासित होते हैं एवं शरीर में ताजगी आती है इसलिए पन्द्रह दिन में एक उपवास करने को कहा है।

२६५. मदोन्मत्त हाथी को भी उपवास से वश में किया जाता है फिर मन को भी वश में करना है तो उपवास करिये।

उपवास व्रत

२६६. साइंस ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि उपवास के दिन ऐसा दरवाजा खुलता है जिससे ऐसा अमृत निकलता है जो शरीर को हर तरह की ऊर्जा शक्ति देता है। उपवास नहीं बनता है तो जिन्होंने अनशन उपवास किया हो या बीमार अंतराय आदि–आदि जो हैं उनकी वैय्यावृत्ति कर लो।

२६७. जिस दिन से व्रत लिया उसी दिन से कषाय सल्लेखना प्रारम्भ हो जाती है।

२६८. व्रतों की पाँच पाँच भावनाओं को भाने से व्रतों की वैराग्य की सुरक्षा है, जो भावना हमें अच्छी लगनी चाहिए वही खराब लग रही है इसका मतलब क्या? वैराग्य की कमी से ये सब हो रहा

है।

२६९. जिस प्रकार सोने का मूल्य देश विदेश सब जगह है हर जगह सोना बिक सकता है उसी प्रकार अणुव्रत रूपी निधियाँ होने से सुरलोक अवश्य प्राप्त होगा।

२७०. अणुव्रतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है महाव्रतों को तो मनुष्य ही धारण कर सकता है लेकिन अणुव्रतों को तो तिर्यंच भी धारण कर सकता है।

२७१. अणुव्रत भी आजीवन ही होता है भले ही चौदस मात्र का त्याग करें लेकिन जीवन पर्यंत चौदस को हिंसा का त्याग होगा।

२७२. भीतर के भावों की अभिव्यक्ति के लिए बोलना होता है।

२७३. ज्यादा नहीं बोलना सम्यक्त्व का प्रतीक माना जाता है।

२७४. अणु का अर्थ पाँचों ही व्रत होना अनिवार्य हैं ऐसा नहीं। मूल अहिंसा को बताने के लिए ही प्रसिद्धि (चांडाल) का उदाहरण दिया है।

२७५. देशव्रती के एक के प्रति लगाव हो सकता है लेकिन हम महाव्रती है तो किसी एक तरफ नहीं होना चाहिए सबके होकर रहना चाहिए और सबके हित की बात को सोचना चाहिए।

२७६. चिंतन, लेखन, मनन अब बहुत हो गया अब कुछ साधना की बात कर लेना चाहिए। जो शक्ति यह संसारी प्राणी अन्य स्थानों पर लगा देता है वो शक्ति यदि संकल्प में लगा देता है तो उसका फल वह सही पा जाता है।

२७७. संकल्प शक्ति आहार से नहीं बढ़ती है वो तो प्रयोग के माध्यम से बढ़ती है।

२७८. आज संकल्प शक्ति का प्रयोग नहीं होने से चिंतन का विषय नहीं बन पा रहा है, चिन्तन का विषय बन जाता है।

उपदेश

२७९. जो विषय कषायों में लिप्त हैं उनका उपदेश सुनने की कृपा न करें।

२८०. अच्छे से अपने-अपने योग्य कार्य करते चलो अपने आप बिना उपदेश के ही समाज को व्रतों का वातावरण मिलता चला जाता है। उपदेश देना आवश्यक नहीं है।

२८१. उपदेश को भी आदेश मान लेना चाहिए। आदेश का महत्त्व ज्यादा रहता है। जो व्यक्ति उपदेश को मानकर चलता है उसे आदेश की आवश्यकता नहीं रहती।

२८२. उपदेश स्वाध्याय का अंग मानकर करते हैं तो ठीक है इसमें दीनता भी नहीं, अभिमान भी नहीं। कर्तव्य जहाँ पर है वहाँ पर ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है।

२८३. सांसारिक लोभ लिप्सा से रहित होकर उपदेश देना चाहिए तभी उत्तम माना जावेगा। मोक्षमार्ग में जो भी प्रवचन करते हैं वे परमार्थ के लिए करें अपने (स्वार्थ के) लिए नहीं।

२८४. टिमटिमाते दीपक में यदि थोड़ा सा तेल डाल देते हैं तो दीपक पुनः जलने लगता है, उसी प्रकार

यह धर्मोपदेश भी उस तेल की भाँति है जो बुझे हुए उत्साह को पुनः उत्साहित कर देता है।

२८५. जिस किसी को भी उपदेश नहीं दिया जाता। जैसे–रसोई घर में ऐसे बच्चों को प्रवेश देना चाहिए जिन्हें अच्छी भूख लगी हो।

२८६. प्रज्ञावान को उपदेश देना। प्रज्ञावान का अर्थ विद्वान् नहीं है वरन् प्रज्ञा के द्वारा जो धारण करे या प्रज्ञा के द्वारा जो भिन्न–भिन्न जाने।

२८७. जिसके द्वारा धर्म की प्रभावना हो उस बात का उपदेश देना चाहिए।

२८८. दूसरों को उपदेश न देकर उपदेश का पालन स्वयं करना प्रारम्भ कर दें तो वह उपदेश अपने आप प्रचार को प्राप्त हो जायेगा। जिससे श्रावक अपनी चर्या वैसी बना लेता है उसका नाम उपदेश है।

२८९. जिसके राग नहीं उसका उपदेश पर के हित के लिए ही है ऐसा सिद्ध होता है।

२९०. संतों की वाणी से ही आत्मोन्नति का प्रारम्भ हुआ करता है।

२९१. धर्मोपदेश विषयों में रुचि जगाने के लिए नहीं है। आत्मा की रुचि जगाने के लिए धर्मोपदेश है।

२९२. गुरुओं का उपदेश हमारे शरीर के अंदर के विषाक्त तत्त्व को दूर करने के लिए औषध का काम करता है। राग, द्वेष, मोह रूपी रोग को हटाती है गुरुवाणी।

२९३. बुराई से बचाकर अच्छाई की ओर ले जाता है जिनोपदेश।

उपसर्ग

२९४. भेद विज्ञान के माध्यम से ही परीषहों पर विजय प्राप्त की जा सकती है इसलिए हमें भेद विज्ञान हमेशा हमेशा बना रहना चाहिए।

२९५. उपसर्ग जिस समय आता है उस समय हमें दीन–हीन नहीं होना चाहिए। और रोना आदि नहीं चाहिए। साहस एवं धैर्य का परिचय देना चाहिए।

२९६. शक्ति होते हुए प्रतिकार नहीं करना यह वीरता का प्रतीक है।

२९७. उपसर्ग आदि कभी भी निमंत्रण देकर नहीं आते हैं, कभी भी आ सकते हैं इसलिए हमें सैनिकों की तरह सजग रहना चाहिए।

२९८. उपसर्ग सहन करने के लिए हमें पत्थर के समान नहीं हीरे के समान कठोर बनना चाहिए। यदि वज्र भी गिर जाये तो उसका कुछ नहीं होता है।

उपसर्ग परीषह, कर्म निर्जरा

२९९. उपसर्ग की अवधि में निश्चितरूप से असंख्यात गुणी निर्जरा होती है उस निर्जरा से बचना नहीं चाहिए।

३००. जो बाईस परीषह हैं उन बाईस परीषहों का सिर्फ आना कहा है ये आयेंगे और उपसर्ग आ जाते

हैं तो उपसर्गों में विशेषरूप से समय दे देना चाहिए।

३०१. अंडर ड्यूटी जो होती है उसको पूर्ण करने के बाद ओवर ड्यूटी से असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।

३०२. उस मुनि की बहुत निर्जरा होती है जो दूसरे के द्वारा किए गये अपमान को सहन करता है।

३०३. मुनि के लिए उपसर्ग परीषह सहन करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। जैसे मिलिट्री युद्ध के लिए हमेशा तैयार रहती है।

३०४. परीषह तथा उपसर्ग पूर्वकृत पाप का फल है। इनको समता पूर्वक सहन करने से कर्म निर्जरा होती है।

३०५. परीषहों और उपसर्गों के आने पर जो मुनि ऐसा मानता है कि मैं पूर्व के ऋण को चुका रहा हूँ उस मुनि की बहुत निर्जरा होती है।

३०६. मान कर्म का उदय चल रहा है, उदीरणा चल रही है, यदि मैं इसमें समता रख लेता हूँ तो मेरी असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा हो गई और यदि मैं मान-सम्मान के लिए प्रयासरत हो जाऊँगा तो जितना कर्म निकला उससे लाख गुना और कर्मबंध हो गया ये ध्यान रखना।

३०७. परीषह उपसर्ग जब तक नहीं तब तक मोक्षमार्ग की पृष्ठ भूमि प्रारम्भ नहीं होती।

३०८. केन्द्र में उद्देश्य क्या है इसके माध्यम से ही कर्मों की निर्जरा होती है।

३०९. वीतरागता या सरागता क्या केन्द्र बनाया है उसके अनुसार निर्जरा होगी।

३१०. कर्मों का उदय आदि एक नाटक मंच की तरह अपना-अपना फल देकर चले जाते हैं।

३११. जो निर्विकल्प रहता है कोई विकल्प नहीं रखता इस कारण से कर्म की निर्जरा होती है, हो रही है ना कि श्रुतज्ञान के माध्यम से हो रही है।

३१२. निर्विकल्प होने के लिए विकल्पों को तोड़ो यह कहा है, विकल्प तोड़ने से मोह कम हो जाता है समाप्त हो जाता है और क्षीणमोह हो जाता है।

६. एकता

३१३. केवल एक के नहीं, एक-दूसरे के पूरक होने पर ही संघ चलेगा।

३१४. एकता से घनिष्ठता रखना किसी एक से नहीं।

३१५. संघ में सर्वप्रथम एकता होनी चाहिए। एकता हो गई तो विनय वात्सल्य भाव अपने आप आता है। एकता के अभाव में अहंकार पनपता है। एकता के अभाव में एक की तरफ झुकाव होता है।

३१६. सभी को एकता के साथ रहना चाहिए। एकता से बड़े-बड़े काम हो जाते हैं।

३१७. एकता हो तो बिगड़ा हुआ काम भी बन जाता है और यदि एकता न हो तो बनता काम भी बिगड़ जाता है। इसी का नाम शक्ति है। एकध्वनि होना चाहिए, एक स्वर होना चाहिए।

३१८. यदि हजार लोग भी हों और एक ध्वनि हो तो लाखों लोग सुनकर प्रभावित हो जाते हैं।

३१९. एकता से वात्सल्य आ ही जाता है। एकता ही सबसे बड़ा नियम है।

३२०. संकीर्णता को मिटाकर एकता, वात्सल्य को अपनाना चाहिए।

३२१. बंधी मुट्ठी में रहस्य होता है। जिस समाज में सभी लोग संगठित होकर रहते हैं वह प्रशंसनीय समाज होती है। संगठन के बिना समाज का क्या अस्तित्व? अतः सभी लोग संगठित होकर कार्य करें और अपनी समाज की शोभा बढ़ायें।

३२२. सामूहिक कार्य की सफलता के लिए सामूहिक सद्भावनाओं की आवश्यकता होती है।

३२३. बूँद-बूँद के मिलने से सागर बनता है। जल बिन्दुओं के समूह का नाम सागर होता है। सागर बाद में बूँद पहले है।

३२४. अकेले शून्य का महत्त्व नहीं होता संख्या का होना आवश्यक है।

३२५. अहिंसा को हम संख्या के रूप में रखें तो आगे कार्य सानंद सम्पन्न होते चले जायेंगे।

३२६. हमारे पास विचारों में एकता और विशाल दृष्टिकोण हो तो आज भी वह राम राज्य आ सकता है।

३२७. सामूहिक कार्यक्रम के कारण सभी की सावधानी सजगता बनी रहती है वह आगे बढ़ने से रुक नहीं सकता।

३२८. समूह में रहते हुए एक दूसरे के पूरक बने रहते हैं।

३२९. समूह में व्रतों के प्रति आनंद आता है। एक-दूसरे के पूरक बनते हैं। मैं किसी का कर्त्ता नहीं हूँ वस्तु का ही परिणमन देखने में आता है।

३३०. एक कार्य यदि एक हजार व्यक्ति मिलकर करते हैं तो कितना अनुपात बढ़ गया।

१७. कर्तव्य

३३१. भगवान् भी आ जायें तो भी हम अपने कर्तव्य को भूलें ना।

३३२. कर्तव्य का पालन करो उसके बाद कुछ भी मत सोचो। उसके बाद सोचने का अर्थ यह है कि आप दूसरे की सोच को गौण कर रहे हो।

३३३. कर्तव्य में कोई दुःख नहीं, संघर्ष नहीं किन्तु जहाँ से कर्तव्य प्रारम्भ हो जाता है वहाँ पर संघर्ष के अलावा कुछ भी नहीं रहता है।

३३४. कषाय के कारण कर्तव्य की भूमिका में ही जो जीता रहता है तो कर्तव्य उसके सामने आता ही नहीं है और यदि आता भी है तो औपचारिक रूप में आता है।

३३५. जिसने इस संसार में मौत की अनिवार्यता समझ ली है फिर वह संसार की क्षण भंगुरता में रचता-पचता नहीं है। उसे सदा ही अपने कर्तव्य का ध्यान बना रहता है।

३३६. जो व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ होते हैं वे स्वयं तो प्रकाशित होते ही हैं दूसरों को भी प्रकाशित कर जाते

हैं।

३३७. आज हम कर्तव्य से स्खलित होते हुए विरुद्ध दिशा में दौड़ रहे हैं।

३३८. कर्तृत्व अभिमान का तथा कर्तव्य सम्मान का प्रतीक है। राम कर्तव्य के तथा रावण कर्तृत्व के प्रतीक थे।

३३९. कर्तृत्व भाव न रखें, कर्तव्य करते-करते बढ़ते जायें। इसके बिना महासत्ता में प्रवेश संभव ही नहीं।

३४०. भावों की विरलता/महत्त्व को देखते हुए लगता है कि हमारे हाथ में कुछ नहीं। कर्तव्यनिष्ठा का पालन करते हुए राग-द्वेष को कम कर सकते हैं।

३४१. जो जीवन हमें मिला है, उससे दूसरों का हित करना श्रेष्ठ मानव का कर्तव्य है।

३४२. पुरुषार्थ करें संयमित जीवन जीयें अपव्यय और अन्याय से बचें यही विवेक है।

३४३. गुरु के चरण और आ-चरण उनका है वे तो अविरल चलते हैं उनके पीछे अनुचर चलते हैं और यही कदम उन्हें धर्मपथ पर ले जाते हैं। जो किसी राजपथ के समान हैं। शिष्य को चाहिए गुरु के पथ का आचरण करे और जो संकेत मिलें, उसे अपना कर्तव्य मानें।

३४४. आज तक सूर्य का कर्तव्य छूटा नहीं, हम भी अपने कर्तव्य का पालन सूर्य नारायण की तरह करना सीख लें। यदि शक्ति कम हो जाये तो रात्रि में विश्राम समय पर करेंगे तो प्रातः नयी स्फूर्ति नयी ताजगी आ जायेगी।

३४५. कर्तव्य समझ करके सब कार्य करना चाहिए। कर्तव्य करना पड़ रहा है ऐसी मानसिकता से कार्य नहीं करना चाहिए।

३४६. कर्तव्य करें, कर्तृत्व बुद्धि न रखें, इसमें बहुत शान्ति है।

३४७. कर्तव्य के प्रति भाव भक्ति पूर्वक समर्पित होना चाहिए।

३४८. देश प्रेम की भावना से कर्तव्यों का पालन करें। धर्म संस्कृति की रक्षा में अपना उत्तरदायित्व सही अर्थों में निभायें। वर्तमान में राष्ट्र के प्रति औपचारिकता बरतते हैं, यह ठीक नहीं।

३४९. हम जहाँ रहे वहाँ कर्तव्य शील एवं न्याय नीतिज्ञ बनकर कार्य करें।

३५०. सभी यदि अपने कर्तव्य में अडिग रहें तो कोई कारण नहीं कि सभी कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न न हों।

३५१. सम्यग्ज्ञान की शोभा कर्तव्य पालन से है।

३५२. हमें ऐसे समीचीन कर्तव्य का पालन करना चाहिए जिससे तन और मन दोनों प्रकार की गर्मी मिट जाये।

३५३. मनुष्य ब्यूटी (सुंदरता) से परिचित होने की लालसा में ड्यूटी (कर्तव्य) से विमुख हो रहे हैं।

३५४. जब तक प्राण हैं तब तक कर्तव्य के प्रति जागरूकता रखना चाहिए।

३५५. आजादी की अर्ध शताब्दी से अधिक अवधि बीत जाने पर भी क्या दशा है? सेवा, कृतज्ञता, कर्तव्य परायणता के चिह्न कम और स्वार्थ परायणता के चिह्न बढ़ रहे हैं।

३५६. हमें किसी की प्रतीक्षा की नहीं, निरीक्षण की आवश्यकता है। आप अपनी आत्मा का अपने कार्य का निरीक्षण करें। अपने कर्तव्य का पालन करें।

३५७. जो करने योग्य कार्य को जानता है और अपना कर्तव्य समझकर करता है वहीं कृतकृत्य होता है।

३५८. इसी कर्तव्य के पालन से हमारे भगवान् कृतकृत्य हुए हैं।

३५९. जीवन को सफल बनाने के लिए अपना कर्तव्य करना चाहिए।

३६०. कर्तव्य में कोई भी संघर्ष नहीं होता, जबरदस्ती नहीं हुआ करती, कोई शर्त भी नहीं हुआ करती लेकिन कर्तव्य कथंचित् जब वहाँ पर आ जाता है तब संघर्ष शुरू हो जाता है।

३६१. कर्तृत्व के साथ स्वामित्व लग जाता है और कर्तव्य के साथ फर्ज (ड्यूटी) होता है।

३६२. कर्तृत्व जहाँ पर आ जाता है वहाँ पर अंधकार छा जाता है।

३६३. अन्याय, अत्याचार से बचकर अपना कर्तव्य यदि कर रहा है, तो वहाँ पर भी पर्व मनाया जा रहा है उसका प्रवाह उसकी सुगंधी चारों ओर फैलती चली जायेगी।

३६४. आप ब्यूटीफुल (सुंदर) तो होना चाह रहे हैं लेकिन ड्यूटीफुल कर्तृत्व से मुक्त होना नहीं चाहते।

३६५. ड्यूटी का अर्थ धर्मध्यान या कर्तव्यपरायणता है।

३६६. कर्तव्य को छोड़कर आप यदि धर्मध्यान करना चाहते हैं तो वह धर्मध्यान नहीं माना जाता है और उसके द्वारा ज्ञान की शोभा नहीं होती।

३६७. कर्तव्य धर्मध्यान का चिह्न है।

३६८. कर्तव्य के प्रति कभी निराश नहीं होना उसके प्रति यदि निराश होंगे तो कार्य नहीं होगा। निराश वह होता जो स्वप्न देखता है और वह पूर्ण नहीं होता है।

३६९. स्वप्न सात्विक हो तो उसे साकार करने का सोच सकते हैं।

३७०. अपनी साधना को बढ़ाते हुए आनंद से सब लोग अपने-अपने कर्तव्यों को हमेशा-हमेशा करते रहें कर्तव्य विमुख न हों।

३७१. कर्तव्य करने से विघ्न भी दूर हो जाते हैं।

३७२. कर्तव्य को मैं सब कुछ मानता हूँ।

३७३. कर्तव्य जीवन में नहीं है तो उसे मैं गंधहीन फूल की तरह जीवन मानता हूँ। अपना जीवन हमेशा-हमेशा सुगंधित रहे बस यहीं भावना है।

३७४. गुरुजी आचार्य ज्ञानसागर महाराज कर्तृत्व को हमेशा भूलने को कहते थे कि कर्तव्य को मुख्यता देते थे।

३७५. अपनी गलती को स्वयं हम देखते रहें और कर्तव्य करते रहें सावधानी से। कर्तव्य करने वाला कभी अपनी गलती से अनभिज्ञ नहीं रहता है।

३७६. अपनी गल्तियों का हिसाब-किताब एक दुकानदार की तरह प्रतिदिन करते रहें।

३७७. हमें नाम से नहीं काम से प्रयोजन हो। हम जो भी कर रहे हैं वह अपने लिए कर रहे हैं। पर के लिए नहीं।

३७८. हम फल की कामना करते हैं। हमें कर्तव्य करना चाहिए फल की इच्छा नहीं रखना चाहिए।

कर्म

३७९. अप्रमत्त अवस्था में आयु कर्म की उदीरणा रुकती है और इसलिए मुनि महाराज प्रमाद से बचते हैं।

३८०. दूसरी प्रतिमा से ही हमें सावधान होना पड़ता है अपने एक-एक क्षण के प्रति कि हमारा एक क्षण भी व्यर्थ न जाये।

३८१. आगे बढ़ने की भावना हो लेकिन टेंशन नहीं होना चाहिए, जितना मिला उतने में सन्तोष रखना ये सबसे बड़ा धन है। जैसे चींटियों की लाइन रहती है सब एक-दूसरे से प्रेरणा लेते हुए आगे बढ़ती जाती हैं।

३८२. कर्म के उदय में स्वयं अपने लिए पुरुषार्थ करते जाओ, नहीं समझे कर्म के उदय में अन्य के लिए क्या कर पाते हैं बताओ बाहर से सहानुभूति बस दे सकते हैं।

३८३. कर्मों की ओर देखने से भी कर्म की उदीरणा तेज होती है।

३८४. कर्म की खोज न करो व्यक्तित्व की खोज करो।

३८५. हम कर्म की ओर तो देखते हैं लेकिन कर्तृत्व और व्यक्तित्व की ओर नहीं। व्यक्ति को पकड़ो अपने आप व्यक्तित्व मिलेगा।

३८६. अपने द्वारा किये गये पापों का पश्चाताप, प्रायश्चित करो इससे असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होगी और पुण्य का बंध होगा।

३८७. संवेग, निर्वेग सशक्त होना चाहिए उससे कर्म निर्जरा होती है।

३८८. अनगार ज्ञान-ध्यान के द्वारा शोभा पाता है और सागार दान-पूजा के द्वारा शोभा पाता है। दोनों का लक्ष्य कर्म की निर्जरा होना चाहिए।

३८९. जो आवश्यकों में निष्ठा, विकास लाता है वह कर्म की निर्जरा करता है। इससे लब्धिस्थान भी बढ़ते हैं।

३९०. किसी भी मनुष्य के लिए सबसे श्रेष्ठ कर्म दूसरे को सुख और मुस्कान देना है।

३९१. आपके अशुभ कर्म खुद रोते हैं और दूसरों को भी रुलाते हैं, वहीं श्रेष्ठ कर्म स्वयं के साथ संसार को भी सुखी कर हँसा सकते हैं।

३९२. विष की शीशी को जानकर कि ये विष है तो फेंका जा सकता है उससे आप बच सकते हैं, लेकिन विष मुख में चला गया तो थूका नहीं जा सकता यानि थूक भी दो तो भी, जो जहर मुख में चला गया उसका तो प्रभाव पड़ेगा ही। ऐसे ही कर्म बंधे तो उसके पूर्व सम्हल जाओ तो ठीक अन्यथा कोई उपाय नहीं उससे बचने का।

३९३. कर्म के उदय में समता रखना यही कर्म को सही मानना है।

३९४. नोकर्म की मात्रा न देखो कर्म के अनुभाग की शक्ति को देखो।

३९५. शरीर मिला बस उसी समय से पाप क्रिया कर्म चालू। जैसे–गाड़ी खरीदी कि रोड टैक्स चालू हो गया। चाहे गाड़ी चलाओ अथवा न चलाओ।

३९६. नियम पालन कर रहे हैं तो पढ़े-लिखे न होने पर भी कर्म निर्जरा हो रही है। नियम पल रहे हैं तो उससे निर्जरा अबाधित रूप से चलती है।

३९७. कथनी व करनी में सभ्यता होनी चाहिए।

३९८. दूसरे की गलती ये है ही नहीं, अपना ही कर्म का उदय है ऐसा हर समय विचार करना चाहिए।

३९९. हम कर्मोदय से नहीं बच सकते लेकिन कर्मोदय में राग-द्वेष से बच सकते हैं, क्योंकि राग-द्वेष अपने ही परिणाम हैं।

४००. जो कर्म बंध से बचना चाहता है वह पंचेन्द्रिय विषयों को छोड़ेगा, किसी के भय से नहीं।

४०१. कर्म आपके पीछे वैसे ही लगा है जैसे आपकी काया शरीर की छाया।

४०२. जो भी कार्य हो रहे हैं वे सभी कर्मों के अनुरूप ही हो रहे हैं। कर्म फूल है, फूल के बिना फल नहीं।

४०३. कर्म ऐसा है जो कठोर ओर न्यायवान होता है।

४०४. कर्म को केन्द्र में बनाकर चलो तो सारी व्यवस्था होती चली जायेगी जिसके पास जैसे कर्म का उदय है वैसी व्यवस्था हो जायेगी।

४०५. धार्मिक क्रियाएँ बिना विवेक की नहीं करनी चाहिए। जो भी धार्मिक क्रियाएँ करो उनको विवेकपूर्वक करो ताकि आवागमन मिट सके। कर्मबंधन, कर्म की बेड़ियाँ ढीली हो सकें ओर हमारा भविष्य उज्ज्वल बन सके।

४०६. अपने किये गये कर्म का फल तिल का ताड़ सरसों का पहाड़ बनकर आता है।

४०७. कर्म किसी पर पसीजता नहीं तो यद्वा तद्वा किसी को पीसता भी नहीं।

४०८. किसी कार्य के सम्पन्न करने के लिए यथायोग्य विधि आवश्यक है उसी प्रकार कर्म काटने के लिए भी विधि है। यदि कर्म काटने की विधि ज्ञात है तो कट सकते हैं अन्यथा नहीं।

४०९. सुख-दु:ख कर्म की देन है जब तक ऐसा नहीं जान लेते तब तक समता नहीं आती है।

४१०. जैसी करनी वैसी भरनी यह भारतीय नीति ही नहीं सिद्धान्त भी है।

४११. योग्यता का परिचय प्रमाण पत्र से नहीं, कार्य से प्राप्त होता है।

४१२. आणविक शक्तियों से बढ़कर भी काम करने वाली शक्तियाँ हैं, जिन्हें कर्म कहते हैं।

४१३. जो वीतराग सम्यग्दृष्टि होता है वह विचार करता है कि जब मेरा कर्म ही मेरा साथ नहीं दे रहा है तो ये मेरे साधर्मी मेरा साथ कैसे दे सकते हैं।

४१४. कर्म के उदय से सब कुछ होने वाला है ये श्रद्धान अटूट होना चाहिए तब कहीं जा करके अपने व्रत, संकल्प, विश्वास, श्रद्धान मजबूत रह सकते हैं, अन्यथा नहीं।

४१५. कर्मों की निर्जरा करना कोई खेल नहीं है। सावधानी के साथ परिणामों में, संकल्पों में जाग्रति रखने वाला व्यक्ति ही कर्म निर्जरा कर सकता है।

४१६. संयम के माध्यम से कर्म निर्जरा की गति नहर की भाँति होती है। नहर में हमेशा-हमेशा रफ्तार से पानी निकलता रहता है।

४१७. बैठे-बैठे शांति रखो, आकुलता नहीं करो, परिणामों को जितना शांत बना सको कर्म निर्जरा उतनी ही ज्यादा बढ़ेगी।

४१८. कर्म एक ऐसा निष्पक्ष न्यायकर्ता है, जिससे कोई यदि छिपाना चाहे भी तो छिप नहीं सकता।

४१९. हम उस कर्म के ऊपर चिंतन कर लें कि ये हमारा ही है तो हम उसे हजम कर सकते हैं।

४२०. कर्मों के उदय से बंध नहीं होता। कर्मों के उदय में जो उथल-पुथल होती है उससे बंध होता है और यदि धैर्य रख लिया तो निर्जरा।

४२१. यदि हमें पाँच इन्द्रियों की विषमता और विषयों की विषमता में किसी प्रकार की कोई भी प्रतिकूलता का अनुभवन नहीं होता है तो हमारे कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा होती रहती है।

कर्म निर्जरा

४२२. साधन के साथ साध्य अत्यंत जरूरी है। साधन में कर्म नहीं होने पर वह व्यर्थ है।

४२३. साधन यानी साबुन होने पर बिना कर्म किए अर्थात् जल का उपयोग कर उसे धोए बिना कुछ नहीं किया जा सकता साधन के साथ श्रेष्ठ साध्य कर्म किया जाना ही मानव धर्म है।

४२४. धर्म के साथ श्रेष्ठ कर्म करना मनुष्य का वास्तविक धर्म है।

४२५. हमें कर्म के उदय से बचना नहीं किन्तु कर्म के उदय में जो भाव होते है उससे बचना है।

४२६. कर्म को कभी पसीना नहीं आता। उसका सीना ही नहीं होता और पसीना भी नहीं आता।

४२७. तुमसे मेरे कर्म कटे, मुझसे तुम्हें क्या मिला? बिल्कुल झकझोरता है। कर्म निर्जरा करने वाला व्यक्ति इसी आस्था के बल पर कर्म निर्जरा कर सकता है कटु सत्य है यह।

४२८. कर्म का उदय मेरे है, आपके माध्यम से मैंने निर्जरा कर ली लेकिन आपका उपयोग मुझे देखकर क्या हुआ निकाचित बंध हो गया और हमारा निकाचित कट गया।

४२९. दूसरे की स्तुति परख शब्द सुनने में हमारी कर्म निर्जरा और अधिक होती है। अपनी स्तुति करने में वो निर्जरा नहीं होती है।

४३०. पर्वत की चोटी पर बैठकर तप करने में वो निर्जरा नहीं होती है जो निर्जरा किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा अपनी निंदा परख स्तुति के शब्दों को सुनने से होती है।

४३१. अरिहंत भगवान का जय-जयकार करने से भी असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है।

४३२. किये हुए अनर्थों का चिंतन करना चाहिए इससे निद्रा विजय होती है और कर्म निर्जरा भी होती है।

४३३. कम समय में ज्यादा निर्जरा के उपाय यही है कि पक्षपात से ऊपर उठो कर्तव्य की ओर ध्यान दो।

४३४. साता का उदय बना रहे ताकि अच्छे से कर्म निर्जरा कर सकें ऐसा सोचते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। इससे विपरीत यदि असाता की उदीरणा हो तो ज्यादा निर्जरा हो सकती है तथा असाता का उदय मात्र रहे तो भी कर सकते हैं।

४३५. असाता की उदीरणा को रोकने की अपेक्षा साता का वातावरण अनुकूलता उसी में बनाने का पुरुषार्थ कर सकते हैं। ये मूल है। उस समय तत्त्वज्ञान प्रयोग में ला सकते हैं।

१७. कषाय

४३६. खूब कषाय के ऊपर कषाय करना सीखो।

४३७. कषाय के कारण कोई भी व्रत, व्रत नहीं होते।

४३८. गुस्सा करके आप उपवास करो तो वह उपवास नहीं लंघन माना जाता है। किसी का गुस्सा किसी पर लादो यह ठीक नहीं।

४३९. तुम्हें गुस्सा करना है तो अच्छे ढंग से करो, लेकिन भोजन त्याग मत करो क्योंकि भोजन का समय है अतः पहले अच्छे ढंग से भोजन करो फिर बाद में गुस्सा करो, गुस्सा ही तो उतारना है तो अच्छे ही ढंग से उतारो न हट्टे कट्टे बन जाओ फिर उतारो।

४४०. कषाय के ऊपर कषाय करना चाहो तो कमर कसो कौन हारता है देखेंगे। कषाय बहुत जल्दी हारेगी, आप कमर तो कसो।

४४१. कषाय को पी जाना अपने आप में बहुत बड़ा संयम माना जाता है।

४४२. किसी ने कुछ कह दिया कषाय आ गई तो एक घूँट गुटक लो। ये ध्यान रखना इसे गुटकने से कभी अजीर्ण नहीं होगा।

४४३. मान आने की माया होने की लोभ होने की संभावना हो तो एक घूँट ले लो गुटक लो लोभ को नीचे उतार लो किसी को मालूम न पड़े कि इनमें क्या गुटक लिया।

४४४. मान के मान को भंग कर देना ये मात्र महापुरुष ही कर सकते हैं।

४४५. भूलना आत्मा का स्वभाव है। भूलो तो सभी भूल जाओ, लेकिन मतलब की बातें याद रखो। अच्छे कार्यों को भूल जाओ जिससे मान, अभिमान कम होगा।

४४६. मुनि बनकर मान को जीतना ये उसका शृंगार है।

४४७. श्रमण बनने के उपरांत अनिवार्य प्रश्न को हल करने में हम फेल हो जाते हैं।

४४८. कषाय के द्वारा मुख कैसे दिखा सकते हो किसी को?

४४९. कौन से रास्ते से कषाय आती है सभी दरवाजे बंद रखो बस एक दरवाजा खुला रखो और एक चाटा देकर उसे भगा दो।

४५०. कषाय करके माफी माँगने की अपेक्षा कषाय करना छोड़ दो तो ज्यादा अच्छा।

४५१. मानना, सम्यग्दर्शन का प्रतीक है। जानना, सम्यग्ज्ञान का प्रतीक है और तानना, कषाय का प्रतीक है।

४५२. मानी को मान से नहीं मृदुता द्वारा शान्त करो। क्रोधी को क्रोध से नहीं क्षमा के द्वारा शांत करो। आप ईंधन का काम मत करो जल रखो पास में सब शांत हो जायेगा।

४५३. धर्म और धर्मी दोनों अपमानित हो जायें इस प्रकार का मद/मान नहीं करना चाहिए। मान का नाम घमण्ड है।

४५४. राग-द्वेष से जीवन में जितना हो सके दूर रहना चाहिए। पूरे जीवन से इसको दूर कर पाना मुश्किल है, पर इसे सिर पर बैठाना नुकसान देय है। जितना हो सके इससे दूरी बनाना अच्छा है।

४५५. क्रोध करना कायरता का प्रतीक है।

४५६. अपनी शक्ति को कम होती देखकर क्रोध करना, ये अपनी कायरता को क्रोध के माध्यम से वो व्यक्त करता है।

४५७. आप क्रोध और मान से टकरा जाते हैं, माया को अपनाते हैं, लोभ करते हैं और रोते हो यह तो बड़ी बीमारी है, यह मानसिकता बीमारी है शारीरिक बीमारी तो है ही नहीं।

४५८. क्रोध, मान, काया, लोभ आत्मा का स्वभाव नहीं है। जब यह स्वभाव नहीं है तो स्वभाव को छोड़ करके अपने को बाहर क्यों जाना?

४५९. क्रोध को जानना तो हमारा स्वभाव है मान को जानना हमारा स्वभाव है किन्तु मान-सम्मान मिल जाये तो बहुत अच्छा यह भाव क्यों आया? किन्तु क्रोध को करना हमारा स्वभाव नहीं है।

४६०. मान करो नहीं, मान को जानना हो तो जानो।

४६१. आप कहीं भी कितने भी छल कर लो लेकिन आप माया को छल के द्वारा जीत नहीं सकते। उसके द्वारा आप ही छले जाओगे।

४६२. क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों कषाय भाई हैं। कैसे? एक एक रुपया आता है। नहीं समझे, यह एक आयेगा लेकिन बंधेंगे चारों के चारों। ये भाई ऐसे हैं, ये गजब के हैं।

४६३. ये उदय में तो एक आता है लेकिन सपोट में एक ही उदीरणा समाप्त हुई नहीं कि दूसरा तैयार हो जाता है। कभी भी अंतराल नहीं होता, नौंवे गुणस्थान तक लगातार चलते रहते हैं।

४६४. इनको नीचे गिराना खेल नहीं है। एक का उदय समाप्त होते हुए भी चारों का बंध करें और वह जितने समय तक रहा उसने असंख्यात समय तक कितना बंध कर लिया भगवान् जाने।

४६५. यह कषाय की ऐसी दुकान है जिसको देख करके हमें रोना आता है। इसलिए कषायों को जानो लेकिन करो नहीं। इसी से कर्म निर्जरा होती है।

४६६. रोष उस पर करो जो दुःख देता है। क्रोध को जान लो उस पर रोष करो क्योंकि वह दुःख देता है।

४६७. सम्यग्दर्शन का गला घोंटना हो तो मद करो। सम्यग्दर्शन को यदि जीवित रखना चाहते हो तो मद को निकालना होगा।

४६८. राग-द्वेष को यदि हमने कम किया है तो सबसे अधिक आवश्यकों का पालन हमने किया है।

४६९. कषाय की गली में नोकषाय अप्रशस्त प्रकृतियाँ अपना प्रभाव डालतीं हैं। जैसे कुत्ता भी अपनी गली में शेर होता है।

४७०. कषाय की घुटन में जीना, जीना (उन्नति) नहीं है।

४७१. यदि आप तीव्र कषाय से अवशिष्ट हो जायेंगे तो दूसरे को क्या स्वयं को भी समाप्त कर दोगे आप।

४७२. कषाय के द्वारा स्वयं अपनी आत्मा ही समाप्त हो जाती है।

४७३. दूसरा समाप्त हो या न हो लेकिन कषायों के द्वारा ईर्ष्या, मान, आदि के द्वारा अपनी आत्मा का ही हनन हो जाता है।

४७४. संसारी प्राणी द्वेष से तो बचता है लेकिन राग से नहीं बच पाता। और राग से जो बच जाता है वही वीतरागी बन जाता है।

४७५. विद्वेषी होना तो बहुत आसानी से हो जाता है। आँखें फेर दो तो विद्वेषी हो जाये। जो राग से चिपकन रहता है, ये खतरनाक होता है।

४७६. दूसरों के द्वारा दुःख नहीं होता है, विषय कषायों के द्वारा दुःख होता है तो विषय कषायों को छोड़ो।

४७७. संसार को हेय, कषायों को विद्रोही जानकर इनसे बचो।

४७८. कषाय के कारण आंख बंद करके भी ऐसे भाव कर जाते हैं कि जिसके फलोदय में अपनी

आँखों में से पानी आ जाता है।

४७९. जिस व्यक्ति के मन में कषाय जितनी मात्रा में है, वह व्यक्ति आगम के अनुसार स्व की उतनी हिंसा करता जा रहा है।

४८०. कषायों के कारण अनर्थ बंध हो रहे हैं, उससे हम बचना चाहें तो बच सकते हैं।

४८१. कषायों के कारण हमारी दुकान में मंदी आयेगी और दुकान धीरे धीरे उठ जायेगी।

४८२. क्रोध करना ही है तो अपने राग पर क्रोध करो, अपने द्वेष पर क्रोध करो, अपनी कषायों पर क्रोध करो और भस्मसात कर दो इन बुराइयों को। फिर देखो एक ऐसा अलौकिक दृश्य प्रस्तुत होगा जिसे आज तक नहीं देखा।

४८३. राग-द्वेष होते नहीं, किये जाते हैं। याद रखें, मोहनीय कर्म तो उदासीन है।

४८४. मोहनीय कर्म की स्थिति ठीक पानी की तरह है जो मछली से यह नहीं कहता, तुम तैरो। किन्तु यदि वह मछली तैरना चाहेगी, तो वह पानी उसकी सहायता कर देगा।

४८५. विषय-कषाय हेय हैं, उनका सर्वथा त्याग कर दो। उपादेय हैं अपने में रमण और उपाय हैं भगवान् के चरण।

४८६. पीठ दे दो विषय कषायों को सदा सर्वदा के लिए किन्तु भगवान् को पीठ मत दो। उनको आदर्श के समान अपने आगे रखो।

४८७. आप लोग पूजन में ऊपर से द्रव्य को चढ़ाते हो लेकिन उसके साथ अपने भीतर का राग भी चढ़ाया करो।

४८८. दुनिया में राग ही राग नजर आता है। जिनबिम्ब में ही एक मात्र वीतरागता दिखती है। वही लक्ष्य है/मंजिल है/ प्राप्तव्य है।

४८९. जिस प्रकार कचरे को व्यर्थ मानकर फेंक देते हैं उसी प्रकार पंचेन्द्रिय के विषयों को व्यर्थ मानकर उनका त्याग करना होगा।

४९०. स्वभाव की पहचान करने के लिए विभावरूप विषय कषायों को गौण करना अनिवार्य है।

४९१. जैसे हाथी के ऊपर बंदरिया का बैठना, शोभा नहीं देता, ऐसे ही हमारी आत्मा पर मान का बैठना शोभा नहीं देता।

४९२. जल में कोई चीज डालो तो सीधी नहीं जाती, यहाँ-वहाँ होकर नीचे जाती है। ऐसे ही संसार में जब तक जीव राग-द्वेष मोह के साथ है तब तक वह चलेगा भी तो जल में डाली गई वस्तु के समान ही टेढ़ा चलेगा, सीधा नहीं चलेगा।

४९३. मोह विलीन हुआ समझो दुःख विलीन हुआ।

४९४. क्रोध को जीतने का प्रयास करना चाहिए हो तो वह बहुत आसान है-उस ओर देखिये मत। देखने से काम बिगड़ जायेगा।

४९५. आप क्रोध से मत डरिए क्रोध करने से डरिए।
४९६. कषाय को पालना ही ज्ञान को पागल बनाना है।
४९७. कषाय का फल रोते हुए भोगना पड़ता है।
४९८. यदि संहनन दीर्घ नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन संहनन के अनुकूल तो कषायों को जीतने का प्रयास कर लें।
४९९. जो शिखर पर बैठ करके तपस्या कर रहे हैं उनका गुणगान तो कम से कम छाया में बैठ कर कर लो।
५००. कषाय को जीतने में काय की क्षमता चाहिए लेकिन आज वह भी नहीं हो पाता है।
५०१. जो कषायों को जीतने का उपाय करता है उसकी बहुत कर्म निर्जरा हो जाती है।
५०२. कषायों को ही अपना शत्रु मानो।
५०३. कषायों को जीतने का प्रयास जितना होता है उतना तो करो। यदि यह भी नहीं होता है तो क्या होता है? आखिर कोर्स में क्या आएगा?
५०४. कषाय की तीव्रता ज्यादा रहेगी तो निश्चितरूप से जो शरीर है वह क्षीण हो जायेगा, सारा का सारा खून पतला होकर के सब पानी बन जायेगा।
५०५. दरिद्रता रखो तो कषायों के प्रति रखो।

काल

५०६. काल से कार्य नहीं होते, किन्तु काल में कार्य होते हैं। अतः कार्य करते चले जाओ काल की ओर मत देखो।
५०७. काल ही काल की चर्चा में आत्मा को लपेटों नहीं, कुछ काल निकालकर आत्मा की भी अर्चा करो।
५०८. काल को वही पहचान सकता है जो शरीर को गौण कर देता है। नहीं तो काल के गाल में कवलित हो जाता है।
५०९. आठ साल की उम्र के बाद अच्छे कार्य करने के लिए जीवन भर मुहूर्त है, पर आज अस्सी साल तक के भी हो जाने पर यही कहते हैं कि मुहूर्त नहीं आया।
५१०. आठ साल के उपरांत बच्चा उस काम को भी कर सकता है, जिसको दादाजी भी नहीं कर सकते हैं।
५११. अन्य द्रव्यों पर तो आपका कुछ अधिकार हो सकता है, पर काल द्रव्य पर अधिकार नहीं हो सकता।
५१२. काल बंधा नहीं रहता है। काल आप लोगों की प्रतीक्षा नहीं करेगा। अतः जब तक काल है, अपने को मांजने की आवश्यकता है।

५१३. बाहरी, पदार्थों व कार्यों के लिए मुहूर्त की जरूरत है। त्याग के लिए, आत्मा के उद्धार के लिए मुहूर्त की जरूरत नहीं है। काल को मुहूर्त का बाधक समझो और बहुत जल्दी समता को धारण करो।

५१४. स्वल्प जीवन को स्वल्प काल में ही उपयोगी बनाने की चेष्टा करो।

५१५. काल जब कार्य के लिए छोटा पड़ता है समझ लेना मन लगा हुआ है।

५१६. काल को काटना नहीं काल आयु प्राण है, उसको बचाये रखो।

५१७. हम अहिंसा के पुजारी हैं, इसलिए आयु कर्म को सुरक्षित रखते हुए उसकी निर्जरा न करते हुए शेष सात कर्मों की निर्जरा हमें करनी है।

५१८. सबसे कीमती, समय है, और इसे धन संग्रह नहीं प्रभु की भक्ति आराधना और परोपकार में गुजारना चाहिए।

५१९. एक-एक समय का मूल्यांकन करना चाहिए बहुत कीमती समय है। धर्मध्यान के बिना काल की एक कणिका भी नहीं निकलना चाहिए।

५२०. वर्णी जी के बारे में उनकी पुण्य तिथि पर विद्वानों के लिए आचार्यश्री जी का उद्‌बोधन, वर्णीजी की परम्परा और वर्णी जी की संस्थाओं की परम्परा आप लोग दोनों को एक मान रहे हैं और मैं दो मान रहा हूँ। वर्णीजी की संस्था चले यह तो आप लोग चाहेंगे लेकिन मैं तो यही चाहूँगा कि संस्था तो ठीक है यदि वर्णी परम्परा चले तो सब ठीक-ठाक हो जायेगा।

५२१. वर्णी का अर्थ क्या होता है, मालूम है आप लोगों को, कोई सेठ साहूकार नहीं होता। वर्णी का अर्थ पंडित भी नहीं होता है। जब मैं (ब्रह्मचारी अवस्था में) नाममाला पढ़ता था उस समय मुनियों के नाम वर्णी शब्द आया था। तो वर्णी का अर्थ साधु होता है/अनगार होता है।

५२२. वर्णी जी गृहस्थ नहीं थे वे पिच्छीधारक क्षुल्लक जी थे। यह बात अलग थी कि उनकी काया की क्षमता अधिक न होने से मुनि नहीं बन पायें किन्तु मुनि बनने की उनकी तीव्र भावना अवश्य थी।

५२३. उनका त्याग था, तपस्या थी, उनका समर्पण था, समाज के लिए समर्पण नहीं, किन्तु वीतरागी मार्ग के लिए समर्पण था।

५२४. यदि आप वर्णी परम्परा, उनका नाम कायम रखना चाहते हैं तो, दूसरे वर्णी की आवश्यकता है। है कोई यहाँ पर इस सभा में (विद्वानों की ओर संकेत करते हुए) दमदार व्यक्ति जो वर्णी जैसे बनने के लिए तैयार हो।

५२५. आप लोगों का जीवन अल्प बचा है, कम से कम इस अल्प समय में तो वर्णी जैसे जीवन की एक झलक आनी चाहिए।

५२६. आप लोगों की यह ज्ञान आराधना तभी सार्थक होगी जब आपके कदम चारित्र की ओर बढ़

जायेंगे।

५२७ वर्णी संस्थाओं का नहीं, वर्णी का निर्माण होना चाहिए क्योंकि जो सैकड़ों संस्थायें काम नहीं कर सकती हैं, वह एक त्यागी, व्रती, संयमी कर सकता है और एक वर्णी के तैयार होने से हजारों वर्णी तैयार हो जायेंगे। वर्णी जैसे साधक व्यक्तियों के तैयार होने से उनकी संस्थाएँ अपने आप चलने लगेंगी।

गुरु

५२८. हमें गुरु बनना है, अपने आपको गुरु समझना नहीं है।

५२९. गुरु प्रत्यक्ष में हो या न हो पर गुरु के प्रति विनय होनी चाहिए।

५३०. गुरु के प्रति आत्म समर्पण करने पर ही (विद्या) फल की प्राप्ति होगी।

५३१. जब भोगों का अन्त होता है, तभी योग के चिह्न प्रादुर्भूत होते हैं।

५३२. वीतरागी मुनि जहाँ भी जाते हैं, तो समझ लो उस जगह के जीवों का उद्धार होने वाला है। महाराज के द्वारा परमार्थ की कमाई होगी, अर्थ की कमाई नहीं।

५३३. जिस प्रकार दीपक, रात भर अंधकार से जूझता रहता है इसी प्रकार पंचमकाल के अंतिम समय तक सम्यग्दृष्टि से लेकर भावलिंगी सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि महाराज भी संवर तत्त्व के माध्यम से लड़ते रहेंगे।

५३४. मैं अर्थात् अहंकार को मिटाने का यदि कोई सीधा उपाय है तो गुरु के चरण-शरण।

५३५. आज कोई भी पिता अपने लड़के के लिए कुछ दे देता है तो बदले में कुछ चाहता भी लेकिन गुरु की गरिमा देखो कि तीन लोक की निधि दे दी और बदले में किसी चीज की आकांक्षा नहीं है।

५३६. जैसे वर्षा होने से कठोर भूमि भी द्रवीभूत हो जाती है उसी प्रकार गुरु की कृपा होते ही भीतरी सारी की सारी कठोरता समाप्त हो जाती है और नम्रता आ जाती है।

५३७. गुरुदेव की कृपा से अनंतकालीन विषाक्तता निकलती चली जाती है। हम स्वस्थ हो जाते हैं। आत्मस्थ हो जाते हैं, यही गुरु की महिमा है।

५३८. मरुभूमि को हरा-भरा बनाने के समान जीवन को भी हरा-भरा बनाने का श्रेय गुरुदेव को है।

५३९. गुरु उसी को बोलते हैं जो कठोर को भी नम्र बना दे।

५४०. गुरु का हाथ और साथ जब तक नहीं मिलता तब तक कोई ऊपर नहीं उठ सकता।

५४१. युगों-युगों से पतित प्राणी के लिए यदि दिशाबोध और सहारा मिलता है तो वह गुरु के माध्यम से ही मिलता है।

५४२. गुरु हमारे जीवन का सृष्टा होता है, गुरु हमारे जीवन का प्रकाश होता है, गुरु की प्राप्ति से हमारी अपूर्णता पूर्ण हो जाती है। अतः गुरु की प्राप्ति ही गुरुपूर्णिमा है।

५४३. गुरु वही होता है जो सबका होता है।

५४४. गुरु कृपा से सब कुछ मिलता है अतः गुरु सेवा, गुरु आज्ञा कभी नहीं भूलना।

गुरुमन्त्र

५४५. गुरु के द्वारा दिए हुए सूत्र मन्त्र हैं। ये सूत्र शास्त्र से भी ज्यादा आनंद देने वाले हैं। शार्ट रास्ते से मंजिल दिलाने वाले हैं। मुझे गुरु के वचन शास्त्र से ज्यादा याद आते हैं।

५४६. स्वाध्याय करने से इतना कुछ नहीं होता जितना कि गुरु संकेत कहाँ से कहाँ पहुँचा देते हैं।

५४७. शुरूआत की भूमिका में गुरु और शिष्य में इतनी निकटता नहीं होती बाद-बाद में अधिक निकटता आती जाती है। जो बोला है, संकेत दिया है, गुरु ने उसमें सम्मोहन आकर्षण बनाओ तो इससे उसका और महत्त्व बढ़ जाता है। इसलिए नए सूत्र की अपेक्षा पुराने सूत्र का अधिक महत्त्व होता है जैसे नए ग्रन्थ नए भगवान् की अपेक्षा पुराने ग्रन्थ पुराने भगवान् में ज्यादा महत्त्व होता है क्योंकि इनके आगे कितने संतों ने कायोत्सर्ग किये विशुद्धि बढ़ाई इसलिए पुराने में आस्था रखो।

५४८. गुरु की कृपा से बुद्धू भी बुद्धिमान् बन जाता है।

५४९. गुरु के वचन उसी के लिए सार्थक होते हैं जिसका लिंग निर्दोष होता है इसलिए लिंग को सुरक्षित रखो।

५५०. आचार्यों के ऋण को चुकाना चाहते हो तो उनकी चर्या के अनुसार चलो।

५५१. गुरु अपने अनुभव से शिष्य को भी अनुभवी (स्वानुभवी) बना देते हैं।

५५२. गुरु को यदि मानते हो तो गुरु वचन को भी मानो।

५५३. सूत्र के लिए तो खूब कहते हो कि हमें सूत्र दो स्वाध्याय भी बहुत करते हो पर गुरुवचन को नहीं मानते।

५५४. राह एक ही है तो दो राह क्यों बनाते हो? गुरु ने ऐसा-ऐसा कहा वही होना चाहिए।

५५५. गुरु में यह ही विशेषता रहती है कि वे जीवनपर्यन्त के अनुभव के साथ सार-सार निकाल करके देते हैं।

५५६. आचार्य ज्ञानसागर महाराजजी ने मंत्र दिया था-हम प्रचारक प्रसारक नहीं साधक हैं।

५५७. गुरु भक्ति करते करते जिसका हृदय शुद्ध हो गया है आस्था मजबूत हो गई है उसे ही गुरु अध्यात्म का रहस्य उद्घाटित करते हैं।

गाय

५५८. मनुष्य हमेशा से पशुओं का पालन करता आया है लेकिन यह बात ध्यान रखना कि पशुओं के माध्यम से मनुष्य की अपनी आजीविका चलती है। आप उन्हें पाल नहीं रहे बल्कि उनके माध्यम से आपका जीवन पल रहा है।

५५९. वैश्य वही है जो कृषक होता है। कृषक जो खेती के माध्यम से गौ का पालन करता है। उससे वणिक्वृत्ति अर्थात् व्यापार लेन-देन करता है।

५६०. आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज कहते थे-उसका भाग्य खुल गया जिसके यहाँ प्रातःकाल आँगन में गाय रंभाती है।

५६१. पहले के लोग गर्व का अनुभव करते थे क्यों? क्योंकि गौ रव अर्थात् गायों की रंभाने की आवाज तथा बैलों की रव यानि आवाज/ध्वनि को सुनते थे अतः गौ रव गौरव का अनुभव करते थे पूर्व के लोग।

५६२. रंभा और श्री है यह गाय। श्री यानि लक्ष्मी, सरस्वती की माँग नहीं करते वह तो रहेगी ही।

५६३. हम जब छोटे थे आचार्यश्री जी तो चौखट पर शुभ-लाभ लिखा मिलता था। इसका क्या अर्थ हैं? तो शुभ अर्थात् बुद्धि अच्छी हो तो लाभ यानि लक्ष्मी भी अच्छी होगी।

५६४. दया धर्म का पालन करोगे तो सरस्वती और लक्ष्मी दोनों को प्राप्त करोगे।

५६५. गाय-बछड़ा जहाँ पलते हैं वहीं बुद्धि अच्छी मिलती है।

५६६. वत्स से वात्सल्य शब्द की उत्पत्ति हुई है।

५६७. किसी मनुष्य के समान वात्सल्य की बात नहीं कही गौ वत्स सम कहा है।

५६८. वह गौ अपनी जीभ के द्वारा वत्स को चाटती है तो वह निरोग और निर्भीक हो जाता है। उसका मन और तन उसके द्वारा पलते हैं, आपके द्वारा नहीं पलते हैं।

५६९. आज अल्कोहल का ही उपयोग औषध बनाने में ज्यादा होता है जबकि औषध की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए दूसरे प्रयोग भी हो सकते हैं।

५७०. अहिंसा धर्म की सुरक्षा, रक्षा के लिए ही भारतीय चिकित्सा में गौ-मूत्र का महत्त्व है। विदेशों में भी गौमूत्र का उपयोग हो रहा है।

गाय और किसान

५७१. किसान के पास गौधाम है और बनिया के पास गोदाम है।

५७२. किसान के खेत से कोई कुछ ले लेता है तो उसे क्रोध नहीं उदारता रहती है, स्वयं बुलाकर खिलाता है, वह क्योंकि उत्पादक वह स्वयं है जबकि बनिया की दुकान में उसने एक-एक पैसा संचय करके सामान खरीदा है वह बिना पैसे के कुछ नहीं देगा। ताला-कुंजी नाप-तौल की ओर रखेगा।

५७३. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के विभाजन के कारण परिणामों में कमी है।

५७४. क्षत्रिय उपसर्गों, परीषहों को झेलेगा, बनिया उपसर्गों, परीषहों से हटेगा।

५७५. गाय घास-पूस खाकर मीठा दूध देती है दूध कभी कड़वा नहीं होता मनुष्य खाते तो मीठा और शब्द कड़वे उगलते हैं ऐसी ये कौन-सी फैक्टरी है।

५७६. आपके बारे में वे क्या-क्या सोचते हैं, ये नहीं समझते, वे (पशु, गाय) रात दिन भी लाभ की भावना भाते हैं।

५७७. नगाड़े की आवाज, वंशी की आवाज तो आप सुनते नहीं लेकिन मोबाइल की आवाज सुनते हैं।

५७८. पशु घास खाता है और मनुष्य ग्रास खाता है।

५७९. तीर्थंकरों के समय वर्ण व्यवस्था की गई, उसमें वैश्य, वणिक व्यापारी वस्तुओं का आदान प्रदान करता था ज्यादा संग्रह की नहीं। आवश्यकताओं की पूर्ति थी आज संग्रहणी की बीमारी की तरह द्रव्य का संग्रह हो रहा है।

५८०. १८वीं सदी में एक एकड़ में ५६ क्विंटल अनाज पैदा होता था देशी खाद से उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती थी। आज एक एकड़ में ३६ क्विंटल यूरिया खाद से निकाल रहे हैं, जिससे जमीन की उत्पादन क्षमता समाप्त हो रही है और बीज भी सुरक्षित नहीं, बुद्धि चलाओ तो समय बचाकर कुछ कर सकते हो।

५८१. आज आप घर में यदि भोजन तैयार नहीं करोगे तो एक दिन वह आयेगा कि बैठ के माला फेरोगे।

५८२. आज हम स्वयं मजदूर बनना नहीं चाहते मजदूरों से काम कराना चाहते हैं।

चिन्तन

५८३. चिन्तन आज खो सा गया है, चिन्तन के स्थान पर चिंता होने से बच्चे आज घबड़ा रहे हैं।

५८४. चिन्तन में गहराई, प्रौढ़ता, गंभीरता आ जाती है।

५८५. महत्त्वपूर्ण बिन्दु उसमें आ जाये तो वो कहलाता है चिंतन।

५८६. अनुप्रेक्षा-इसमें विस्तार नहीं होता और उसका सार सामने आ जाता है। उदाहरण के मध्यम से बहुत दिन बाद भी विषय वस्तु याद रहती है।

५८७. स्वाध्याय मात्र से कर्म निर्जरा नहीं होती है। इसका फल तो वो है कि कर्मास्रव रुके, तब ही कर्म निर्जरा होती है।

५८८. पढ़ना ही स्वाध्याय है, यह बात ठीक नहीं होती है। तत्त्व चिन्तन आदि करना भी स्वाध्याय है।

५८९. आर्त-रौद्र ध्यान नहीं कर रहा है और शांति से बैठा है, तो यह भी सबसे बड़ा स्वाध्याय है।

५९०. स्वाध्याय तो करो लेकिन कौन करा रहा है ये भी देखो।

५९१. स्वाध्याय तो कर रहा है, लेकिन आवश्यकों का पालन नहीं कर रहा है, तो वह सही स्वाध्याय नहीं कर रहा है।

५९२. आवश्यकों का पालन करना तो स्वाध्याय का फल है।

५९३. दिन भर यदि अपनी प्रशंसा करता है तो प्रतिक्रमण के माध्यम से अपनी निंदा भी अच्छे ढंग से कर लेना चाहिए। प्रतिक्रमण में स्वाध्याय कूट-कूट कर भरा हुआ है।

५९४. मैं पापी हूँ, मायावी हूँ इसकी तो माला भी फेर लेना चाहिए। इस प्रकार हमारे द्वारा सोचा जाये तो आँखों से आँसू आ जायें पश्चाताप होना चाहिए।

५९५. अर्थ को समझते हुए प्रतिक्रमण करना ये सबसे बड़ा स्वाध्याय है।

५९६. एक आचार्य प्रणीत ग्रंथ का स्वाध्याय हमेशा चलना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के ग्रन्थों से वैराग्य, संवेग बना रहता है।

५९७. जो वैराग्यशील होते हैं उनको अच्छे अध्यात्म ग्रन्थों का अध्ययन करा देना चाहिए या कर लेना चाहिए। प्रारम्भ में यदि न्याय ग्रंथ लगा देते हैं तो उसकी तर्कणा बढ़ जाती है। उसकी भाषा समिति भी बिगड़ जाती है।

५९८. स्वाध्याय का फल कर्मों की निर्जरा करना और अशुभ कर्मों से अपने को सदा बचाये रखना है नहीं तो स्वाध्याय निरर्थक है।

जिनवाणी

५९९. जिनकी आजीविका का साधन जिनवाणी है, वे कभी सत्य नहीं बोल सकते हैं।

६००. जरा विचार करो जिनवाणी से चेतन या वेतन, स्वाध्याय या व्यवसाय किसकी बात कर रहे हो?

६०१. जिन ग्रन्थों को पढ़ने से विषय-कषायों का पोषण और आजीविका का साधन हो जाये वह स्वाध्याय नहीं है।

६०२. जिनवाणी को पढ़ने से ज्ञात होता है कि हमारी आत्मा के ऊपर कितनी धूल है उसे कैसे दूर कर सकते हैं।

६०३. जिनेन्द्र भगवान् के वचन अर्थात् जिनवाणी एक प्रकार की औषधि है जो विषय सुखों को विरेचन करने वाली है तथा जन्म-मरण के रोगों को दूर करती है।

६०४. जिस प्रकार मार्ग में चलने वाले के लिए पाथेय (नाश्ता) आवश्यक होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में चलने वाले के लिए पाथेय के रहते हुए मोक्षमार्ग के पथिक की यात्रा निरापद हो जाती है।

६०५. यह जिन-शास्त्र उस मील के पत्थर के समान माने गये है, जो राहगीर को सही-सही गन्तव्य तक भिजवा देते हैं।

६०६. श्रुत के पाठ, जाप, ज्ञान और ध्यान में काफी अन्तर है। जैसे 'णमो अरिहंताणं' आदि पद का लय के साथ उच्चारण करना पाठ कहलाता है। अरिहंतादि पंच परमेष्ठियों का स्मरण करना जाप कहलाता है। अरिहंत आदि परमेष्ठियों का क्या स्वरूप है? ये पद कैसे प्राप्त किये जा

सकते हैं? यह जानना ज्ञान है और चित्त का उन्हीं के साथ एकीभाव हो जाना ध्यान है। यह सब विशेषताएँ हमें शास्त्रों से ही ज्ञात होती है।

६०७. जिसने अनेक शास्त्रों को पढ़कर भी स्व को प्राप्त नहीं किया, उसका शास्त्र अध्ययन से संकल्प शक्तिशाली हो जाता है।

६०८. मात्र जनेऊ पहनने से कोई उच्च नहीं होता किन्तु जिनवाणी की आज्ञा पालन करने वाला रत्नत्रय के द्वारा आत्मा को संस्कारित करके उच्चता को प्राप्त करता है।

६०९. माता-पिता कुछ क्षण के लिए ही काम आते हैं किन्तु पवित्र जिनवाणी माता ये वीतरागी गुरु भव-भव से काम आ रहे हैं।

६१०. सिद्धान्त कभी भी वक्ता के घर का नहीं चलता। जैसे घर की दुकान हो सकती है, लेकिन नाप-तौल घर का नहीं हो सकता।

६११. जिनवाणी की सेवा तो जिनलिंग धारण करके ही करना सर्वोत्तम है।

६१२. आज विश्व में वित्त ज्यादा होने से विद यानि ज्ञान का अवमूल्यन होता चला जा रहा है। उसी कारण से आज जिनवाणी का ज्ञान न होने से जिनाणी के प्रति आदर नहीं है, सत्यकी पहचान नहीं है, पापों से भय नहीं है और सारी दुनिया भर से भय बढ़ता जा रहा है।

६१३. यदि सम्यग्ज्ञान की रक्षा चाहते हो तो उस जिनवाणी माँ की रक्षा करो।

६१४. कर्म सिद्धान्त के ग्रन्थों का सावधानी के साथ अभ्यास कर लेना चाहिए। संक्लेश के साथ नहीं।

६१५. कर्मकाण्ड आदि सैद्धांतिक ग्रन्थों को बड़े उल्लास के साथ पढ़ना चाहिए। श्रद्धान और विशुद्धि के साथ पढ़ना चाहिए।

६१६. जिस समय चिड़चिड़ापन हो, मन अच्छा न हो तो कर्म सिद्धान्त नहीं पढ़ना चाहिए। उस समय भावना परक ग्रन्थ जो हैं उनको पढ़ना चाहिए।

६१७. आगम तो हमारे लिए आंख के समान है जिससे देखकर हम हितकर कार्य में जुट जाते हैं।

६१८. जिनबिम्ब के दर्शन से, जिनवाणी के श्रवण से जब सर्प भी जहर छोड़ सकता है तब इस आत्मा के अन्दर भरे हुए मोह-मिथ्यात्व के जहर को हम कैसे दूर नहीं कर सकते हैं?

६१९. दुर्वचन सुनने का प्रयास करना चाहिए हमारे अंदर यह क्षमता है या नहीं यह देख लेना चाहिए। परीक्षण कर लेना चाहिए और यदि जिनवाणी के ऊपर श्रद्धान है तो यह श्रद्धान भी कर लेना चाहिए कि इसके द्वारा मेरी असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा हुई है और मेरा विकास/उन्नति हुई है।

६२०. यह जिनवाणी नौका के समान है जो इस छोर से उस छोर तक पहुँचाने वाली है।

६२१. ''आत्मानं अधि वर्तते इति अध्यात्म।'' अर्थात् आत्मा के जो निकट रहता है।

जीवन

६२२. हमारे जीवन के उत्थान व पतन का आधार हमारा अच्छा बुरा आचरण है। हम चाहें तो अपने जीवन को उज्ज्वल बना सकते हैं और चाहें तो अपने जीवन को कर्म कालिमा से कलंकित भी कर सकते हैं। दोनों स्थितियाँ हमारे ऊपर निर्भर हैं।

६२३. आप लोग बच्चों का बर्थ डे और माता-पिता का मेरिज डे मनाते हैं। साठ साल तक तो फिर भी ठीक अस्सी साल वाले वृद्ध भी मेरिज डे मना रहे हैं। जबकि जीवन की घड़ी चलो चलो घड़ी सामने खड़ी है यह पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है।

६२४. जन्म उत्सव का मतलब वर्ष वर्धन इसका अर्थ उम्र में एक वर्ष बढ़ गया ऐसा नहीं किन्तु उम्र की हानि में एक वर्ष और बढ़ गया अर्थात् एक वर्ष आयु कम हो गई।

६२५. संसारी प्राणी हमेशा बाह्य वैभव को मूल्य देता है। उसको मूल्यवान समझता है। उसी की प्राप्ति में अपना अमूल्य जीवन व्यतीत करता रहता है। आत्म वैभव की ओर देखने का प्रयास करो।

६२६. उदित होता हुआ सूर्य मोक्षमार्ग का एवं अस्त होता हुआ सूर्य संसार मार्ग का दिग्दर्शक होता है।

६२७. सनसेट अन्धेरे की ओर ले जाता है जबकि सनराइज उजाले की ओर ले जाता है हम अपने जीवन को अन्धेरे की ओर नहीं किन्तु उजाले की ओर ले जाने का प्रयास करें।

६२८. अहिंसा की ओर कदम बढ़ाने में और विषय भोगों से पीठ फेर लेने में ही जीवन की सार्थकता है।

६२९. मानव पर्याय पाने के बाद यदि हम जीवन के निर्वाण की बात नहीं सोच रहे हैं तो कहाँ सोचेंगे सोच विचार बिना यदि कार्य करते हैं तो अफसोस ही प्राप्त होता है।

६३०. सत्य व अचौर्य जीवन के उन्नति की खुराक है।

६३१. सबसे महान् कलाकार वह है जो जीवन को ही कला का विषय बनाकर जीवन के सभी क्षणों को आनंदमय बना सके।

६३२. अपना जीवन ऐसा हो कि सबको मधुरता दे स्वयं भी मधुर हो। स्व पर को माधुर्यमय कर दो।

६३३. जीवन में मधुरता लाने के लिए क्षार का उचित अनुपात रखना चाहिए आटे में नमक के बराबर।

६३४. खारा जीवन खीरमय नहीं हो सकता किन्तु खारे की एक डली खीर में मधुरता घोल देती है। यही अनुपात तो धर्म है।

६३५. क्षारयुक्त जीवन को उचित अनुपात से मधुर बना देना ही धर्म है।

६३६. भविष्य की उज्ज्वलता के लिए दूरदर्शन की नहीं, दूर दृष्टि की आवश्यकता है।

६३७. मनुष्य जीवन की सफलता इसी में है कि हमें पापों से बचकर पुण्य कार्य करना हैं।

६३८. जहाँ मायादेवी की अधिकता होगी वहाँ शांतिदेवी ठहर नहीं सकती। जीवन में शांति पाने के लिए मायादेवी और शांतिदेवी का धर्म के काँटे पर संतुलन बनाना अनिवार्य है।

६३९. समय को सर्वाधिक मूल्यवान मानते हैं किन्तु मानव जीवन काल का मूल्य नहीं कर रहे।

६४०. मानव जीवन पाकर भी आत्मतत्त्व से अपरिचित है क्योंकि अन्य का स्वामी बनने की लालसा है।

६४१. जीवन में दूरदर्शन से सम्बन्ध है किन्तु दूरदृष्टि से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है।

६४२. जल्दी जल्दी प्रगति करने वाला व्यक्ति सो नहीं सकता। आँधी तूफान में भी वह जागृत रहता है। और जो जागृत रहता है वह दूर की किरणों के माध्यम से भी अपने जीवन को सुंदर बना सकता है।

६४३. प्रगतिशील और सफल जीवन जीने के लिए हमें धैर्यवान साहसी और संतुलित होना चाहिए।

६४४. पथ में आने वाली कठिनाइयों को स्वाभाविक ही समझना चाहिए और अपने विवेक एवं स्वभाव को इसके लिए प्रशिक्षित करना चाहिए कि गुत्थियों को कैसे सुलझाया जाता है और अवरोधों को कैसे हराया जाता है।

६४५. जीवन में ऊँचे नीचे वातावरण घटनाक्रम एवं अनुकूल प्रतिकूल वातावरण में भी अपनी दूरदर्शिता को स्थिर बनाए रखना चाहिए।

६४६. बचपन, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था आती है चली जाती है, किन्तु बुढ़ापा यदि आता है तो चला नहीं जाता, साथ ले जाता है। बुढ़ापा यात्रा पूर्ण करा देता है।

६४७. जब तक शरीर स्वस्थ है इन्द्रियाँ सशक्त हैं मन प्रबुद्ध है तथा बुद्धि काम देती है तभी तक तुम इन्हें अपने लक्ष्य की ओर लगाकर जीवन को सफल करने का प्रयास कर सकते हो। इन सबके असमर्थ होने पर कुछ भी नहीं कर सकोगे। फिर क्यों देर कर रहे हो?

६४८. देखो जीवन क्षणभंगुर है अभी है क्षणभर बाद रहे या नहीं, इसका पता नहीं। यहाँ की सभी चीजें ऐसी ही है फिर किस मोह में पड़कर इस छोटे से जीवन के लिए इतनी गहरी नींव खोद रहे हो?

६४९. मरण करके मनुष्य आयु में उत्पन्न होना फिर से यह अनिवार्य नहीं है।

६५०. यदि आपकी यात्रा दो हजार सागर में त्रस पर्याय का काल पंचमगति की ओर नहीं होती है तो हमें इस बात की चिंता होती है कि देखो कितना प्रयास करें निगोद की यात्रा को छोड़कर इस ओर आया है लेकिन वह कौन सा दुर्भाग्य होगा कि मनुष्य योनि को प्राप्त कर पुनः निगोद की ओर जाना हो गया। सोचिये विचार कीजिये।

६५१. यह स्वर्ण जैसा अवसर है यह जीवन बार-बार मिलता नहीं इसकी सुरक्षा इसका विकास इसकी उन्नति को ध्यान में रखकर इसका मूल्यांकन करना चाहिए जो व्यक्ति इसको मूल्यवान समझता है वह साधना पथ पर कितने उपसर्ग और परीषहों को सहर्ष अपनाता है।

६५२. इन उपसर्गों और परीषहों को सहर्ष अपनाने वाले जो कोई भी हैं वे मुनि हैं। प्रतिकार करने वाले तो मिलेंगे पर हमें तो उसी रास्ते से गुजरना है।

६५३. महावीर भगवान् जिस रास्ते से गये वह उपसर्ग और परीषहों से होकर गुजरता है। वह रास्ता एयर कंडीसण्ड हो, सारी की सारी फेसेलिटिज हो, ऐसा कोई रास्ता नहीं है भैया हाँ ऐसा कोई काल्पनिक रास्ता हो सकता है।

६५४. मोक्षमार्ग तो वही है जो परीषहजय और उपसर्गों से प्राप्त होता है और जो उसे धारण करने के लिए तैयार है उन्हें वह अवश्य मिलता है।

६५५. उत्साह के साथ खुशी के साथ तन, मन, धन सब कुछ लगाकर वह मुक्ति का मार्ग अपनाना चाहिए।

६५६. एक बार भी उस रास्ते पर चलना प्रारम्भ कर लें तो पुनः लौटने की आवश्यकता नहीं होगी। अनंतकाल तक वहाँ आपको विराम मिलेगा कोई दिक्कत नहीं है वहाँ।

६५७. मनुष्य जीवन आवश्यक कार्य करने के लिए मिला है अनावश्यक कार्यों में खोने के लिए नहीं।

६५८. परमात्मा की पहचान के साथ सच्ची जिन्दगी की शुरूआत होती है।

६५९. जिस प्रकार आकाश में ध्वनि विलीन हो जाती है वैसे ही इस धरती से सबके नाम चरणचिह्न और पर्यायें विलीन हो गयीं।

६६०. भोगों में रस नहीं आता किन्तु भोग भोगने से जीवन का रस यानि जीवन की शक्ति निकल जाती है।

६६१. जो व्यक्ति शरीर के प्रति या इस जीवन के प्रति ज्यादा मुग्ध/ मोहित रहता है उसके लिए वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम जो मिला है वह सब समाप्त होने लग जाता है।

६६२. ऐश आराम की जिन्दगी विकास के लिए कारण नहीं बल्कि विनाश के लिए कारण है या यूँ कहो ज्ञान का विकास रोकने में कारण है।

६६३. जिसका शरीर सर्दी में कंप जाता है किन्तु प्राणियों के कष्टों को देख करके नहीं कांपता तो उसे लौकिक दृष्टि से भले ही ज्ञानी कहो किन्तु परमार्थरूप से वह सच्चा ज्ञानी नहीं है इस जीवन में।

६६४. वे आँखें भी हमारे लिए बहुत प्रिय मानी जायेंगी जिसमें करुणा, दया, अनुकंपा के दर्शन पाये जाते हैं, यदि यह नहीं है तो यह मानव जीवन बिल्कुल नीरस प्रतीत होगा।

६६५. यदि हम लोग प्रयोजनभूत तत्त्व को देख लें तो बहुत बड़े बड़े लाभ कर सकते हैं और हम उस प्रयोजन को गौण कर लें तो बहुत बड़े बड़े अनर्थ भी हो सकते हैं। यह मौलिक जीवन भी धूल में मिल सकता है।
६६६. जहाँ पर जीवन का सवाल है, वहाँ पर जड़ वस्तुओं का महत्त्व नहीं होता।
६६७. सात्विक जीवन जीने वालों को दु:ख और आकुलता नहीं होती।
६६८. रत्नत्रय हमारी सहज शोभा है और क्षमादि धर्म हमारे अलंकार हैं, इसी के माध्यम से हमारा जीवत्व निखरेगा।
६६९. अनंतकाल से जो जीवन संसार में बिखरा पड़ा है उस बिखराव के साथ जीना वास्तविक जीना नहीं है।
६७०. अपने भावों की सम्भाल करते हुए जीना ही जीवन की सार्थकता है।
६७१. जिस प्रकार खाया हुआ अन्न देह में रग रग में मिलकर रुधिर बन जाता है उसी प्रकार हमारे जीवन में सरलता या सुलझापन हमारा अभिन्न अंग बन जाये तो जीवन धन्य एवं सार्थक हो जावेगा।
६७२. जीवन को यात्रा नहीं मानते हो। जहाँ जाओ वहीं यात्रा चल रही है।
६७३. आप लोग पैसे खर्च करने में ही यात्रा मानते हो कहीं जेब कट गई तो यात्रा कैसे होगी?
६७४. ऐसी यात्रा करो जो कभी रुके भी नहीं और लुटे भी नहीं रुकना आत्मा का स्वभाव नहीं ऊर्ध्वगमन स्वभाव है।
६७५. नश्वर जीवन है योगदान के लिए समय निकालें।
६७६. जो व्यक्ति प्रयोजन के प्रति आलस्य रखता है वह विकसित नहीं है।
६७७. चाहे समय चढ़ाई का हो या फिर सुखद उतार का हमें अपने जीवन का काल चक्र स्वयं तैयार करना है। ऐसी जीवनरूपी घड़ी बाजार में नहीं मिलती जो सदैव चलती रहे।
६७८. हमारे जीवन में दो काल होते हैं। संभलाना और संभलना यानी बचपन में हमें संभाला जाता है युवा अवस्था में हम उन्हें संभालते हैं, जिन्होंने हमें संभाला था।
६७९. जीव के उतार चढ़ाव में बुद्धि और विवेक चालक के समान होते हैं इसका सही उपयोग करने से जीवन सफल होता है और न सिर्फ अपने लिए बल्कि इससे दूसरे भी लाभान्वित होते हैं।
६८०. मनुष्य जीवन मुफ्त के लिए नहीं पुरुषार्थ और परोपकार के लिए बना है। हर क्षण का उपयोग राष्ट्र हित के लिए करें।
६८१. आप अपने जीवन में ऐसे फलदार वृक्ष बनो, जिसमें गुणवान्, बुद्धिमान्, संस्कार, प्रतिभा, परोपकार, जीव दया, करुणा जैसे फल लगें। काम, क्रोध, मद, मोह, माया और लोभ जैसे फल न लगें।

६८२. फलदार, छायादार पेड़ की तरह आप समाज और परिवार का पोषण करें और पथिक को छाया भी दें।

६८३. सैकड़ों पक्षी आश्रय पायें और जीवन पूरा होने के बाद भी लकड़ी के रूप में वर्षों समाज के काम और नाम आओ।

६८४. अपनी इस पर्याय का उपयोग करना चाहिए। समय का सदुपयोग करना चाहिए। अपने जीवन को अध्यात्ममय बनाना चाहिए समय यदि मिला है तो ये ही करना चाहिए।

तप

६८५. जब घी जलता है तो उसकी दुर्गंध आती है और जब घी बनता है तो सुगंध आती है इसलिए तप को जलाओ नहीं।

६८६. सुतप खुशबू फैलाता है और कुतप बदबू फैलाता है।

६८७. जैसे किसान बीज की सुरक्षा करता है वैसे ही हमें तप की सुरक्षा करनी चाहिए। वरना बोने के काम नहीं आयेगा, अगले जीवन में क्या फसल मिलेगी? अगला जीवन इसी पर निर्भर करता है। जैसे द्वीपायन मुनि का तप सुरक्षित नहीं रहा और विष्णु कुमार मुनि का तप उचित समय पर प्रयोग में आ गया।

६८८. चित्त को वश में रखना ही तप है।

६८९. तप की परीक्षा उपसर्ग में होती है।

६९०. मनुष्य जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है जीवन को तपमय ढालना।

६९१. विशुद्धि के साथ किया गया तप ही कार्यकारी होता है।

६९२. जैसे दुकान पर तुरन्त लाभ पाने के लिए आप कड़ी मेहनत करते हो, ऐसे ही मोक्षमार्ग में तुरन्त मुक्ति पाने के लिए आचार्यों ने तप को रखा है।

६९३. तप एक निधि है, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को अंगीकार करने के उपरांत प्राप्त करना अनिवार्य है।

६९४. बिना तप का अनुष्ठान किये मुक्ति का साक्षात्कार संभव नहीं है।

६९५. आज तो मात्र खाओ, पिओ और मौज करो वाली बात हो रही है। इसके बीच भी यदि कोई विषय-कषाय से विरक्त तप की ओर अग्रसर होता है जो यह उसका सौभाग्य है। इतना ही नहीं उसका सान्निध्य भी जिसे मिलता है वह भी सौभाग्यशाली है।

६९६. तप का सागर पार कर मोक्ष का वरण किया जाता है।

६९७. इस पार हम है उस पार वह लक्ष्य, मध्य में तप का सागर। विश्वास और आस्था की नाव पर सवार होकर प्रयोग की पतवार से हम उस पार हो सकते हैं। पूर्वजों ने उसे पार किया है।

६९८. ताप के माध्यम से संताप का सागर छूट जाता है।

६९९. सम्यक् तप करने से पुरुष बंधु की तरह लोगों को प्रिय होता है।
७००. संसार की वेदना को मिटाने के लिए तप रूपी बाम का उपयोग करना होगा।
७०१. कार्य सिद्धि के लिए तप अपनाना ही होगा।
७०२. तप से व्यक्ति सर्व जगत का विश्वास पात्र होता है।
७०३. तप मनुष्य के लिए कामधेनु और चिन्तामणि रत्न के समान है।
७०४. तप का वास्तविक उद्देश्य वीतरागता का पोषण संवर्धन है। वीतरागता ही वह परम रसायन है जिसके द्वारा कार्मिक वर्गणायें आत्मा से टूटकर गिर पाती है।
७०५. आप लोग धूप खेकर सुगंधी बिखेरते हैं, लेकिन उत्तम तप धर्म को स्वीकार करने वाले महामुनि प्रतिदिन तपाग्नि में कर्म रूपी धूप को जलाते हैं और अपनी आत्मा को सुगंधित करते जाते हैं।
७०६. तप वह साधना-पथ है जिसके माध्यम से जीव अपने लक्ष्य की मंजिल तक पहुँच सकता है।
७०७. तप वह रसायन है जिसके द्वारा मन का पूर्णरूपेण संशोधन हो सकता है।
७०८. आनन्द की चरम सीमा तक पहुँचने का एक अनन्य साधन तप है।
७०९. निर्दोषिता की ओर बढ़ने के लिए यह तप अग्नि की तरह है।
७१०. सम्पूर्ण दोषों को जलाने में तप ही प्रबलतम साधन है।
७११. तप वह है जिससे कार्माण शरीर को धक्का लगे। तप द्वारा इच्छाओं को धक्का लगे तो वह तप है तप से तो संसार का विच्छेद होता है।
७१२. बाह्य तप वह तप है जिससे आभ्यन्तर तप को बल मिले।
७१३. जोर मत देना बाहरी तप पर, जोर दो अभ्यन्तर तप पर। इच्छा पर आघात करो।
७१४. जैसे बड़ा बनाने के लिए बड़े को अग्नि परीक्षा देनी होगी। बिना अग्नि में तपे बड़ा नहीं बन सकता। इस प्रकार केवलज्ञान की प्राप्ति रत्नत्रय के साथ एक अंतर्मुहूर्त तक ध्यानाग्नि में तपे बिना सम्भव नहीं होती।
७१५. ध्यान की अग्नि में तपकर ही परम पद का स्वाद पाया जा सकता है।
७१६. बाहरी तप के बिना भीतरी तप का उद्‌भव संभव नहीं है।
७१७. बाहरी तप के माध्यम से शरीररूपी बर्तन तपता है और बाहर से तपे बिना भीतरी तप नहीं आ सकता। जैसे दूध को तपाना हो तो सीधे अग्नि पर तपाया नहीं जा सकता है। बर्तन में ही तपाना होगा।
७१८. जो निकट भव्य-जीव होते हैं वे नियम से तप का अवसर मिलते ही पूरा का पूरा लाभ लेकर अपना कल्याण कर लेते हैं।

७१९. हमें तप को साथी बनाना होगा, तभी सुख की प्राप्ति होगी, तभी मोक्ष मार्ग मिलेगा।
७२०. दशलक्षण धर्म में तप एक प्रौढ़ धर्म है। इस तप के द्वारा अन्य धर्म में भी पास हो जाते हैं।
७२१. कुतप के द्वारा तो संसार के अनेक पदार्थ प्राप्त कर लिए पर मुक्ति नहीं। सम्यग्दर्शन युक्त तप ही समीचीन तप है।
७२२. शरीर की सुरक्षा मात्र हलवा खाने से ही नहीं बल्कि समीचीन आहार से होती है। समीचीन आहार वह जो तप के लिए कारण हो।
७२३. तप के बाद शांति नहीं हो तो तप की कोई आवश्यक्ता नहीं। ऐसे ही तपा के माध्यम से बादलों में पानी जाता है और फिर शांतिधारा के रूप में बरसता है।
७२४. शरीर के द्वारा हम तपस्या तो करें लेकिन मन में यह भावना नहीं करना चाहिए कि कोई हमें तपस्वी कहे।
७२५. शारीरिक सुख के बारे में कभी भी सोचना नहीं चाहिए। जैसे विष मिला अन्न जल्दी छोड़ देते हैं वैसे ही शारीरिक सुख भी विषान्न के समान समझकर छोड़ देना चाहिए।
७२६. पाँच इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना भी तप है। जो बहुत घोर तप करता है लेकिन वो इंद्रिय विजय नहीं करता है तो फिर वह तप किसी काम का नहीं है।
७२७. जिन्होंने इंद्रिय रूपी शत्रु को वश में कर लिया है, उनको ऋद्धि-सिद्ध तपश्चरण से स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।
७२८. आज आप लोग वस्तुतः दोनों तरफ कमजोर हैं। न तो अच्छे से खाते हो इसलिए न अच्छी तरह से तप साधना या कठोर तप कर पाते हो। बच्चों की तरह थोड़ा-थोड़ा खाते हो इसलिए बच्चों की तरह साधना करते हो। आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो ४०-५० रोटियाँ-पुड़ियाँ खा लेते हैं।
७२९. हम परीषह विजय करते हैं तो यह भी एक तप है लेकिन हम परीषह विजय भी नहीं करते हैं, उसके भाव भी नहीं करते हैं। यदि विजय नहीं कर पाते हैं तो कम से कम भाव तो कर लेना चाहिए और अभ्यास बनाये रखना चाहिए।
७३०. कर्मों को यदि गौण करके निमित्त को ही बलवान करोगे तो आपकी सारी की सारी की तपस्या जल जायेगी। चाहे गुरु हो या चेला हो, कोई भी हो, इसमें कोई भी मेहरबानी करने वाला नहीं।

७३१. जिसके पास तप गुण है लेकिन विषयों से विरक्त नहीं है तीन काल में वह चतुर्गति का भ्रमण छूटा नहीं सकता।

तप त्याग

७३२. गर्भ और जन्म कल्याणक में देवों के द्वारा होने वाली रत्नों की वर्षा से आपके घर की दरिद्रता

भले ही मिट जाती है लेकिन मोक्षमार्ग में दरिद्रता तभी मिटेगी जब हम त्याग और तप की ओर बढ़ेंगे, वीतराग होंगे।

७३३. त्याग के पहले जागृति पर अपेक्षणीय है, निजी संपत्ति की पहचान जब हो जाती है तब विषय सामग्री निरर्थक लगती है और इसका त्याग सहज सरलता से हो जाता है।

७३४. तप दोषों की निवृत्ति के लिए परम रसायन है। मिट्टी भी तप कर ही पूज्य बनती है, अग्नि की तपन को पास करके ही वह पात्र के रूप में उपयोगी बन जाती है।

७३५. सामान्य रूप से त्याग की आवश्यक्ता हर क्षेत्र में है। रोग की निवृत्ति के लिए, स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए, जीवन जीने के लिए और इतना ही नहीं मरण के लिए भी त्याग की आवश्यक्ता है।

७३६. त्याग तपस्या के बिना ना तो आज तक समाज का उद्धार हुआ है, न आगे होगा।

७३७. तप उसी का होता है जिसने व्रत ले रखे हैं, जो अव्रती है आचार संहिता का पालन नहीं करता, उसका स्वाध्याय, स्वाध्याय नहीं है और निर्जरा का कारण भी नहीं है।

७३८. मुझे आप लोगों के निर्वाह के बारे में चिंता नहीं, निर्माण के बारे में चिंता है। आपका निर्माण धन के द्वारा नहीं होने वाला है, धन के त्याग में ही आपका निर्माण होने वाला है और आप मानते हैं कि हमारे जीवन का उद्धार धन के राग से होगा। ये गलत धारणा है।

७३९. किसी भी आम के पेड़ ने स्वयं आज तक आम नहीं खाये। यदि कोई व्यक्ति उसके सारे आम तोड़ लेता है तो भी ठीक, क्योंकि उसने त्याग करना ही अपना धर्म बना लिया है। इन पेड़ पौधों से तुम त्याग करना सीखो।

७४०. त्याग के बिना तपस्या का कोई मार्ग नहीं माना जाता और त्याग के बिना तपस्या नहीं की जाती है, तो मार्ग अधूरा रहता है।

७४१. जो लोभ कर्म हमारे आत्म प्रदेशों पर मजबूती से चिपक गया है, जिससे हमारी स्वर्ग और मोक्ष की गति रुक गयी है, उस लोभ-कर्म को तोड़ने का काम यही त्याग धर्म करता है।

त्याग

७४२. त्याग जीवन का अलंकार है, क्योंकि गृहस्थावस्था में भले ही राग भाव से विभिन्न प्रकार के अलंकार धारण किये जाते हैं लेकिन मुनि आश्रम में त्याग भाव ही अलंकार है।

७४३. त्याग की साक्षात् जीवित मूर्ति के समागम के बिना त्याग के मार्ग में अग्रसर होना सम्भव नहीं है।

७४४. त्याग के द्वारा जो अतिशय पुण्य संचय सम्यग्दृष्टि को होता है, वह पुण्य का संचय मोक्षमार्ग में कभी बाधक नहीं बन सकता है।

७४५. स्वार्थ का त्याग परमार्थ की सिद्धि के लिए सोपान का काम करता है।

७४६. जो उपाधि को मिटाने की चेष्टा करता है, वह समाज में मिलने की चेष्टा करता है।
७४७. अगर त्याग में आकुलता है तो वह त्याग नहीं आग है।
७४८. त्याग एक ऐसा सरोवर है जिसके पास जाने के बाद गर्म लू भी ठण्डी बन जाती है।
७४९. अपने पास आने का नाम ही त्याग है।
७५०. दूसरों को जो अपना हाथ रखा है, उसको छोड़ना ही त्याग है।
७५१. वस्तु का त्याग ही त्याग नहीं है, पर उसके साथ राग का भी त्याग करो।
७५२. अपने आप पर अधिकार करने के लिए त्याग की जरूरत है।
७५३. धन का पालन करने वाला धन्य नहीं हो सकता, लेकिन धन का त्याग करने वाला यदि धन के ढेर पर बैठ जाता है तो भी वह धन्य हो जाता है।
७५४. सहयोग करने वाले का चरित्र सभी के चित्त पर सदा के लिए चिपक जाता है।
७५५. मोह एक प्रकार का घाव है, उसे ठीक करने के लिए त्यागरूपी मलहम पट्टी करते रहने चाहिए एवं जिनसे ये घाव बढ़ता है ऐसे कषाय, राग-द्वेष, परिग्रह आदि भावों से बचना चाहिए।
७५६. जिससे कुलाचार एवं श्रावक धर्म नष्ट होता है, ऐसी वस्तुओं का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।
७५७. जिनका अभक्ष्य का त्याग है, उन्हें भक्ष्य पदार्थों का त्याग करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। अभक्ष्य का त्याग वास्तव में त्याग में नहीं आता, वह तो बालकों का त्याग माना जाता है। बड़ों को तो इससे आगे बढ़ना चाहिए। उनके लिए सही त्याग तो भक्ष्य का त्याग है।

तपस्वी/साधु

७५८. तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्च गोत्र का बंध होता है, साधु बनने योग्य संस्कारित परिवार में उत्पन्न होता है।
७५९. तपस्वियों मुनिराजों की पूजा करने वालों को हर जगह सम्मान प्राप्त होता है।
७६०. तपस्वियों की स्तुति करने से भक्त की कीर्ति स्वर्गों तक पहुँच जाती है। देवता भी उसके गुणगान करते हैं।
७६१. तपस्वियों की दृष्टि में हमेशा आत्मतत्त्व रहता है।
७६२. जिसे यहाँ अर्थात् मुनि अवस्था में बेचैनी हो गई तो हम उन्हें चैन कहीं से लाकर के नहीं दे सकते हैं।
७६३. साधु माने सज्जनता का व्यवहार करने वाला, भलाई करने वाला, साधुवाद का प्रणेता।
७६४. कल्याण मार्ग पर आना, साधुमार्ग पर आना है। जो साधु के चरणों में आ जाता है, उसे कुछ शेष नहीं रह जाता है।
७६५. साधु 'सा' माने छह 'धु' माने धोता। छह कर्मों को धोकर साधना में लगने वाला साधु है।

७६६. साधु-सन्तों से जन-जन का जब तक सम्पर्क नहीं होता, उनके आसपास के मार्ग से जब तक साधुओं का विहार नहीं होता तो जनता को भी संस्कारित होने का अवसर नहीं मिलता।
७६७. श्रमणों के पास आने के लिए श्रम तो करना पड़ता है किन्तु भ्रम दूर हो जाता है।
७६८. गुरुओं से कुछ नहीं मिलता ऐसा नहीं है बल्कि उनसे जो मिलता है वह दुनिया में कहीं नहीं मिलता।
७६९. अपनी इन्द्रियों पर जो लगाम लगाकर ज्ञान, ध्यान और तप में व्यस्त रहता है वह तपस्वी माना जाता है।
७७०. अपने सिर दर्द को गौण कर अन्य की पीड़ा दूर करने वाला त्यागी कहा जाता है।
७७१. वही शिष्य गुरु बनता है जो गुरु की एक-एक बात को जीवन में उतार लेता है। ऐसा ही शिष्य गुरु के गौरव की वस्तु बनता है।
७७२. कैसा भी कर्म का उदय आ जाये अब अनुकूल हो या प्रतिकूल परन्तु विश्वास तो यह है कि अब नियम से कूल किनारा मिलेगा। इसी को कहते हैं श्रामण्य।
७७३. श्रमणता पाने के उपरांत किसी भी प्रकार की कमी अनुभूत नहीं होना चाहिए।
७७४. वैराग्य में कमी आ जाये तो अनित्य भावना का स्मरण कर लीजिए अपने आप ही शांति हो जायेगी।
७७५. गुरु महाराज हमें वह रास्ता दिखाते हैं जो भव-भव में काम आता है।
७७६. वैराग्य जो धारण करता है उसके लिए परिणमन के माध्यम से और द्रव्य की वस्तुस्थिति देखने से भी घबराहट नहीं होती है। ये ही उसका स्वरूप है।
७७७. गर्म जल भी आग को बुझा देता है क्योंकि आग बुझाना उसका गुण धर्म है ऐसे ही संत से किया गया अनुराग भी पाप कर्मों का नाश करता है।
७७८. जैसे आप लोग एयरकंडीशन में से बाहर नहीं आना चाहते वैसे ही मुनि अपने अभेद रत्नत्रयरूपी एयरकंडीशन से बाहर नहीं आना चाहते।
७७९. आप लोग कहते हो साधुओं की चर्या कितनी कठिन है और हम सोचते हैं कि आप लोग कैसे कठिन पेपर को हल करते होंगे।
७८०. हमारे पास २२ परीषह हैं। तो आप लोगों के पास २२०० से भी अधिक परीषह हैं। आप लोगों से हम प्रशिक्षण लेना चाहते हैं।
७८१. गुरु और प्रभु के सामने माँग नहीं होती बिना माँगे ही सब कुछ मिलता है।
७८२. गुरु कृपा से बाँस में से भी श्वाँस निकलती है तो सुरीली बाँसुरी बनती है।
७८३. गुरु वचन पालन करने के लिए हैं। सुनने के लिए मात्र नहीं हैं। संकेत की ओर जाना चाहिए यही गुरुओं के वचनों की सार्थकता है।

७८४. गुरु की कुशलता इतनी है कि शब्द के अर्थ की ओर दृष्टि चली जाये तो वह हमेशा-हमेशा के लिए छप जायेगा।

७८५. गुरु कभी भी डाँटे तो बुरा नहीं मानना, क्योंकि अपने को ही डाँटा जाता है, पराये को नहीं।

७८६. सब लोगों के सामने एक को इसलिए डाँटा जाता है ताकि आगे सभी अपनी गलतियों को सुधार लें।

७८७. शिष्य और शीशी को डाँट अवश्य लगाओ। उपयोग करो, अच्छी तरह और साधन को सुरक्षित रखो, ताकि जीवनपर्यंत के बाद भी वह काम करता रहे।

७८८. मोक्षमार्ग सम्बन्धी डाँट मुक्ति जब तक नहीं मिलेगी तब तक काम करती रहेगी।

७८९. हम आलस्य करते हैं तो गुरु कान पकड़ कर प्रेरित करते हैं। गुरु से ही प्रेरणारूप निमित्त कारण उत्पन्न होता है बाकी सब उदासीन आश्रम में रहते हैं।

दया धर्म

७९०. संसारी प्राणी अकेला जीना चाहता है, सभी को जीने दो यह जैनदर्शन का नारा है।

७९१. हमारा जीवन दूसरों को बाधक न हो, दूसरों को जीने देना उसे जीने में सहायक होना यह जैनदर्शन है।

७९२. पेट भरना तो धर्म है, पर पेटी भरना अधर्म है। तिर्यंच पर्याय में पेटी कहाँ मिलेगी, दुनिया के अनर्थ पेटी के लिए होते है, पेट के लिए नहीं।

७९३. रोते हुए व्यक्ति को देखने पर आपकी आँख में पानी आ जावे वही धर्मात्मा है।

७९४. यह जैनधर्म की विशालता है कि वो प्रेम वात्सल्य, विनय, संतोष, उपकार की शिक्षा देता है।

७९५. सबसे बड़ा धर्म तो अपरिग्रह ही है।

७९६. यदि संसार में कुछ सार है तो मात्र दया धर्म सारभूत है।

७९७. मूल के अभाव में जिस तरह वृक्ष नहीं, फल नहीं, फूल नहीं, पत्ते नहीं, छाया नहीं, उसी प्रकार दया धर्म के अभाव में कोई धर्म नहीं।

७९८. यदि कोई धर्मात्मा किसी कारणवशात् धर्म से विमुख हो रहा हो तो उसकी समस्या हल कर फिर से धर्म में लगा देना सबसे बड़ा काम है।

७९९. जिसमें दया को स्थान नहीं वह धर्म नहीं।

८००. धर्म कर्तव्यपरक है कर्तापरक नहीं दया धर्म के पालन से ही उस दयावान् की पूजा होती है दयामय धर्म जब जीवन में उतर जाता है तो हम तर जाते हैं और दुनिया को प्रकाश मिल जाता है।

८०१. धर्मात्मा के पास बैठने से अथवा धर्म की बात सुनने मात्र से धर्मात्मा नहीं होते किन्तु जीवन में दयामय धर्म उतारने से धर्मात्मा होते हैं।

८०२. दया धर्म के प्रति जो समर्पित हो जाता है वह धर्मात्मा कहलाता है।

८०३. सज्जन व्यक्ति के पास गाय रुखा-सूखा खाकर रहना चाहती है लेकिन दुर्जन के पास हरा-भरा खाना पसंद नहीं करती।

८०४. मनुष्यों का पालन पशुओं के निमित्त से हुआ करता है।

८०५. पशुओं के पालन से मानव की आजीविका निर्मित होती है।

८०६. धर्म को सामने रखकर चलो पीछे रखकर नहीं यह रूढ़िवाद का समर्थन नहीं है।

८०७. भेष बदल ले तो कोई बात नहीं, पर विचार नहीं बदलना चाहिए। विचार बदलने पर धर्म का कार्य आगे बढ़ाने में रुकावट आ जाती है।

८०८. महान् आत्माएँ अपने ऊपर आने वाली प्रत्येक विपत्ति को सहर्ष स्वीकार करती हैं और धर्म के मार्ग पर आरूढ़ रहकर दूसरों के लिए धर्म का मार्ग प्रदर्शित करती हैं।

८०९. धर्म की सुरक्षा चाहते हो तो धर्मात्मा बनो। धर्म जड़ नहीं है जिसकी सुरक्षा की जा सके।

८१०. जो व्यक्ति अपने लिए रोता है वह स्वार्थी कहलाता है लेकिन जो दूसरों के लिए रोता है वह धर्मात्मा कहलाता है।

८११. दया का उदय धरती पर होगा तो यहाँ कोई शत्रु आ नहीं सकेगा।

८१२. दया का सात्त्विक भाव का विस्तार करने में बुद्धि लगी रहे।

८१३. धर्म यदि मिल सकता है तो करुणा, मैत्री, प्रमोद भाव के द्वारा ही मिल सकता है।

८१४. दया धर्म का पालन करेंगे तो सरस्वती और लक्ष्मी दोनों को प्राप्त करोगे।

दान, अर्थ (धन)

८१५. चोरी करके दिया गया दान, धर्म नहीं, दान नहीं। नीति न्याय के अनुरूप देना दान है। पुरुषार्थ के माध्यम से कमाकर दान देना ही दान है।

८१६. पुरुषार्थ के माध्यम से जो चीज आती है वह देना दान है। समुद्र में एकत्रित पानी काम में नहीं आता। ऐसे ही संग्रह किया हुआ अनाप-शनाप धन का दान देना धर्म नहीं है।

८१७. घूस लेकर दान देना धर्म नहीं है।

८१८. आत्मा के उज्ज्वल परिणामों से इकट्ठा करके दान देना ही धर्मात्मा का लक्षण है।

८१९. अर्थ का यदि सदुपयोग नहीं किया जाता है तो उसका कोई अर्थ नहीं है। समय रहते अर्थ (धन) का सदुपयोग कर लेना चाहिए।

८२०. त्याग और दान का सही-सही प्रयोजन तो तभी सिद्ध होता है, जब हम जिस चीज का त्याग कर रहे हैं या दान कर रहे हैं उसके प्रति हमारे मन में किसी प्रकार का मोह या मान सम्मान पाने का लोभ न हो।

८२१. बन्धन से मुक्ति की ओर जाने का सरलतम उपाय यदि कोई है तो वह यही त्याग धर्म और

दान है।

८२२. आहार दान की क्रिया श्रद्धामयी श्रावक और अभिमान रहित साधक के मध्य सम्पन्न होती है। यह दाता और पात्र का आदर्श रूप है।

८२३. जैसे वस्त्र की गंदगी साबुन-सोड़े से निकलेगी वैसे ही दान पुण्य के द्वारा अपने अंदर की गंदगी को धो डालें।

८२४. आप अपने धन के बांध में लीकेज न आने दें। धन को दया, करुणा, परमार्थ के कार्य में बहने दें, रोकें नहीं।

८२५. अभिमान के साथ नहीं, दया धर्म के साथ दान देना चाहिए।

८२६. अभिमान के साथ दिया हुआ दान, दान नहीं माना जाता है उसके माध्यम से तो सम्मान का आदान हो रहा है।

८२७. अर्थ को अर्थ ही मानो, परमार्थ नहीं।

८२८. अर्थ के द्वारा गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

८२९. अर्थ का उपार्जन परमार्थ के साधन के लिए है अनर्थ के लिए नहीं।

८३०. अभयदान के विषय में जो सोचता है वह सम्यग्दर्शन के बारे में विभिन्न पहलुओं से अध्ययन कर चुका है, यह ज्ञात होता है, क्योंकि तन, मन, धन और वचन इन सबको वह अपने व दूसरे के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में ही न्यौछावर करना चाहता है।

८३१. दान की महिमा क्या बताऊँ यही एक ऐसा मार्ग है जो गृहस्थ के जीवन को संतुलित किये रहता है तथा सर्वस्व त्यागी तपस्वियों से भी जोड़ देता है।

८३२. त्याग और दान का सही-सही प्रयोजन तो तभी सिद्ध होता है, जब हम जिस चीज का त्याग या दान कर रहे हैं, उसके प्रति हमारे मन में किसी प्रकार का मोह या मान-सम्मान पाने का लोभ न हो।

८३३. बन्धन से मुक्ति की ओर जाने का सरलतम उपाय यदि कोई है तो वह यही त्याग धर्म और दान है।

८३४. पूर्व में, व्यापार करने में चतुर व त्याग करने में चतुर, कोई था तो जैनियों का नाम पहले अता था पर आज हम नाम के पीछे पड़ गये। नाम-निक्षेप के पीछे पड़कर भाव-निक्षेप को हमने नहीं धारा

८३५. भाव-निक्षेप वाला ही कृत-कृत्य कहलाता है। वही सुखी बन जाता है।

८३६. हमें अर्थ को चाहते हुए अनर्थ से बचते हुए अर्थ का त्याग करना है, इसमें घाटा नहीं है, दुःख नहीं है, सुख का यह कारण है।

८३७. धन को गाड़कर रखने की अपेक्षा दान देकर धन को गाढ़ा बनाओ।

८३८. जो त्याग दिया उसको पीछे मुड़कर क्यों देखना यदि देखता है तो उसका यह भाव भी उसी प्रकार चला जायेगा, जिस प्रकार तेली का बैल आंख पर पट्टी बांध देने से वह यह समझता है कि सुबह से शाम तक हम बहुत बड़ी यात्रा करके आ गये। पर वह वहीं का वहीं बंधा रहता है।

८३९. व्रती हो जाने पर अव्रती की ओर नहीं देखना चाहिए।

३४. दर्शन-ज्ञान-चारित्र

८४०. ज्ञान दर्शन का विषय स्व और पर दोनों या षट्द्रव्य बन जाते हैं लेकिन चारित्र का विषय नियम से स्व आत्मा ही है चाहे सराग अवस्था हो या वीतराग अवस्था।

८४१. चारित्र लेने के उपरान्त, दीक्षा के उपरान्त ये मत समझो कि हम दूसरों को उपदेश देने के लिए तैयार हो गए। नहीं बल्कि ये समझो कि चारित्र ले लिया तो आत्मा को ही विषय बनाने का लक्ष्य होना चाहिए।

८४२. पेट का लीवर सम्यग्दर्शन के समान है। वह ठीक है तो पूरी पाचन प्रणाली, स्वास्थ्य ठीक। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन है तो मोक्ष का मार्ग भी ठीक है।

८४३. मद एक बार चिपक बस जाये फिर जीवन पर्यन्त नहीं जाता। अतः ये सम्यग्दर्शन का घातक है।

८४४. पहले चारित्र अंगीकार करो तब बारह भावना, चिंतन, समिति आदि कार्यकारी होगी।

८४५. समय का दुरुपयोग नहीं समय का सदुपयोग, बड़ों के प्रति विनय, सबके प्रति वात्सल्य इससे अपना सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है।

८४६. जिस प्रकार सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का पालन करते हैं उसी प्रकार से सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों का भी सूक्ष्मता के साथ पालन करना चाहिए।

८४७. जो परद्रव्य के साथ कर्तव्य, भोक्तृत्व, स्वामित्व के साथ एक अंश भी सम्बन्ध नहीं रखते है उन्हीं के चरणों में ये क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि का कार्य होता है।

८४८. सम्यग्दर्शन के ये वात्सल्य आदि गुण डिब्बे में रखकर बंद करने योग्य नहीं हैं इन्हें प्रयोग में लाना महत्त्वपूर्ण है। भावों के माध्यम से, इससे आत्म संतुष्टि और बढ़ जाती है।

८४९. ग्लानि देखकर मन की नाक पहले सिकुड़ जाती है फिर शरीर की। ग्लानि जीतना सहज होना चाहिए प्रदर्शन के लिए नहीं।

८५०. सम्यग्दर्शन आज तक किसी को भी गुरु बनाये बिना नहीं हुआ। क्षायिक सम्यग्दर्शन के लिए भी गुरु के पादमूल में जाना होगा। उपदेश से, बिम्ब दर्शन से क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता।

८५१. संज्ञी बने बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता तो संज्ञी बने बिना मद भी नहीं हो सकता। लेकिन

संज्ञीपने को प्राप्त करके आज तक हमने मद ही किया है अब सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रखना है।

८५२. जैसे–जैसे सम्यग्दर्शन आदि के साथ तप में विकास होता चला जाता है, वैसे–वैसे निर्जरा की वृद्धि होती चली जाती है।

८५३. सम्यग्दर्शन के साथ जन्म हो सकता है परन्तु वीतरागता जन्म से नहीं आ सकती। इसलिए जन्म से कोई भगवान् नहीं होता।

८५४. समय रहते हुए हम जाग जायें और ज्ञान का जो सही–सही फल अज्ञान की निवृत्ति, कषायों की हानि, आत्मतत्त्व और रत्नत्रय की प्राप्ति एवं रागद्वेष को कम करके चारित्र को अंगीकार करने रूप है उसे प्राप्त करें। इसी में आपकी भलाई है।

८५५. तिर्यंच सुनता है गुनता है परन्तु बोलता नहीं। इसी कारण तिर्यंच जन्म लेने के कुछ समय बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है।

८५६. मनुष्य सुनता है गुनता है किन्तु बोलता भी है। मनुष्य स्वयं उलझता है और उलझाता है दूसरों को फँसाने के लिए जाल बिछाता है किन्तु तिर्यंच ऐसा नहीं करते इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका मनुष्य से पहले तिर्यंच के बन जाती है।

८५७. सम्यग्दृष्टि अपना सोचता है, पराया नहीं सोचता और न ही सोचना चाहिए।

८५८. वीतराग सम्यग्दृष्टि बनने के लिए, वीतराग सम्यग्दर्शन को जो प्राप्त कर चुके हैं उनकी उपासना करो।

८५९. वीतराग सम्यग्दृष्टि की उपासना करने से सराग सम्यग्दर्शन से वीतराग सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

८६०. परिणामों में, संकल्पों में, भावनाओं में, जाग्रति रखने वाला व्यक्ति ही सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रख सकता है।

८६१. यदि थोड़े समय के लिए अनादि काल का संस्कार उखड़ गया तो गुणस्थान ही चला गय। बाहर भले ही ज्यों का त्यों बना रहता है लेकिन भीतर से खोखला हो जाता है।

८६२. सम्यग्दृष्टि को यह विश्वास हो जाता है कि जितना जोड़ना है वह मुक्ति से सम्बन्ध जोड़ना है और जितना तोड़ना है वह संसार से सम्बन्ध तोड़ना है।

८६३. रागद्वेष को मिटाने का लक्ष्य जब बन जाता है तो चारित्र को लेना अनिवार्य हो जाता है।

८६४. सम्यग्दृष्टि शरीर को गौण करके आत्मा के रत्नत्रय रूप गुणों को मुख्य बनाता है।

८६५. सम्यग्दृष्टि कर्म का फल तो भोगता है, पर कर्म करके फल नहीं भोगता।

दिशा

८६६. यदि दिशा सही नहीं मिले तो दशा कभी सुधर नहीं सकती बल्कि और दुर्दशा होती चली जाती

है।

८६७. जिस प्रकार दिशा सूचक यंत्र सही-सही दिशा का बोध कराता है उसी प्रकार वीतरागी सच्चे गुरु भी सही सही दिशा का बोध कराते हैं।

८६८. दूसरों को चलाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना स्वयं को सही दिशा में चलाना।

८६९. आप कहते तो हैं यह भिन्न है यह भिन्न है लेकिन थोड़ी भी प्रतिकूल दशा आ जाये तो फिर खेद-खिन्न हैं।

८७०. यह पर है, यह पर हैं, फिर भी उसी में तत्पर है यह क्या है?

८७१. धन और सत्ता के मिलने से व्यक्ति पागल हो सकता है और दशा बिगड़ जाती है।

८७२. दशा ठीक करना चाहते हो तो दिशाबोध प्राप्त करो।

८७३. सही दिशा में किया गया प्रयास ही प्रयास है। गलत मार्ग पर चलना आभास मात्र है। आये गये, आये गये भटकन जारी है कोल्हू के बैल की तरह।

८७४. बच्चों को आनंद तभी आता है, जब वे सीधे-सीधे न भागकर टेढ़े-मेढ़े भागते हैं। यही दशा वैभाविक दशा में संसारी प्राणी की है। उसे टेढ़ेपन में ही आनंद आता है, जबकि वह आनंद नहीं है।

८७५. आजकल जो कार्य यंत्र नहीं कर सकता, पहले वही कार्य मनुष्य मंत्र के माध्यम से अपनी शक्ति को एक दिशा में लगाकर कर लेता था।

८७६. साधन वही है जो साध्य को दिशा दे, कारण वही साधकत्तम है, जो कार्य को सम्पन्न करा दे, औषधि वही है, जो रोग की निवृत्ति कर दे, तप वही है, जो नर से नारायण बना दे।

८७७. मनुष्य यदि कर्तव्यनिष्ठ है तो सही दिशा में उठे हुए एक कदम से वह महात्मा बन जाता है आवश्यकता है सही दिशा की।

८७८. दिशा बदलने पर ही दशा बदलेगी। आपको मात्र निर्देशन डायरेक्शन की जरूरत है।

८७९. जब दिशा ही खराब है, तो दशा भी खराब होगी।

८८०. महावीर भगवान की दिशा 'भी' की ओर तथा हमारी दिशा 'ही' की ओर है।

८८१. ६० साल ७० साल के हो जाने पर भी आप यही सोचते हैं कि मैं गद्दी का मालिक बना रहूँ, चाबी बाँधे रहूँ बच्चों को नहीं दूँ, अगर चाबी दे दी तो घर वाले मुझे नहीं पूछेंगे, मैं कहता हूँ कि अगर घर वाले नहीं पूछेंगे तो मैं पूछूँगा।

८८२. भगवान महावीर की पूजा घर में नहीं हुई, बाहर आकर 'ही' हटाकर 'भी' को अपनाने पर हुई।

८८३. मन, वचन, काय बल जो हैं ये लड़ने के लिए नहीं होते, उन बलों के माध्यम से हम स्वयं भी लाभान्वित होते हैं। सही दिशा में काम करें तो औरों को भी बहुत लाभान्वित कर सकते हैं।

८८४. सही दिशा में सही पुरुषार्थ बहुत कम समय लेता है, सही समय पर काम होता है निर्धारित समय से।

८८५. मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन दिशा को बनाए रखो और चलते जाओ। लब्धि स्थान तो नीचे आते हैं लेकिन दिशा नहीं बदलो आगे बढ़ते जाओ।

दूसरे की ओर

८८६. दूसरे के प्रति अटेचमेंट नहीं हो। आउट आफ कोर्स की बात करना ही नहीं क्योंकि उनसे फिर कोर्स पूर्ण नहीं करा पाओगे।

८८७. पहले बच्चे को मिठाई दोगे तो फिर रोटी नहीं खायेगा।

८८८. फोर्स से नहीं कोर्स से होना चाहिए प्रश्नों के उत्तर।

८८९. ज्यादा आकुलता के साथ आप ज्यादा कार्य करना चाहेंगे तो, आनंद जो आना चाहिए, नम्बर जो मिलना चाहिए वो नहीं मिल पाते।

८९०. दूसरों को और किसी विषय में नहीं जीतो, जीतना है तो दिल जीतो।

८९१. जो व्यवस्थित नहीं हो रहा, स्वच्छन्दता से चल रहा है उसे एक बार कह दो, दो बार कह दो, बार-बार नहीं कहो।

८९२. दूसरे को व्यवस्थित मत करो, स्वयं को व्यवस्थित करो, अपने को देखो।

८९३. आज उदारता समाप्त हो गई, नौकरी की ओर जाने से दीनता आ गई, स्वाभिमान चला गया पराश्रित चर्या हो गई।

८९४. अपने जीवन में शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत जिसको विश्वास हो जाता है, कि हम दूसरे के यहाँ नौकरी नहीं करेंगे, हम स्वयं दूसरों को भी काम देंगे और बाहर से भीतर आयेंगे आत्मा की ओर। अंतर्जगत् की यात्रा सही शिक्षा से ही संभव है।

८९५. गलत लाइन पर चलने की अपेक्षा सही रास्ते की ओर मुख करना बहुत अच्छा है।

८९६. नौकर का अर्थ क्या? ''कहे सो कर'' उसी का नाम नौकर है। इसलिए पहले कहा जाता था नौकरी करो लेकिन अच्छे से करो। जैन लोग राजा के आधीन तो हो जाते हैं लेकिन इधर-उधर की नौकरी नहीं करते हैं।

८९७. चर्या के समय दूसरों की ओर मत देखो, यदि देखना है तो गुणों की ओर देखो। हमें गुणों की वृद्धि के लिए दूसरे के गुणों की ओर देखना चाहिए।

८९८. पर की उन्नति में अपनी उन्नति निहित है। पर के निमित्त से हमारा बहुत जल्दी कल्याण हो सकता है। थोड़ी सी पर्याय दृष्टि हटा लो बहुत बड़ा कल्याण मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

देव-गुरु-शास्त्र

८९९. यदि हमारा राग जागृत हो जाये या लोभ जागृत हो जावे उसके कारण हम तत्त्व को इधर-उधर

करने लग जायेंगे, जो हमारे लिए अभिशाप सिद्ध होगा। वह घड़ी वरदान नहीं हो सकती, अभिशाप ही सिद्ध होगी क्योंकि जिनवाणी में परिवर्तन करना महान् दोष का काम है साथ ही महान् मिथ्यात्व का भी बंध होता है।

९००. जैसे छोटे से वट बीज के गर्भ में विशाल वट वृक्ष छिपा होता है, माटी के गर्भ में मंगल कलश छिपा होता है। ठीक वैसे ही हर आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति छिपी होती है।

९०१. प्रत्येक जीव होनहार भगवान् है। कच्चा माल पक्का बन जाने पर मूल्यवान हो जाता है। अतः कच्चे माल को सुरक्षित रखें।

९०२. जैसे कच्चे घड़ा अवा में पकने पर लोगों की प्यास बुझाने में काम आते हैं। वैसे ही यह आत्मा भी तप के द्वारा परमात्मा बनकर धर्मोपदेश देकर धर्म पिपासुओं की प्यास शांत करता है।

९०३. पंच नमस्कार मंत्र की जाप करने से परम स्वाध्याय हो जाता है क्योंकि पंच परमेष्ठी में सातों तत्त्व पाये जाते हैं।

९०४. शास्त्र के द्वारा केवल उसी जीव की आत्मा जागृत हो सकती जो कान से बहरा नहीं है तथा पढ़ लिख सकता है परन्तु अरिहंत की प्रतिमा का दर्शन तो प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्यक्त्व की प्राप्ति में तथा उसकी वृद्धि में सहायक है।

९०५. इस दुनिया में दो बातें श्रेष्ठ हैं–एक गुरु और दूसरे प्रभु।

९०६. गुरु सामने हैं और प्रभु हैं अदृश्य। गुरु हमारे लिए अदृश्य प्रभु तक पहुँचाने के लिए मार्ग दर्शाते हैं।

९०७. आप सम्पदा के पीछे पड़े हैं और अरिहंत भगवान् के पीछे संपदा पड़ी है यही दोनों में अन्तर है।

९०८. यदि राग से तुम ऊपर उठना चाहते हो तो रागी को अपना विषय मत बनाओ, उसका ध्यान मत करो क्योंकि वह रागी जो कुछ कार्य कर रहा है, वही कार्य करने के भाव तुम्हारे भीतर आएंगे इसलिए जो रागातीत हैं पंचपरमेष्ठी उनकी उपासना करो।

९०९. भगवान् नासा पर दृष्टि रखते हैं। और आप आशा पर दृष्टि रखते हैं, बस इतना ही अन्तर है।

९१०. पूजन में भावों की गौणता नहीं करना चाहिए।

९११. मन, वचन, काय को समर्पित करके पूजन करिये हेय बुद्धि से नहीं। पूजन में उपादेय बुद्धि रखो एवं भोजन में हेय बुद्धि रखो।

९१२. कर्मफल के प्रति हेय बुद्धि रखो। निर्जरा के साधन को हेय बुद्धि से नहीं उपादेय बुद्धि से करो। जितनी भक्ति से जितने अधिक समय तक पूजन करो, उतनी अधिक कर्म निर्जरा होती है।

९१३. प्रसन्न वदन, प्रसन्न चित्त होकर भाव विभोर होकर भगवान् की भक्ति करना चाहिए, हेय बुद्धि से नहीं।

९१४. यदि भगवान् के गुणों की गंध आपके पास आ जावे तो पूजा करो, भगवान् कभी नहीं कहते मेरी पूजा करो। अविनश्वर सुख के धनी संसारी से क्या चाहेंगे? बिना अपेक्षा के मृदंग जैसे दिव्यध्वनि के माध्यम से उपदेश देते हैं।

९१५. पंच परमेष्ठी की शरण सभी अपायों (दु:खों) को दूर करने का उपाय है।

९१६. दुनिया में संघर्ष है पर प्रभु के चरणों में हर्ष।

९१७. देव गुरु शास्त्र की उपासना के माध्यम से हमें अपनी श्रमण संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए। उसमें चार चाँद लगाना तो बड़े भाग्यशाली जीवों का ही कार्य है लेकिन जितना मिला है उतना तो सुरक्षित रखने का प्रयास हमें करना ही चाहिए।

९१८. सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति अपने आपको समर्पित करने वाला उनके अनुरूप चलने वाला मुमुक्षु आदर्श बनता है।

९१९. विषय कषाय का चश्मा उतारो तो भगवान जरूर मिलते हैं।

९२०. भगवान् ने केवलज्ञान के द्वारा जाना किन्तु प्ररूपणा जो की, वह नयवाद के माध्यम से द्रव्यश्रुत जो है वही दिव्यध्वनि मानी जाती है। मूल श्रुत वही दिव्यध्वनि है। उसके बाद उसी के माध्यम से श्रुत का उद्‌भव बाद में हुआ है तो मूल श्रुत वह है।

९२१. जब तक इस धरती तल पर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु रहेंगे तब तक ही हमारी भीतरी आँखें खुली रहेगी।

९२२. भीतरी आँखें जितनी पवित्रता के साथ खुलेंगी, उतना ही पवित्र पथ देखने में आयेगा। ज्यों ही इसमें दूषण आने लग जायेंगे तो पथ की पवित्रता भी समाप्त हो जावेगी।

९२३. जब तक उपासक स्वयं उपास्य नहीं बन जाता, जब तक उसे उपास्य की उपासना करना अनिवार्य है।

दोष और गुण

९२४. दोषों के आविष्कार की प्रवृत्ति जब तक रहेगी तब तक वीतराग सम्यग्दर्शन की भूमिका भी नहीं बनती।

९२५. दोष निवारण के चार उपाय–१. पश्चाताप, २. निवेदन, ३. प्रायश्चित और, ४. सामयिक (समता)।

९२६. कभी भी कोई विसंवाद आदि हो जाये, कोई दोष हो जाये तो उनकी शुद्धि करने के लिए एक कोई भी गाथा के अवलम्बन से जाप कर लिया।

९२७. गलती के समय गुरु यदि शिष्य की गलती को नहीं बतायें तो गुणभद्राचार्य ने गुरु को ही अपराधी कह दिया। माँ-पिता जैसे बच्चों को बताते हैं, पालते-पोषते हैं बिल्कुल वैसी ही मुद्रा गुरुदेव की शिष्य को समझाते समय रहती है।

९२८. दोष होने के कारण, प्रमाद से, संगति से, व्रतों के प्रति असावधानी बरतने से।
९२९. दोषों के निराकरण में बुद्धि लगाओ तो अवश्य गुण बढ़ेंगे।
९३०. आपके दोष किसी ने देखे अथवा न देखे तब भी आपको उसे शुद्ध करना है। एक-दूसरे की आलोचना करने की अपेक्षा आत्मा की आलोचना करो।
९३१. दोषों के प्रति पश्चाताप होना चाहिए सिर्फ पाठ से कुछ नहीं होता।
९३२. कमी को निकालने का नाम ही तो मोक्षमार्ग है।
९३३. एक दूसरे की कमी बताने में आत्म आलोचना नहीं होती। अपने-अपने दोषों को सही बताने से सही आलोचना होती है।
९३४. समर्पित होने के बाद दोषों की पुनरावृत्ति नहीं होना चाहिए। एक बार यदि गलती (दोष) होने के उपरान्त पश्चाताप प्रायश्चित हो जाता है तो बाद में पुण्यवर्धन होता चला जाता है। बिना प्रायश्चित के नहीं होता। पाप के प्रक्षालन के लिए ही तो प्रायश्चित होता है।
९३५. असावधानी से बड़े-बड़े अपराध हो जाते हैं और सावधानी से बड़े-बड़े अपराध टल जाते हैं।
९३६. दूसरों के दोष देखने में अंधे, बहरे, गूंगे हो जाना चाहिए, लेकिन हम दूसरों के दोष देखने में सहस्राक्ष हो जाते हैं।
९३७. दोषों को पहचानो ग्रहण मत करो, गुण ग्रहण का भाव रखो। हंस दूध और पानी को अलग-अलग नहीं करता बल्कि दूध को ग्रहण करता है और पानी को छोड़ देता है। उसी प्रकार आप भी दोष और गुण की पहचान रखिये, गुणों को ग्रहण करिये।
९३८. दूसरे के दोष न देखना, न लेना ही अपने में गुण पैदा करना है।
९३९. दोषों के बारे में जो जानकारी नहीं रखता वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।
९४०. तप वह रसायन है जिससे अभ्यंतर दोषों की शुद्धि होती है।
९४१. दूसरे की आलोचना करने की अपेक्षा दूसरे के गुणों की प्रशंसा करो तो आगे जो शेष गुण अपने में नहीं है वे हमें प्राप्त हो जावेंगे।
९४२. जिसकी दृष्टि दोषों की ओर नहीं गईं वह अपने सम्यग्दर्शन को बढ़ाते हैं परन्तु जो दोषों को देखते हैं वह स्वयं गिरते हैं और गिराते हैं।
९४३. जो दूसरों के दोषों को देखता है वह अपना सम्यग्दर्शन लुप्त करता है।
९४४. गुणों की गवेषणा करने वाला चाहिए। यदि आप एक-एक गुण का चयन करते हैं तो हजारों लाखों गुणों का संचय हमारे पास हो जाता है।
९४५. छोटे-छोटे बच्चे रेत के घरौंदे बनाकर अपने पैर को चौखट बना लेते हैं। थोड़ी सी सावधानी के साथ वह पैर को निकालकर एक दरवाजा तो अवश्य बनाते हैं, ऐसे ही एक न एक गुण

तो अवश्य ग्रहण करें।

९४६. आज तक भगवान् हम नहीं बन पाये इसका कारण यही है कि भक्त बनने का एक भी गुण हमने ग्रहण नहीं किया।

९४७. गुणों का ही संसार में मूल्य है। इससे ही कद्र होती है। गुणवान की ही हर जगह मांग होती है।

९४८. यदि हमारे पास से गुण निकल गये तो हम दिवालिया हो जायेंगे।

९४९. हम प्रायः एक-एक गुण को लेकर चलते हैं ये गलत है। गुणों का साम्य हो कोई छोटा बड़ा न हो सभी के गुणों का विकास हो।

९५०. जैसे-धीरे-धीरे एक-एक चीज हैं तो बच्चा अच्छे से खाता है और यदि सारी चीजें एक साथ परोस दी तो वह सोचता है क्या खाऊँ? इसी प्रकार छह आवश्यकों में प्रत्येक के प्रति हमारा उत्साह बना रहे तो आनंद आता है।

९५१. गुण कभी गुणी नहीं होता व्यक्ति गुणी होता है। गुणी को ध्यान में रखो।

९५२. दोष की परिभाषा–गुणों की ओर दृष्टि लाकर स्व दोषों की ओर ध्यान देना है और उन दोषों को हटाना है।

९५३. गल्तियों की अनुभूति के लिए उनकी पहचान भी अनिवार्य है।

ध्यान

९५४. ध्यान के केन्द्र खुल रहे हैं, ध्यान को केन्द्रित नहीं कर रहे हैं। अण्डर ग्राउण्ड में जाकर भी अण्डर में नहीं हैं। ध्यान की बात भीड़ में और ध्यान से बात एकान्त में।

९५५. ज्ञान को ध्यान नहीं कहा किन्तु ज्ञान के विश्राम का नाम ध्यान है, वही कर्म निर्जरा में कारण होता है। ऐसे सूत्रों को बार-बार ध्यान में लाते रहना चाहिए तभी पूर्व के मोह के संस्कार जा पायेंगे अन्यथा सबका मन विचक जाता है। जिसका मन नहीं विचकता वही ध्याता है।

९५६. आसन, समय, दिशा, स्थान इन्हें जो भूलते हैं, वे ध्यानी कहलाते हैं।

९५७. पंचपरमेष्ठी की आराधना से ध्यान, स्वाध्याय व तप भी हो जाता है इसलिए इसका महत्त्व है।

९५८. कल्याण दूसरों के आश्रित नहीं होता। कल्याण करने वालों को कल्याणक हो रहे या नहीं इसका ध्यान नहीं रहता। कल्याण करने वाला तो अपना कल्याण करके चला जाता है।

९५९. तत्त्व चिंतन में नहीं ध्यान में एकाग्रता रहती है।

९६०. पंचेन्द्रिय विषयों की उपेक्षा नहीं हुई तो ध्यान नहीं लग सकता। ध्यान विषयों में ही रहता है।

९६१. पर (दूसरे के) संपर्क रूपी ईंधन से बचो, ध्यान अपने आप लग जायेगा।

९६२. ध्यान का केन्द्र खोलना ठीक नहीं, ध्यान को केन्द्रित करना ठीक है।

९६३. भेदविज्ञान की वेदी पर ही ध्यान की मूर्ति विराजमान होती है।

९६४. पंच परमेष्ठी के ध्यान से विकल्प नहीं होते हैं, किन्तु संसार के सारे विकल्प छूट जाते हैं।
९६५. चारित्र का उपसंहार ध्यान में होता है।
९६६. आप लोगों के द्वारा दिया हुआ आहार प्राण के रूप में परिणत हो जाता है, जो कि ध्यान के लिए पेट्रोल का काम करता है। ध्यान रूपी गाड़ी को आगे बढ़ाता है। साथ ही आप लोगों की कर्म निर्जरा एवं पुण्य कार्य के आस्रव में कारण बनता है।
९६७. ध्यान वही है जिसका उद्देश्य अच्छा है, ध्येय अच्छा है।
९६८. ध्यान लगाना उपचार है। ध्यान लग जाना स्वस्थ्यता का प्रतीक।
९६९. चिंतन का प्रयोग वायुमंडल में प्रवाहित चंदन जैसा होना चाहिए। मुझे भी लाभ मिले, अन्य भी लाभान्वित हो सकें।
९७०. चिंतन की सुगंध का विशाल कोष हमारे अंदर विद्यमान है, केवल प्रयोग में लाना है।
९७१. चिंतन की सुगंध से संसार का संघर्ष समाप्त हो सकता है।
९७२. परोपकारी लोग अपने द्रव्य से स्वयं के लाभ के साथ पर लाभ का भी चिंतन करते हैं।
९७३. बारह भावना को चिंतन करने से निश्चित रूप से भव्य को सिद्धि का लाभ होगा। आनंद का लाभ होगा।
९७४. वस्तु तत्त्व के चिंतन से जो बल मिलता है वह अति साहस से भी नहीं मिलता।
९७५. जिसके ध्यान करने से पाँच प्रकार के संसार का परिभ्रमण नाश को प्राप्त होता है ऐसे आत्मतत्त्व का ध्यान आदर के साथ करो।
९७६. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र और ध्यानादि के द्वारा मोहनीय कर्म को छोड़ो।
९७७. मन को रोकने का नाम ध्यान है।
९७८. चिंतन का नाम ध्यान है ही नहीं, क्योंकि चिंतन मन के द्वारा होता है।
९७९. मन में ऐसी भावना करना कि सब जीव सुख का अनुभव करें यह भी ध्यान हुआ। करोड़ों जाप का उतना फल नहीं, जितना इसका है।
९८०. सब जीवों का कल्याण हो ऐसा ध्यान करने से अपने आप ही स्वार्थ मिट जाते हैं, ध्यान में एक काम बहुत अच्छा हो जाता है कि स्वार्थ समाप्त हो जाता है।
९८१. जीवों का ध्यान करो। जड़ का ध्यान छोड़ दो। जीव का ध्यान करते हैं तो भगवान् दिखते हैं और अगर नहीं भी दिखते सब जगह लेकिन होने योग्य भगवान् तो जहाँ जाओ वहाँ पर आपको मिलेंगे।
९८२. पाप की ओर दृष्टि नहीं ले जाना ही ध्यान है।
९८३. ध्यान करो तो कोई बात नहीं लेकिन दुर्ध्यान से बचो।
९८४. जो हिंसादि पाँच पाप नहीं छोड़ सकता उसके आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं छूटेगा।

९८५. शवासन नहीं लगाओ शिवासन लगाओ। अच्छे से बैठकर ध्यान करो।

धर्म

९८६. जैसे कोई व्यक्ति धागे को गले में नहीं लटकाता किन्तु फूलों की माला के साथ वह धागा भी गले में शोभा पाता है, इसी प्रकार यदि धर्म साथ है तो शरीर भी शोभा पाता है। धर्म के अभाव में जीवन शोभा नहीं पाता।

९८७. परमार्थ के क्षेत्र में कान खुले रखना चाहिए लेकिन विषय भोग के क्षेत्र में तो कान बहरे ही होना चाहिए।

९८८. परमार्थ के क्षेत्र में आँखें खुली रहनी चाहिए और विषय-वासना के क्षेत्र में अन्धा होकर रहना चाहिए।

९८९. परमार्थ के क्षेत्र में कर्मों पर विजय पाने के लिए बाहुओं में शक्ति और प्रताप होना चाहिए लेकिन दूसरे के ऊपर प्रहार करने के लिए बलहीन होना चाहिए।

९९०. धर्म किसी का नहीं है वह तो एक प्रवाह है यह नदी के समान है उसे कोई बांध नहीं सकता उसमें हम अपने पापरूपी मैल को धो सकते हैं।

९९१. जो तत्काल सुख का अनुभव कराये, कर्मों से छुटकारा दिलाये और अभ्युदय की प्राप्ति कराए वही धर्म है।

९९२. धर्म को धारण कर फल की आकांक्षा करना भूल है। फल की धारा तब तक अपने आप बनी रहती है, जब तक धर्म से सम्बन्ध बना रहता है।

९९३. जब शरीर में ताकत है, तब ही धर्म धारण कर कर्मों से छुटकारा पा सकते हो।

९९४. पूर्व में जो कर्ज लिए हैं, धन आने पर उस कर्ज लौटा देना चाहिए। इसी प्रकार जब हमारे पास शक्ति है तब ही बंधे हुए कर्मों से छुटकारा पा लेना चाहिए उसे कहते हैं निर्जरा।

९९५. मंदिर, मस्जिद आदि धर्म नहीं है इनके माध्यम से धर्म समझ में आता है ये धर्म को समझने में धार्मिक भाव को जागृत करने में माध्यम है।

९९६. जितनी आपके पास चद्दर है उतने ही पैर फैला दो तभी आपका धर्म निभेगा।

९९७. जिसका जीवन वक्रता में है वह सरलता को भी गरलता में ही धारण करता है।

९९८. अच्छाई को बुराई के रूप में जो अंगीकार करता है वहीं वक्रता को धारण करता है। इसको हटाकर अपने जीवन को आर्जवमय बनाओ।

९९९. जिन अक्षरों के पढ़ने से धर्म हो, आत्मा का बोध हो वही अक्षर हमारे लिए सार्थक हैं।

१०००. दसों दिशाओं में ये दशलक्षण धर्म दस बाण के समान है, जो रक्षा करने वाले हैं।

१००१. दस प्रकार के (अंगरक्षकों) (धर्म) को साथ लेकर के चलते हैं, मुनि महाराज क्योंकि बहुत बड़ा रत्नत्रय का पिटारा है उनके पास।

१००२. दसों दिशाओं में वो (दशलक्षण धर्म) चलते रहते हैं और बीच में मुनि महाराज चलते हैं रक्षा के साथ किधर से भी कोई भी आ जाये रणांगन में तब भी ये सुरक्षित रहते हैं।
१००३. हम उत्तम प्रकार से मार्दव धर्म धारण कर लें ताकि मान हमारे पास आ न सके क्योंकि मान आने से रत्नत्रय में घाटा लग सकता है। हमारा रत्नत्रय का हार टूट सकता है।
१००४. जीव का धर्म निश्चय से दशलक्षण धर्म ही माना जाता है। वह ही एक प्रकार से हमारा स्वजन है।
१००५. धर्म की ओर जैसे-जैसे हम बढ़ेंगे, वैसे-वैसे स्व का तो विकास या उत्थान होगा साथ ही पर का भी होगा।
१००६. स्ववश धर्म होना आज दुर्लभ है, परवश बहुत कुछ हो सकता है।
१००७. हमें कहने की आवश्यकता न पड़े और हमारा जीवन स्वयं ही उपदेश देने लगे यही हमारा धर्म है। यही धर्म का माहात्म्य भी है।
१००८. आत्मा के स्वभाव की उपलब्धि रत्नत्रय में निष्ठा के बिना नहीं होती और रत्नत्रय में निष्ठा दया धर्म के माध्यम से, क्षमादि धर्मों से ही मानी जाती है।
१००९. जो मान को जीतने का पुरुषार्थ करता है वही मार्दव धर्म को अपने भीतर प्रकट करने में समर्थ होता है। मानव का उबाल शांत करने पर ही मार्दवधर्म प्राप्त होता है।
१०१०. सिद्धत्व में ही ऋजुता है क्योंकि स्वभाव में किसी भी प्रकार की विक्रिया सम्भव नहीं होती और विभाव में किसी भी प्रक्रिया के नहीं होती।
१०११. सुरक्षा तो सरलता में है। वक्रता या चंचलता में सुरक्षा कभी संभव नहीं है।
१०१२. उपयोग को विकारों से बचाकर राग से बचाकर वीतरागता में लगाना चाहिए यही ब्रह्मचर्य धर्म है।
१०१३. टेढ़ापन (तेरापन) नहीं है सीधापन अपनापन है।
१०१४. धर्म की प्रभावना के लिए धन का उतना महत्त्व नहीं है जितना कि धन को छोड़ने का महत्त्व है।
१०१५. हमारे यहाँ धर्म के अर्जन की बात कही गयी है धन के अर्जन की बात नहीं कही गयी बल्कि धन के विसर्जन की बात कही गयी है।
१०१६. जब से जीवन प्रारम्भ होता है तब से धर्म का पालन करना चाहिए तब कहीं अंत में जाकर कुछ काम हो सकेगा।
१०१७. धर्म कोई हल्की-फुल्की चीज नहीं है जिसका पालन बुढ़ापे में हो सके।
१०१८. मोह के ऊपर प्रहार करने का नाम है धर्म।
१०१९. धर्म और मोह ये दो विपक्षी दल हैं। मोह धर्म को दबाना चाहता है और धर्म मोह को।

१०२०. धर्म तो श्रमण धर्म ही है। गृहस्थों का धर्म एक प्रकार से धर्म नहीं है बल्कि उनका अधर्म/ पाप कुछ कम हो गया है। अधर्म को कम करने में लगे हुए हैं गृहस्थ।

१०२१. संसारी प्राणियों को जो सहारा/आश्रय देता है, रक्षण करता है उसका नाम धर्म है।

१०२२. आप लोग जिस प्रकार धन की रक्षा करते हैं, उससे भी बढ़कर धर्म की रक्षा करना चाहिए। धर्म के द्वारा ही जीवन बन सकता है।

१०२३. जिस समय किसी धर्मात्मा के ऊपर संकट आ जाता है उस समय दूसरा धर्मात्मा यदि छुपने का प्रयास करता है तो वह कायर है। धर्मात्मा नहीं।

१०२४. आज देश में सबसे बड़ी समस्या भूख की नहीं, प्यास की नहीं, बल्कि भीतरी विचारों के परिमार्जन करने की है। इसी से विश्व में त्राहि-त्राहि हो रही है। यह समस्या धर्म और दया के अभाव से ही है।

१०२५. जो गर्त से निकाल करके उच्च स्थान पर आसीन करा देता है उसका नाम धर्म है।

१०२६. जिसने धर्म का पालन किया उसकी रक्षा वह धर्म हमेशा-हमेशा करता रहता है। यह श्रद्धान की बात है।

१०२७. धर्म हमारे भीतर है बस अधर्म को छाँटकर भगाने की आवश्यकता है।

१०२८. स्वरूप हमारे भीतर है बस कुरूप को छाँटकर बाहर फेंकने की आवश्यकता है।

१०२९. श्रावक धर्म का समीचीन पालन करो क्योंकि श्रावक की खान से ही मुनि निकलते हैं।

१०३०. बंधन जब तक नहीं टूटते तब तक कितने भी प्रबंध कर लो फिर भी कुछ होने वाला नहीं है। इस प्रकार के ज्ञान होने को धर्म कहते हैं। इसी को भेद विज्ञान कहते हैं।

१०३१. जैसे प्रकाश के आते ही अंधकार भाग जाता है वैसे धर्म के आते ही अधर्म भाग जाता है ।

१०३२. ज्ञानार्जन के लिए अपने आपको हमेशा जवान समझना चाहिए और धर्म के लिए वृद्ध समझना चाहिए। अर्थात् ज्ञानार्जन करते समय सोचना चाहिए कि अभी मुझे बहुत जीना है और धर्म करते समय सोचना चाहिए मौत सामने खड़ी है।

१०३३. धार्मिक कार्य में श्रीगणेश से लेकर इति तक जितनी भी क्रियाएँ होती हैं वह सब संसार से छूटने के लिए ही हैं।

१०३४. धर्म एक सुगंध है इसलिए वह आसपास के क्षेत्र को सुवासित कर देता है।

१०३५. जिसके जीवन में धर्म है, न्याय है उसकी हमेशा उन्नति होती है विजय होती है अधर्म और अन्याय हमेशा हारता ही हारता है।

१०३६. धन साधन है जबकि धर्म साधना है। धन पेट के लिए है और धर्म आत्मा की शांति के लिए है।

१०३७. धर्म एक नदी के समान है। जो निष्पक्ष होकर सबको जल प्रदान करता है। बस धर्म भी इसी

प्रकार होता है।

१०३८. धर्म एक सूर्य के समान है, सूर्य प्रकाश बिना भेदभाव के सबके घरों में अपना प्रकाश प्रदान करता है। धर्म भी ऐसा ही है।

१०३९. धर्म वही है जो सबको जीना सिखलाता है, धर्म वहीं है जो सुख से जीना सिखलाता है, धर्म वही जो पक्षपात करना छुड़वाता है, धर्म वहीं है जो शांति से जीना सिखलाता है।

१०४०. धर्म का अर्थ कर्तव्य होता है और कर्तव्य का अर्थ करने योग्य कार्य।

१०४१. अपने परिणामों को संभालना अपने आत्म परिणामों की संभाल करना ही धर्म है, यही करने योग्य कार्य है।

१०४२. जिसके पास क्षमा धर्म है, वही क्रोध का वातावरण मिलने पर भी शान्त रहेगा।

१०४३. धर्मरूपी रथ को हाँकने के लिए श्रमण और श्रावक रूपी दोनों पहिये की आवश्यकता होती है।

१०४४. ये हमारा परम सौभाग्य है कि जिस रथ को तीर्थंकरों ने चलाया है उसमें हम भी कुछ सहयोग दे सकते हैं।

१०४५. धर्म से धर्म बढ़ता नहीं है, त्याग संयम, साधना से धर्म वृद्धि होती है।

१०४६. शराणागत आए हुए दीन दुखी, असहाय जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना संकटों से बचाकर उनका पथ प्रशस्त करना यहीं क्षत्रिय धर्म है।

१०४७. काल की अपेक्षा श्रावक धर्म और मुनि धर्म में शिथिलता तो आयेगी लेकिन शिथिलता आना बात अलग है और अपनी तरफ से शिथिलता लाना अलग बात है आत्मानुभूति की कलियाँ धीरे-धीरे मुरझाती जायेंगी लेकिन समाप्त नहीं होगी।

१०४८. धर्म एक चुम्बक की तरह है, जिस तरह चुंबक में लोहा चिपका रहता है, ठीक उसी प्रकार पुण्यात्मा के पास लक्ष्मी बनी रहती है।

१०४९. धर्म के प्रति भावना जागृत होना बड़े पुण्य के उदय का काम है।

१०५०. बड़े महान् पुण्य के उदय का काम है जो धर्म ध्वजा धारण करता है ।

१०५१. धर्म को हम भोग, ऐशो आराम के लिए ख्याति पूजा लाभ के लिए करते हैं परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए हम जो करते हैं वह हमारे लिए ही है, हमारी उन्नति के लिए है, यह विश्वास पहले दृढ़ बनाना चाहिए।

१०५२. आचार्य कहते हैं ख्याति, पूजा लाभ के लिए नहीं किन्तु कर्मक्षय के हेतु धर्म होना चाहिए।

१०५३. यदि कोई भी हित है तो वह है धर्म। धर्म को छोड़ करके जितने भी पदार्थ हैं वो सारे के सारे हमारे हित में नहीं हो सकते।

१०५४. सत्य को छोड़कर मात्र इन्द्रिय सुखों के लिए असत्य का पोषण नहीं करना चाहिए। सत्य,

अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए जिनके माध्यम से आत्मा का बल जागृत होता है।

१०५५. आपके आश्रित धर्म है, धन के माध्यम से धर्म नहीं होता है।

१०५६. संसाररूपी दु:ख से आत्मा को ऊपर उठा लें उसका नाम धर्म है।

१०५७. धार्मिक अनुष्ठानों में काम चलाऊ या खाना पूर्ति का भाव कभी नहीं होना चाहिए। भावपूर्वक एवं विधि पूर्वक समय से कार्य करना चाहिए।

१०५८. धर्म करने के लिए अधर्म के संस्कारों से बचना चाहिए।

१०५९. यदि आप लोग अपनी मन रूपी दीवाल पर धर्मध्यान रूपी रंग चढ़ाना चाहते हो तो पहले उस मन की कलुषता को खरौंच-खरौंच कर साफ करो। इसी का नाम संस्कार है।

१०६०. धार्मिक कार्यों में बाहरी सजावट की नहीं किन्तु भीतरी सजावट की मुख्यता होनी चाहिए।

१०६१. जैसे किसान बीजों को सुरक्षित करके शेष अन्न का सेवन करता है, उसी प्रकार हे भव्य प्राणी तू भी धर्म रूपी बीजों को बचाकर पुण्य रूपी फलों का सेवन करे।

१०६२. आज तक तुझे जो भी पुण्य रूपी फलों की प्राप्ति हुई है, वह धर्मरूपी बीजों का फल है।

१०६३. आज व्यक्ति अर्थ की लिप्सा में धर्म को भूल गया है। आज भारत ने अर्थ विकास को ध्यान में रखकर परमार्थ के विकास को भुला दिया है।

१०६४. धार्मिक कार्य रुचि पूर्वक करो करना पड़ रहा है ऐसा सोचकर नहीं करना किन्तु अन्य गृहकार्यों को करना पड़ रहा है, ऐसा सोचकर ही करो। इस मानसिकता के साथ गृहस्थ घर में रहकर भी धर्मध्यान करके कर्म निर्जरा कर लेता है।

१०६५. जिसका मन पवित्र होता है वह हमेशा धर्म ध्यान कर सकता है लेकिन जिसका मन कषायों से मलिन होता है, वह शीघ्रता से धर्मध्यान करने की भूमिका नहीं बना पाता। उस मन को डाँट कर अपने धर्मध्यान के विषय में एकाग्र करना आवश्यक होता है।

१०६६. मन को विषयों से हटाकर आवश्यकों में लगाना ही धर्म ध्यान है। कहीं भी रहो मन को विषय कषायों से बचाकर रखो यही धर्मध्यान है।

१०६७. राज्य की सीमा पर मिलिट्री सेना खड़ी है वह भी धर्मध्यान कर रही है। बार्डर पर तैनात होकर अपने कर्तव्य करती है, यही उसका धर्म ध्यान है। उसी के बल पर आप भी धर्मध्यान कर पा रहे हैं।

१०६८. ध्वजा की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है अत: मिलिट्री के समान धर्मध्वजा की रक्षा में हमेशा तत्पर रहिये।

१०६९. गुरु के पग चिह्न ही धर्म पथ हैं।

१०७०. जो जैनधर्म में कलंक लगाएगा, उसका भव-भव बिगड़ेगा।

१०७१. जैनधर्म की हंसी न हो ऐसा कार्य करना चाहिए। गुणों की उपासना जो सिखाता है वह अहिंसा

धर्म है। जो अपनी आवश्यकताओं को जीतता है वह जैनधर्म है।

१०७२. बुराई को छोड़ने वाला और छुड़ाने वाला धर्म है धर्म व्यक्ति की अपेक्षा नहीं गुणापेक्षा होता हैं।

१०७३. मानव धर्म में कहा है- जिसको छोटा बालक भी बुरा कहता है, वह अधर्म है और जो अच्छा कहता है वह धर्म है।

१०७४. जो धर्म कर्म विनाशक नहीं होता वह समीचीन नहीं हो सकता। धर्म दिखाने और किसी पर मेहरबानी करने के लिए नहीं किया जाता बल्कि कर्म क्षय के लिए किया जाता है तभी वह समीचीन माना जाता है।

१०७५. पाप करोगे पापी कहलाओगे, धर्म करोगे धर्मात्मा, स्वयं के कार्यों के माध्यम से टाइटल मिलते हैं किसी की कृमा से नहीं। किसी ने कहा गुरुओं की कृपा भी तो काम करती है आचार्यश्री जी बोले कृपा मात्र से कुछ नहीं होता कृपा पाकर पला पौधा (छाया में पला पौधा) अच्छा नहीं होता, लचीला सा लगता है।

१०७६. इच्छा पूर्वक उत्साह पूर्वक, धर्मामृत का पान करना कराना चाहिए। धर्मामृत का सेवन करें चौबीसों घंटे मुनिराज इसका पान करते रहते हैं।

१०७७. अति परिचय एवं अति आग्रह से धर्म का, धर्मात्मा का महत्त्व कम होता जाता है।

१०७८. धर्म मात्र क्रियात्मक नहीं बल्कि श्रद्धात्मक एवं राग द्वेष का अभाव तथा आत्मस्थ रहना यह धर्म है।

१०७९. धर्म का पालन करने वाले को अद्‌भुत फल मिलता है लेकिन उन फलों को भोगने में उसका मन नहीं लगता, वह तो उसी रत्नत्रय की आराधना करता रहता है।

१०८०. हमारा बंधु/सगा संगी साथी कोई है तो वह है धर्म।

१०८१. हे आत्मन्! तू रोता क्यों है? तीन लोक की दुर्लभ वस्तु धर्म तुझे प्राप्त हुआ है।

१०८२. विशुद्धि का नाम धर्म नहीं है, प्रतिकूलता में शान्ति रखने का नाम धर्म है।

१०८३. पुरुषार्थ के माध्यम से कमाना धर्म है जैनधर्म है।

धर्मध्यान

१०८४. धर्म ध्यान बहुत दुर्लभ है। स्वाश्रित है तो भी निमित्त दृष्टि होने से ये दुर्लभ होता जा रहा है। उपादान की ओर दृष्टि रखें। कर्मोदय की ओर दृष्टि रखें तो धर्मध्यान सहज सुलभ हो जायेगा।

१०८५. ज्यादा नाता रिश्ता हो जाये तो धर्मध्यान नहीं हो पायेगा। नाते रिश्ते से बच कर रहो धर्मध्यान करना है तो।

१०८६. दूसरों के निमित्त से आर्त्तध्यान नहीं करना चाहिए। आर्त्तध्यान रौद्रध्यान से बचने का पुरुषार्थ ही धर्मध्यान है। आर्त्तरौद्र ध्यान के साधनों से बचने का प्रयास करना चाहिए।

१०८७. धर्म ध्यान खेल नहीं लेकिन ज्ञानी के लिए यह बांये हाथ का खेल है।

१०८८. जो जो धर्मध्यान कर रहा है वह हमारा सहयोगी बन रहा है, हमारे शासन का सहयोगी बन रहा है। जो कोई भी धर्मध्यान करता है उससे मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ। उसी से प्रभावना होती है। उसी से संघ में समाज में खुशबू फेलने की भाँति वातावरण अच्छा बनता है।

१०८९. हम धर्मध्यान दूसरे के लिए नहीं कर रहे हैं अपने लिए कर रहे है चाहे रोग सहन करें, चाहे अन्य कोई कार्य करें इसमें दूसरों की कोई कमी मत देखो।

१०९०. हओ हाँ कहना सीखो इसी में धर्मध्यान है, इसी में कल्याण है अन्यथा किसी का धर्मध्यान नहीं हो सकेगा।

१०९१. जितना बड़ों को निर्विकल्प रखोगे उतना धर्म ध्यान होगा। गिरता हुआ है यह काल उसी में कुछ करना है। किसी भी बात को पहले बड़ों से कह दो एकदम निर्णय करना अच्छा नहीं है। बड़ों को विचार करके कहना पड़ता है।

१०९२. निष्प्रयोजन कोई भी चीज अपने पास नहीं रखना ये रौद्रध्यान के आइटम है उनका संरक्षण करना करवाना। ये सब रौद्रध्यान का विषय है। बनती कोशिश इन सब चीजों को टालने का प्रयास करना चाहिए। इन सबसे बचेंगे तब कहीं धर्मध्यान में लग पायेंगे।

१०९३. विपाक विचय धर्मध्यान के साथ जीना सीखो। देखो सीता के कर्म का उदय सास, माँ, पिता, भाई आदि किसी ने भी साथ नहीं दिया। ऐसा चिंतन करके अपने मन को शांत करना चाहिए। सीता ने कर्मोदय समझकर जीवन जिया। धर्मध्यान करना है तो जन संपर्क छोड़िए।

१०९४. जितना अनुशासन पक्का होगा उतना ही धर्मध्यान होगा।

१०९५. स्वास्थ्य खराब हो जाता है उस समय धर्मध्यान छूट जाता है तब मालूम पड़ता है। जब स्वास्थ्य अच्छा रहता है तो सब धर्मध्यान करना भूल जाते हैं इसलिए जब स्वास्थ्य अच्छा रहता है तो अच्छे से धर्मध्यान कर लेना चाहिए।

१०९६. अपने लिए जिससे धर्म साधन हो वह कार्य करना चाहिए।

१०९७. धर्मध्यान का उद्देश्य कभी भूलना नहीं चाहिए।

१०९८. कर्म का उदय आता है तब विचार करना कि भाग्य के अनुसार मिलता है यह विपाक विचय धर्मध्यान है। बस इतना करोगे तो विकल्प नहीं होगे।

१०९९. इस विचार से एक कर्मों की निर्जरा कर रहा है, एक नवीन कर्मों का बंध कर रहा है मोती चुगो कोई मना नहीं करेगा।

११००. पर की वेदना को देखकर रोना धर्मध्यान है और अपने स्वार्थ के लिए रोने को आचार्यों ने रौद्रध्यान कहा है।

११०१. पर की पीड़ा को देखकर दु:खी होने वाले को धर्मप्रेमी कहा जाता है। धनप्रेमी दूसरों के लिए

नहीं रो सकता।

११०२. अपने दु:ख को भूलकर रहने से आर्तध्यान से बचा जा सकता है और पर के दु:ख में दु:खी होकर रक्षा करने से धर्मध्यान होता है।

११०३. दूसरों के धर्मध्यान में बाधक नहीं बनना चाहिए।

११०४. आर्त रौद्रध्यान तो मुफ्त मिलते हैं, लेकिन धर्मध्यान प्रयास से बहुत कम मिलते हैं खदान में एक हीरे की कणिका जैसा।

११०५. यदि दृष्टि में वासना न हो तो धर्मध्यान में सहयोग देने के लिए ही विवाह होते हैं। पुराण ग्रन्थों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि विवाह वासना पूर्ति के लिए नहीं होना। विवाह वासना को सीमित करने एवं धर्म संतान परंपरा के लिए है।

११०६. अपने बारे में सोचो, अपने अनर्थों के बारे में सोचो दूसरों के भले के बारे में सोचो यह अपायविचय धर्मध्यान है। दूसरे के बुरे के बारे में सोचना दुर्ध्यान है। रोओ पर दूसरे के दु:ख को देखकर दूसरे की समृद्धि देखकर नहीं।

११०७. संसार के बाजार में धर्मध्यान मिलना कठिन है रौद्रध्यान तो मुफ्त में मिलता है। जिससे ममत्व हो, खतरा हो, रौद्रध्यान हो उससे ममत्व छोड़ दो।

११०८. कर्मकाण्ड को मुखाग्र करने से कुछ नहीं होगा कर्म का उदय हमारा ही है ये विपाक विचय धर्मध्यान है।

११०९. अपने किए हुए अनर्थ के बारे में सोचकर रोओ, प्रतिकूलता के बारे में सोचकर मत रोओ तो वह धर्मध्यान हो जायेगा।

१११०. अपने किए हुए जो अनर्थ है और उसके द्वारा जो पाप बंध हो गया, भगवान् वो कब ठीक होगा? कैसे दूर होगा? कैसे धुलेगा? ऐसा सोचना भी अपायविचय धर्मध्यान होगा।

१११२. हमें तो धर्मध्यान के लिए कुछ न कुछ अवसर मिल रहा है लेकिन कुछ ऐसे लोग हैं जिनके लिए कोई अवसर नहीं मिल पाते हैं, उन्हें भी धर्मध्यान का अवसर प्राप्त हो उनका दु:ख दूर हो इस प्रकार से सोचना ये बहुत अच्छा धर्मध्यान माना जाता है।

१११३. संयोग-वियोग होते रहते हैं लेकिन जब तक संयोग बना रहता है तब तक धर्मध्यानमय जीवन व्यतीत करना चाहिए।

१११४. करोड़ों बार स्रोत पढ़ने के बाद भी भक्तामर का अखण्ड पाठ जीवन पर्यन्त भी करोगे तो भी उतना फल नहीं मिलेगा जितना कि आप पाँच मिनट बैठकर सब जीव सुख का अनुभव करें, इस प्रकार के धर्मध्यान करने से पा सकते हैं।

१११५. बाहर की ओर चेतना नहीं जाने देना यही आकिंचन्य धर्म है, बाकी तो मात्र अभिनय है।

१११६. जब तक तेरा मेरा लगा है तब तक आकिंचन्य को नहीं अपना सकता है जो इनको छोड़कर

अपने आप में तल्लीन होता है, वह आकिंचन्य धर्म को अपनाता है।

११९७. संयोग वियोग में आर्त्तरौद्र ध्यान होता है और योग में धर्मध्यान होता है।

११९८. संयोग के दुःखों से वियोग कराने वाला योग होता है। जो परमात्म से मिला दे वह योग है।

११९९. चिंता को आर्त्तध्यान कहा है और चिंतन को स्थिरता का अभाव कहा है।

१२००. अपने लिए तो सब रोते है लेकिन जो रो रहा है उसके लिए रोने वाले कम हैं उस पर रोओ दूसरों के लिए रोओ तो अपाय विचय धर्मध्यान हो जायेगा। ये तो हम करते नहीं।

१२०१. सराग और वीतराग धर्मध्यान बताया है आगम में ये धर्मध्यान करो।

१२०२. ब्रेन को शांत रखो बिल्कुल फ्रिज जैसा ठण्डा रखें। माइंड से कम काम लो। माइंड से उतना ही काम लेना जितनी क्षमता है जबरदस्ती नहीं।

१२०३. माइंड लगाओ अपायविचय धर्मध्यान में, विचारों से यदि सबका कल्याण हो सब सुखी हों यह सोचे तो बहुत अच्छा है।

१२०४. आर्तध्यान रौद्रध्यान की पहचान कराओ उसे छुड़ाओ, फिर धर्मध्यान का शिविर लगाओ।

१२०५. मोक्षमार्ग में आर्त रौद्रध्यान न हो यह ध्यान रखो। धर्मध्यान क्या है? आर्त-रौद्र नहीं करना बस। धर्मध्यान न हो कोई बाधा नहीं लेकिन आर्तध्यान की पहचान कर लो आर्त-रौद्रध्यान की कमी करना भी धर्मध्यान की ओर है। आर्त रौद्रध्यान कम करते जायें और साथ ही जो धर्मध्यान कर रहे हैं उनकी प्रशंसा करना प्रारम्भ कर दीजिये।

१२०६. धर्मध्यान करना नहीं आता ऐसा नहीं जब आर्तध्यान कर सकते हो तो धर्मध्यान भी कर सकते हो।

निमित्त

१२०७. सीता, अंजना, चंदनबाला, अनंगसरा आदि सतियों को देखो इन्होंने असंयमी होकर भी निमित्त को दोष नहीं दिया।

१२०८. सीता को देखो उसने राम तो क्या रावण तक को दोष नहीं दिया। मेरा रूप ही दोषी है।

१२०९. हमारे दुःख कोई दुःख नहीं उन सतियों के दुःख को देखो। असंयमी होते हुए भी उन पर दुःख के पहाड़ टूट गये पर निमित्त को दोष नहीं दिया उन्होंने।

१२१०. निमित्त को दोष नहीं देना। एक ये ही साधना सही साधना है।

१२११. जो उलझे हुए होते हैं, मैं उन्हें ये हाइकू दे देता हूँ-''राम, रावण, सीता क्या थे क्या होंगे, रामायण है।''

१२१२. कुन्दकुन्दाचार्य की गाथाओं को कब काम में लोगे? काम में लेंगे तो वो भी कृतार्थ होंगे कि मेरा शिष्य उन्हें काम में ले रहा है।

निमित्त उपादान

११३३. निमित्त भले ही जोरदार हो पर उपादान जोरदार नहीं तो समझो कुछ नहीं। सभी निमित्त जोरदार ही हो ऐसा नहीं।

११३४. तीर्थंकर ने जिस तिथि में दीक्षा ली उसी में अन्य राजाओं ने दीक्षा ली, तिथि तो पावरफुल है देखो तो सही लेकिन उसमें कोई सफल हो गया कोई विफल। किसी दूसरे की कुण्डली तिथि अपने काम में नहीं आती। अपने उपादान की ओर ध्यान दो, ये सब बाह्य सहयोगी हैं।

११३५. जो व्यक्ति निमित्त में आरोप लगायेगा उसका मोक्षमार्ग डगमगायेगा। जितने हम निमित्त की ओर टूटेंगे उतना ही संक्लेश परिणाम होगा।

११३६. निमित्त की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देना है क्योंकि जब असाता का उदय होता है तब जो हमारे द्वेषी हैं वो ही निमित्त बनते हैं, मित्र नहीं। यदि मित्र निमित्त बने तो असाता का उदय भी नहीं रहेगा।

११३७. समवसरण में देव जाते हैं लेकिन उनके (प्रभु के) चरणों में रहने पर भी देवों को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। उनके पास उपादान की कमी है इसलिए नहीं होता जिसके पास जितनी पात्रता है वह उतना ही पाता है अधिक नहीं।

११३८. दूसरों की कोई गलती नहीं है अपने कर्म पर जो विचार करता है उसी का नाम त्यागी है। निमित्त को देखने से कषाय जागृत हो जाती है इधर उधर न देखकर अपनी गलती देखो।

११३९. सीता को देखो गृहस्थ में रहकर भी उसने कभी किसी को दोष नहीं दिया। सीता का पुरुषार्थ देखो कि रावण को भी दोषी नहीं ठहराया, राम को भी नहीं। वह तो ये कहती थी कि मेरे कारण राम को दुःखी होना पड़ा।

११४०. निमित्ताधीन नहीं स्वाधीन बनो स्व के अधीन। अन्तर्मुखी होना चाहिए। निमित्ताधीन दृष्टि नहीं रखना चाहिए।

११४१. जो व्यक्ति निमित्त पाकर भी अपने उपादान को जागृत नहीं करता वह अभी निमित्त-उपादान के वास्तविक ज्ञान से विमुख है।

११४२. बाहरी निमित्त को भुला करके वास्तविक निमित्त जो हमारा कर्म है उसकी ओर आना ही एक मात्र शांति का रास्ता है। पल-पल हमें उसी का फल मिलता रहता है।

११४३. निमित्त में कार्य नहीं हुआ करता, कार्य तो उपादान में ही होता है लेकिन निमित्त के बिना उपादान का कार्य रूप परिणाम भी न हुआ और न कभी होगा।

११४४. दीपक में यदि तेल भर दिया पर बत्ती सारी जल गई है अथवा बत्ती ठीक है पर तेल छानकर नहीं भरा है, तब भी बत्ती नहीं जलेगी। अतः अंतरंग तथा बहिरंग निमित्त कारणों के होने पर ही कार्य पूरा होता है।

११४५. निमित्त की ओर देखते हुए हमारी दृष्टि उपादान की ओर रहना चाहिए तब ही वह सामने वाला निमित्त हमारे उपादान को प्रेरणा का स्रोत हो सकता है।

११४६. आदिनाथ भगवान् मारीचि के पीछे नहीं पड़े समझाने का व्यर्थ पुरुषार्थ नहीं किया क्योंकि वो तो जानते थे इसलिए निमित्त में उलझने की कोशिश नहीं की थी।

निश्चय-व्यवहार

११४७. आध्यात्मिक जीवन की ओर निरंतर अग्रसर होने के लिए अनासक्त भाव ही आधार हैं/स्तंभ हैं क्योंकि सांसारिक प्राणी मूर्च्छा के भंवर में पड़कर अपना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गवा देता है। अतः यह आवश्यक है कि आपके पास कितना ही वैभव एवं सम्पन्नता रहे आप उस सबसे अपनी मूर्च्छा अपने मोह भाव त्यागें और आकिंचन्य की ओर पग बढ़ायें।

११४८. भले ही हम अनेकान्तवाद के उपासक हैं लेकिन ये एकान्त है कि एकांत में ही अकेले की मुक्ति होगी वहाँ अनेकान्त नहीं रहेगा वहाँ भी अपने को अपने आप ही का अनुभव करना पड़ेगा तनिक भी किसी दूसरे का अनुभव नहीं होगा।

११४९. निश्चयनय ढाल है, आत्मा की सुरक्षा करता है और व्यवहारनय तलवार है जो दूसरों को फेंकता है।

११५०. व्यवहारनय का अर्थ है–विश्व कल्याण। निश्चयनय का अर्थ है–आत्म कल्याण।

११५१. यदि व्यवहारनय को नहीं मानोगे तो तीर्थ का उच्छेद हो जायेगा और निश्चयनय को नहीं मानोगे तो आत्मा का कल्याण नहीं हो सकेगा।

नेता

११५२. जो सही दिशा की ओर स्वयं चले और पीछे वालों को सहायक बने और पीछे मुड़कर नहीं देखता वह सही नेता है।

११५३. महावीर भगवान् स्वयं ही निकले थे स्वयं के नेता स्वयं थे।

११५४. अपने को बनती कोशिश विचारों का स्थितीकरण करना आवश्यक है। वैचारिक स्थितीकरण करने का नाम नेतृत्व है। वैचारिक उपगूहन, वात्सल्य जो कर सके उसके पास नेतृत्व की क्षमता मानी जाती है। मुझे आवश्यक्ता है ऐसे नेता की। लेकिन अपनी तरफ से नेतृत्व चाहना नेतृत्व के गुण नहीं हैं।

११५५. जिसके पास नेतृत्व है वह कर्तव्य की ओर देखता है नेतृत्व की ओर नहीं।

११५६. नेतृत्व लिया नहीं जाता, नेतृत्व दिया जाता है। दिये जाने के बाद भी सामने वाला कहता है मेरे में कहाँ ऐसी क्षमता? आपको अगर क्षमता दिख रही है तो आप जाने, बाकी मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता। ऐसी लघुता वाला ही नेतृत्व के योग्य होता है।

११५७. जो स्वयं नेतृत्व में रह सकता है, रहता है वही नेतृत्व के योग्य हो सकता है। जो स्वयं नेतृत्व

में नहीं वह स्वयं नेतृत्व सम्हाल नहीं सकता।

११५८. गुणों की ओर जिसकी दृष्टि है उसके नेतृत्व को सम्भाला तो वश की बात है, लेकिन जिसकी अवगुणों की ओर दृष्टि है उसके नेतृत्व को सम्भालना बहुत कठिन कार्य है।

११५९. जो न अपने मित्र पर, न अपने बन्धुओं पर, न अपने परिवार और न ही अपने मन पर विश्वास रखे वह राजा कहलाता है।

११६०. जो राजा होता है धर्म ध्यान कम कर पाता है, पर वह धर्म ध्यान करने में सहयोगी होता है।

११६१. सिंहासन बैठने के लिए नहीं सिंह की तरह चारों दिशाओं में अवलोकन और एक ही दहाड़ में ही सबको दुरुस्त कर देने के लिए है। कहाँ है ऐसा सिंह/नेता?

११६२. अखबार में खबर छाप कर स्वयं बेखबर ही रहे यह ठीक नहीं है। सब लाभ पायें ये अच्छा है लेकिन स्वयं भी लाभ लेने का यतन करें।

११६३. आज एक दूसरे की रक्षा करने के लिए कोई तैयार नहीं। जो रक्षा के लिए नियुक्त किये गये, वही भक्षक बनते चले जा रहे हैं।

११६४. शाकाहार, धर्म-प्रभावना, संस्कृति का संरक्षण आदि करना चाहते हो तो मतदान का सही जगह, सही समय पर उपयोग करें।

११६५. सही नेता वही है जो धर्म की रक्षा करे, स्वयं बना रहे धर्मात्मा और अन्य का भी सहयोग कर सके।

११६६. हम डायरेक्ट सीनियर होना चाहते हैं। तब जूनियर कौन बनेगा? किन्तु यह एक सिद्धान्त है कि किसी भी क्षेत्र में डायरेक्ट हम सीनियर नहीं हो सकते। योग्यता के अनुसार हो सकते हैं।

११६७. सिंहासन खाली पड़ जाये इसकी कोई चिंता नहीं, लेकिन सिंहासन पर कोई गलत व्यक्तित्व न चला (बैठ) जाये, इसकी चिंता रखनी चाहिए, राजा-महाराजा को। तभी जनता का संरक्षण संभव है।

११६८. पीछे चलने वाला ये सोचे कि आगे वाला उसके अनुसार चले तो यह गलत है। पीछे वाले को ही आगे बढ़कर आगे वाले के अनुसार चलना पड़ेगा।

११६९. लोकतंत्र जीवित तभी रहेगा जब विवेक के साथ नेतृत्व करने वाले को चुना जायेगा।

११७०. नेतृत्व करने वाला अधर्मी, अदयालु हो तो धर्म भी समाप्त हो जायेगा।

११७१. पिता का निधन तभी से जानो जब सात्विक धन समाप्त हो जाये।

पाप-पुण्य

११७२. प्राय: पुण्य का उदय आने पर मुख कमल खिल जाता है और जब असाता का उदय आता है, तब जैसे सूर्य का उदय न होने पर कमल मुरझा जाता है इसी प्रकार मुख मुरझा जाता है। दरिद्र हो जाता है। वह भूल जाता है कि उषा काल के पीछे अंधेरी शाम भी आयेगी।

११७३. संसार में कहीं दु:ख नहीं है, दु:ख तो अपने अंदर है, हमें दु:ख का अनुभव कर्म के उदय में होता है उनको कर्मों को जब तक हम साफ नहीं करेंगे तब तक सुख हम लोगों को उपलब्ध नहीं होगा।

११७४. पापी की यदि उन्नति करना चाहते हो तो पापों को उखेड़ दो, पापों को तिरस्कृत कर दो।

११७५. करने योग्य कार्य को जब तक नहीं करता है तब तक अयोग्य ही कहलायेगा।

११७६. पुण्य में कमी आये और पापों में अधिकता हो ऐसे कार्य न करें इस प्रकार की जाग्रति हमेशा रखनी चाहिए।

११७७. जैसे साइकिल में हवा भरने में तो बहुत देर लगती है लेकिन पंक्चर होने में, हवा निकलने में टाइम नहीं लगता है। उसी प्रकार पाप की उदीरणा में टाइम बहुत कम लगता है पुण्य करने में टाइम लगता है।

११७८. पुण्य करना चाहते हो तो इसी ढंग से करो की मोक्षमार्ग सम्बन्धी ही सामग्री मिले। संसार बढ़ाने वाली वस्तुओं की माँग न करें।

११७९. आज पाप का प्रक्षालन तो नहीं पाद प्रक्षालन हो रहा है।

११८०. जो जिस वस्तु के प्रति आकृष्ट होता है वह उसे कभी नहीं मिलती। पुण्य से निरीह रहोगे तो अनंत सम्पत्ति आयेगी पर यदि उस संपत्ति का उपभोग करोगे तो वह पुण्य पाप में बदल जायेगा।

११८१. जिसमें निरीहता होती है उसमें निर्भीकता अपने आप आ जाती है।

११८२. पुण्यबंध तो फिर भी सरल है, पर पुण्य के उदय में उसका सदुपयोग करना बहुत कठिन है।

११८३. अभी पुण्य तेज है तो दुर्लभता के बारे में सोच लेना चाहिए।

११८४. संतोष धारण करने से अनंत पाप कम हो जाते हैं। संतोष गृहस्थों का एक महान् गुण है। परिग्रह को ब्रेक लगाना चाहते हो तो स्वदार संतोष व्रत धारण करो। विदेशों में विडम्बना हो रही है वहाँ कोई व्रत नहीं है।

११८५. पाप के डर से मर्यादा में रहना चाहिए, किसी के अनुशासन से नहीं।

११८६. अभिमान से पुण्य भी पतला होने लगता है। जैसे पवित्र प्रासुक भोजन भी क्रोध में जहर बन जाता है।

११८७. पुण्य के द्वारा ही पाप छोड़ा जाता है, पुण्य को छोड़ने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। पाप-पुण्य दोनों एक साथ नहीं छोड़े जा सकते। पुण्य है ही नहीं तो क्या छोड़ोगे बताओ? पाप छूटने पर पुण्य आता है।

११८८. भोजन सामग्री भोगते हैं तो पाप बंध होता है और उसे पूजन में लगाते हैं तो मंगल द्रव्य बन जाती है और पाप को नष्ट कर पुण्य बढ़ता है यही बनियावृत्ति है। लाभ-हानि समझे बिना

दुकान कैसे चलाओगे?

११८९. जिनके चरणों में पाप नहीं पलता उनके चरणों की पूजा से हमारा पाप कटता है।

११९०. जो पाप में लीन रहता है वह अपने आप में लीन नहीं हो सकता।

११९१. यदि सभी पाप से डरने लगें तो स्वर्ग यही आ जावेगा।

११९२. यदि शत्रु से बचना चाहते हो तो पाँच पापों से बचो।

११९३. जो आत्मा को पवित्र कर दे वह पुण्य और जो आत्मा को शुभ से बचाता है वह पाप है।

११९४. जब तक हम पुण्य का आस्रव नहीं करेंगे, तब तक यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

११९५. पुण्य के कारण भूल भुलैया नहीं है भावों के कारण भूल भुलैया है।

११९६. जो व्यक्ति देव पूजा को केवल बंध का कारण मानता है, वह घोर अंधकार में है और ऐसा उपदेश दूसरे को दे रहा है वह वज्रमय पाप की लकीर खींच रहा है।

११९७. पाँच पाप ही दुःख हैं, अन्य कोई दुःख नहीं हो सकता है।

११९८. जो व्यक्ति दुःखी होता है वह साता का बंध नहीं कर सकता है।

पाठशाला के संस्कार

११९९. आज के बच्चों को घर की रोटी घी की अच्छी नहीं लगती है और जिसे गैय्या भी नहीं खाती वह बिस्किट अच्छे से खाते हैं।

१२००. आज टी-पार्टी में रोटी-दाल, खिचड़ी, दलिया आदि नहीं चलता है इसके अलावा सब चलता है। नहीं चलने वाला भी चल जाता है तथा चलने वाला बैठ जाता है।

१२०१. पहले ऐसी पाठशालाएँ होती थी, अनपढ़ कहलाते थे लेकिन सब व्यवस्थित कार्य करते थे।

१२०२. बहिन कहती है भैया से-हमारी रसोई कैसी बनी बताओ? आप सीखने के लिए बनारस गई थी क्या? नहीं, फिर इतनी अच्छी रसोई किससे सीखी? बहिन कहती है। माँ, दादी माँ के पास रहे और सीख गये। ऐसी थी पहले की पाठशाला।

१२०३. आज तो पढ़ाई के लिए पानी की तरह पैसा बहाते हैं और रसोई के नाम पर बनाई बाजार की खाद्य सामग्री ले आते हैं क्योंकि बनाने का टाइम नहीं है। कौन बनाये? कौन टाइम वेस्ट करे? इसलिए अब तो सीधी लगी लगाई होटल की थाली ले आओ उड़न तश्तरी जैसे। आधुनिकता में सब भूल गये यह है आज की शिक्षा।

१२०४. वह बहिन दादी को देखती रहती थी कि मुट्ठी से नापकर चावल डालकर धोकर फिर अंगुली से पानी नापकर चूल्हे पर सीझने रख देती थी। देख-देख कर वह भी सीख गई इसको बोलते हैं एक्सपीरियंस और इसी के साथ मेमोरी जुड़ गई। आज तो मेमोरी है ही नहीं। मेमोरी होने से ५० व्यक्तियों के लिए वे संकेत दे सकते हैं।

१२०५. अंशोपचार करना, संकेत देना, पढ़ना आदि दस प्रतिशत काम करता है जबकि प्रेक्टिकल प्रयोग जो है वह ९० प्रतिशत काम करता है जीवन में। प्रयोग जो है वह जीवन में बहुत प्रेरणा देने वाला होता हैं।

प्राचीन रसोईशाला

१२०६. पहले शुद्ध हवा, शुद्ध भोजन, आदि-आदि सब कुछ था। हाथों से गेहूँ को पीसते थे तो हाथों की एक्साइज हो जाती थी।

१२०७. कूटना-पीसना-बीनना तथा पानी भरना आदि-आदि सब काम अपने हाथों से करते थे, कोई नौकर या मशीनें नहीं थी इससे पूरे शरीर की एक्साइज हो जाती थी।

१२०८. अब तो कुछ नहीं बचा सब कुछ मशीनों से कार्य होने लगे हैं और एक्साइज अलग से करना पड़ती है।

१२०९. पहले तो चूल्हे पर रोटी बनती थी धुँआ निकलता था, आँखों से नाक से पानी निकल जाता था तो आँख, नाक, गला सब ठीक हो जाते थे।

१२१०. अब तो शुद्ध हवा की बात तो दूर शुद्ध आवास तक नहीं बचे।

१२११. पहले घरों में झरोखे, खिड़कियाँ आदि आदि होती थी, मात्रा से हवा का सेवन होता था।

१२१२. फसल भी उत्तम होती थी उसमें शुद्ध खाद डलती थी आजकल तो केमिकल्स मिले रहते हैं, खाद में तो अन्न भी उतना ताकतवर बलशाली नहीं रहा। इसका स्वास्थ्य पर भी, शरीर पर भी प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि अन्न उतना शक्तिशाली नहीं रहा।

१२१३. आजकल तो बर्तनों को धोते बस हैं कि मांजते भी हैं। आजकल प्रायः मांजने की प्रक्रिया, बर्तन को राख से शुद्ध करने की प्रक्रिया समाप्त सी होती जा रही है।

१२१४. बर्तनों को मांजना और धोना होता है। आजकल तो धोना बचा है रोना धोना बचा है।

१२१५. भूख लगती है तो सब खा लेता है कब्ज होती है या पेट खाली रहता है तो वात गैस का भूत कबड्डी का ग्राउण्ड बनाकर खेलने लगता है। समय पर भोजन करो नहीं और थोड़ी चाय बिस्किट खा लिए हो गया काम कौन सी कम्पनी की, कैसे बनी कुछ पता नहीं आखिर घर की ही कम्पनी काम करती है।

परिभाषा

१२१६. विवेक के साथ प्रत्येक घड़ी बिताने का नाम ही वास्तव में जीवन है।

१२१७. यदि कोई व्यक्ति विवेक से ही हाथ धो बैठता है, तो उसका जीना जीना नहीं बल्कि चलते-फिरते शव के समान है उसका जीवन जीना।

१२१८. विचार विवेक ही आत्मा के महान् प्राण माने गये हैं वह उज्ज्वल और अखण्ड रूप में सदा विद्यमान रहते हैं इन्हीं के माध्यम से इनका आगे का विकास होता है और ये प्राण कभी भी

भौतिक प्रभाव में नहीं आने वाले।

१२१९. संसार में कर्तृत्व बुद्धि, भोक्तृत्व बुद्धि और स्वामित्व बुद्धि इन तीन प्रकार की बुद्धियों के द्वारा ही संसारी प्राणी की बुद्धि समाप्त हो गई है। वह बुद्धिमान् होकर भी बुद्धू जैसा व्यवहार कर रहा है।

१२२०. जीवन का इतिहास आदर्श प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए।

१२२१. बुराई देखें अपनी और अच्छाई देखें सबकी, आदर्श प्रस्तुत करने की यही अच्छी विधा है।

१२२२. शिक्षा जीवन चलाने के लिए नहीं, किन्तु वह जीवन का विकास करने उसे सुधारने के लिए ही साधन है।

१२२३. हम काँटों पर चलना सीखें यानि कठिनाइयों से गुजरना सीखें उनसे घबराए नहीं और फूलों से बचें, यानि भोग विलासिता से अपने को दूर रखें, जीवन हमारा महक जायेगा हम धन्य हो जायेंगे।

१२२४. जीवन में आनंद के अनुभव के लिए श्रेणी चढ़ो। एक-एक कक्षा पार करो। कक्षा तो बढ़ती जाती है लेकिन समझदारी नहीं आती तो आनंद कैसे आये?

१२२५. शरीर के प्रति निरीहता नहीं है तो आनंद का अनुभव नहीं होता।

१२२६. यदि जीवन अच्छा ही चाहते हो तो कठिनाइयों से कभी डरो नहीं और डरने से कभी भी कठिनाई छूटती नहीं। नहीं समझे। अब शेष जीवन कितना है? कुछ पता तो है नहीं इसलिए करते जाओ।

१२२७. आप लोग कहते हैं जल ही जीवन है। ठीक वैसे ही समय ही जीवन है। समय बचाओ। समय मिला है तो अरिहंत सिद्ध, अरिहंत सिद्ध करते जाओ।

परिणाम

१२२८. अपने परिणाम को बिगाड़कर दूसरों के परिणाम सुधारने का भाव करना इसमें कोई शोभा नहीं है।

१२२९. जिसके जीवन में संवेग और निर्वेग भाव हो वह मुनि कभी भी वैराग्य पथ पर असफल नहीं हो सकते हैं।

१२३०. पिच्छी की रक्षा मात्र नहीं करना है, परिणामों की रक्षा करना है। जड़ की रक्षा क्या करना? चेतन की रक्षा करो। अपने परिणामों को सुधारो।

१२३१. अपने परिणामों को बिगाड़ना नहीं। अपने कर्तव्य में कमी लाना नहीं। अपना कर्तव्य करने के बाद सामने वाला नहीं सम्हल रहा, अपने परिणामों को नहीं सम्हाल रहा तो अपन ज्यादा क्या कर सकते हैं? अपना कर्तव्य नहीं खोना।

१२३२. परिणामों को अच्छा बनाये रखने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है।

१२३३. संक्लेश परिणाम नहीं करना चाहिए इससे असाता का बंध होगा। शांत परिणाम रखना चाहिए इससे साता का बंध होता है।

१२३४. हर समय विशुद्धिरूप परिणाम होने से असाता कर्म साता रूप में परिणत होकर उदय में आ सकता है।

१२३५. सब काम परिणामों के माध्यम से होता है। संक्लेश नहीं करना चाहिए, प्रशम भाव रहना चाहिए।

१२३६. हमेशा तत्त्व चिंतन करना चाहिए। तत्त्व चिंतन नहीं करने का परिणाम है पर में जल्दी परिणमन हो जाता है।

१२३७. आज सारा वातावरण प्रतिकूल ही है फिर भी अपने भाव संभालकर रखें। आगे की भूमिका बना लें। बस इतना पुरुषार्थ रहे कि कषाय न भड़के।

१२३८. ये (व्रतों की) दुकान बहुत महंगी है इसमें कभी भी कमी नहीं करना चाहिए। क्षण क्षण अपने परिणामों को संभालना चाहिए।

१२३९. मनुष्य पर्याय को पाकर भी निगोद चला जाता है और एक निगोदिया जीव मनुष्य पर्याय को प्राप्त हो जाता है। यह सब अंतरंग परिणामों का फल है।

१२४०. द्रव्य का प्रदर्शन हो सकता है पर भावों का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता। भावों की महिमा अपरम्पार है।

१२४१. द्रव्य का अकेला महत्त्व नहीं है, भाव के माध्यम से द्रव्य का महत्त्व बढ़ जाता है।

परिग्रह

१२४२. संग्रह का नाम परिग्रह नहीं है, अनावश्यक संग्रह का नाम परिग्रह है। वह अन्यायी है जिसने अनाप-शनाप इकट्ठा कर रखा है।

१२४३. संग्रह की चिंता से वही मुक्त होता है जो घरबार छोड़कर महाव्रती बन जाता है।

१२४४. परिग्रही यदि कोई है तो वह एक मात्र मानव है। पेट तो सबके पास है लेकिन मनुष्य पेट के अलावा पेटी भी रखता है।

१२४५. वस्तुओं को संग्रह करने की ललक का नाम परिग्रह है।

१२४६. हर्ष का संदेश मिलता है तो गदगद हो जाते हैं, विषाद के विषय में ज्ञात होते ही खदबद हो जाते हैं किन्तु दोनों स्थितियों में परिणाम एक सा होता है। लेकिन परिग्रह सुनते ही मूर्छित हो जाते हैं।

१२४७. असमता में रक्तचाप कभी-कभी चुपचाप हो जाता है, मूर्छित हो जाते हैं। परिग्रही मूर्छित रहते हैं, नींद सयानी होती है, सदा निश्चिंत के पास आती है।

१२४८. जिससे परिचय हो जाता है वो ज्यादा अच्छा लगने लगता है तो दु:ख से परिचय करें क्योंकि

आप बार बार वहीं जाते हैं जहाँ दु:ख होता है। घर में दु:ख होने के बावजूद हम वहाँ जाते हैं क्योंकि परिग्रह के माया–मोह से आप ग्रसित हैं।

१२४९. स्वस्थ होने का मात्र एक ही उपाय है परिग्रह का विमोचन।

१२५०. आज वित्त का अर्जन तो बहुत हो रहा है लेकिन वित्त का उपयोग कैसे करें इसके लिए दिमाग नहीं चल रहा है। यदि अनावश्यक उत्पादन किया जाता है, तो उनका दिमाग नियम से खराब चल रहा है।

१२५१. मात्र धन का संग्रह करना ही बुद्धिमानी नहीं है बल्कि संग्रहित धन का सही–सही उपयोग करना बुद्धिमानी है।

१२५२. खानदानी पैसा और नया पैसा में क्या अंतर है? ओल्ड को गोल्ड माना जाता है। और नया बोल्ड माना जाता है।

१२५३. जिस देश में कृतघ्नता पलती है, उसके पास कितना भी वित्त आ जाये वह किसी काम का नहीं होता।

१२५४. धन की पूजा करने से धन नहीं आता, धन के ऊपर तिलक लगाने से धन का विकास नहीं होता, किन्तु धन का यथोचित स्थान पर उपयोग करने से ही उसका विकास होगा।

१२५५. जितना आरम्भ परिग्रह छूटेगा उतनी ही व्यक्ति के निर्विकल्पता होती है। जितना आरम्भ परिग्रह उतनी विकल्पता होती है।

१२५६. आचार्यों ने परिग्रह संज्ञा को संसार का कारण बताया है और संसारी प्राणी निरंतर इसी परिग्रह के पीछे अपने स्वर्णिम मानव जीवन को गंवा रहा है।

१२५७. कभी सोचा आपने! कमर में लटकाने वाला चाबी का गुच्छा धन का रक्षक तो हो सकता है धर्म का नहीं।

१२५८. वस्तु के अभाव में मँहगाई नहीं होती पर वस्तु संग्रह से मँहगाई होती है।

१२५९. वही धन परिग्रह है जो धार्मिक क्षेत्र में खर्च न होकर अन्य सांसारिक कार्यों में खर्च होता है।

१२६०. जिस प्रकार सूर्योदय से पूर्व उजाला होने की आभा पूर्व सूचना है, उसी प्रकार बहु आरंभ, बहु परिग्रह अति संक्लेश परिणाम नरकगति का उदय होने की आभा पूर्व सूचना है।

१२६१. अपव्यय की ओर दृष्टि न होने से आज धन की अधिक आवश्यकता हो रही है।

१२६२. वस्तुओं के मूल्य की बात नहीं चैतन्य का मूल्य करना चाहिए। जहाँ अन्य वस्तुओं का मूल्य है वहाँ भोग भूमि होगी, कर्मभूमि नहीं।

१२६३. दुनिया की सम्पदा से हमारा जो नहीं होने वाला है ऐसा अमूल्य पदार्थ जीव हमें मिला है।

१२६४. धन संग्रह करोगे तो संग्रहणी की बीमारी होगी।

१२६५. धन सात्विक होगा तो बढ़ता जायेगा।

१२६६. हम पहले लक्ष्य बनायें फिर जीवन की कुछ कड़ियों में अर्थ की व्यवस्था आवश्यक होती है। अर्थ पुरुषार्थ मूलक होता है।

१२६७. दो अर्थों के बीच वह पुरुष (आत्मा) है। आत्मा को प्राप्त करना चाहते हो तो अर्थ की कुछ आवश्यकता है किन्तु जो अर्थ की ओर ही जाता है उसका पुरुष (आत्मा) गोल हो जाता है।

पात्रता

१२६८. पात्र को ही पढ़ाना चाहिए। यदि योग्यता नहीं है तो नहीं पढ़ाना चाहिए। पात्र बनाकर पढ़ाना चाहिए। शुद्धि और विशुद्धि दोनों के साथ हमेशा जिनवाणी का, बृहद् ग्रन्थों का, आर्ष प्रणीत ग्रन्थों का, अध्ययन कराना चाहिए।

१२६९. दिन में भोजन, रात को जुगाली। ऐसे ही दिन में अध्ययन और रात में जुगाली के रूप में अध्ययन चिंतन होना चाहिए।

१२७०. जो अध्ययन ज्यादा करते हैं, वे चिंतन के क्षेत्र में प्रायः प्रमादी होते हैं।

१२७१. जो व्यक्ति सप्त व्यसन का त्याग नहीं करता उसको स्वाध्याय नहीं सुनाना चाहिए। जिनवाणी के लिए तर्क-युक्ति की आवश्यकता नहीं, जिनवाणी के लिए आस्था की आवश्यकता है।

१२७२. सम्यग्दृष्टि जीव विद्या का दुरुपयोग नहीं करता है, इसीलिए पात्र को देखकर विद्या दी जाती है।

१२७३. योग्य व्यक्तियों को तैयार करना चाहिए और उन्हीं को समय देना चाहिए।

१२७४. सप्त व्यसन के त्याग बिना जिनवाणी सुनने की पात्रता ही नहीं आ सकती।

१२७५. उपदेश उसे दिया जाता है जो सुनकर अंगीकार कर सके। जब तक उपदेश सुनकर अंगीकार करने वाले नहीं होते तब तक उपदेश नहीं दिया जाता इस दृष्टि से मनुष्य ही उसके पात्र हैं।

१२७६. पाप के फल के रूप में जो सम्पदा आती है उसको पुण्य के रूप में ढालने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देता है वह धन्यवाद का पात्र है।

१२७७. जो विनयवान हो, ग्रहण करने की योग्यता रखता हो, हमारी बात समझने की पात्रता जिसमें हो, उससे ही वचन व्यवहार करना चाहिए। अन्यथा मौन सदैव/सर्वत्र अच्छा साधन है।

१२७८. वीतराग धर्म सुनने से पूर्व उसके योग्य पात्रता बनाना भी आवश्यक है। जैसे सिंहनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही रुकता है उसी प्रकार वीतराग धर्म का श्रवण करके उसे धारण करने की क्षमता भी सभी में नहीं होती।

१२७९. जो व्यक्ति जितनी पात्रता रखता है हमें उसे उतना ही पढ़ाना चाहिए। हम उसे सीधे अध्यात्म आदि की बात कहेंगे तो ठीक नहीं है।

प्रभावना

१२८०. प्रभावना की ओर मत देखो, अप्रभावना से बचने की कोशिश करो।

१२८१. मन की अस्थिरता, आज्ञा का उल्लंघन, असंयम का समर्थन इन तीनों के कारण संघ संचालन या प्रभावना कभी नहीं हो सकती।

१२८२. निरीहता के साथ वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन करोगे तो जिनधर्म की अच्छी प्रभावना हो सकती है। प्रतिफल की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए, इसकी कमी होने से धर्म की क्षति होती जा रही है।

१२८३. धार्मिक अनुष्ठान का उद्देश्य मात्र कर्म की निर्जरा और धर्म की प्रभावना होना चाहिए।

१२८४. धर्म का जितना उपयोग करोगे उतनी प्रभावना होगी। धर्म की सेवा यही है। यदि कुँए को सुरक्षित रखना चाहते हो तो उसमें से पानी निकालते रहना, उपयोग करते रहना चाहिए।

१२८५. आप कहीं भी रहें प्रभावना कर सकते हैं अपनी चर्या के माध्यम से।

१२८६. पुराने लोग बड़े-बड़े मंदिर बना गये और नाम तक नहीं, ये है प्रभावना।

१२८७. शील, दान, तप के द्वारा भी प्रभावना होती है।

१२८८. भावना पूर्वक प्रभावना होती है, बिना भावना के प्रभावना नहीं हो सकती।

१२८९. निरीहता के बिना त्यागी का समाज पर प्रभाव नहीं पड़ सकता।

१२९०. व्रतों का प्रभाव पड़ता है सादगी होना चाहिए, ज्ञान मात्र प्रभावी नहीं होता।

१२९१. निरीहता के अभाव में आचार्य का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।

१२९२. ज्यादा प्रभावना की ओर जाओगे तो भावना बिगड़ जायेगी।

१२९३. भगवान् महावीर के उपदेशों के अनुरूप अपना जीवन बनाओ। यही सबसे बड़ी प्रभावना है। मात्र नारेबाजी से प्रभावना होना सम्भव नहीं है।

१२९४. हमारे अंदर यह विवेक हमेशा जागृत रहना चाहिए कि मेरे द्वारा ऐसे कोई कार्य तो नहीं हो रहे जिनसे दूसरों को आघात पहुंचे। यही सही प्रभावना का प्रतीक है।

१२९५. केवल लम्बी चौड़ी भीड़ के समक्ष प्रवचन देने से ही प्रभावना होने वाली नहीं है। प्रभावना उसके ऊपर होने वाली है जो अपने मन के ऊपर नियंत्रण करता है और सम्यग्ज्ञान के ऊपर आरूढ़ होकर अपनी यात्रा करता है।

१२९६. सम्यग्ज्ञान के ऊपर आरूढ़ होकर जो यात्रा करता है वही व्यक्ति जिनेन्द्र भगवान् के शासन की प्रभावना करने वाला है।

१२९७. निर्दोष व्रत का पालन ही मार्ग प्रभावना में कारण है।

१२९८. संसार में जो अज्ञानरूपी अंधकार फैला है उसे यथाशक्ति दूर करके जिनशासन के महात्म्य को प्रकाशित करना प्रभावना है।

१२९९. जैसे हम उत्साह के साथ घर के महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं उसी प्रकार तन-मन-धन को लगाकर उत्साहपूर्वक धर्म की प्रभावना करो।

१३००. तन से, धन से, और वचन से प्रत्यक्ष धर्म प्रभावना कर सकते हैं और परोक्ष रूप से एक स्थान पर बैठकर ''सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे'' ऐसी भावनाओं से कर सकते हैं।

१३०१. विधान/अनुष्ठान के माध्यम से जो धर्म प्रभावना होती है उससे परस्पर में वात्सल्य भाव बढ़ता है और धर्म से विमुख होने वाला धर्म के मार्ग में लग जाता है।

१३०२. जिस व्यक्ति के जीवन में जिनशासन के प्रति प्रेम नहीं, शासन के प्रति गौरव नहीं, उसके जीवन में प्रभावना होना तीन काल में सम्भव नहीं।

१३०३. परमार्थ की प्रभावना ही प्रभावना है।

१३०४. परमार्थ के लिए कोई धन का विमोचन करे, वह प्रभावना है।

१३०५. मात्र जड़ धन पैसे से धर्म प्रभावना होने वाली नहीं है। प्रभावना तो वस्तुतः अन्तरंग की बात है।

१३०६. वीतरागता की ही प्रभावना है, राग-द्वेष की प्रभावना नहीं है।

प्रतिक्रमण

१३०७. कलह को पूर्ण विराम देने के लिए अतिक्रमण का परित्याग कर प्रतिक्रमण अंगीकृत किया जाता है।

१३०८. अतिक्रमण उल्लंघन का प्रतीक है। उल्लंघित सीमा से वापस अपनी सीमा में आना ही प्रतिक्रमण है।

१३०९. अतिक्रमण से संघर्ष छिड़ जाता है, कलह व्याप्त हो जाती है, किंतु प्रतिक्रमण से संघर्ष विराम हो जाता है शांति छा जाती है।

१३१०. पर को देखना भी अतिक्रमण की क्रिया है।

१३११. प्रतिक्रमण करते समय आँखों में पानी आ जाना चाहिए कि हमने ऐसी गलती कर दी।

१३१२. जिस समय से प्राणी अपनी आलोचना करता है, वहीं समय उसके लिए चतुर्थ काल है।

१३१३. आज तक हमने जब कभी आलोचना की तो अपनी नहीं दूसरों की। भगवान् ने अपनी निंदा आलोचना के लिए कहा।

१३१४. आक्रमण दूसरों पर और प्रतिक्रमण अपने पर होता है।

१३१५. आक्रमण आत्मा को दु:ख में डालने वाला, आत्मा की निधि खोने वाला होता है। प्रतिक्रमण इससे उलटा होता है।

१३१६. प्रतिक्रमण जहाँ है, वहाँ दया, अनुकंपा विद्यमान है।

१३१७. ग्रहण में आक्रमण है और प्रतिक्रमण में वह जो ग्रहण किया उसका विमोचन। यहीं से धर्म की रूप रेखा बनती है।

१३१८. दोषों का आह्वान सो आक्रमण और दोषों को छोड़ना सो प्रतिक्रमण है। अतः किसे अपनाना है उसे आपको देखना है।

१३१९. प्रायश्चित में भावों की गहराई होनी चाहिए।

१३२०. पश्चाताप के बिना प्रायश्चित कोई मायना नहीं रखता।

१३२१. पहले मन से स्वीकार करो कि मैंने गलती की है, अपराध किया है। अकेले में आँखों से आँसू आना चाहिए।

१३२२. दोषों की पुनरावृत्ति हो उनके लिए प्रायश्चित नहीं।

१३२३. किये की फीलिंग (अनुभव) होना चाहिए वह भी प्रायश्चित का अंग है।

१३२४. मात्र उपवास से प्रायश्चित नहीं होता मन की सफाई करने को सर्वप्रथम कहा है।

१३२५. प्रतिक्रमण और आलोचना करने से समस्त व्रतों का समूह समस्त गुणों के साथ-साथ चंद्रमा की चाँदनी के समान अत्यंत निर्मल होता है।

प्रमाद

१३२६. समस्त प्रमादों में यह निद्रा नामक प्रमाद प्रबल है। यह निद्रा प्रमाद समस्त पाप को उत्पन्न करने वाला अनेक अनर्थों का सागर है।

१३२७. निद्रा को लज्जा हीन कहा जाता है।

१३२८. एक दिन का प्रमाद शेष पूरा जीवन खा जायेगा इसलिए उससे बचो।

१३२९. प्रमाद बहुत बड़ा है वह हमेशा हर जगह टांग अड़ाता है उससे बचो।

१३३०. जिसमें उपयोग बुद्धि लग जाती है वही प्रमाद है।

१३३१. कषाय का उदय रहना प्रमाद नहीं है जबकि कषाय करना प्रमाद है।

१३३२. प्रमाद के कारण संयमी भी असंयमी हो जाता है।

१३३३. यह प्राणी धर्म तो करना चाहता है, प्रमाद छोड़ना नहीं चाहता।

१३३४. पुरुषार्थ के माध्यम से प्रमाद पर नियंत्रण लाया जा सकता है। पुरुषार्थ में कमी होने ये व्यक्ति प्रमाद में आता है।

१३३५. जो वस्तु जहाँ से उठाई, वहीं रखना प्रमाद रहितता का प्रतीक है।

१३३६. कुशा की नोंक पर स्थित ओस की बूँद की तरह मानव जीवन क्षणभंगुर है इसलिए हे प्राणी क्षणभर के लिए भी प्रमाद न करो।

१३३७. प्रमाद में रहना जीवन का महत्त्व नहीं है। अतः जितने समय प्रमाद में रहते हैं वह मेरी उम्र में शामिल नहीं है।

१३३८. प्रमाद ठीक नहीं माना जाता है मोक्षमार्ग में।

१३३९. ज्यादा प्रमाद हो जाये तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति पदच्युत ही होता है, पथच्युत भी हो जाता

है।

१३४०. श्रम से मत डरों बल्कि प्रमाद से डरो।

१३४१. वीरों के पास श्रम पलता है, कायरों के पास प्रमाद।

१३४२. प्रमादी से सब घबराते हैं, पर अप्रमत्त से कोई नहीं।

१३४३. बिना प्रमाद के मोक्षमार्ग को अपनाने पर मंजिल पास होती जायेगी।

१३४४. प्रमाद-अप्रमाद होना ये सहज व्यापार है इसमें राग-द्वेष की ओर नहीं जाना चाहिए।

१३४५. हमें प्रमाद से दूर रहकर धर्मध्यान में मन लगाना चाहिए।

१३४६. पर के आहार करके, प्रमादी बनकर पर की बात करता है यह तो ठीक नहीं है।

१३४७. विकथा सम्बन्धी प्रमाद हमें नहीं करना चाहिए। जो मोक्ष चाहते हैं उन्हें निष्प्रमाद होकर रहना चाहिए।

१३४८. प्रमाद तो महाशत्रु है और ये प्रमाद असंयम की ओर ले जाता है।

१३४९. दुकान को खोल करके व्यक्ति यदि सोता है तो, वो दुकान कभी भी विकसित नहीं हो पाती है। वैसे ही आप लोगों ने अच्छी दुकान खोली है, अब इसको चलाने में आलस्य/प्रमाद नहीं करो अच्छे से इसको चलाने से आय अच्छी होती है।

प्रसन्नता

१३५०. कोई कुछ भी करे उसके प्रति वैर भाव नहीं आना ये सबसे ज्यादा प्रसन्नता की दवाई है और वैर रखना सबसे बड़ी बीमारी है। वैर नहीं रखना सबसे उत्तम बात है वैर रखना नील लेश्या का परिणाम है।

१३५१. अपनी दुकान है अपनी आमदनी ज्यादा बढ़ाना चाहिए। आमदनी बढ़ गई तो हमें प्रसन्नता होगी।

१३५२. प्रसन्न व्यक्ति को देखकर हमें प्रसन्नता होती है।

१३५३. सज्जनों की प्रशंसा नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं पर दुर्जनों की निंदा मत करो।

१३५४. प्रशंसा और ख्याति की चाहत रखना खाई में कूदना है।

१३५५. जीव को पाप से वैर से और धर्म से प्रीति रखना चाहिए।

१३५६. अपनी प्रशंसा में नहीं अपनी आत्मा की स्तुति करने में लगो।

१३५७. सबसे उत्तम स्तुति करने वाले यदि संसार में हैं तो सिद्धपरमेष्ठी हैं जो अपनी आत्मा की स्तुति में लीन रहते हैं।

१३५८. देवों को सुख तो मिलता है लेकिन वह दुःख का कारण है इसलिए है क्योंकि वह विषयों के माध्यम से सुख मिलता है वह वस्तुतः सुख नहीं है।

१३५९. प्रशंसा करने से विकास रुक जाता है।

१३६०. हमारे वैरी बाहर में और कोई भी नहीं हुआ करते हैं, पाप ही हमारा वैरी है।

१३६१. वैश्य-वृत्ति जब तक हम नहीं अपनायेंगे तब तक हमारी दुकान चलने वाली नहीं। हानि-लाभ पहले सोचना चाहिए।

१३६२. जब भी उत्साह बढ़ता है कार्य में लगना चाहिए। जैसे रेस दौड़ छोड़ने के बाद इधर-उधर नहीं देखते और बढ़ते जाते हैं ऐसे ही उत्साह बढ़ने पर और ही बढ़ते जाना चाहिए।

१३६३. आलस्य के साथ कोई भी आवश्यक नहीं करना चाहिए सभी आवश्यक प्रसन्नता पूर्वक प्रमोद भाव के साथ हमें करना चाहिए।

१३६४. पथ पर प्रयोग के बिना उत्साह नहीं रहता।

पुरुषार्थ

१३६५. हमारी यात्रा पूर्ण नहीं हो ऐसा नहीं है, सही दिशा में पुरुषार्थ और उचित संपर्क सूत्र स्थापित करना यात्रा पूर्ण करने के लिए आवश्यक है।

१३६६. कर्मों की बाढ़ में यदि हम अपने आपको सम्भाल लेते हैं, तो यह हमारा सम्यक पुरुषार्थ माना जायेगा।

१३६७. परिश्रमी के लिए रात्रि भी दिन के भाँति प्रकाशवान होती है।

१३६८. पुरुषार्थहीन के लिए दिन भी रात्रि के अंधकार के समान हो जाता है।

१३६९. रागी चिंता में रात बिताता है, वीतरागी रात्रि में भी चिंतन करते हैं।

१३७०. प्रतीक्षा हमेशा सिर दर्द की सम्पादिका है, अतः हर क्षण को कार्य में पुरुषार्थ के साथ उपयोग करें।

१३७१. प्रतीक्षा की ओर चले जाओगे तो पुरुषार्थ कम हो जायेगा।

१३७२. आप लोग बातों बातों के लिए हिल जाते हैं किन्तु कार्य करने के लिए नहीं हिलते। योजनाएँ बहुत बनाते हैं परन्तु सरकार भगवान् भरोसे होती है।

१३७३. आदर्श को सामने रखने मात्र से काम नहीं होता किन्तु आदर्श को सामने रखकर तदनुरूप पुरुषार्थ करने से काम होता है।

१३७४. जैसे आप अपने जीवन में वित्त के लिए पुरुषार्थ करते हो वैसा आत्मोत्थान के लिए भी धर्म पुरुषार्थ करो।

१३७५. यदि कल के दिन को उज्ज्वल देखना चाहते हो तो आज के दिन पुरुषार्थ करो।

१३७६. दुनिया के उद्यम नहीं, कर्म निर्जरा का भी एक उद्यम है। इस प्रकार का उद्यम करेंगे तो निश्चित रूप से कर्म निर्जरा होगी।

१३७७. बुराई के लिए पुरुषार्थ नहीं, अच्छाई के लिए पुरुषार्थ आवश्यक है।

१३७८. अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ का फल तो हमने अनन्त बार भोग लिए, पर धर्म पुरुषार्थ

का फल प्राप्त नहीं किया।

१३७९. अर्थ तथा काम पुरुषार्थ जब हावी हो जाते हैं, तब अधोगति की ओर मुख हो जाता है। इनको मुख्य नहीं बनाना।

१३८०. आज अर्थ पुरुषार्थ मुख्य हो गया है। इसमें परिग्रह संज्ञा २४ घंटे उद्दीप्त रहती है।

१३८१. पुरुषार्थ दिमाग के साथ करो।

१३८२. दिमाग को निरावाध रखो, आबाद रहोगे।

१३८३. हम लोग उद्यम करते हैं पर राग-द्वेष के माध्यम से। वीतराग के माध्यम से भी उद्यम करो आप सफल होंगे।

१३८४. संसारी प्राणी रात दिन उद्यम करता है पर धार्मिक क्षेत्र में पगडंडी ढूँढ़ लेता है। हमें रास्ता वही चलना चाहिए जो मंजिल तब पहुँचा दे।

१३८५. काल के भरोसे कोई कार्य नहीं होता। काल के निमित्त से कार्य पूरा हो सकता है। प्रत्येक समय अपने को अपनी तरफ से अपने मन, वचन, काय से उद्यम करना चाहिए। कर्म के प्रति लगाव से काल लब्धि होती है।

१३८६. मन में कार्य की पवित्रता का ध्यान रखकर उद्यम करो, अवश्य सफलता मिलेगी। मोक्ष तो होने वाला है पर पुरुषार्थ करना होगा।

१३८७. कोई भी कार्य हो उसे विधि पूर्वक करने से सफल होते हैं। विधि पूर्वक करने का अर्थ यह है कि जो क्रिया पहले करने योग्य है, उसे पहले ही करना, जो बाद में करने योग्य हो उसे बाद में करना और जो बीच में करने योग्य है उसे बीच में ही करना। यह विधि है अपनी आत्मा पर भी विधिपूर्वक संस्कार के साथ समय पर विधि पूर्वक कार्य करो।

१३८८. अच्छा फल चाहते हो तो योग्य संस्कारों के साथ समय पर विधिपूर्वक कार्य करो।

१३८९. समय पर मितव्ययिता के साथ जो विधिवत् कार्य करता है उसी की दीपावली सफल होती है। यदि विपरीत विधि से कार्य होता है तो दिवालिया भी हो सकता है।

१३९०. मोक्ष पुरुषार्थ कर्म है और मोक्ष उसका फल है। मोक्ष पुरुषार्थ उस मोक्ष फल को प्राप्त करने की साधना है।

१३९१. अर्थ का अर्जन तो सभी देशों में होता है, परन्तु अर्थ पुरुषार्थ भारत देश में होता है।

१३९२. पुरुषार्थ का अर्थ है करने योग्य कार्य को करना और न करने योग्य कार्य से विराम ले लेना।

१३९३. अर्थ पुरुषार्थ करने वाले भारतवासियों! इस बात का जरूर ध्यान रखना कि-''जीवन के लिए धन है न कि धन के लिए जीवन।''

१३९४. प्रत्येक बूँद में क्षमता है विराटता की किन्तु पुरुषार्थ नहीं करने पर सागर बनना संभव नहीं। विराटता की कोई दरार नहीं, विराटता में कोई दीवार नहीं।

पुरुषार्थ/श्रम

१३९५. विद्या, ज्ञान की प्राप्ति चाहते हो तो सुख को ही आराम दे दो, उसे भूल जाओ। परिश्रम को फूलमाला के समान अपनालो तभी अपने जीवन में कुछ उद्धार कर सकते हो।

१३९६. ज्ञान तथा वित्त भी न हो तो भी परिश्रम के द्वारा ख्यातिवान को भी कुछ समय के लिए नीचे बिठा सकते हो।

१३९७. ऐसे श्रम अपनाओ जिससे स्व पर हित हो।

१३९८. श्रम वीरों का आभूषण है।

१३९९. अभीष्ट की प्राप्ति बिना श्रम के नहीं।

१४००. केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रम करे, वही श्रमण है।

१४०१. जो घड़ी की तरफ देखकर काम करने वाले हैं, उन्हें श्रम का फल तो इष्ट है, पर श्रम इष्ट नहीं है। वे चाहते हैं कि पसीना तक नहीं आवे और बढ़िया-बढ़िया खाने को मिले, ऐसे लोग एक समय भी सुख का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

१४०२. जो व्यक्ति केवल श्रद्धान करते हुए बैठा है और पुरुषार्थ की ओर अपने कदम नहीं उठा रहा है वह अपने कर्म निर्जरा की ओर ध्यान नहीं दे रहा है।

१४०३. मोक्षमार्गी को हमेशा-हमेशा द्रव्यगत नहीं भावगत पुरुषार्थ करना चाहिए। आप अपने प्रत्येक समय परिणामों को टटोलो, चलते फिरते, उठते बैठते हमेशा विपाक विचय धर्मध्यान करो।

१४०४. गिरते हुए कोई व्यक्ति उठ जाता है तो हमें उसके पुरुषार्थ को देख करके सीख लेना चाहिए, उसके देखने से हम गिरने से बच जाते हैं। दूसरों को देखकर भी हम संभल जाते हैं।

१४०५. कर्मों के वेग को कमजोर करने का नाम पुरुषार्थ है।

१४०६. आत्मा की शक्ति को उभारना आत्म पुरुषार्थ है।

१४०७. कर्मोदय में होने वाले भावों के ज्ञाता-दृष्टा बस रहो, उसे देखते रहो। यही पुरुषार्थ करो तो मैं शत-प्रतिशत नम्बर दे दूँगा।

१४०८. जो व्यक्ति सौ प्रतिशत नम्बर लेना चाहता है वो हमेशा मेहनत भी सौ प्रतिशत ही करता है।

१४०९. आत्म शोधन ही दीक्षा की उपलब्धि है, उसे निरंतर बनाये रखना ही पुरुषार्थ है, सच्ची साधना है।

बुद्धि, मन

१४१०. आप बुद्धि चलाओ तो समय बचाकर कुछ कर सकते हो।

१४११. हमारी बुद्धि यदि हमारा साथ नहीं दे रही तो दूसरे की बुद्धि भी साथ नहीं देगी।

१४१२. मन का अर्थ बचपन है। जब बड़े हो जायेंगे तो मन काबू में आ जायेगा। यदि मन काबू में नहीं होता तो पचपन में भी बचपन ही रहता है। बच्चों जैसे ही हो जाते हैं।

१४१३. मन दिखता नहीं उसका नाम अंतरंग है वह भीतर रहता है लेकिन जो बहार दिखता है उस सबको वह वशीभूत कर लेता है।

१४१४. मन को जो वशीभूत कर लेते हैं वही हमारे आराध्य होते हैं। ऐसे आराध्य की आराधना करने वाले भक्त हो जाते हैं इस लिए मन को जिन्होंने जीत लिया है उनके पास जाया करो, गाड़ी मोटर नहीं है तो पैदल ही आया जाया करो।

१४१५. बुद्धि के माध्यम से समझें और पैरों से आचरण की ओर जायें। पैरों से यदि आचरण की ओर कदम नहीं बढ़ेगा तो मात्र बुद्धि से कुछ नहीं होने वाला।

भाव

१४१६. योग्यता को बढ़ाने के लिए भाव प्रधान होना चाहिए।

१४१७. देश की रक्षा, उन्नति, समृद्धि चाहते हो, देश को आदर्श बनाना चाहते हो तो आदर्श भाव का संग्रह आवश्यक है।

१४१८. धन सफेद होता है लेकिन आप लोगों ने धन को भी काला बना दिया। भाव काले होते हैं तो धन को भी आरोपित किया जाता है कि काला धन है।

१४१९. गुरुजी (आचार्य ज्ञानसागर महाराज) ने कहा था–एक भाव रखो इससे दूर-दूर से ग्राहक आते हैं। विज्ञापन मत दो।

१४२०. विज्ञापन में करोड़ों खर्च क्यों करते हो एक भाव रक्खोगे तो ग्राहक आते रहेंगे चारों तरफ से।

१४२१. एक भाव रखों तो दिन अच्छे आयेंगे यदि एक भाव रखना कठिन है तो अच्छे दिन कहाँ से आयेंगे।

१४२२. सामने वाले के परिणाम भी खराब न हों, अपने भी न हों और काम हो जाये ऐसा ही कार्य करते जाओ।

१४२३. यह व्रत, संयम, त्यागमय जीवन सौभाग्य से मिला है, इस प्रकार सोचते हुए प्रतिक्षण आह्लाद का भाव आना चाहिए।

भावना

१४२४. भावना भाई जाती है पहले, बाद में ध्यान होता है। तीर्थंकर जैसे भी बारह भावना भाते हैं, उसके बिना वे भी घर से बाहर नहीं निकलते।

१४२५. वैराग्य भावना भी माँ के समान है, जो बच्चे को घर से बाहर निकालती है प्रेम से चलो बेटा अब घर से बाहर चलो।

१४२६. अच्छी-अच्छी भावनाओं को भाना। सात्विक भाव से साधना द्वाराकर्म निर्जरा करते रहना।

१४२७. अहंकार के साथ संवेदन की धारा टूटती है लेकिन भावना के साथ संवेदन की धारा जुड़ती है।

१४२८. सबसे महान् भावना है अपने को भूल जाना।

१४२९. आपकी बुद्धि की स्थिरता जितनी होगी, एकत्व भावना उतनी ही अच्छी चलेगी। इसके लिए बड़ी धीरता की गंभीरता की आवश्यकता है।

१४३०. अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति एकत्व और अन्यत्व भावनाओं को नहीं भा सकता है उसकी यह कमजोरी है।

१४३१. भावना के माध्यम से जो अपना आत्मतत्त्व दूषित है, एक प्रकार से धूमिल है, हम उसे उज्ज्वलता /निर्मलता दे सकते हैं।

भारत का इतिहास

१४३२. पहले के लोग पढ़े-लिखे कम थे लेकिन विवेक के साथ कार्य करते थे।

१४३३. भारतीय इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत में सब तरह का अनाज, कपास आदि सबका उत्पादन होता था तथा वह सब जगह अन्य देशों में निर्यात हो जाता था और बदले में क्या लेते थे? वे बदले में सोना, चाँदी, हीरा-मोती, माणिक आदि लेते थे। निराश्रित होकर अर्थात स्वावलम्बी जीवन पहले के लोग जीते थे यह महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं।

१४३४. आज तो धन ज्यादा खर्च करने पर भी अच्छा ही माल मिले इसके बारे में कुछ कह नहीं सकते। महँगी वस्तुएँ एक से एक बाहर से मंगाते हैं और अपने आपको सेठ साहूकार कहते हैं।

१४३५. आज कितने पराश्रित हो गये हैं आप लोग आज फसल प्राप्त करने के बाद बीज रूप नहीं रख सकते अनाज को क्योंकि वह काम की नहीं है। बीज राख फल भोगवे ज्यों किसान जग मांहि यह पंक्तियाँ ही समाप्त हो गईं।

१४३६. गाय एक चरने वाला प्राणी है उन्हें रोटी खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती चारे की आवश्यकता है। चारा आज नहीं मिलने से गाय भी बेचारी हो गई है।

१४३७. घी-मूत्र में गुणवत्ता है जब गाय जंगल-जंगल में चरती है तब आती है। घूम-घूम करके झरनों, नदियों का जल पीकर आती है, तभी गुणवत्ता युक्त मूत्र उपलब्ध होता है।

१४३८. धीरे-धीरे गायों का जंगलों में चरना बंद हो गया रोटी आदि खिलाने लगे अब तो तेल पिला कर घी प्राप्त करना चाहते हैं जो संभव नहीं।

१४३९. आप केवलज्ञान ज्योति की जय बोलते हैं और अपनी ज्योति मिथ्या रखे हुए हैं। घी और मूत्र दोनों का उपयोग नेत्रादि में लगाने से ज्योति आदि बढ़ती है।

१४४०. भारतीय चिकित्सा गाय के घी और मूत्र पर आधारित है।

१४४१. आज औषध को ज्यों का त्यों बनाये रखने के लिए अल्कोहल का प्रयोग होता है। उसी से दवाइयाँ भी बनाई जाती हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों में अल्कोहल का प्रयोग नहीं बताया है। वहाँ तो गौमूत्र का उपयोग बताया है वे कहते हैं कि इसके बिना औषध की क्षमता, गुणवत्ता सुरक्षित

नहीं रह सकती। गुणधर्मों को लेकर औषध का निर्माण होता था।

भारतीय चिकित्सा

१४४२. भारत को छोड़कर जितनी भी चिकित्सा पद्धति है उनमें रिएक्शन होता है। भारतीय चिकित्सा पद्धति में कोई भी रिएक्शन नहीं।

१४४३. विदेशी दवाइयाँ तो मरती भी हैं एक्सपायरडेट होती हैं लेकिन रोगी तो बना रहता है।

१४४४. भारत का इतिहास सब जगह काम कर जाता है क्योंकि सब के काम का है। इसलिए भारतीय इतिहास पढ़कर वस्तु स्थिति समझिए तथा विदेशी संस्कृति का समर्थन न करिये।

१४४५. शिक्षा के साथ-साथ चिकित्सा भी प्रयोग के ऊपर निर्भर है।

१४४६. रोगों का निष्कासन करने के लिए औषध का प्रयोग किया जाता है। आज न तो रोग ठीक हो रहा है न उपयोग ठीक हो रहा है क्योंकि प्रयोग नहीं हो रहा है।

१४४७. पहले वैद्य वगैरह दवाई का प्रयोग करके देखते थे फिर दवाई दूसरों को देते थे। स्वयं अपने हाथों से औषधि निर्माण कर अनुभव करते थे फिर अपने हाथ से कितना, कब, किसके साथ औषध देना यह ध्यान रखते थे।

१४४८. औषध पथ्य के साथ रस संयोजन के साथ, परहेज को ध्यान में रखकर सेवन करता है तो वह औषध रोग को ठीक कर सकती है।

१४४९. आज का विज्ञान वर्षों लग जायें तो भी व्यक्ति को स्वस्थ नहीं कर सकता और जिसको मंत्र सिद्ध हो गया वह एक बार में ही ठीक कर सकता है इसको बोलते हैं संस्कारित शिक्षा।

१४५०. आज शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, शिल्पकला, हस्तकला आदि-आदि सभी क्षेत्रों में आप लोग पिटते/पिछड़ते चले जा रहे हैं इन सबका कारण है शिक्षा का आधार सही नहीं होना।

१४५१. हम जैसा पढ़ते, सोचते, सुनते हैं वैसा जीवन बनता जाता है।

१४५२. शिक्षा व चिकित्सा क्षेत्र की विकृतियाँ संस्कार के माध्यम से ही निकल सकती हैं।

१४५३. औषधि रखने के पात्र कैसे होना चाहिए इसका भी महत्त्व है। आज तो सब प्लास्टिक में रखते हैं। आयुर्वेदिक में सोना, तांबा, पीतल, लोहा आदिक पात्रों में घिसकर दवाइयाँ बनती थी।

१४५४. आज तो दवाई रखने के पात्र ऐसे हैं कि उसमें जीवों की उत्पत्ति अवश्य होती है। प्रदूषण से बचा ही नहीं सकते।

१४५५. आज पोटेंसी बढ़ाकर दवाई देते हैं जैसे चार दिन की दवाई डोज दो दिन में देते हैं लेकिन रोगी के पास वह डोज सहने की क्षमता नहीं होने से रिएक्शन हो जाते हैं, रोगी कभी-कभी तो बच ही नहीं पाता है।

१४५६. दवाइयों की पोटेंसी गुणवत्ता का अनुपात होना चाहिए।

१४५७. आज केमिकल्स रसायन से दवाई बनती हैं। पहले धातु से, जड़ी-बूटियों से दवाइयाँ औषध

तैयार की जाती थी।

१४५८. एलोपैथी दवाइयों में एक्सपायरडेट होती है लेकिन आयुर्वेदिक में ऐसा नहीं है। आयुर्वेदिक में तो जितनी पुरानी उतनी अच्छी व गुणकारक वस्तु मानी जाती है।

१४५९. एलोपैथी दवाइयों से रिएक्शन होता है किन्तु आयुर्वेद औषध से रिएक्शन नहीं, प्रतिक्रिया नहीं होती। हाँ परहेज जो बताया वह जरूरी है।

१४६०. जैसे पारे की भस्म के साथ खटाई का योग हो जाये तो पुनः पारा बन जाता है। अतः खटाई से परहेज आवश्यक है यदि परहेज नहीं किया जो प्रतिक्रिया होगी।

१४६१. होम्योपैथी में वात, पित्त, कफ की कोई चर्चा नहीं है, आयुर्वेदिक में भारतीय चिकित्सा पद्धति से वात, पित्त, कफ को लेकर चिकित्सा होती है। उसमें स्कोप होना चाहिए।

१४६२. आयुर्वेदिक शास्त्र वात, पित्त, कफ पर आधारित हैं। पहले देखकर भी चिकित्सा होती थी, रोगी के अभाव में भी चिकित्सा होती थी।

१४६३. वात, पित्त, कफ इससे शरीर चलता है। जैसे वात है तो पेट का, मस्तिष्क का आदि ८४ प्रकार के वात का वर्णन कल्याण कारक ग्रन्थ में है।

१४६४. रक्त में भी वात होता है वह दूषित हो जाता है तो कैंसर आदि होते हैं। यह रक्त शोधक दवाइयों से दूर हो सकता है।

भाषा

१४६५. संस्कृत भाषा का मस्तिष्क के विकास में बहुत योगदान है अंग्रेजी का ऐसा नहीं।

१४६६. संस्कृत भाषा सभी भाषाओं का केन्द्र है।

१४६७. जिस भाषा में हम बोलते हैं उसी भाषा के शब्दों का प्रयोग करें इससे भाषा की निर्दोषता मानी जाती है ये ध्यान का विषय है।

१४६८. संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द विभक्ति के साथ होता है इसलिए उसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं होता और उसको कहीं भी रखा जाये वह अर्थ पूर्ण होती है इसलिए संस्कृत भाषा व्यापक है, अमर है।

१४६९. यदि हम भाव समझना सीख लें तो भाषा समझने की आवश्यकता नहीं होती। आज भाषा के भाव प्रायः समाप्त हो रहे हैं, हमने दूसरों की आँखों के भाव पढ़ना ही बंद कर दिये हैं। संवेदनाएँ समाप्त सी हो रही हैं और अकारण प्रतिस्पर्धा का अंतहीन सिलसिला चल रहा है।

१४७०. कोई अपनों से प्रतिस्पर्धा नहीं करता यदि आगे बढ़ना है तो अतीत से प्रतिस्पर्धा करना जरूरी है।

१४७१. अपने से बड़ों से और ज्ञानी से प्रतिस्पर्धा करना अविवेकपूर्ण है जबकि लोग इसे ही विवेक समझ रहे हैं।

१४७२. आचार्य जो उपदेश देते हैं उसमें भाषा नहीं भावों का महत्त्व होता है। वे सदैव श्रेष्ठ कर्म की शिक्षा देते हैं चाहे भाषा कोई भी हो। ये हम तभी समझ सकते हैं जब एकाग्रता से भावों को समझें।

१४७३. सबसे ज्यादा एकाग्रता से पढ़ने और लिखने वाले विद्यार्थी (अव्वल) प्रथम आते हैं। इसी तरह एकाग्रता से धर्म, ज्ञान, शिक्षा, संयम, उचित व्यवहार, परोपकार, दान करने वाले भी जीवन में अव्वल होते हैं।

१४७४. अपनी आंतरिक शक्ति को उद्घाटित करना ही सफलता की कुंजी है।

१४७५. भाषा व साहित्य के आधार पर ही आचरण सुरक्षित रह सकता है यह भाषा ही काम में आती है आगे बढ़ने में, लिखने से नहीं, बोलने से ही भाषा का प्रभाव पड़ता है।

१४७६. जीवन में भाषा का क्या प्रयोजन है? अच्छाई के रूप में यदि प्रयोजन चाहते हो तो उसके गुणधर्म अवश्य देखें।

१४७७. व्यक्ति की पहचान उसकी बोल-चाल सोच विचार आदि के ऊपर आधारित है। मात्र पढ़े-लिखें है इससे नहीं किन्तु उसका विचार क्या है? उसका प्रभाव कितना है? बहुत व्यक्तियों के लिए उसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो रहा है? चार-पाँच व्यक्तियों पर प्रभाव बता दो तो मैं इसको कभी स्वीकार नहीं करूँगा क्योंकि पाँच व्यक्तियों का नाम विश्व नहीं है। अपने यहाँ मार्गणा का कथन आता है।

१४७८. आपका जो विपुल साहित्य है जिसे आचार्यों ने प्राकृत व संस्कृत में लिपिबद्ध किया है वह विदेशी भाषा का प्रभाव पढ़ने से यदि उपयोग नहीं किया गया तो उसको पढ़ेंगे, लिखेंगे, सोचेंगे, बोलेंगे नहीं तो वह रद्दी के बराबर हो जायेगा।

१४७९. ज्ञान का प्रवाह तभी तक रहता है जब तक उसका अध्ययन, अध्यापन प्रयोग होता है यदि ये नहीं है तो भविष्य अंधकारमय होने वाला है।

१४८०. विषय मुख्य रखो तथा भाषा गौण रखो।

१४८१. हमें पदार्थ नहीं भटका रहा है किन्तु ज्ञान भटका रहा है।

१४८२. भगवान् और गुरु तो कभी कभी मिलेंगे पर ये सूत्र जिन वचन तो जहाँ बैठे वहीं साथ हैं।

भाषा माध्यम

१४८३. किसी पात्र में धार नहीं होती धार तो जलधारा में होती है। धार का माध्यम पिलाने वालों और पीने वालों के ध्यान में रहना चाहिए।

१४८४. माध्यम मध्य शब्द से आया है यदि माध्यम शिक्षा का रखते हो तो सही है, सरल हो, सार्वजनिक हो।

१४८५. रुचि, उत्साह, प्रीति यदि नहीं है तो प्रतीति में आने वाली वस्तु नहीं होती। रुचि के बिना वह

पचेगा नहीं।

१४८६. रुचि, लगन, इच्छा शक्ति दृढ़ है, तो सफलता अवश्य मिलेगी।

१४८७. हर क्षेत्र में समय और समझ दोनों आवश्यक है।

१४८८. भाषा का आग्रह माध्यम के खिलाफ है।

१४८९. १२वीं कक्षा तक माध्यम सरल होनी चाहिए।

१४९०. माध्यम मध्यम है हम जब तक सुनते हैं उसमें मध्यम नहीं रहता तो सुनने की प्रक्रिया सही नहीं होती।

१४९१. वीणा के तारों को ज्यादा कसोगे तो भी नहीं और ढीला छोड़ोगे तो वह आवाज नहीं देगा जब हम मध्यम न ज्यादा न कम रखेंगे तभी हम उसका आनंद ले सकते हैं।

१४९२. शोध में यदि हम कहते हैं कि हम जो माध्यम देंगे उसी में लिखना होगा ये असमझदारी है, आग्रह है।

१४९३. आज आगाह पर माध्यम उतर गया।

१४९४. पृष्ठों की बात पीठ पर लादे फिरो।

१४९५. पुस्तिका में मात्र संकेत है। आनंद का अनुभव पुस्तिका को नहीं।

१४९६. समझदार समझ को अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है।

१४९७. समझने वाला बालक और समझाने वाला वृद्ध था लेकिन माध्यम से अनूठा काम हो गया।

१४९८. रुचि सम्यग्दर्शन का सूचक है। अरुचि पूर्वक किसी को बाध्य नहीं। रुचि के साथ बैठता है तो मेल होता है।

१४९९. माध्यम का संकेत यदि रुचि के साथ जुड़ते चले जाते हैं तो अपने आप सब कुछ समझ में आ जाता है।

१५००. माध्यम विवेकशील होना चाहिए। माध्यम बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द है।

मन

१५०१. यह मन दूसरे का स्वामी बनना चाहता है तो इस मन के कान पकड़ लेना चाहिए। स्वामी बनना है तो अपने स्वामी बनो इस प्रकार कह करके मन को समझा देना चाहिए।

१५०२. सबसे ज्यादा खराब यह मन है। इस मन के कारण ही इन्द्रियाँ विषयों की ओर चली जाती हैं। लेकिन ये मन कभी नहीं पिटता है इन्द्रियाँ पिट जाती हैं।

१५०३. मन सबका नियन्ता है। इस मन को नियंत्रण में रख लो तो सारी इंद्रियों को नियंत्रण में रख सकता है।

१५०४. इस मन को वश में रखने के लिए अंधे बन जाओ बहरे बन जाओ, गूंगे बन जाओ, बस इस प्रकार जो करना जानता है वो व्यक्ति साधना कर जाता है।

१५०५. धर्मध्यान सरल है तो बहुत कठिन भी है। ये सब मानसिकता का खेल है।
१५०६. जो मन को जीत लेता है तो वो ४ प्रकार के धर्मध्यान, चार शुक्ल ध्यान को ही करता है।
१५०७. जिसने मन को जीत लिया उसका हर समय धर्मध्यानमय रहता है।
१५०८. मन अपने निर्णय से दूसरे को समझाने का सदा प्रयास करता है लेकिन मोक्षमार्ग में पहले अपने आपको समझाना चाहिए फिर दूसरे को समझाना चाहिए।
१५०९. मन अनुकूलता पसंद करता है प्रतिकूलता नहीं।
१५१०. अपने मन को वश में करने वाले ही महात्मा माने गये हैं।
१५११. मन को वश में करने का अर्थ मन को दबाना नहीं है, बल्कि मन को समझाना है। मन को समझाना, उसे प्रशिक्षित करना, तत्त्व के वास्तिविक स्वरूप की ओर जाना ही वास्तव में, मन को अपने वश में करना है।
१५१२. जिसका मन संवेग और वैराग्य से भरा है वही इस संसार से पार हो सकता है।
१५१३. जैसे घोड़े पर लगाम हो तो वह सीधा अपने गन्तव्य पर पहुँच जाता है। ऐसे ही मन पर यदि वैराग्य की लगाम हो तो वह सीधा अपने गन्तव्य मोक्ष तक ले जाने में सहायक होता है।
१५१४. जो मन पर लगाम लगाने का आत्म पुरुषार्थ करता है वही संयमी हो पाता है और वही कर्म के उदय को, उसके आवेग को झेल पता है।
१५१५. इन्द्रियों को जीतना सेमीफाइनल है। और मन पर विजय पाना फाइनल है। इन्द्रियों को जीतने वाला सेमीफाइनल जीतता है और मन पर विजय पाने वाला फाइनल जीतता है। फाइनल जीतने पर पुरस्कार मिलता है।
१५१६. मन अदृश्य है किन्तु सबको अधीन में रखता है, संसार में नचा रहा है।
१५१७. मन और इन्द्रियों पर अपना अधिकार है तो मोक्षमार्ग पर जा सकते हैं। और इनके अधिकार में हम हैं तो मोह मार्ग पर चल रहे हैं। यह निर्णय स्वयं का है कि हमें अधिपति होना है या दास बने रहना है इनका।
१५१८. मन की आराधना छोड़कर हमें मन को आत्मा की आराधना की ओर लगाना है।
१५१९. धारणा बनाते ही धारण करने की क्रिया आरंभ हो जाती है।
१५२०. इन्द्रियाँ बूढ़ी होने पर भी मन जवान है वह काम कराता रहता है।
१५२१. इन्द्रियाँ और कषाय, ध्यान और गुप्ति से डरती हैं।
१५२२. मन का साथ देने से अविवेक काम करता है विवेक नहीं।
१५२३. मन की प्रतिकूल सोच सारे भावों को प्रतिकूल बनाती है। अत: मन को समझने की बात है, मन को समझाया जाता है। यह व्यवस्था विवेक के ऊपर आधारित है।
१५२४. मन में आई अनुभूति, उद्वेगों को अगर संयम के साथ विवेक से वश में कर लें तो क्रोध रूपी

अग्नि मन में नहीं जल सकती और क्षमा भाव का उदय हो सकता है।

१५२५. मन को सन्तुलित करके रखा जाये तो उस पर काबू पाना आसान है।

१५२६. मन के ऊपर नियंत्रण असंयम से नहीं संयम से होता है।

१५२७. मन को वर्तमान की तरफ नहीं, वर्धमान की तरफ ले जाने की आवश्यकता है।

१५२८. जिनके जीवन में घृणा, ईर्ष्या, कलह-क्लेश, दुर्भावनाएँ रहती हैं वह व्यक्ति उतना ही अधिक मन से रुग्ण रोगी होता है।

१५२९. मन को चिकित्सा हेतु आवश्यक है कि आप अपने मन को दुर्भावनाओं से दूर रखें एवं सभी के प्रति मैत्री , प्रमोद, करुणा की भावना से मन को भरना होगा।

१५३०. जिस व्यक्ति का मन जितना अधिक चंचल होता है, उसका मन उतना ही अधिक अस्वस्थ रहता है।

१५३१. बारह सौ भावना भाने से मन नहीं लगता, बारह भावना भाना चालू कर दो अभी मन लग जायेगा।

१५३२. बाहर की ओर यदि मन जा रहा है तो निश्चित रूप से वह मन दूसरों का चाकर बनेगा और आपको वह बार-बार बाध्य करेगा।

१५३३. मन का विषय गौण रूप से बहुत कुछ है लेकिन मुख्य रूप से मन का विषय मान है।

१५३४. दुनिया में संघर्ष मन के माध्यम से हुआ करते हैं और हर्ष भी प्राय: करके मन के माध्यम से हुआ करते हैं।

१५३५. मन कभी भी समझना नहीं चाहता, मन तो हमेशा समझाना चाहता है उसी का नाम मान है।

१५३६. आत्मा समझना चाहती है तो आत्मा को कह दो कि मन की बात मत सुनो। फिर भी वह मन आत्मा को अपने घेराव में ले लेता है।

१५३७. मन आत्मा को अपने घेराव में लाता है और उससे नौकरी-चाकरी कराता रहता है।

१५३८. यदि सुख को प्राप्त करना चाहते हो तो मन को वशीभूत कर लो।

१५३९. मन स्वस्थ है तो सब कुछ स्वस्थ है और मन यदि अस्वस्थ है तो फिर कोई भी स्वस्थ हो ही नहीं सकता।

१५४०. कहते हैं, मन नहीं लग रहा है, ये बड़ी बीमारी है। सब कुछ लग रहा है और मन नहीं लग रहा ये क्या है? राजरोग बोलना चाहिए इसको।

१५४१. आत्मा तो मान लेती है लेकिन मन नहीं मानता है।

१५४२. मन कहाँ पर मानता है बताओ? मान मिलता है तो वह मान लेता है।

१५४३. मन नहीं माना बताओ कितनी मात्रा में चाहिए किलो में या टन में?

१५४४. मन का स्वभाव भूलना है उस भूल-भुलैया के साथ हम रहना नहीं चाहते हैं।

१५४५. जिस व्यक्ति को हम सारी बातें सुना दें, बता दें और वह भूल जाता है तो उस व्यक्ति के साथ रहना नहीं चाहिए।

१५४६. भूलने का स्वभाव मन का है आत्मा का नहीं।

१५४७. सबके ऊपर विश्वास करियो मन के ऊपर कभी भी विश्वास नहीं करियो, क्योंकि आँखों को धूल से बचा लो वो निर्मल रहेंगी, कानों को शब्दों से बचा लो वो निर्मल रहेंगे लेकिन मन को किससे-किससे बचाएँ ? कोई न कोई आ जाता है और भूल भी जाता है।

१५४८. मन को काम में ले लेंगे तो वह शांत बैठ जायेगा लेकिन यह होता ही नहीं है। यह साहस की बात है।

१५४९. मन में जितना बल है, वचनों के बल से वह बहुत असीम है। वचनों में जितना बल है तन के बल से वह भी असीम है। तन का बल, धन के बल से असीम है। इसलिए धन से जो काम होता है वह बहुत कमजोर होता है।

१५५०. एक ही नियंत्रित मन चाहे तो वह सब कुछ काम कर सकता है।

१५५१. तन के मल को दूर किया जा सकता है। वाणी के मल को दूर किया जा सकता है, लेकिन मानसिक मल भी है, जिसे दूर करना बहुत कठिन हुआ करता है। उसके लिए साबुन सोड़ा कहाँ से लायें?

१५५२. एक मात्र अध्यात्म ऐसा साधन है जिसके द्वारा चित्तगत सारा का सारा मल दूर हो जाता है।

१५५३. वैज्ञानिकों न इस बात को स्वीकार कर लिया है, कि मन की चिकित्सा पहले अनिवार्य है, तन की चिकित्सा करें न भी करें तो चल सकता है।

१५५४. हमारी जो दूषित मानसिकता है उसको सत्साहित्य के माध्यम से परिमार्जित किया जा सकता है।

१५५५. मन की बात मानोगे तो हमेशा-हमेशा मन आपको नचायेगा।

१५५६. मन की बात मानने वाला महामना नहीं बन सकता।

१५५७. वैसे मन बहुत कमजोर है, वह इस अपेक्षा से कि उसका कोई अंग नहीं है लेकिन वह अंग-अंग को हिला देता है। विचलित कर देता है।

१५५८. मन सबका नियन्ता बनकर बैठ जाता है। आत्मा भी इसकी चपेट में आ जाती है और अपने स्वभाव को भूल जाती है।

१५५९. इन्द्रियों को खुराक मिले या न मिले चल जाता है लेकिन मन को खुराक मिलनी चाहिए ऐसा यह मन है।

१५६०. मन भी बहुत कठोर होता है। ये ध्यान रखो मन के ऊपर भी घन पटकने वाले हम ही हैं। आत्मा को तो बचायेंगे लेकिन मन के ऊपर तो घन पटकना होगा हमें क्योंकि मन हिंसक होता है।

१५६१. स्वयं ही मर जाता है तथा दूसरे के लिए मरवा देता है।

१५६२. मन को आप काबू में रखो, आपकी शिक्षा बहुत कीमती होगी यदि मन को अधीन कर लिया तो।

१५६३. ध्यान रखो सबसे ज्यादा कमजोर ओर अनिष्टकारी कार्य हो सकता है तो वो मन के माध्यम से यहीं शिक्षा सभी ग्रन्थों में दी है।

१५६४. हमें ये चाहिए वो चाहिए इसमें कुछ नहीं रखा, रात दिन लग जाओ, मन को बचाओ, सुरक्षित रखो तथा साथ ही शरीर को भी ये बहुत बड़ा मौलिक धन है, संयमलब्धि स्थान को प्राप्त किया है तो इसी के माध्यम से।

१५६५. हमारा मन किसी न किसी के वशीभूत तो है तभी तो हमें ये चाहिए, ये चाहिए, इस प्रकार ये चाहता ही रहता है। इस चाह को पूर्ण करने की क्षमता किसी के पास नहीं इसे समझना चाहिए।

मान/ परिणाम

१५६६. भावों में मलिनता का कारण शरीर के प्रति बहुत आसक्त होना ही है।

१५६७. अवसर्पिणी काल में युग को ढलान में ही जाना है, ह्रास की ओर ही जाना है इसलिए भावों में निर्मलता बनाये रखो।

१५६८. पैसा हर जगह महत्त्वपूर्ण नहीं है यदि भावपूर्वक भगवान् को ज्वार चढ़ाई जाती है तो वह भी किसी सेठ के मोती चढ़ाने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

१५६९. वर्तमान में हम कोई बड़ी साधना नहीं कर सकते किन्तु भावों की विशुद्धि तो रख सकते हो। अतः कहीं भी रहो धर्ममय एवं विशुद्ध भावों को तो बनाये रखो।

१५७०. आचार्य कहते हैं- वर्तमान में बड़ी-बड़ी साधना नहीं कर सकते कोई बात नहीं किन्तु भावों की विशुद्धि तो रख सकते हो।

१५७१. धर्ममय विशुद्ध भावों से कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा होती है अतः वर्तमान में इसी पुरुषार्थ को करते रहें लेकिन इसमें भी अभिमान न रखें।

१५७२. हमारे लिए बुरे परिणाम घातक होते हैं इसलिए हमें अपने बुरे परिणामों को सुधार लेना चाहिए।

१५७३. भावों के फल सरस और नीरस होते हैं।

१५७४. जो व्यक्ति स्वर्ग की कामना नहीं करता वह नरक से नहीं डरता, नरक भेजने वाले भावों से डरता है।

१५७५. जब प्रतिकूल दशा आ जाती है तो उस समय अपने भावों को सुरक्षित रखने वाला महान् साधक माना जाता है।

१५७६. वस्तु का नाम सुख-दुःख नहीं है किन्तु हमारे मन में जो परिणाम है उसका नाम सुख-दुःख

है।

१५७७. हम तत्त्वज्ञान के माध्यम से इस अनंत संसार को अंतर्मुहूर्त में चुल्लू भर कर सकते हैं ऐसे परिणामों के खेल हैं लेकिन आज परिणामों के खेल कषायों के द्वारा तो हो रहे हैं लेकिन तत्त्वाभिमुख माध्यम से परिणामों के खेल नहीं हो पाते हैं।

१५७८. चेतन का उत्थान भावों की सीढ़ियों पर चढ़ने से ही ज्ञात होता है।

१५७९. जैसे योग्य खाद और पानी देना भी पौधे के लिए अनिवार्य है अकेले सहारे या बंधन से काम नहीं चलेगा, वैसे ही संयम के साथ शुद्ध भाव करना भी अनिवार्य है।

१५८०. देह सूख जाये तो सूखने दो, पर आप तो ताजा बनो, भाव निक्षेप से जैन बनो।

१५८१. त्याग, तपस्या, ज्ञान मद आदि के कारण छूने लायक नहीं रहते, संकरे हो जाते हैं, रत्नत्रय को इन आठ मदों से बचायें फिर उसकी सुगंध पाने सभी आवेंगे। दुर्लभ रत्नत्रय है ख्याति, लाभ, पूजादि नहीं।

१५८२. यदि ज्ञान ही मद का कारण बने तो फिर और कौन साधन है जो मद को मिटा सके? ज्ञान का सदुपयोग न करने से मद उत्पन्न होता है।

१५८३. मद विवेक का गला घोंट देता है।

१५८४. मद न करते हुए जीवन को व्यतीत करना महापुरुषों का, वीरों का काम है।

१५८५. हमें दुनिया को नहीं जीतना, अपने द्वारा पाले गये मद को जीतना है।

१५८६. मान के दास होना सबसे बड़ी कमजोरी है। वर्धमान ने मान को जीता है इसलिए वर्धमान नाम है।

१५८७. मान की भूख को छोड़ना महान् व्रत है।

१५८८. मदों के कारण आत्म धर्म ही समाप्त हो जाता है।

१५८९. जाति मद के कारण उपगूहन, वात्सल्य, निर्विचिकित्सा, स्थितिकरण सभी भाव समाप्त हो जाते हैं।

१५९०. जिसके पास मद आ जाता है उसका दम निकल जाता है। मद आने पर व्यक्ति झुक नहीं सकता चाहे सब कुछ लुट जावे।

१५९१. जब मान जागृत होता है तो क्रोध की अग्नि भड़कने में देर नहीं लगती।

१५९२. जो मान को जीतने का पुरुषार्थ करता है वहीं मार्दव धर्म को अपने भीतर प्रकट करने में समर्थ होता है।

१५९३. मान कषाय का विमोचन करके ही हम अपने सही स्वस्थ का अनुभव कर सकते हैं, साम्य भाव ला सकते हैं।

१५९४. जिस प्रकार टाइफाइड के उपरांत भूख खुलती है धीरे-धीरे उसी प्रकार ख्याति, पूजा, लाभ की

चाह की भूख प्रायः करके सब लोगों की खुलती है।

१५९५. यदि ख्याति चाहते हो तो मुक्ति नहीं चाहते हो।

१५९६. ख्याति के द्वारा मुक्ति मिलती हो तो चाहो, अन्यथा क्यों?

१५९७. ये विश्वास है कि मुक्ति रत्नत्रय के द्वारा मिलती है तो ख्याति की खाई क्यों बीच में आती है? यूँ कहना चाहिए खाई बीच में रखी है तो मुक्ति उस ओर है ये निश्चित है, खाई को पार किये बिना मुक्ति नहीं मिलती।

१५९८. ख्याति की खाई को पूर दो, पहले फिर तो मुक्ति के द्वार पर खड़े हैं।

१५९९. मद हो जाता है तो अंधा हो जाता है और यदि मद नहीं है तो अंधा भी ज्ञानी हो जाता है।

१६००. मान को बाँध करके रखने का जिसने प्रयत्न नहीं किया समझ लो मोक्षमार्ग में वह कभी भी आगे कदम उठा ही नहीं सकता।

१६०१. मान की निर्जरा माँ की बहुत अच्छी होती है नटखट बच्चों के माध्यम से इससे बढ़कर करके और कोई है ही नहीं।

१६०२. मानव ही महात्मा तथा महामानव बनने की पात्रता रखता है। मान मिटते ही मानव महात्मा बन जाता है।

१६०३. पाँचों इन्द्रियों भिन्न-भिन्न विषय हैं यह मान प्रतिष्ठा कौन-सी इन्द्रिय का विषय है? खुराक है? एक मात्र मन ही इसकी भूख रखता है।

१६०४. सबसे ज्यादा अनर्थ होते हैं, तो मान-प्रतिष्ठा के कारण होते हैं। इसी के कारण आज बड़े-बड़े राष्ट्रों के बीच में संघर्ष छिड़ा हुआ है।

१६०५. दीन दरिद्र को देखने से अपना मान कम हो सकता है और स्वभाव की ओर देख लें तो मान समाप्त ही हो सकता है हो जाता है।

१६०६. मान प्रतिष्ठा के कारण हमने बहुत सारे गुणों का अनादर किया।

१६०७. मानी व्यक्ति के सामने सब कुछ डूब जाता है।

१६०८. जब मान खड़ा हो जाता है, तब यह महान् अनर्थ का कार्य भी कर सकता है।

१६०९. महाभारत कब हुआ और क्यों हुआ? इसकी जड़ क्या है? क्या खाने के लिए नहीं था या रहने के लिए जगह नहीं थी? केवल मान ही इसका कारण था।

१६१०. मानी व्यक्ति अपनी पत्नि, अपनी प्रजा, अपने भ्राता को छोड़ सकता है लेकिन अपने मान को नहीं छोड़ सकता। जैसे रावण ने नहीं छोड़ा।

१६११. नरक जाना मंजूर है, लेकिन मान को कभी भी, किसी के सामने बेचूँगा नहीं। यही क्षत्रियता के लिए कलंक है।

१६१२. मान के कारण मोक्षमार्ग में दूषण लगते हैं।

१६१३. यदि आप मान की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हो, तो मान कषाय की प्रतिष्ठा मत बढ़ाओ। प्रमाण की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहिए।

१६१४. मान एक ऐसी गर्मी है, जिसके द्वारा ठंड के दिनों में भी पसीना आ जाता है। जब तक यह गर्मी रहेगी, तब तक तो अंदर हीटर जल रहा है।

१६१५. जब तक मान के शिखर से उतरेगा नहीं, तब तक उन पर ठण्ड की कोई अनुगति नहीं, न चादर की, न कमरे की, न चटाई की, किसी की भी आवश्यकता नहीं।

१६१७. मान के कारण ठंड में भी बाहर बैठ जाता है क्योंकि हमें बुलाया नहीं गया।

मोक्षमार्ग

१६१८. पैर पड़ रहे हैं वह मोक्षमार्ग नहीं है जो पैरों को एक एक अन्तर पूर्वक सावधानी से रख रहा है वह मोक्षमार्ग है उसकी ईर्यापथ शुद्धि चल रही है। मन में कोमलता के साथ जो प्रवृत्ति चल रही है वही मूलतः मोक्षमार्ग है। कोई काँटों को बचा रहा है कोई जीव को बचा रहा है काँटे को बचाने का अर्थ है अपने पैरों को बचा रहा है जो काँटे को बचा रहा है वह परीषह से डर रहा है इसलिए मोक्षमार्ग बाहर नहीं भीतर है।

१६१९. भगवान् को देखकर नकल करना है मोक्षमार्ग में दुनिया में बहुत सारी परीक्षाएँ होती हैं, उसमें हम अध्ययन करके पास होते हैं, वहाँ नकल नहीं करने देते, लेकिन हमारे ही भगवान् तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग में नकल करके पास हो जाओ। कोई कागज पेन की आवश्यकता नहीं सौ में से सौ नंबर प्राप्त करो नकल करके।

१६२०. मोक्षमार्ग में इधर-उधर की बातें नहीं, आत्मा की बातें, आत्मा का हित पूछा जाता है।

१६२१. मोक्षमार्ग बहुत सरल मार्ग है बस वैराग्य दृढ़ होना चाहिए समता और सहनशीलता होना चाहिए।

१६२२. आकुलता नहीं करना यही मोक्षमार्ग है। जिसका संवेग, वैराग्य दृढ़ है उसे कुछ भी नहीं लगता है सब बातें गौण करके शांत बैठ जाना है जिसके पास वैरागय की कमी है उसे आकुलता सताती है।

१६२३. अनुकूलता मिलने के उपरांत फूलना नहीं, प्रतिकूलता में उदासीन नहीं होना ये है मोक्षमार्ग। प्रतिकूलता-अनुकूलता से गुजरता हुआ मोक्षमार्ग है। वही मोक्ष में पहुँचता है जो इस पर चलता है।

१६२४. प्रभु ने कहा है–मोक्षमार्ग में समान रूप से सहन किया जाता है तभी मुक्ति मिलती है।

१६२५. जो परीषहों और उपसर्गों से जूझता है उसके लिए मोक्षमार्ग है इसलिए तो फिर परीषहों और आप लोगों को उपसर्गों का खड़े होकर स्वागत करना चाहिए। आस्था और संयम की कृपा से मंजिल पाते हैं।

१६२६. स्वयं को लघु समझने वाला ही बड़ों का गुणानुवाद कर सकता है। भक्ति करके गुणानुवाद करके उसी रूप बनना चाहता है यही एक मात्र मोक्षमार्ग है।

१६२७. विकल्प को छोड़ने की साधना ही मोक्षमार्ग की साधना है। विकल्प संसार जाल में फंसाने वाले हैं। विकल्प भारी शरीर की तरह है जो हमेशा पराधीन हो जाता है।

१६२८. अपमान का अर्थ है अपना नहीं, अपनी मान कषाय का अपमान हो रहा है, इसे सहना भी महान् तपस्या है। मान का ही अपमान हो रहा है और मान का ही सम्मान होता है न अपना अपमान होता है न सम्मान होता है अपना तो ज्ञातादृष्टा आतमराम है। जिसको यह समझना आ गया तो समझो मोक्षमार्ग आ गया।

१६२९. पंचेन्द्रिय एवं मन के विषयों का नाम संसार है तथा इन दोनों से ऊपर उठने का नाम ही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग में इन विषयों की उपेक्षा करना है।

१६३०. जो व्यक्ति पंचेन्द्रिय विषयों को नहीं छोड़ सकता वह मोक्षमार्ग पर कदम भी नहीं बढ़ा सकता।

१६३१. विषयों का आदर होगा तो मोक्षमार्ग का निश्चित अनादर होगा।

१६३२. मोक्षमार्ग को खरीदा नहीं जा सकता, साधा जा सकता है लेकिन साधने के लिए श्रद्धान की बड़ी आवश्यकता होती है।

१६३३. प्राथमिक दशा में मोक्षमार्ग बाहर कम भीतर अधिक है। सम्पन्न दशा में बाहर मोक्षमार्ग है ही नहीं।

१६३४. मोक्षमार्ग स्व व्यवस्थित व्यवस्था है पर की अपेक्षा रहित।

१६३५. मोक्षमार्ग में थ्योरी कम है प्रेक्टिकल अधिक है।

१६३६. ज्ञान की नहीं, निष्ठा और विशुद्धि की आवश्यकता है मोक्षमार्ग में।

१६३७. मोक्षमार्ग में आत्म संतुष्टि ही मुख्य मानी जाती है यही प्रयोजन रखना चाहिए व्रत स्वयं के लिए लिए हैं दूसरे को संतुष्ट करने के लिए नहीं लिए।

१६३८. जो संकल्प लिया है उसी पर समर्पित होना अन्य की ओर दृष्टि नहीं रखना मोक्षमार्ग में आत्म विश्वास ही काम करता है।

१६३९. प्रशासन नहीं आत्मानुशासन की बात होती है मोक्षमार्ग में।

१६४०. यदि परीषह और उपसर्ग नहीं आ रहे हैं तो समझना मोक्षमार्ग में अभी कमी है।

१६४१. अपने शरीर के माध्यम से जो बिना बोले मोक्षमार्ग का कथन कर रहें हैं ऐसे वीतरागी मुनिराज होते हैं।

१६४२. मोक्षमार्ग में तत्त्व श्रद्धान के बल पर ही आगे बढ़ सकते हैं। मोक्षमार्ग में पुण्यबंध तब तक काम का नहीं जब तक श्रद्धान नहीं।

१६४३. मोक्षमार्गी अपने दोषों को पहले नोट करता है फिर स्वयं ही उनके भगाने के लिए चौकीदारी

करता है।

१६४४. मोक्षमार्ग में सावधान का अर्थ है सार और असार का ज्ञान होना, किन्तु संसारी प्राणी सावधान है संसारमार्ग में। संसार महत्त्वपूर्ण नहीं किन्तु संसार में रहकर सावधानी महत्त्वपूर्ण हैं।

१६४५. मोक्षमार्ग विवेक के साथ ही प्रारम्भ होता है। संसारी प्राणी को भले ही दिव्य ज्ञान नहीं है परन्तु उसके पास विवेक है उसे रखना चाहिए उसी विवेक से दिव्यज्ञान की प्राप्ति होगी।

१६४६. रत्नत्रय की उन्नति सो ज्ञान का विकास है वही आत्मा का विकास है।

१६४७. पथ एक है मार्ग एक ही है जो सामने चलता है वह मुक्ति का पथ चाहता है और जो रिवर्स में चलता है वह संसार का पथ चाहता है।

१६४८. मार्ग पर चलते समय यदि कोई बोलने वाला साथी मिल जाता है तो मार्ग तय करना सरल हो जाता है। गुरु निर्ग्रंथ साधु हमारे मोक्षमार्ग के बोलने के साथी हैं। इनके साथ चलने से हमारा मोक्षमार्ग सरल हो जाता है।

१६४९. मोक्षमार्ग में गुरु ही सहायक सिद्ध होते हैं।

१६५०. गुरु हमारे लिए अदृश्य प्रभु तक पहुँचाने के लिए मार्ग दर्शाते हैं।

१६५१. मोक्षमार्ग में प्रत्येक क्रिया दूसरे के लिए नहीं अपने लिए की जाती है।

१६५२. आत्मसाधना करते हुए मोक्षमार्ग पर जिन्होंने अपने कदम बढ़ाए हैं, वह संतुष्ट प्रमुदित और अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

१६५३. रत्नत्रय वह अमूल्य निधि है जिसकी तुलना संसार की समस्त सम्पदा से भी नहीं की जा सकती।

१६५४. मोह को समाप्त करना ही मोक्षमार्ग है।

१६५५. मोक्षमार्ग बहुत सुकुमार है और बहुत कठिन भी। मोक्षमार्ग अपने लिए कठोर और दूसरों के लिए सुकुमार होना चाहिए।

१६५६. कषायों की वजह से हम दूसरों को मोक्षमार्ग कठोर बना देते हैं और अपने लिए नरम बना लेना चाहते हैं लेकिन मोक्षमार्ग तो मोक्षमार्ग है आप की इच्छा के अनुसार नहीं बनने वाला।

१६५७. मोक्षमार्ग में कोई मिल करके नहीं जाता है। मिलन सारे के सारे छूट जाते हैं उसी का नाम मोक्षमार्ग है।

१६५८. एक बार जो सोच समझकर मोक्षमार्ग में कदम रखते हैं उन्हें दूसरों के संकेत की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

१६५९. मोक्षमार्ग में लाड़ प्यार नहीं होता तो क्रोध भी नहीं होता।

१६६०. राग के द्वारा संसार के बन्धन का विकास होता है तो वीतराग भावों के द्वारा संसार से मुक्त होने के मार्ग का विकास होता है।

१६६१. मोक्षमार्ग में बिल पावर तब काम करता है जब सेल्फ कॉन्फीडेंस हो।

१६६२. मोक्षमार्ग में युक्ति बहुत अच्छा काम करती है लेकिन वह युक्ति तर्क के साथ नहीं चलती है बल्कि वह युक्ति सम्यग्ज्ञान के साथ चलती है।

१६६३. जो अपनी आत्मा की निंदा करता है, गर्हा करता है, आलोचना करता है, अपने आपको धिक्कारता है यही मोक्षमार्ग में कार्य कारी है।

१६६४. जो गुणवान है उनका गुणगान करता है, उनकी सेवा करता है, सत्कार करता है, उनका कीर्तन करता है और उनको धन्यवाद देता है कि आपके गुण हमारी दृष्टि में आ गये यह बड़ा सौभाग्य का उदय है। इस प्रकार कह करके वह मन और इन्द्रियों को जीत लेता है।

१६६५. दु:ख का विचार करो, पर सुख के मार्ग को मत छोड़ो। कंकड़ के साथ गेहूँ को भी मत फेंको, वरना रोटी नहीं मिलेगी।

१६६६. ऊँचे सिंहासन पर बैठने में पूज्यता प्राप्त नहीं होती बल्कि पूज्यता पवित्रता पावनता मात्र गुणों के विकास में, रत्नत्रय को धारण करने में है।

१६६७. विद्यार्थी, समय का सदुपयोग करते हुए समीचीन पथ पर आरूढ़ होकर स्व पर कल्याण की ओर अग्रसर हो। जवानी के जोश को होश के साथ काम में ले।

१६६८. जिस प्रकार कठिन प्रश्न होने पर ही विद्यार्थियों की कुशलता मानी जाती है, उसी प्रकार रास्ता कठिन ही होना चाहिए। मोक्षमार्ग कहता है कि जो पास है, उसका नाश हो, ह्रास हो और जो पास नहीं है, उसका विकास हो।

१६७०. मोक्षमार्ग की शिक्षा चाहते हो तो पहले संयमाचरण सम्यक्त्वाचरण चारित्र की दीक्षा लो तब शिक्षा मिलेगी।

१६७१. जब मटकी या नारियल बजा-बजा कर लेते हैं तो मोक्षमार्ग भी बजा-बजा कर लेना। टटोलो, परीक्षा करो फिर लेओ। आज तक दूसरों को टटोला, खुद को नहीं।

१६७२. जिनवाणी की आज्ञा और गुरु की आज्ञा को मानकर चलना ही सही मोक्षमार्ग है।

१६७३. रूढ़िवाद एक ऐसा जहर है जो मोक्षमार्ग रूपी अमृत में भी जहर फैला देता है।

१६७४. इस संसार से जाते वक्त दिगम्बर ही जाते हैं, घर वाले सब छीन लेते हैं। आप स्वयं जीवन में अगर दिगम्बर नहीं बनोगे तो अन्त में बना दिए जाओगे।

१६७५. रत्नत्रय ही हमारी अमूल्य निधि है। इसे ही बचाना है। इसको लूटने के लिए कर्म चोर सर्वत्र घूम रहे हैं। जाग जाओ, सो जाओगे तो तुम्हारी निधि ही लुट जायेगी।

१६७६. सम्यग्दर्शन से जिसने अपने आप को शुद्ध बनाया है वह संसार शरीर भोग से निवृत्त है तभी मोक्ष की सीढ़ी है अन्यथा मोह की।

१६७७. मोक्षमार्ग पर सब एक साथ चलते हैं ये व्यवहार से है निश्चय से तो अकेला ही चलता है।

१६७८. मोक्षमार्गी को अप्रशस्त प्रकृतियों को संवर और निर्जरा के रूप में परिवर्तित करना होता है फिर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना।

१६७९. इस धरती पर आज तक मोक्षमार्ग का प्रवाह रुका नहीं यह भी अनादि अनिधन प्रवाह है।

१६८०. मोक्षमार्ग परीषह और उपसर्ग के बिना बनता ही नहीं।

१६८१. मार्ग में कठिनाइयाँ भी होती हैं पर उसको याद नहीं रखना चाहिए ये तो होता ही रहता है।

१६८२. कठिनाइयों को पार करते चलो कठिनाइयाँ बाहर से नहीं आती हैं, कठिनाई न तो महाराष्ट्र में है, न कर्नाटक में, कठिनाई तो हमने अपने कर्म से बांधी हैं।

१६८३. कष्ट बाहर से नहीं आते ये कष्ट हमें शिष्टता और परिशिष्टता बताते हैं और सहने पर मिष्टता अपने आप आ जाती है।

१६८४. मोक्षमार्ग में दायित्व का निर्वाह स्वयं को करना होता है।

१६८५. तीर्थंकर भगवन्तों ने कठिन से कठिनतम मार्ग अपनाया, साधना की। अपने को तो कितना सरल बताया है।

१६८६. अपने ही परिणाम अपने लिए घातक हैं ये सिद्धान्त जिसके पास नहीं वह व्यक्ति मोक्षमार्ग में एक कदम भी नहीं रह सकता। ये पक्की बात है।

१६८७. रत्नत्रय लुट गया तो सब गया, अब कुछ भी नहीं बचा।

१६८८. ये मोक्षमार्ग है यहाँ हम अकेले नहीं चल रहे हैं समझे आप जाइये लेकिन एरो तीर के निशान को कम से कम बना के जाओ ताकि पीछे वाले भी पार कर सकें ये उपकार अनुकंपा के भाव वे भी कर सकें।

१६८९. वो कौन हैं क्या पता? कोई मेरे वैरी हुए तो? अरे मोक्षमार्ग में कोई वैरी नहीं होता सब साथी हैं सब साथ हैं क्या समझे? सम्यग्दृष्टि के भाव होना चाहिए यदि ये नहीं होता तो उसकी विशालता में अभी बहुत कमी है।

१६९०. जैसे विद्यार्थी कई हो सकते हैं, वे अपने को ही देख सकते लेकिन क्लास टीचर तो एक ही है ना, उनको तो पूरी-पूरी क्लास की ओर देखना चाहिए। क्लास यानि समूह है तो आप समूह को संबोधित करने जा रहे हो तो पूरे को ही संबोधित करो, लेकिन जो मोड़ पर हैं उनको पहले ले लो।

१६९१. संकीर्ण बुद्धि मोक्षमार्ग में किसी काम की नहीं। जो काम की नहीं उसे फेंक दो।

१६९२. मोह का इतना जबर्दस्त प्रभाव है कि मोक्ष जाने वालो को भी गाफिल बना देता है। उन्मार्ग पर चल रही है परिस्थिति-मोह। सन्मार्ग पर चल रही है परिस्थिति-निर्मोह।

१६९३. पंचमकाल में सही रास्ता बताने वाले जुगनू की तरह होते हैं।

१६९४. सही पुष्टि संतुष्टि तो उसे ही होती है जो आत्मा को मोक्षमार्ग में लगाता है।

१६९५. मोक्षमार्ग में हमेशा-हमेशा उत्साह युक्त होना चाहिए। वीतराग मार्ग है उसकी प्रभावना में हमेशा-हमेशा तैयार रहना उसमें प्रमाद नहीं करना।

१६९६. एक माँ जिस प्रकार २४ घंटे परिवार की रक्षा में तैयार रहती है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी अपने रत्नत्रय के माध्यम से २४ घंटा उत्साही रहे तैयार रहे।

१६९७. अपने मन की चंचलता को ठण्डे बस्ते में रखना ही मोक्षमार्ग है मन को वश में रखने वाला पुरुषार्थी होता है।

१६९८. दूसरे को दोष देना नहीं। यह हमारे कर्म का उदय है यह नहीं सोचेंगे तो मोक्षमार्गी नहीं बन सकते।

१६९९. हमारे कर्म का उदय है ऐसा सोचने वाला मुमुक्षु है।

मोक्षमार्ग, तप

१७००. मोक्षमार्ग में उन्हीं से मोह रखो जो गुणों में श्रेष्ठ हों।

१७०१. जब तक श्रावक अवस्था में हो तब तक इस बात पर विश्वास तो रखो कि जब कभी भी मोक्षमार्ग मिलेगा उस समय आपको अकेले ही होना पड़ेगा।

१७०२. जिस प्रकार आप लोग कोई भी हार आभूषण पहन लेते हैं तो उसकी सुरक्षा के साथ चलते हैं। उसी प्रकार रत्नत्रय का हार पहनने वाला व्यक्ति इस प्रकार की सुरक्षा के साथ चलता है।

१७०३. मोक्षमार्ग बहुत सरल मार्ग है बस वैराग्य दृढ़ होना चाहिए और समता, सहनशीलता होना चाहिए।

१७०४. मोक्षमार्ग टेढ़ा नहीं है। मार्ग हमेशा सीधा ही रहता है। रास्ता सीधा ही होता है, लेकिन चलने वाला सीधा नहीं हो पाता।

१७०५. आशा का विसर्जन हो इतना सरल मोक्षमार्ग है। लेकिन मोह के कारण वह विष की भाँति कठिन है।

१७०६. समयसार क्या है? समय माने आत्मा और सार माने रत्नत्रय। अर्थात् रत्नत्रय समन्वित आत्मा ही वास्तविक समयसार है।

१७०७. उत्तम क्षमा वृत्तिपरिसंख्यान तप द्वारा ही चरमसीमा को उपलब्ध होती है।

१७०८. वृत्तिपरिसंख्यान तप में भोजन मिले अथवा न मिले किन्तु गालियों का पेय तो मिलता ही है आ गया नंगा इत्यादि साधु उन गालियों को सान्त्वना पूर्वक स्वीकार कर अनेक कर्मों की निर्जरा कर डालता है।

१७०९. वास्तविक रस परित्याग तप उस समय है जब रसों में रस ही न आये।

१७१०. कायक्लेश तप ओवर ड्यूटी की तरह है। ओवर ड्यूटी करने में आनंद आता है क्योंकि अधिक लाभ की आशा है वहाँ इसी प्रकार समयसार को भी इस तप में आनंद का अनुभव होता है

क्योंकि समय से पूर्व ही अनेक कर्मों को जाना पड़ता है आत्मा को छोड़कर।

१७११. मोक्षमार्ग में कहा है–कषाय से बचो भगवान् को देखो।

१७१२. मोक्षमार्ग में अधिक पढ़ाई की आवश्यकता नहीं है भेदविज्ञान की आवश्यकता है। यदि भेदविज्ञान के रहस्य को अच्छे से समझता है तो वह मोक्षमार्ग में अच्छे से आगे बढ़ गया।

१७१३. मोक्षमार्ग में अंजनचोर जैसी दृढ़ता की आवश्यकता है।

१७१४. जिन्होंने इन्द्रियों का निग्रह नहीं किया और रत्नत्रय की बात करता है तो वो व्यक्ति ऐसा है जैसे अपने माथे से पर्वत को फोड़ने की बात करता है वो कुछ भी नहीं कर पाता है।

रक्षाबंधन

१७१५. मर्यादा का बंधन बंधन नहीं रक्षाबंधन है। यही सुखद अनुबंधन भी है।

१७१६. रक्षाबंधन के वास्तविक रहस्य के समझे बिना प्रतिवर्ष रूढ़ि की तरह इसे मनाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं, यह ठीक नहीं।

१७१७. क्यों? वात्सल्य के वशीभूत होकर, धर्म की प्रभावना हेतु, यह है सच्चा रक्षाबंधन। रक्षा हेतु जहाँ बन्धन को अपना लिया जाये।

१७१८. रक्षा के लिए जो बंधन है वह सभी के लिए मुक्ति का कारण है।

१७१९. रक्षा बंधन को सच्चे अर्थों में मनाना है, अपने भीतर करुणा को जागृत करें। अनुकम्पा, दया, वात्सल्य का आलम्बन लें। उदाहरण–आषाढ़ और सावन के काले बादलों की करुणा ही जीवन प्रदायिनी होती है। जो गरजते ही हैं बरसते नहीं उन्हें कौन पूछता है? कौन आदर देता है? कोई नहीं, हमें भी जल-भरे बादल बनना है, रीते बादल नहीं।

१७२०. रक्षाबंधन पर्व का अर्थ है हममें जो करुणाभाव है वह तन-मन-धन से अभिव्यक्त हो। एक दिन नहीं, सदैव वह हमारा स्वभाव बन जाये ऐसी चेष्टा करनी चाहिए।

१७२१. 'सत्त्वेषु मैत्री' इसका नाम है रक्षाबंधन।

१७२२. रक्षा बंधन पर्व एक दिन के लिए ही नहीं है। हमारे वात्सल्य करुणा एवं रक्षा के भाव जीवन भर बने रहे इन शुभ संकल्पों को दोहराने का यह स्मृति-दिवस है।

१७२३. ''मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे'' प्रतिदिन यह पाठ उच्चारित करते हैं। पर इस 'मेरी भावना' को व्यवहार में नहीं लाते। व्यवहार में लाने वाले महान् बन जाते हैं। उदाहरण–गाँधी जी की महानता का भी यही कारण है। वे परम कारुणिक थे। एक बार की घटना है–गाँधी जी सर्दी में अपने कमरे में रजाई ओढ़े अंगीठी ताप रहे थे। थोड़ी रात होने पर उन्हें कहीं बच्चों का रोना सुनाई दिया। बाहर आने पर उन्होंने कुछ पिल्लों को सर्दी के मारे रोता देखा। उनका हृदय रो दिया। वे उन पिल्लों को उठाकर अपने कमरे में ले आये और उन्हें रजाई ओढ़ा दी। थोड़ी गर्मी पाकर पिल्ले आनन्द से सो गये। यह थी गाँधी जी की करुणा पर आज

उनके अनुयायी 'स्व' से आगे बढ़ ही नहीं पाते।

राग-द्वेष

१७२४. राग-द्वेष हमारे अंदर होते हैं पदार्थों में नहीं होते हैं इसलिए पदार्थों को देखकर राग-द्वेष नहीं करना बस यही जीता जागता समयसार है। समयसार और कोई वस्तु नहीं है।

१७२५. पदार्थों को देखते हैं तो उस समय हमारे अन्दर के समयसार का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार करने से हम असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा कर जाते हैं।

१७२६. वैराग्य के बिना पंचेन्द्रिय के विषयों का निरोध नहीं हो सकता है। वैराग्य के साथ ही इन्द्रियों का निरोध होता है।

१७२७. राग-द्वेष नहीं करना ही सबसे बड़ी साधना है। यह साधना का मुख्य बिन्दु है।

१७२८. जितना आप द्वेष करते जायेंगे उतने आपके शत्रु बढ़ते चले जायेंगे और जितने आप हाथ मिलाते चले जायेंगे, वैसे आपके हाथ बढ़ते चले जायेंगे।

१७२९. जमकर दुश्मनी करो किन्तु इतना तो ख्याल रखो कि वक्त आने पर दुश्मन दोस्त बन जाये।

१७३०. जैसे लाइट का मीटर लगाते हैं तो लाइट जलाये या न जलाये मीटर चार्ज तो देना ही पड़ता है इसी प्रकार राग-द्वेष करो या न करो बंध तो होता ही रहेगा जब तक कषायरूपी मीटर से आपका सम्बन्ध होता है।

१७३१. जिसके पास राग-द्वेष है उसे हमेशा कर्म बंध होता रहता है। जैसे-बैंक में पैसे जमा कर दो फिर उसका ब्याज बढ़ता ही रहता है।

लक्ष्य

१७३२. वे व्यक्ति ही अपने लक्ष्य को पा सकते हैं जो अपने लक्ष्य प्राप्ति के साधनों के अलावा अन्य किन्हीं पदार्थों से न चिपके हों।

१७३३. निर्वाण का लक्ष्य रखकर ही हमारी दृष्टि प्रत्येक कार्य को करने में हो ताकि हमें एक दिन लक्ष्य प्राप्त हो।

१७३४. मंजिल पर पहुँचने के लिए उपयुक्त स्थान का टिकट लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उपयुक्त गाड़ी में बैठना भी आवश्यक है।

१७३५. जो क्रियाएँ मंजिल की तरफ नहीं ले जाती वह भटकन की कारक है।

१७३६. जब तक रोग का निदान नहीं होगा, तब तक रोगी का रोग दूर नहीं होगा। उसी प्रकार हमें भी लक्ष्य को पहले देखना होगा।

१७३७. रोग का निदान न होने पर जीरा की जगह हीरा भी खिला दे तो भी उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

१७३८. हमें लक्ष्य कमल के फूल के समान कीचड़ से अलग होने का बनाना है।

१७३९. लक्ष्य अर्थ संग्रह का नहीं पर गुणों के संग्रह का हो।

१७४०. सच्चा साधक वह है जो प्रत्येक श्वांस में लक्ष्य को सामने रखता है और लक्ष्य के विपरीत बाधक कारणों से अपने को बचाकर गंतव्य की ओर निरंतर गतिशील रहता है।

१७४१. यदि हम अपने लक्ष्य को याद रखें तो हमको समय की ओर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती, क्योंकि लक्ष्य स्वयं एक समय है।

१७४२. लक्ष्य को देखो समय को नहीं।

१७४३. हमारा जीवन लक्ष्य को निर्धारित करने पर पवित्र बन सकता है समय को नहीं।

१७४४. जो किसी कार्य में अत्यधिक डूबा हो उसे लोग पागल कहते हैं। यहाँ पागल का मतलब है मुक्ति। इसलिए दुनिया में जब तक अपने लक्ष्य के लिए पागल नहीं बनोगे उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

वचन/शब्द

१७४५. मधुर वचन गर्मी में भी काश्मीर का वातावरण ले आते हैं।

१७४६. आदर सूचक शब्दों को बोलने की आदत डालिए इससे आपकी भाषा समिति सुधरेगी लोग सुनने को तरसेंगे।

१७४७. आपके एक शब्द के कारण किसी के सम्यक्त्व को धक्का लग सकता है।

१७४८. मुख है तो खोल लेते हैं यह ठीक नहीं। आपके वचनों से कोई संयम से असंयम में भी जा सकता है।

१७४९. ज्ञान के साथ वचन हो तो अच्छे लगते हैं।

१७५०. प्रयोग के समय यदि चर्चा की तो सब विस्मृत हो जायेगा।

१७५१. ज्यादा चर्चा का अर्थ है हम क्रियान्वय कम कर रहे हैं।

१७५२. समय को बचाना इस युग की सबसे बड़ी जरूरत है।

१७५३. जिस विषय को अमल में लाना है उसकी ज्यादा चर्चा नहीं करें।

१७५४. जो कोर्स की बात नहीं है उसे ठण्डे बस्ते में रख दो। क्या है? क्यों है? आदि-आदि प्रश्न सिर दर्द कराने वाले हैं।

१७५५. भगवान् को याद करो यदि उसी समय कर्तव्य याद आ जाये तो समझो भगवान् याद आ गये कर्तव्य उनने ही तो बताये हैं।

१७५६. ड्यूटी के समय भी आप भगवान् के पास ही हो उनका ही तो काम कर रहे हो।

१७५७. नियमावली को याद नहीं करना, उनका पालन करना।

१७५८. कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो यूजलेस हो हर किसी में कोई न कोई गुण अवश्य होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर किसी के सामने धोक दे दें। चीज एक है लेकिन योगी के लिए

वरदान तथा भोगी के लिए अभिशाप सिद्ध हो सकती है।

१७५९. राग रूप वचन को सुनने से व्यक्ति रागी हो जाता है और रागद्वेष होने से व्यक्ति दुष्ट संकल्प कर लेता है। इस संकल्प से अति घोर पाप होता है। इसलिए ऐसे राग रूप वचनों से बचना चाहिए।

१७६०. कुछ लोग सुनने की इच्छा का निरोध करते हैं और कुछ लोग सुनाने की इच्छा रखते हैं तो उनके लिए सुनाने की इच्छा का भी निरोध कर लेना चाहिए।

१७६१. ऐसे सचित्त शब्दों को मत बोलो जिससे दूसरे का चित्त उखड़ जाये।

१७६२. जिस प्रकार यथालब्ध आहार की बात करते हैं वैसे ही यथालब्ध शब्द सुनने के भी आदी या अभ्यस्त होना चाहिए।

१७६३. दूसरे को संतुष्ट करने के चक्कर में हमें नहीं रहना चाहिए। आज किसी को संतुष्ट नहीं कर सकते हैं। इसलिए हमें वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए।

१७६४. हमें वीतराग कथा करनी चाहिए। वाद-विवाद की बात नहीं करनी चाहिए। संवेगनी-निर्वेगनी कथा करना चाहिए।

१७६५. दया के साथ वचन होते हैं तो उनमें स्खलन नहीं होता।

१७६६. मधुर शब्दों के द्वारा विरोधी के कान भी ठण्डे पड़ जाते हैं।

१७६७. हर एक व्यक्ति को इस प्रकार बोलना चाहिए कि सामने वाला चुम्बक की तरह खिंचता चला आय।

१७६८. वाक्य में कभी भी तकिया कलाम नहीं होना चाहिए इससे वक्तृत्त्व कला समाप्त हो जाती है।

१७६९. सर्वप्रथम बोलने से पहले सोचो और खोल सोचो। मराठी में खोल अर्थात् डीप/गहराई के अर्थ में प्रयोग होता है। अच्छे ढंग से सोचो।

१७७०. व्रती को सोचना चाहिए बोलना नहीं, बोले तो फालतू नहीं बोले।

१७७१. अविरत सम्यग्दृष्टि कम सोचता है और ज्यादा भी बोल सकता है लेकिन व्रती को मना किया है।

१७७२. व्रती के लिए कहा है–उतना ही बोलिए जिसके द्वारा अपना भी हित हो, दूसरे का भी हित हो। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो आगम में कहा है–अहिंसा व्रत का पालन वह सही नहीं कर रहा है।

१७७३. मनोबल केसाथ जो बोला जाता है उसका प्रभाव पड़ता है मोक्षमार्ग में, यदि मनोबल के बिना सही सात्विक विचार के बिना आपके शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वह किसी काम के नहीं मोक्षमार्ग में और उसके द्वारा अहित के सिवाय कुछ होने वाला नहीं।

१७७४. अनुकंपा के भाव के साथ जो व्यक्ति बोलता है उस व्यक्ति के वचनों में ऐसा प्रभाव रहता है

कि जन्म जात वैर को छोड़ करके वहीं एक ओर सिंह बैठेगा और दूसरी ओर गाय बैठती है।

१७७५. असंयमी बोले तो दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और कोई त्यागी तपस्वी बोलता है तो उसका अपने आप ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए वक्तृ प्रामाण्यात यह सूत्र चरित्रार्थ होता है।

१७७६. मोक्षमार्ग सम्बन्धी जो शब्दों के निर्माण हैं वह केवल अनुकम्पा से पूरित होते हैं और दिशाबोध देते हैं।

१७७७. एकवचन में शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए जैसे ए इधर आ.. ऐसा नहीं बोलना चाहिए। आइये..इधर बैठिये ऐसा कहें। उन्हें नहीं बोलकर उन्होंने शब्द को बोलना चाहिए। लाड़ प्यार की भाषा अलग है। लेकिन अन्य वचन का प्रयोग ही अच्छा है।

१७७८. अपशब्द बोलने वालों को भगवती आराधना में गटर की नाली के समान कहा है। कोई कहे गंगा का नीर कर दो तो कोई कैसे करेगा।

१७७९. कर्णप्रिय शब्दों के सुनने से, बोलने से भी कभी-कभी बहुत विशुद्धि बढ़ती है।

१७८०. शब्द की गति में भावात्मक पुट भी सहायक होता है। जोर से भी बोला गया शब्द प्रशस्त कल्याणमय भावना से युक्त होने के कारण किसी के कानों को आघात नहीं होता। धीरे से बोला गया शब्द भी यदि अशुभ है, स्वार्थमय है, द्वेष से युक्त है, संक्लेश से युक्त है तो भी कर्णों को आघात होता है।

१७८१. बोलने से सबसे ज्यादा श्रम होता है। चिंतन का श्रम भी होता है बोलने में। प्रयोजनभूत बोलो इसी का अर्थ है-माप तौल कर बोलो। शार्ट एण्ड स्वीट। असत्य से बचकर हितकारी बोलना।

१७८२. इसे नोट करो-जब बिना बोले चल सकता है फिर क्यों बोलें?

१७८३. अपने से छोटा हो तब भी अपशब्द नहीं बोलना चाहिए। आपस में अरे यार जैसे शब्द प्रयोग नहीं करें।

१७८४. जब कोई आवेग में कुछ कहे तब अपने को कुछ नहीं बोलना। सुनने वाला जब व्यवस्थित हो जाये, उपशान्त हो जाये, सुनने को तैयार हो, तब सुनाना अन्यथा कुछ भी बोलने की आवश्यकता नहीं है। कुछ मत कहो। जैसे-६-७ डिग्री बुखार है तो उस समय औषधि नहीं देते, किन्तु बुखार उपशान्त हो जाये कुछ कम हो जाये तब औषधि का प्रयोग किया जाता है, अन्यथा उल्टी हो जायेगी।

१७८५. शब्द की मुख्यता नहीं, भाव गंभीर रहता है। शब्द सुनते ही शब्द तो छूट जाये पर भाव अवश्य भीतर पहुँच जाये। गहराई आनी चाहिए।

१७८६. बिना बोले भी यदि काम चल सकता है तो चलाना चाहिए। बोलकर यदि चलता है तो ज्यादा न बोलें। इससे ज्यादा शक्ति अर्जित होती है बोलने से शक्ति अधिक खर्च होती है।

१७८७. बोलते समय यह ध्यान रखो कि गुरु के विरुद्ध तो नहीं बोल रहे हैं।

१७८८. झूठ बोलने वाले बच्चे पर माता-पिता को भी विश्वास नहीं रहता। उस बच्चे का भाग्य फूट गया जो माता-पिता को सुखी नहीं रखता।

१७८९. अच्छे भाव हैं तो अपने आप ही अच्छे शब्द निकलते हैं लच्छेदार शब्दों की अपेक्षा।

१७९०. जैसे प्रासुक भोजन लेते हो ऐसे ही अपनी जिह्वा को प्रासुक रखो ताकि वह अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग करे।

१७९१. सीमा शब्द की है अर्थ की नहीं। शब्द कैपसूल है, अर्थ दवाई है। शब्दों के कैपसूल बना बनाकर दिमाग में भर लिए हैं अब वो घुल नहीं रहे हैं। गुरु से निर्देशरूपी कैपसूल लेने पर यदि वह कैपसूल घुला नहीं तो यह नहीं कि वह कैपसूल गलत है, कैपसूल तो सही है पर सामने वाला जो है उसका रोग प्रबल है, प्रकृति इतनी प्रतिकूल है कि औषध काम ही नहीं कर पा रही है।

१७९२. किसी का पक्ष लेकर नहीं बोलना चाहिए देव, गुरु, शास्त्र का पक्ष लेकर बोलना चाहिए। आगमिक सत्य यह है बाकी आप जानो, मैं किसी का विरोध नहीं कर रहा हूँ बल्कि आगम का समर्थन कर रहा हूँ।

१७९३. प्रयोजन के अभाव में बोलना भी हिंसा का कारण बनता है। अहिंसा महाव्रत को पालने वाले रात को तो बोलते ही नहीं दिन में भी निष्प्रयोजन नहीं बोलते। बिना प्रयोजन घूमना-घुमाना नहीं चाहिए।

१७९४. राम-राम कहने से काम नहीं होता है राम के धर्म को और भावों को जानना ही सही राम है।

१७९५. जीभ (जिह्वा) के उपयोग से प्रस्फुटित वाणी द्वारा दूसरे जीव को जीत सकते हैं और उसी जीभ की वाणी से अपनी बत्तीसी भी तुड़वा सकते हैं।

१७९६. बाण से वश में करना सरल नहीं अपितु बात से वश में किया जा सकता है। बात का प्रभाव बाण के प्रभाव से गहरा होता है।

१७९७. आकुलता के बिना बोलना नहीं होता।

१७९८. वचन का प्रयोग करने में यदि प्रमाद नहीं है तो हिंसा गौण है। और यदि प्रमाद है तो हम हिंसा को गौण नहीं कर सकते।

१७९९. बोलते हुए आप अहिंसक रह ही नहीं सकते। इन सब बातों को देखकर ही तीर्थंकरों ने दीक्षित होते ही मौन व्रत को अंगीकार कर लिया था।

१८००. सज्जनों के शब्द गंगा जल की तरह कलकल ध्वनि की तरह होते हैं। और दुर्जनों के शब्द/वचन नाली के पानी की तरह होते हैं।

१८०१. इतना मीठा बोलो कि भरी गर्मी में भी पित्त शांत हो जाये। पित्त कुपित हो जाये तो बहुत मुश्किल होता है।

१८०२. अपने मुख को बुरे शब्दों के द्वारा अशुद्ध नहीं बनाना। खूब अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग करो। सुगंधित मंजन से मुख शुद्धि के समान।

विनय

१८०३. सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों में से विनय अंग/बहुमान में बहुत कमी होती जा रही है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की चर्चा तो बहुत हो जाती है लेकिन सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों की चर्चा, उनके प्रयोग प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं। प्रायः त्यागी, व्रती, स्वाध्यायशील आदि को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। जैसे श्रीजी को विनयपूर्वक अभिषेक के लिए विराजमान करते हैं, शिरोधार्य करके लाते हैं, बहुमान के साथ लाते हैं ऐसी प्रक्रिया प्रचलित है। ऐसे ही जिनवाणी की विनय का प्रचार प्रसार होना चाहिए। प्रयोग के कारण विवेक जागृत हो जाता है।

१८०४. अष्टांग युक्त जिनवाणी का बहुमान होता है तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है।

१८०५. सम्यग्दर्शन भी नहीं हो तो भी सम्यग्दर्शन के सम्मुख भी हो तो भी वह मनोज्ञ है। उसका यथायोग्य बहुमान होता है।

१८०६. विनय करने से कर्म की निर्जरा होती है। वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है। सामने का वातावरण भी शान्त हो जाता है। संयम भी विशुद्ध रहता है अतः विनय करो।

१८०७. रात के बारह भी बज गये हों तो भी विनय को नहीं भूलना चाहिए।

१८०८. गुरोः सर्वत्र अनुकूल वृत्ति विनय है। इसका हमेशा पालन अति अनिवार्य है इसके बिना मोक्ष का द्वार बन्द।

१८०९. मूल सूत्र मत भूलो और कुछ भूलो तो भूलो। मूल सूत्र यानि बड़ों की विनय करना और बड़ों से पूछकर काम करना बड़ों के अनुकूल चलना।

१८१०. कर्म का उदय आने पर भी विनय को कोई छीन नहीं सकता।

१८११. उपवास से भी बड़ा विनय तप है लेकिन दुर्लभ है। दुर्लभ चीज सहजता से नहीं मिलती। कर्म निर्जरा भी दुर्लभ है दुर्लभ चीज मिली है आज महत्त्वपूर्ण चीज की ओर ध्यान नहीं जा रहा है।

१८१२. विनय उपकरण है, मोक्ष का द्वार है। विनय के साथ जो-जो नहीं मिलना है वह भी मिल जाता है। गुरुओं से, बड़ों से, विनय एक मंत्र है, तप है जिसके द्वारा चिर दीक्षित आचार्य भी नव दीक्षित मुनि से प्रभावित/आकर्षित हो जाते हैं।

१८१३. थोड़ा विनय व चतुराई से कार्य करें तो चौगुना कार्य हो जाता है।

१८१४. निर्दोष चारित्र का पालन करना, दिगंबरत्व को सुरक्षित रखना यही जिनलिंग की विनय है।

१८१५. विनय सबसे बड़ा टॉनिक है।

१८१६. करुणा, विनय, नम्रता, कोमलता से पहाड़ भी हिल जाता है। वात्सल्य से सब कुछ हो जाता है, यह हमारा सिद्धान्त है।

१८१७. दीनता-हीनता नहीं स्ट्रिकता होना चाहिए। विनय को व्यवहार कुशलता के साथ करना चाहिए। गुण ग्राहकता देख लेना चाहिए।

१८१८. दूसरों के दुःख को देखकर हम काँप जायें, अपने दुःख में दूसरे को नहीं कँपाना यह वात्सल्य है।

१८१९. पहाड़ टूट जाने पर भी स्वयं के लिए कोई आवाज नहीं हो, सहनशक्ति रखना। पर दूसरे के थोड़े भी दुःख में शांत नहीं रहना तुरन्त ही दुःख दूर करने का भाव होना चाहिए कार्यरूप में। विष्णुकुमार मुनि ने ७०० मुनिराजों के दुःखों से पीड़ित होकर वात्सल्य भाव से, गुरु आज्ञा से उनकी रक्षा की।

१८२०. यदि कोई कहे कि हमें वात्सल्य नहीं मिलता, तो विनय करो, विनय सीखो तुम्हें वात्सल्य अवश्य मिलेगा।

१८२१. विनय आने से मृदुता गुण भी आ जाता है, जिससे गुरु भी प्रभावित हो जाते हैं प्रभावित करने का भाव नहीं रखता।

१८२२. ज्ञान, दर्शन, चारित्र तो पोथी का विषय हो गया किन्तु उपचार विनय पोथी का नहीं प्रयोग का विषय है।

१८२३. उपचार विनय ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपासक है।

१८२४. ज्ञान, दर्शन, चारित्र थ्योरिटिकली है, उपचार विनय प्रेक्टिकल है। प्रेक्टिकल में १०० प्रतिशत मिलते हैं, थ्योरिटिकल में तो कम ज्यादा भी मिल सकते हैं।

१८२५. श्रवण करना, ग्रहण करना, धारण करना और श्रद्धा करना ये चार बातें जिसके पास नहीं हैं, वे अविनेय हैं।

१८२६. विनय का अर्थ दीन हीन होना नहीं है, आगम की आज्ञा है।

१८२७. अपने मान के अभाव में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह विनय है। वह सबसे बड़ा पूज्य माना जाता है जो विनय तप अपनाता है। छाया में बैठकर भी यह तप कर सकते हैं।

१८२८. अपना नाम ऊँचा करना चाहते हो तो विनय को अपनाओ।

१८२९. विनय महान् तप है, आत्मगत कर्मों की निर्जरा में साक्षात कारण है।

१८३०. विनयरूपी तप की अग्नि मान को जला देती है।

१८३१. जो तत्त्व का श्रवण, ग्रहण, मनन कर लेता है फिर भी अमल नहीं करता वह अविनेय है। जो विशेष रूप से तत्त्व तक ले जाता है वह विनेय है।

१८३२. विनय/नम्रता का अर्थ दीनता नहीं विनय/नम्रता का अर्थ यथार्थता है। नम्रता का अर्थ सही-

सही परख है, गुणों का अभिवादन है। गुणानुवाद तो करना चाहिए उसमें दीनता नहीं अभिमान भी नहीं करना चाहिए।

१८३३. जितनी नम्रता रखोगे उतना विकास की ओर बढ़ेंगे।

१८३४. शोभा नम्रता में है, उद्दण्डता में नहीं।

१८३५. विनय जब अंतरंग में प्रादुर्भूत हो जाती है तो उसकी ज्योति सब ओर से प्रकाशित होती है। वह मुख पर प्रकाशित होती है आँखों में से फूटती है, शब्दों में उद्भूत होती है और व्यवहार में भी प्रदर्शित होती है।

१८३६. विनय का महत्त्व अनुपम है, यह वह सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर साधक मुक्ति की मंजिल तक पहुँच सकता है।

१८३७. विनय आत्मा का गुण है और ऋजुता का प्रतीक है।

१८३८. यह विनय तत्त्व मंथन से ही उपलब्ध हो सकती है।

१८३९. विनय का अर्थ है–सम्मान, आदर, पूजा आदि।

१८४०. विनय से हम आदर और पूजा तो प्राप्त करते ही हैं, साथ ही सभी विरोधियों पर विजय भी प्राप्त कर सकते हैं।

१८४१. क्रोधी, कामी, मायावी, लोभी सभी विनय द्वारा वश में किये जा सकते हैं।

१८४२. अविनय में शक्ति का बिखराव है, विनय में शक्ति का केन्द्रीकरण है।

१८४३. हमको शब्दों की विनय भी सीखना चाहिए। शब्दों की अविनय भी बड़ी हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

१८४४. विनय गुण समन्वित व्यक्ति की केवल यही भावना होती है कि सभी में यह गुण उद्भूत हो जाये। सभी विकास की चरम सीमा का स्पर्श कर लें।

१८४५. विनय से कषायों का हनन होता है।

१८४६. विनय करने से मान अपने आप चला जाता है।

१८४७. भगवान् महावीर कहते हैं–मेरी उपासना चाहे न करो, विनय गुण की उपासना करो किन्तु विनय का मतलब यह नहीं कि आप भगवान् महावीर के समक्ष तो विनय करें और पास पड़ोस में अविनय का प्रदर्शन करें।

१८४८. विनय गुण का विकास करो। विनय गुण से असाध्य कार्य भी साध्य बन जाते हैं।

१८४९. यह विनय गुण ग्राह्य है, उपास्य है, आराध्य है।

१८५०. अपने पड़ोसी की विनय करो। कोई घर पर आ जाये तो उसका सम्मान करो क्योंकि एक नीतिकार ने कहा है–मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन। अर्थात् सम्मान आदर से तृप्ति होती है, भोजन से नहीं।

१८५१. मुनि महाराज तो केवल आपके लोटे कलश देखकर ही तृप्त हो जाते है। अतः विनय करना सीखो।

१८५२. विनय गुण आपको सिद्धत्व प्राप्त करा देगा।

१८५३. गुरु के वचन मोक्षमार्ग पर याद रखना सबसे बड़ी विनय है।

१८५४. जहाँ विनय है, वहाँ पर कभी भी गृहीत मिथ्यात्व का बोल वाला नहीं होता। ये लिख लो अच्छे ढंग से।

१८५५. बड़ों के प्रति विनय, भक्ति के प्रति वात्सल्य भाव है और छोटों के प्रति स्नेह करना यह भी वात्सल्य का ही अंग है।

१८५६. दोष दूर करना और दोष बताना/दिखाना इसमें बहुत अंतर है। दूर करने का कार्य वात्सल्य होने पर ही होता है।

१८५७. आदर, प्रेम, सेवा अपने साधर्मी के प्रति करना, रागद्वेष नहीं करना, यहीं अपने आप में कसौटी है।

१८५७. मैत्री प्राणिमात्र के साथ वात्सल्य भाव साधर्मी के प्रति होता है, पर के प्रति सद्‌भाव के भाव पर्याय बुद्धि के साथ नहीं हो सकते हैं। दृष्टि में विशालता लाओ।

१८५८. सबके लिए वात्सल्य नहीं होता किन्तु अपने पक्ष सच्चे देव, गुरु, शास्त्र और सदाचार एवं सद्‌विचारों के साथ वात्सल्य भाव होना चाहिए और सामान्य के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए क्योंकि उससे मोक्षमार्ग बना रहेगा।

१८५९. वैय्यावृत्ति विवेक के साथ करें और वात्सल्य भी विवेक के साथ करें। वात्सल्य समय-समय पर होता है।

व्रत

१८६०. दृढ़ता के साथ ही व्रतों का निर्दोष पालन होता है।

१८६१. व्रत उस वस्तु की भाँति है जिसकी देख रेख न की गयी तो उसमें जंग लग सकती है। कषाय रूपी चूहे खा लेंगे, पापरूपी चोर चुरा लेंगे।

१८६२. व्रत को निर्दोष पालन करने के लिए हमेशा जाग्रति रखनी पड़ती है।

१८६३. वही व्रत अंगीकार करना चाहिए जिससे शरीर और मन पर गलत प्रभाव न पड़े।

१८६४. मन से, वचन से, काय से निर्दोष चर्या होती है, उसी को रिद्धि-सिद्धि हो जाती है।

१८६५. स्वदार संतोष व्रत के बिना संतान पर संस्कार नहीं पड़ सकते।

१८६६. स्वदार में संतुष्ट रहने वाला आगे चलकर मुनि बन सकता है। सभी दुष्कर्म इसी अब्रह्म के पीछे लगे हुए रहते हैं। अनंत वासनाओं ब्रेक लगाने के लिए स्वदार संतोष व्रत हो जाता है। जैसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए अनंतानुबंधी चली गई फिर संसार चुल्लू भर बचता है वैसे

ही यह व्रत हो गया तो पाप चुल्लू भर बचता है।

१८६७. अहिंसाणुव्रत को ग्रहण किये बिना आज संस्कृति बच नहीं सकती।

१८६८. महान् आत्माओं के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला महाव्रत होता है। महान् उपलब्धि प्राप्त कराता है महाव्रत।

१८६९. कोई भी व्रत काम चलाऊ नहीं होना चाहिए क्योंकि निरतिचारपूर्वक व्रत पालन करने से तीर्थंकर प्रकृति के बंध में वह कारण है।

१८७०. व्रत में छूट रखोगे तो निर्दोषता नहीं आ सकती।

१८७१. व्रती होने के बाद वृद्धों जैसी चाह हो जाती है, प्रदर्शन आदि सांसारिक कार्यों में उत्साह नहीं रहता, ज्ञान की बात नहीं अनुभव की बात याद रहती है आज किताबें बहुत होती जा रही हैं लेकिन ज्ञान संकीर्ण होता जा रहा है। बहुत नहीं पढ़ो बल्कि बहुत बार पढ़ो।

१८७२. वैराग्य के साथ व्रत नहीं लेते इसलिए उसमें आनंद नहीं आता। इसका आनंद इन्द्र अहमिन्द्र को भी नहीं मिलता।

१८७३. रागद्वेष को मिटाने के लिए ही व्रती बना जाता है।

१८७४. व्रत स्वयं के लिए लिए हैं दूसरे को संतुष्ट करने के लिए नहीं लिए।

१८७५. आत्म साक्षात्कार के बिना व्रत आदि कोल्हू के बैल जैसी यात्रा है।

१८७६. त्यागे हुए विषयों की ओर व्रतियों की दृष्टि नहीं जाना चाहिए वरना कोल्हू के बैल जैसी दशा होगी। खली खाने को मिलती है। पंचेन्द्रिय के विषय खली के समान हैं।

१८७७. व्रत निर्दोष पालने हेतु उनकी पाँचों भावनाओं को हमेशा भाओ।

१८७८. ध्यान रखें व्रत अणुरूप नहीं है महाव्रत रूप हैं। यह ध्यान नहीं रखा तो दिन तो कट जायेंगे लेकिन कर्म नहीं कटेंगे।

१८७९. व्रतों का शोधन करो एवं आत्मा का शोध करो।

१८८०. थाली आने के पूर्व में अपने को सोचना है कि हमें भी भूख मिटाना है या नहीं मिटाना है तो थाली में जो आये उसे उसी से मिटा लो, इधर उधर थाली में मत देखो कि किसकी थाली में क्या परोसा गया, ऐसे ही जिसे जो व्रत संयम मिला है उसे अच्छे से रुचिपूर्वक प्रयत्नपूर्वक पालन करने का प्रयास करना चाहिए, दूसरे को क्या व्रत संयम मिला है यह नहीं देखना।

१८८१. व्रत पालन के क्षेत्र में कभी भी खानापूर्ति नहीं करना चाहिए।

१८८२. उस प्रकार के व्रत नियम पालन करना चाहिए जिसमें मन और शरीर दोनों संशय में न रह जायें। संक्लेश भी न हो।

१८८३. ग्रन्थ रचना करते समय आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं, उस प्रतिज्ञा को सिद्ध करने का प्रयास ग्रन्थ के अन्त तक रहता है। प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर ग्रन्थ रचना का समापन करते हैं। ऐसे ही

व्रत संयम की जो प्रतिज्ञा ली है, उसको जीवन के अन्त तक सिद्ध करना आवश्यक है।

१८८४. व्रत पूर्ण होने का विकल्प नहीं होना चाहिए, व्रत विशुद्धि के लिए होना चाहिए। व्रत विकल्प के साथ नहीं, व्रत तो विशुद्धि के साथ पूर्ण किए जाते हैं।

१८८५. जो अनिष्टकारक होता है, उसके सेवन का तो हमेशा-हमेशा ही त्याग कर सकते हैं। लेकिन ऐसा त्याग कर दो कि शरीर क्षीण हो जाये फिर चश्मा से डबल चश्मा लगने लग जायेगा व्रतों का सही पालन न हो सके ऐसा नहीं होना चाहिए।

१८८६. मोक्षमार्ग में हमेशा अपनी निंदा, गर्हा, आलोचना करना चाहिए दूसरे की नहीं। अपने व्रतों को शुद्ध बनाना हो, स्वयं की आलोचना सौभाग्य समझकर कर लेना चाहिए।

१८८७. देव, गुरु, शास्त्र की साक्षीपूर्वक जो व्रत लेते हैं, उनको दृढ़तापूर्वक निभाने का ही प्रयास होना चाहिए। अपने व्रत अच्छे ढंग से पलेंगे तो माता-पिता को भी संतुष्टि होगी अन्यथा उनकी आस्था कैसे बन पायेगी?

१८८८. व्रत लेकर कभी छोड़ना नहीं अन्यथा आगे नहीं बढ़ सकोगे।

१८८९. व्रत अपने लिए होते हैं दूसरों के कहने पर या दूसरों के लिए नहीं होते।

१८९०. अपवित्र को पवित्र बनाने का एक ही रास्ता है व्रत को धारण करना।

१८९१. व्रत के बिना कभी भी असंख्यात गुणी निर्जरा नहीं हो सकती है।

१८९२. अहिंसा व्रत की रक्षा सत्यादिक व्रत करते हैं अहिंसा व्रत मुख्य है।

१८९३. व्रती जन कभी भी कर्म सिद्धान्त को नहीं भूले।

१८९४. पाँच अणुव्रत को लेने के बाद व्रती नहीं कहलाता है, व्रतों की रचना करने से उनकी वृद्धि में तत्पर रहता है उसे ही व्रती संज्ञा दी जा सकती है।

१८९५. अपने आपकी कमी निकालने वाला व्रती कहलाता है।

१८९६. निरतिचार व्रत पालन से एक अद्भुत बल की प्राप्ति जीवन में होती है, निरतिचार का मतलब है कि जीवन अस्त-व्यस्त न हो जाये।

१८९७. व्रत के पालन में यदि कोई गड़बड़ न हो तो आत्मा और मन पर एक ऐसी गहरी छाप पड़ती है कि खुद का तो विस्तार होता ही है, अन्य भी इस व्रत के सम्पर्क में आ जाते हैं, वे भी बिना प्रभावित हुए रह नहीं सकते।

१८९८. याद रखो-निरतिचार व्रत का पालन करने वाला स्वयं तो तिरता ही है दूसरों को भी तारता है। वह स्वयं तो अपनी मंजिल पर पहुँचता ही है, दूसरों के वहाँ पहुँचने में भी सबल सहायक बनता है।

१८९९. अरे भैया-तीर्थंकर भी व्रत लेते हैं किन्तु व्रत ऐसे नहीं जिनसे दूसरे का घात हो।

१९००. व्रत ऐसे हो जो स्वयं को भी सुखकर हो और दूसरों को भी सुखकर हों। सभी को कोई न कोई

व्रत अवश्य लेना चाहिए ये व्रत बड़े मार्मिक है मौलिक चीज हैं और इनसे आगे कोई और खोज नहीं।

१९०१. व्रत कभी छोटा नहीं होता व्रत तो व्रत होता है जिसका फल अपरंपार और अपूर्व होता है।

१९०२. सब कुछ जाये लेकिन अपने श्रद्धान को, संकल्प को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।

१९०३. व्रती के पीछे जो होता है उसका नाम अणुव्रती है।

१९०४. व्रत का जो अनुगामी/अनुचर होता है उसका नाम अणुव्रत है।

१९०५. आप अणुव्रती हैं तो पीछे-पीछे हो जाओ। महाराज के सामने मत होना।

विकथा

१९०६. विकथाएँ अध्यात्म की विराधना करने वाली होती हैं।

१९०७. धर्म कथा के अलावा और कोई कथाओं को संयतों को नहीं करना चाहिए।

१९०८. विकथा करने से बुद्धि एवं श्रुत ज्ञान नष्ट हो जाता है।

१९०९. विकथा पापास्रव को बढ़ाने वाली है। और मूर्खता को प्रगट कराने वाली है।

१९१०. दूसरे के भोजन के बारे में सोचना तो धर्म ध्यान है लेकिन अपने लिए सोचना ये विकथा है।

विषय कषाय

१९११. विषय कषायों में व्यतीत किये गये क्षण अंधकार पैदा करते हैं।

१९१२. क्रोध का अर्थ है कि दूसरों के द्वारा किए गये अपराध की सजा स्वयं को देना।

१९१३. कषाय से बचना चाहते हो तो एक सूत्र है-दूसरे के बारे में मत सोचो । सहपाठी से बचो तो कषायें उद्वेलित नहीं होंगी। उन्हें ध्यान का विषय मत बनाओ, अपने बारे में चिन्तन करो। दूसरे के बारे में सोचो तो उसकी अच्छाई के बारे में सोचो।

१९१४. राग, द्वेष, क्रोध, कषाय अपने पर होता ही नहीं, दूसरे पर ही होता है। उसने दूसरे को नीचे नहीं दिखाया अपने धर्म को ही नीचे दिखाया है। जैसे दूसरे को गंदगी लगाओगे तो अपना हाथ तो गंदा होगा ही।

१९१५. कषाय के माध्यम से धर्मात्मा की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। धर्मात्मा को मन, वचन, काय से चोट पहुँचाओगे तो धर्म को भी चोट पहुँचेगी अपना मानसिक स्तर गिर जावेगा। धर्म कहीं बाजार में नहीं मिलता धर्मात्मा में ही धर्म मिलता है। धर्म के दर्शन धर्मात्मा के बिना नहीं हो सकते। व्यक्ति का धर्म उससे भिन्न नहीं, उसी में है।

१९१६. राग, द्वेष उत्पन्न करने वाले कारणों की ओर वर्तमान में जाने वाले उपयोग को रोकना महान् पुरुषार्थ है।

१९१७. धर्मामृत पीते जाओ कषाय रूपी विष समाप्त होता चला जावेगा।

१९१८. कषायों का वमन करते ही मन शांत हो जाता है, हल्कापन आ जाता है।

१९१९. जो व्यक्ति कषाय को नियंत्रित रखता है वह साधक कहलाता है।

१९२०. कषाय के ऊपर कषाय करो उसके लिए कमर कसो।

१९२१. कषाय को पी जाना बहुत बड़ा संयम है, इससे कभी अधीर नहीं होगे। उसका परिणाम सल्लेखना के लिए अच्छा होता है।

१९२२. काया वृद्ध होने के बाद कषाय भी वृद्ध होना चाहिए।

१९२३. जो कमजोर होता है वह गुस्सा करता है जो बलजोर होता है वह गंभीर होता है।

१९२४. जब भी राग द्वेष होगा अध्यवसाय होगा तो पुद्‌गल को लेकर के होगा जीव को लेकर के नहीं।

१९२५. रागद्वेष और विषय कषाय ही आत्मा को बंधन में डालने वाले हैं। एक मात्र विरागता ही मुक्ति को प्रदान करने वाली है।

१९२६. आप लोग धन के अभाव में दरिद्रता मानते हैं पर वास्तविक दरिद्रता तो वीतरागता के अभाव में होती है। राग, द्वेष और विषय कषाय ही दरिद्रता के कारण हैं।

१९२६. पर से प्रीति ओर भीति नहीं रखना ही राग द्वेष से रहित होना है।

१९२७. राग की गति संसार की ओर और वैराग्य की दृष्टि मुक्ति की ओर है। मोह के प्रबल प्रभाव के कारण संसारी प्राणी मुक्त नहीं हो पा रहा।

१९२८. प्रभु सम बनने का एक उपाय राग द्वेष को छोड़े।

१९२९. हमने आज तक राग के माध्यम से विश्व को ठुकराया है लात मारी है और जो ज्ञेय पदार्थ हैं/ मिट्टी है, पुद्‌गल है/जड़ है/ अचेतन है उसे गले लगाया है। चेतन का बहिष्कार किया है।

१९३०. भगवान् महावीर का उपासक वही है जो नमस्कार करता है चेतन को और बहिष्कार करता है अचेतन को।

१९३१. आज एयर कंडीशन मकानों में चेतन बन्द है। अचेतन जड़ जिसके पास कोई संवेदन नहीं है उसमें चेतन बन्द है।

१९३२. जिसे मान कषाय पर विजय पाना आ जाता है वह निश्चय से पूज्य बन जाता है।

१९३३. जिसने कषायों को जीत लिया उसे ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति सहजता से हो जाती है। नहीं तो, कितनी ही सरस्वती की आराधना करो उससे ऋद्धि सिद्ध की उपलब्धि नहीं होती।

१९३४. कषायों पर पूर्ण विजय प्राप्त किए बिना केवलज्ञान की उपलब्धि नहीं होती।

१९३५. यदि संसार की फेरी से बचना चाहते हो तो इन राग-द्वेष, मोह के संस्कारों से अपने को बचाने का प्रयास करो।

१९३६. आप अपने क्रोध, मान, माया, लोभ को शान्त करना चाहते हो तो उन्हें देखो, जो शान्त हैं। चूँकि प्रभु की कषायें शान्त हो चुकी हैं अतः प्रभु का स्मरण करने से आपकी कषायें अपने आप शान्त हो जायेंगी।

१९३७. जो क्रोधादि कषाय को पी लेगा उसकी शक्ति बढ़ जायेगी और जो कषाय करेगा उसे वह क्रोधादि कषाय पी जायेगी, उसकी शक्ति समाप्त हो जायेगी।

१९३८. यदि कषाय शांत हो और मन प्रसन्न हो तो विष खाने पर भी पेट में जाकर अमृत बन सकता है। और यदि कषाय काम कर रही तो अमृत भी विष का काम करता है।

१९३९. क्रोध कषाय रूपी बारूद को शांत करना चाहते हो तो क्षमा रूपी नीर लाओ।

विसंवाद

१९४०. ऐसी साधना करने वाले विरले ही मिलते हैं जो दो शब्द सुन करके और उसके प्रतिकार के लिए कोई भी उपाय नहीं करते हैं बल्कि शांति के साथ सुनते हैं और ऐसा मानते हैं कि आज सौभाग्य का दिन है, आज दीवाली हो गई, मिठाई बंट गई।

१९४१. जिसका मन इस साधना में लगा हुआ है उसके लिए किसी भी प्रकार का प्रतिकूल वातावरण नहीं होता। वह हर परिस्थिति में शांत रहता है।

१९४२. कोई भी शब्द कानों में आने के उपरान्त उसमें लहर नहीं आना चाहिए बिना लहर आए ही वह शब्द चले जाना चाहिए। लेकिन कान में क्या ललाट पर भी झुर्रियाँ आने लग जाती हैं।

१९४३. यदि साधर्मी के साथ विसंवाद करेंगे तो अचौर्य महाव्रत के लिए पंचक आ गया। पंचक का मतलब ग्रहण लग गया और यदि साधर्मी के साथ विसंवाद नहीं करते हैं तो समझ लेना पंचम गति के लिए कदम उठ गया क्योंकि ये अवसर है।

१९४४. विसंवाद साधर्मी के साथ होता है, विधर्मी के साथ तो कभी विसंवाद होता ही नहीं। एक पढ़ा लिखा है और एक अनपढ़ है तो उसके साथ भी विसंवाद नहीं होता है लेकिन जब दोनों पढ़े-लिखे होते हैं तब विसंवाद होता है।

१९४५. यदि साधर्मियों के द्वारा किए गये अनादर को सहन करने की क्षमता नहीं है तो आज मोक्षमार्ग में बहुत कठिनाई है।

१९४६. विसंवाद वस्तुतः रागद्वेष के कारण हैं और रागद्वेष अज्ञान के कारण होते हैं और यही संसार के कारण हैं। ज्ञानी उससे बच जाता है।

१९४७. दूसरा यदि हमारी निंदा करता है तो समझो हमारी ख्याति, हमारा यश फैला रहा है। ऐसा न हो तो दुनिया के सामने विशेषता आती ही नहीं।

१९४८. विरोध न हो तो विकास होता नहीं।

१९४९. हमारी शक्ति विरोध करने में खर्च हो रही है, अपना समर्थन करने में नहीं।

१९५०. एक बार अगर किसी ने कुछ कह दिया तो उसको याद रखते हैं और हम बार-बार कहते हैं तो भी नहीं सुनते।

१९५१. चौबीस घंटे साधर्मी विसंवाद छोड़ो। इसको लिखो नहीं लखो।

वैराग्य

१९५२. जिसके पास तीव्र वैराग्य होता है वो इन तीन प्रत्ययों से दूर रहता है वो कौन से प्रत्यय है? कर्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामित्व। वो सोचता है कि मैं अज्ञानियों का कर्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामी नहीं बनना चाहता हूँ।

१९५३. वैराग्य के लिए यदि मजबूरी कहोगे तो छह खण्ड की मजदूरी करना पड़ेगी, क्योंकि यदि आप कहोगे बाहुबली को वैराग्य होने की मजबूरी थी क्योंकि भरत को हराया था अब क्या मैं षट्खण्ड का अधिपति बनूँगा नहीं, उन्होंने उन सब छह खण्डों को सारभूत नहीं माना इसलिए ये उनकी मजबूरी नहीं थी।

१९५४. यदि कोई तर्क वाला कहता है कि बाहुबली की मजबूरी थी इसलिए दीक्षा ली। यदि उनकी मजबूरी थी तो भरत भी मजदूर के समान बन गये छह खण्डों के।

वैय्यावृत्ति

१९५५. दूसरे की वैयावृत्य करते समय अपनी वेदना मालुम नहीं पड़ती वह अपने कष्ट की ओर नहीं देखकर सामने वाले को आराम देना चाहता है। यह आकांक्षा सम्यग्दृष्टि की होती है। वह सोचता है कि यह किसी प्रकार से बच जाये और धर्म धारण कर ले।

१९५६. अटेचमेंट नहीं हो सहयोग में यानी उसकी ईहा यदि हो रही है कुछ कार्य की तो उसे भी समझााएँ कि ये क्या कर रहे हो?

१९५७. प्रभावित नहीं होना, न ही करना।

१९५८. वैय्यावृत्ति का क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है। जो वैय्यावृत्ति करने में कमजोरी रखता है वह संघ के विघटन में कारण होगा। प्रशम संवेगादि भी नहीं रहेंगे। वात्सल्यादि भी नहीं रहेंगे। सम्यक्तव के आठ अंग का पालन भी कहाँ हुआ?

१९५९. प्रभावना प्रवचन ये तीर्थ की (धर्म की) वैय्यावृत्ति है। बौद्धिक वैय्यावृत्ति है।

१९६०. जिसके लिए जो कार्य दिया जाये और वह कार्य नहीं करे तो सब कार्य गड़बड़ हो जायेगा।

१९६१. वैय्यावृत्ति करने वाले को बहुत विवेक से कार्य करना चाहिए क्योंकि वैय्यावृत्ति का फल रोग की निवृत्ति है।

१९६२. मन की मालिश मधुर वचन के द्वारा हो सकती है। मृदुता तो हो, पर व्यंग्यात्मक हो तो वह ठीक नहीं।

१९६३. हाथ-पैर दबाना ही वैय्यावृत्ति नहीं है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावों के साथ निरंतराय आहार करा देना सबसे बड़ी वैय्यावृत्ति है।

१९६४. भगवान् के संदेश के अनुसार अपने आप को बनाना भी भगवान् की वैय्यावृत्ति है।

१९६५. उनकी भावना के अनुरूप अपने आप को बनाना उपास्य की उपासना जैसी आगम में

विधिवत बताई गई है वैसी ही करना यह अरहंत भगवान् की वैय्यावृत्ति है।

१९६६. वैय्यावृत्ति करने से कर्म निर्जरा होती है और तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण होता है।

१९६७. रोगी को किसी व्यक्ति विशेष को नहीं देखना चाहिए अपने आहार औषध को ले लेना चाहिए। नहीं वही व्यक्ति से आहार दिलाओ वो ही मेरे साथ जाये यह सब ठीक नहीं हैं।

१९६८. सही निदान, औषधि, आहार और वैद्य इन चारों के निमित्त से उपचारक सही-सही वैय्यावृत्ति कर पाते हैं।

१९६९. गर्मी में भी गर्म पानी से माथा या सिर धो लिया जाता है तो बहुत जल्दी शांति मिल जाती है।

१९७०. वैय्यावृत्ति तो इस ढंग से होना चाहिए कि किसी को पता भी न चले, चाहे बहिनें करें चाहे श्रावक करें। वैय्यावृत्ति के समय कुछ विरोधी बिन्दु सामने रखेंगे तो वैय्यावृत्ति का फल भी नहीं मिलेगा। और जिसकी वैय्यावृत्ति होगी वह भी अधिक अस्वस्थ्य हो जायेगा।

१९७१. जिनसे उपवास नहीं होता तो उपवास करने वालों की वैय्यावृत्ति करने का सौभाग्य प्राप्त करने में आनन्दित हों।

१९७२. कितना भी कोई कुछ सुना दे लेकिन वैय्यावृत्ति नहीं छोड़े इसको कहते हैं कर्तव्यनिष्ठता। इसको (वैय्यावृत्ति को) करने से अपना सम्यग्दर्शन और प्रौढ़ होता है। स्थितिकरण, उपगूहन, वात्सल्य भी इससे पुष्ट होता है। इससे बड़ा और कौन सा काम है? वैय्यावृत्ति के लिए समय बहुत देना पड़ता है। किसके माध्यम से करायें। कैसे करायें? सबकुछ सोच-विचार कर कार्य करना आवश्यक होता है।

१९७३. मन मिलाने का, वात्सल्य पाने का, एक ही उपाय है वैय्यावृत्ति।

१९७४. वैय्यावृत्ति विधिवत् होना चाहिए। अनुशासित रूप से होना चाहिए। वैय्यावृत्ति के लिए तो सारे काम बन्द हो जाना चाहिए और वैय्यावृत्ति में लगना चाहिए।

१९७५. संघ का निर्वाह जो होता है, वह आपस में वैय्यावृत्ति में लगने से होता है।

१९७६. वैय्यावृत्ति जो कर रहे हैं वो शुभोपयोग के साथ हैं।

१९७७. मीठे-मीठे वचनों से मन की वैय्यावृत्ति की जाती है।

१९७८. तप करना चाहते हैं तो सबसे बड़ा तप है वैय्यावृत्ति।

१९७९. साधना में सहयोग मिलाना ही वैय्यावृत्ति है।

१९८०. समता, विवेक, सूझबूझ सभी गुण होना चाहिए तभी सही वैय्यावृत्ति कर सकता है। ऑपरेशन जैसी सावधानी रखना होती है।

१९८१. मूलगुण (व्रत) वाला ही उत्तरगुण वैय्यावृत्ति कर सकता है।

१९८२. श्रावक, धर्म के लिए दान देकर वैय्यावृत्ति करता है। जिस समय जो आवश्यक हो उसकी पूर्ति

करना वैय्यावृत्ति है।

१९८३. मानसिक, वैय्यावृत्ति पारलौकिक वैय्यावृत्ति है। जब तक वैय्यावृत्ति नहीं करोगे तब तक अंतरंग तप नहीं होगा।

१९८४. जो वैय्यावृत्ति नहीं करता उसके व्रत ठूंठ वृक्ष से पक्षी की भाँति उड़ जाते हैं। आवश्यक और सीमा के अनुरूप ही वैय्यावृत्ति होनी चाहिए।

१९८५. वात्सल्य अंग को रखना चाहते हो तो वैय्यावृत्ति को भूलना नहीं चाहिए।

१९८६. गुणों के प्रति अनुराग नहीं रखेगा वह वास्तविक वैय्यावृत्ति नहीं कर सकता। गुणों के प्रति आदर होने से वैय्यावृत्ति करता हुआ आगे उन्हीं गुणों को प्राप्त करता है।

१९८७. वैय्यावृत्ति करने वाला नियम से ही विनयशील होता है।

१९८८. वास्तव में दूसरे की सेवा करने में हम अपनी ही वेदना मिटाते हैं, दूसरो की सेवा में निमित्त बनकर अपने अंतरंग में उतरना ही सबसे बड़ी सेवा है।

१९८९. रोगी को सुख पहुँचाने का उपाय हमेशा-हमेशा केवल शारीरिक नहीं रहता किन्तु मानसिक भी रहता है।

१९९०. यदि आप बाहर अच्छे ढंग से तेल घी के माध्यम से अंगोपांग की मालिश कर रहे हैं और उसके साथ-साथ व्यंग्य की एकाध पुड़िया छोड़ते चले जाओ तो क्या होगा?

१९९१. मन की भी मालिश हुआ करती है, वैय्यावृत्ति हुआ करती है और वह मन की वैय्यावृत्ति जो है वह मधुर वचनों के माध्यम से हुआ करती है।

१९९२. सेवा करने वाला वास्तव में अपने ही मन की वेदना मिटाता है यानी अपनी ही सेवा करता है।

१९९३. दूसरे की सेवा में भी अपनी ही सुखशांति की बात छिपी रहती है।

१९९४. लौकिक दृष्टि से हम दूसरे की सेवा भले कर लें किन्तु पारमार्थिक क्षेत्र में सबसे बड़ी सेवा अपनी ही हो सकती है।

१९९५. शरीर की सड़ांध का हम इलाज करते हैं किन्तु अपने अन्तर्मन की सड़ांध/उत्कट दुर्गंध को हमने कभी असह्य माना ही नहीं।

१९९६. आत्मा में अनादि से बसी हुई दुर्गंध को निकालने का प्रयास ही वैयावृत्य का मंगलाचरण है।

१९९७. स्वयंसेवक बनो, पर सेवक मत बनो।

१९९८. पवित्र सेवा की भावना और मंत्रोच्चार में जो शक्ति है बंधुओ! वह जीवन को उन्नत तो बनाती ही है किन्तु शांति समृद्धि का साम्राज्य भी स्थापित करती है।

१९९९. सेवा वही कर सकता है जो झुकना जानता है।

वात्सल्य

२०००. जिस व्यक्ति में साधर्मी भाइयों के प्रति करुणा वात्सल्य नहीं कोई विनय नहीं, वह मात्र सम्यग्दृष्टि होने का दम्भ भर सकता है, सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता।

२००१. ज्ञानधर्म के लिए है, ज्ञान के लिए धर्म नहीं धर्म आत्मा को उन्नति की ओर ले जाने वाला है, यदि वह ज्ञान दया धर्म के साथ कनेक्टेड संबंधित होकर दयामय हो जाता है तो वह ज्ञान हमारे लिए हितकारक सिद्ध होगा।

२००२. दान, पूजा, स्वाध्याय, जप, तप भी वही सार्थक है, जिसमें करुणा का भाव घुला हो। वही शास्त्र और वही सिद्धान्त सच्चा है, जिसमें जीव रक्षा का उपदेश हो।

२००३. जिस प्रकार बिना जड़ मूल के फल-फूल कुछ भी नहीं होते उसी प्रकार इस दया के अभाव में धर्म और धर्म के नेता हो ही नहीं सकते।

२००४. दया धर्म का मूल है। मूल को भूलकर छाया की आकांक्षा बड़ी भारी भूल है।

२००५. जिसका मूल मजबूत हो उसे ही फल-फूल छाया मिल सकती है।

२००६. जीवों की रक्षा के लिए धर्म कहा गया है न कि परिग्रह की रक्षा को।

२००७. जीव हत्या के इस अंधकार में विकास के प्रकाश की आशा व्यर्थ है।

२००८. सुख-सुविधाओं के लिए चेतन धन का संहार समूची मानवता के लिए कलंक है अभिशाप है।

२००९. दूध की नदिया जिस देश में बहती थी उस देश में पशुओं के खून की नदिया बह रही हैं, क्या यही विकास है?

२०१०. हमारा खान-पान, बोल-चाल, वस्त्र, वेश-भूषा भी शाकाहारी अहिंसक होने का परिचय देती है। तभी तो खादी की चादरें लिपटा कर गाँधी जी महात्मा कहलाने लगे।

२०११. कर्म निर्जरा में यदि श्रद्धान है तो वह निर्जरा किसके माध्यम से होगी ये प्रयोग करना है।

२०१२. सम्यग्दर्शन को पुष्ट करने के लिए हमें वात्सल्य अंग को नहीं भूलना। अपने आप को भले ही भूल जाये।

२०१३ हमें भूखा प्यासा नजर आ जाये बस अध्यात्म पिला दें, समय हमारा व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।

२०१४. पूंजी अच्छे से लगाओ और व्यापार करो।

२०१५. जैसे गाय बछड़े पर स्नेह करती है इसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना प्रवचन वत्सलत्व है।

२०१६. वात्सल्य एक स्वाभाविक भाव है। साधर्मी को देखकर उल्लास की बाढ़ आना ही चाहिए।

२०१७. प्रवचन वात्सल्य का उतना ही अधिक महत्त्व है जितना प्रथम दर्शन विशुद्धि भावना का है।

२०१८. साधर्मी में वात्सल्य रखने वाला अवश्य ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करेगा।

२०१९. साथ वालों के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार ही होना चाहिए, किन्तु आज देखने में आता है कि

सजातीय भाइयों में प्रेम ओझल सा हो गया है।

२०२०. हम हाथी के साथ चल सकते हैं लेकिन साथी के साथ नहीं। दूध, पानी को मिला सकता है, विजातीय होने पर भी, पर हम तो सजातीय को भी नहीं मिला पाते।

२०२१. प्रवचन वत्सलत्व का अर्थ है, साधर्मियों के पति करुणाभाव।

२०२२. साधर्मियों से हमारी लड़ाई और विधर्मियों से प्रेम ही हमारे पतन का कारण है।

२०२३. चेतन की कीमत करो जड़ की ही ज्यादा कीमत मत किया करो। जड़ तो जड़ होता है, उसमें संवेदना नहीं होती उस पर कितना भी उपकार करें तो भी उसमें प्रेम वात्सल्य नहीं होता। प्रेम वात्सल्य तो जीवित प्राणी में ही होता है। वात्सल्य भाव को गौवत्स सम कहा है, गौवत्स के वात्सल्यमय दृश्य को देखकर लोग कहते हैं कि ये मांगलिक शकुन है, इसे देख लिया तो अब हमारा कार्य सानंद सम्पन्न होगा।

२०२४. वात्सल्य का उत्पादन करने वाली जननी गाय है।

२०२५. आज बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी मात्र मनुष्य को सुखी बनाने में लगे हैं, प्राणी मात्र को सुखी बनाने की दृष्टि नहीं है प्राणी मात्र के प्रति करुणा दया के भाव नहीं हैं।

२०२६. जहाँ पर विवेक बुद्धि सुरक्षित है वहाँ दया धर्म है।

२०२७. जब दया धर्म ही जीवन में नहीं तो आत्मा की बात कहाँ से आयेगी।

२०२८. दया धर्म ही मूल्यवान सम्पदा है, जिससे अनंतकाल की दीन दरिद्रता समाप्त हो जाती है।

विद्यार्थियों के लिए

२०२९. पढ़ने की उम्र तक सभी दुर्व्यसन से उन्हें दूर रहना चाहिए। इससे उनके संस्कार दृढ़ होते हैं।

२०३०. वह विद्यार्थी ही देश का भावी योग्य नागरिक बन सकता है, जो जल्दी सोता व जल्दी उठता है।

२०३१. जल्दी सोने व उठने से ज्ञान बढ़ता है। अतः सभी विद्यार्थियों को इसका पालन करना चाहिए।

२०३२. ऐसे होटलों में नहीं जाना चाहिए, जो मांसाहारी हैं।

२०३३. पहले तो स्वयं ही होटल आदि में जाने का त्याग करना चाहिए। यदि ऐसा न कर सकें तो शाकाहारी होटल में जा सकते हैं।

२०३४. खाने पीने का नियम लेना चाहिए। इस नियम से आप समय पर खावेंगे, पीवेंगे। तो स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। अप टू डेट रहेंगे आप और माइण्ड भी सही कार्य करेगा।

२०३५. रात्रि में न खाने का भी धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिए।

२०३६. पानी छानने के लिए एक छनना पास में रखें कहीं भी जावें तो कपड़ा से छानकर पानी पियें।

२०३७. आज विद्या की तरक्की हो रही है इस विद्या को ग्रहण करके विद्यार्थी तीनलोक का दास बनता जा रहा है।

२०३८. विद्या ऐसी ग्रहण करनी चाहिए कि जिससे तीनों लोक उसके दास बन जाये।

२०३९. आज सब अर्थ धन के पीछे विद्या ग्रहण करते हैं। इस विद्या से ज्ञान मिल सकता है परन्तु शांति नहीं मिल सकती।

२०४०. समीचीन विद्या के द्वारा ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है।

२०४१. हमने विद्या को अर्थ का माध्यम बना रखा है इसलिए हम दु:खी हो रहे हैं व्यक्ति सुखी तभी हो सकता है जब वह समीचीन विद्या ग्रहण करें।

२०४२. विद्यार्थी खूब परीषह और उपसर्ग सहन करने में तैयार हो जाये तो वह तीनलोक को मात कर सकता है उसका स्वामी बन सकता है मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

२०४३. जिस शिक्षण के द्वारा जीवन में सुख शांति नहीं, वह शिक्षण किस काम का।

वीतरागता

२०४४. जब वीतरागी बनने की इच्छा शुरू हो जाती है, तो समझो बेड़ा पार होने की शुरूआत हो जाती है।

२०४५. जैसे चेहरा देखने वाला व्यक्ति स्वयं दर्पण के पास जाता है वैसे ही हमें अपने आपको देखना है तो भगवान् के पास जाना ही पड़ेगा।

२०४६. प्रभु ने सुख दिया नहीं पर सुख का रास्ता बता दिया। प्रभु देते व लेते नहीं हैं। दर्पण मुख देखता नहीं, पर मुख को दिखा सकता है।

२०४७. वृत्त पूर्णता का प्रतीक है क्योंकि यह पूरे ३६०अंश का होता है। इसी तरह भगवान् स्वयं परिपूर्ण है अत: उनका वृत्तांत जीवन में उतारना हमारे लिए परिपूर्ण बना देता है।

२०४८. चमत्कार का बहिष्कार कर, विषयों का तिरस्कार कर, भगवान् को नमस्कार करें, इसी में कल्याण निहित है।

२०४९. जो खुद रोगी है, वह दूसरों का इलाज नहीं कर सकता है। उसी प्रकार संसारी प्राणी संसारी जीव को रास्ता नहीं बता सकता है, वह तो खुद बीमार है। संसारी जीव पर देव, शास्त्र, गुरु का प्रभाव पड़ता है।

२०५०. वीतरागता के प्रति गौरव होना भी राग छोड़ने की भूमिका है।

२०५१. वीतरागता की उपासना करना ही वीतरागता के प्रति गौरव होना है।

२०५२. वीतराग विज्ञान-भाव प्रधान तथा वीतरागता-श्रद्धा का विषय है।

२०५३. वीतरागता की आराधना ही एक मात्र बिन्दु है जहाँ से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है।

२०५४. वीतराग विज्ञान किसी से प्रभावित नहीं होता है और जो उससे ही प्रभावित होता है तो फिर वह वीतराग विज्ञानमय हो जाता है।

२०५५. वीतराग विज्ञान ऐसा रसायन कि वह कर्मरूपी वज्र को चूर-चूर कर देता है।

२०५६. जिन लिंग मोक्षमार्ग में दीपक के समान है। मोक्षमार्ग यदि देखना चाहते हो तो इस दिगम्बरत्व के द्वारा ही देखा जा सकता है।

२०५७. वह सौधर्म इन्द्र भी अपने चमकते हुए मुकुट पर दिगम्बर मुनि की पद रज को लगा करके अपने आपको धन्य मानता है और उस दिगम्बरत्व का यशोगान करता रहता है। इसलिए इस दिगम्बरत्व की महिमा ही अगल है।

विशालता

२०५८. बुद्धि के संकीर्ण उपयोग से व्यापकता विलुप्त होती जाती है।

२०५९. विशालता, व्यापकता धारण करके चलने वाला व्यक्ति एक पंथ दो सौ काज कर सकता है।

२०६०. व्यवधान को गौण कर व्यापकता, विशालता के साथ चलने वाली आत्माओं के साथ विराट/विशाल/परम/महान् आदि विशेषण लगाए जाते हैं।

२०६१. संकीर्णता सिर्फ बीमारी ही नहीं अपितु महामारी है, जिसको दूर करने की कोई जड़ी-बूटी नहीं होती।

२०६२. एक ही वस्तु का उपयोग आत्मलाभ के साथ बहुजन लाभ के लिए किया जा सकता है किन्तु यह तभी संभव है जब चिंतन में व्यापकता हो।

२०६३. बुद्धि संकीर्ण होगी तो स्वयं के ललाट तक ही चंदन का लाभ सीमित रह जायेगा। हमें चंदन की सुगंध हवा में घोलने की आवश्यकता है जिससे स्वयं के साथ सभी प्राणी भी उसका लाभ ले सकें।

२०६४. सुगंध के संचार को सीमित करना संभव नहीं है।

२०६५. दुर्गंध से बचने के लिए सुगंध की मात्रा में वृद्धि करना आवश्यक है।

२०६६. पक्षी पर प्रतीक चिह्न नहीं है कि वह भारत का है या पाकिस्तान का कोई प्रहरी उसे रोक नहीं सकता। पक्षी किसी देश के पक्ष के नहीं वो कहते सारा जहाँ हमारा किन्तु मनुष्य ने बंधन बना लिए।

२०६७. सीमा तो भूमि पर है आकाश असीमित है।

२०६८. मेरे सिर में दर्द बना रहे, किन्तु उसका दर्द दूर न हो जाये ऐसी प्रवृत्ति से व्यापकता विनष्ट हो रही है।

२०६९. व्यापकता का विभाजन नहीं हो सकता जैसे आकाश को किसी दीवार से विभाजित नहीं कर सकते।

२०७०. विशाल हृदय का अर्थ बड़ा हृदय नहीं, किन्तु जिसके विचारों/अभिप्रायों/उद्देश्यों में विशालता आ जाती है वही विशाल हृदयी माना जाता है।

२०७१. विषयों के बीच में रहते हुए भी सीमा का उल्लंघन नहीं होता है तो यही सावधानी है और यही

सावधानी आगे बढ़ाने का साधन है। परन्तु यदि असावधानी होगी तो वह नीचे ही गिरायेगी।

२०७२. प्रत्येक व्यवधान का सावधान होकर सामना करना नूतन अवधान को पाना है।

२०७३. मेरा तेरा जहाँ नहीं रहता वहाँ से अखंडता का आनंद आने लगता है, खंडता में वह आनंद नहीं आता जैसे सूर्य दिखता छोटा सा है लेकिन प्रकाश विस्तृत होता है।

शांति/संतोष

२०७४. जिस घर में शांति होती है वहाँ भगवान् रहते हैं।

२०७५. शांति के लिए अंदरूनी परिवर्तन चाहिए बाहरी नहीं।

२०७६. लालची पूरी दुनिया पाने पर भी भूखा रहता है। मगर संतोषी एक रोटी से ही पेट भर लेता है।

२०७७. संतोषी व्यक्ति पुष्ट हो जाता है थोड़े से भी भोजन से किन्तु जिह्वा असंतोषी है।

२०७८. पेट कहता है इण्ड (समाप्त) लेकिन जिह्वा कहे एण्ड (और), और अधिक कौर/ग्रास खाया तो परिणाम भयंकर।

२०७९. पेट भरते हैं जीवन चलाने के लिए ओर पेटी भरते हैं जीवन चढ़ाने के लिए।

२०८०. पेट आधा घंटे में भर जाता है और पेटी जीवन भर में नहीं भरेगी।

२०८१. आज जितने सुविधा के साधन जुटाये जा रहे हैं, उतना ही व्यक्ति में तृष्णा और असन्तोष बढ़ रहा है।

२०८२. सहजता की ओर आ जाओ तो शांति मिलती है विभाव की ओर जाओ तो शांति चली जाती है।

२०८३. अनन्त की परिभाषा यही है कि सब कुछ दे दे तो भी संतुष्ट न हो।

२०८४. सर्प के विष से तो एक बार ही मरना हो सकता है पर तृष्णारूपी विष प्याली के द्वारा अनंतबार, अनंतभव, अनंतमृत्यु होती है। आत्मा के अनंत स्वभाव का इससे अंत हो जाता है।

२०८५. संतोष के बिना मनुष्य जीवन मिलता नहीं और संतोष के बिना मनुष्य जीवन में सफलता भी नहीं मिलती है। संतोष वहाँ जहाँ प्रेम है और जहाँ प्रेम नहीं वहाँ तो फिर प्रेत है।

२०८६. अपने जीवन में अनेकान्त को उतारें। नहीं तो अपने पास शान्ति नहीं, क्लान्ति रहेगी, समता का अभाव रहेगा।

२०८७. अपने जीवन में वह क्रांति लाओ जो क्लांति को मिटा दे और शांति को प्राप्त करा दे।

२०८८. जो दूसरे के अवगुण देखता है और दूसरे को सुखी देखकर ईर्ष्या करता है वह कभी तृप्ति सुख और शांति का अनुभव नहीं कर सकता।

२०८६. आत्म सन्तुष्टि यदि नहीं है तो फलश्रुति भी मैं नहीं मानता हूँ। किसान सबसे ज्यादा संतोषी होता है। वह अपनी फसल के ऊपर खेत में ताला नहीं लगाता, पशु पक्षी भी इसका आनंद लेते हैं।

शासन

२०८७. जिसे जिनशासन के प्रति गौरव-आस्था नहीं, उसके पास चारित्र नहीं।

२०८८. जैनशासन में सागर और अनगार दो पन्थ है। अविरत सम्यग्दृष्टि का कोई पन्थ नहीं होता वह तो मात्र उन दोनों पन्थों का उपासक हुआ करता है।

२०८९. अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए आज ऐसे-ऐसे घृणित कार्य किये जा रहे हैं, जिनसे कि जिनशासन और देश को अपार क्षति हो रही है।

२०९०. प्रजा पर शासन चलाना मामूली चीज है, पर अपने ऊपर शासन चलाना टेढ़ी खीर है।

२०९१. संसारी जीव प्रायः करके हुकुम (शासन) की ओर बहुत जल्दी दौड़ जाता है, वह समझने लगता है कि मैं सबसे ऊपर हूँ, पर उससे ऊपर आकाश भी तो है।

२०९२. हमें जिनशासन मिला है यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमें उसका सदुपयोग करना चाहिए, इसका दुरुपयोग मत करो।

शिक्षा

२०९३. संयतज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान है और वही शिक्षा है। दवाई एक-एक चम्मच लेना ही सही है।

२०९४. शिक्षा के लिए परीक्षा एक अंग मात्र है उसके माध्यम से सर्वांगीण मूल्यांकन नहीं होता।

२०९५. सर्वांगीण मूल्यांकन तो उसकी चर्या, व्यवहार से होता है।

२०९६. सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य पाँच पक्ष है-१. शारीरिक, २. मानसिक, ३. व्यावहारिक, ४. नैतिक और ५. आध्यात्मिक।

१. शारीरिक-रुग्ण रहोगे तो शरीर ठीक काम नहीं करेगा।

२. मानसिक-संतुष्टि हो, अस्थिरता न हो, चंचलता का अभाव; शिक्षा के ये गुण हैं।

३. व्यावहारिक-अपने जीवन काल में पुरुषार्थ सही हो।

४. नैतिक-हमारी नीति साफ सुथरी हो, कषाय का अभाव हो।

५. आध्यात्मिक-आत्म तत्त्व की प्राप्ति।

२०९७. ये पाँचों पक्ष अच्छे तैयार होना चाहिए। जैसे अनिवार्य प्रश्न को हल करना होता है वैसे ही पाँचों पक्ष अनिवार्य हैं।

२०९८. जो दिया उसको अच्छी तरह से पचा लेना चाहिए। वह प्राणमय बन जाये, अंदर उतर जाये इससे मनोबल बढ़ता है तो प्रतिभा भी निखरती है।

२०९९. जैसे भोजन में हम पचने के लिए तीन घंटे करीब अंतराल रखते है, इसी तरह बच्चों को कुछ शिक्षा दी फिर उसे पचाने के लिए समय मिलना चाहिए।

२१००. पढ़ना तो ज्ञान से नहीं होता है, ध्यान से होता है। ज्ञान जब तक संयत न हो ध्यान नहीं लगता

इसलिए ज्ञान से नहीं ध्यान से पढ़ा करो।

२१०१. आज सरस्वती की आराधना न होकर वह बेची जाती है, आज आपके बच्चे बिक रहे हैं। आप दहेज के लिए अभिशाप मानते हो, मैं पैकेज को उससे बड़ा महाभूत मानता हूँ।

२१०२. आप यदि किसी के वशीभूत हो जायेंगे पैसे के बल पर तो काम नहीं कर पाओगे अपने देश के लिए।

२१०३. व्यवहारिकता अथवा कर्तव्यनिष्ठता यदि नहीं है तो कैसी शिक्षा?

शिक्षा, परीक्षा

२१०४. आज शिक्षा का फल क्या होना चाहिए इस ओर दृष्टि ही नहीं बस ९० प्रतिशत की ओर दृष्टि है।

२१०५. यदि नागरिकता नहीं है तो शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं।

२१०६. नगर की ओर न देखो नागरिकता की ओर देखो।

२१०७. आज मात्र पैसे की ओर दृष्टि है वस्तु की ओर नहीं ये दिवालियापन है। मात्र पैसा खाने की चीज नहीं है ऐसी शिक्षा घोलकर भी पी लो तो वह जीवन में काम आने वाली नहीं।

२१०८. आज यह स्थिति है कि कोई अपने देश में ज्ञान प्राप्त करे, तो ज्ञानी नहीं, किंतु विदेश से ज्ञान प्राप्त करके आए तो कोई भी स्वीकार कर लेता है।

२१०९. आज साहित्य में पाप-पुण्य आत्म तत्त्व की कोई बात ही नहीं। आज सामाजिक व्यवस्था समाप्त आत्मा के ऊपर मूर्त जड़ मोह का साम्राज्य छा चुका है।

२११०. इतिहास नहीं पढ़ने से आज सब कुछ टूट रहा है, बिखर रहा है समाज।

२१११. पहले परीक्षा नहीं आलोड़न, मंथन, मनन होता था।

२११२. शिक्षा परीक्षा के लिए आवश्यक है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा नहीं होना चाहिए।

२११३. आज शिक्षक, शिक्षिकाओं, अभिभावकों और बच्चों की सभी की दृष्टि मात्र परीक्षा की ओर है।

२११४. परीक्षा और नतीजा शिक्षा का मूल्यांकन नहीं है, वह बहुत कुछ रखता है अंदर अपने, लेकिन परीक्षा की दहाड़ सुनते ही छलांग लेना समाप्त हो जाता है, ये शिक्षा नहीं।

२११५. भारतीय संस्कृति के अनुसार आज तन्मय बच्चा नहीं हो पाता। पूर्व-पूर्व की विद्या आगे रहना अनिवार्य है।

२११६. परीक्षा शिक्षा का अभिन्न अंग हो सकता है लेकिन मुख्य अंग नहीं।

२११७. शिक्षा यदि संस्कारों के साथ है तो भीति/भय की संदेह की कोई बात नहीं।

२११८. आज जो अंधकार जैसा छा रहा है वह सही शिक्षा का परिणाम नहीं।

२११९. शिक्षा की संस्था में काम करने वालो सुनो! यह ट्यूशन की पद्धति भारत से गायब हो जाये

ऐसा कार्य करो, क्योंकि ट्यूशन के कारण स्मृति भंग हो रही है।

२१२०. आज भीतर की ओर जाने की कोई शिक्षा नहीं दी जा रही है जबकि ये सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा है।

२१२१. आज शिक्षा के क्षेत्र में करोड़ों रुपये व्यय हो रहे हैं खरबों भी कह दो तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतना व्यय होने के उपरांत भी भीतरी कोई संकेत उसे नहीं मिल रहा है। हम उसको सुशिक्षित कैसे कहें? सुशिक्षा कैसे कहें? धर्म के साथ शिक्षा दीजिये जिससे उनका कल्याण हो जाये।

२१२२. बच्चों को संयम का यह शिक्षण अवश्य देना, हाथी है तो अंकुश है, घोड़ा है तो उसके लिए लगाम है, ऊँट है तो नकील है, ओर गाड़ियाँ हैं तो ब्रेक है।

२१२३. मनुष्य भी एक ऐसा पॉवरफुल व्यक्ति है उसके लिए क्या है? ब्रेन को अपने-अपने अंडर में रखें। मन को अपने काबू में रखेगा तो स्वयं को भी सुरक्षित रख लेगा और दूसरों को भी सुरक्षित रखने में योगदान देगा।

२१२४. यदि चारित्र को उच्च नहीं बनाओगे, मन को संयमित नहीं बना पाओगे, तो यह एजुकेशन नहीं।

२१२५. पहले हेय-उपादेय का ज्ञान कराना शिक्षा का मूल उद्देश्य होता था और यह मूल उद्देश्य होना चाहिए।

२१२६. पहले सभी पुरुषार्थों का जीवन में कहाँ तक योगदान है, इसका समग्र अध्ययन कराया जाता था। आज ये नहीं होने के कारण ये सब व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न हो रही हैं।

२१२७. आज तो घर में कोई नहीं रहता, दिनभर घर में ताला लटका रहता है। ड्यूटी देने जाते हैं, ड्यूटी देकर आ जाते हैं और थोड़ा समय मिल जाये तो भोजन पानी हो गया, वह भी समय नहीं रहा तो थाली सजी-सजाई आर्डर पर आ जाती है कल्पवृक्ष कामधेनु की भाँति। बटन दबा दो...आ जाये। बच्चे भी स्कूल चले जाते हैं, न माँ का प्यार, ना पिता जी का प्यार, ना और कोई विशेष कोई भी व्यवस्था नहीं।

२१२८. लिखना और पढ़ना शिक्षा के क्षेत्र में गौण मानते हैं और सुनना सुनाना मुख्य मानते हैं।

२१२९. जो नियंत्रण में रहते हैं उन्हें परीक्षा वरदान सिद्ध होती है।

२१३०. विद्यालय में प्रवेश का अर्थ है कि परीक्षा प्रारंभ हो गई।

२१३१. पहले पढ़ने लिखने की बात न कह करके उसके गुणधर्म से परिचय कराया जाता था। बच्चे को घुट्टी में सब कुछ दिया जाता है वह पचा लेगा ये विधा प्राचीन काल में थी इसे मैं महत्त्वपूर्ण समझता हूँ।

२१३२. बोझ को देकर के बोध बुझ जाता है, बोझ है बस्ता उसे देखकर उसका दिमाग ही बुझ जाता

है।

२१३३. शिक्षा हमेशा-हमेशा सुन करके भी गहराई तक पहुँचा सकते हैं।

२१३४. मुझे क्या चाहिए उसकी प्राप्ति कैसे होगी ये शिक्षा का सबसे अच्छा परिणाम है।

२१३५. विदेशी शिक्षा में आज आप स्वयं बिक रहे हो जबकि देशी शिक्षा से आप अपने आर्ट को तैयार करके स्वयं बेच सकते हो।

२१३६. विदेशी शिक्षा में मूल्यांकन जड़ का किया जाता है मूल्यांकन करने वाले का कोई मूल्यांकन नहीं होता।

२१३७. देशी शिक्षा में स्वयं का बिकना असंभव है। वह श्रम करता है। उनके अभिभावकों ने ऐसा मंत्र फूँका है, उन्हें सही दिशा दी है।

२१३८. आज मंत्र चले गये यंत्र आ गये, तंत्र समाप्त हो गए।

२१३९. मंत्र सिद्ध करता है तो हजारों किलो मीटर पर भी वह काम करता है।

२१४०. जहाँ शिक्षा व्यवस्था नहीं है उन्हें सिखाना ही वास्तव में शिक्षा है।

२१४१. वर्तमान में शिक्षा काल पहले फिर दीक्षा इसलिए ये स्थिति है जबकि पहले दीक्षा काल फिर शिक्षा काल यही करना। शिक्षा का सही अर्थ है।

२१४२. बच्चा चलना सीखता है तो लिखकर नहीं चलकर सीखता है।

२१४३. जो प्रयोग नहीं करता उसे आगे की शिक्षा दी नहीं जाती।

२१४४. अपने जीवन में बच्चे उदारता के साथ दूसरे के जीवन का भी संरक्षण कर सके, इस तरह की शिक्षा दो।

२१४५. उदारता के साथ जैसे जल सबको उपलब्ध हो वैसे ही शिक्षा भी जो भी अपढ़ हैं सभी को उपलब्ध हो। उसको ऐसे समझा दो कि वह हमेशा आपको याद रखे।

२१४६. बूँद एक होती है और दूसरी बूंद से मित्रता रखती है तो वह गतिशील हो जाती है। जड़ होकर भी फिर सागर तक पहुँच जाती है। शिक्षा सबके लिए उपयोगी हो जीवन को उन्नत बनाने के लिए।

२१४७. जो व्यक्ति भाषा को नहीं समझेगा तो संघर्ष तो होगा ही।

२१४८. जिस भाषा में शिक्षा दी जायेगी उसी साहित्य से वह परिचित होगा अपनी मातृभाषा से वंचित रह जायेगा इसलिए संक्रमण से बच नहीं पायेगा दूसरे साहित्य अपनाते चले जाते है और अपना भूल जाते हैं।

२१४९. क्रय-विक्रय शिक्षा के क्षेत्र में नहीं होना चाहिए। आज इसी कारण सारी जनता परेशान है।

२१५०. जिस देश में जो विज्ञान है उसे हम लेते जायें ये शिक्षा है लेकिन शिक्षा की बात जहाँ आती है वहाँ किसी विशेष देश की भाषा के माध्यम से ही हम सब जगह शिक्षा दें ये गलत है इससे

विकास रुक रहा है हम उलझना नहीं चाहते हैं सुलझना चाहते हैं।

२१५१. आज जीव विज्ञान को भी पढ़ते हैं तो मात्र नौकरी का उद्देश्य है जीवकाण्ड का नहीं।

२१५२. उद्देश्य हमारा शिक्षा देना है तो मात्र अंग्रेजी भाषा में ही देंगे, ये क्यों?

२१५३. शिक्षा की व्यापकता को कभी नहीं भूलना।

२१५४. मूल को मजबूत बनाओ शिक्षा अपने आप विकसित होगी मातृभाषा का यदि ध्यान रहे तो।

२१५५. विज्ञान या अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का अंग नहीं मानेंगे।

२१५६. रागी व द्वेषी व्यक्ति कभी भी न सुख प्राप्त कर सकता है और न किसी को सुख दे सकता है।

२१५७. विज्ञान के विकास के लिए किसी भी देश ने अपनी मातृभाषा को शिक्षा के लिए नहीं छोड़ा सभी जगह अपनी-अपनी मातृभाषा में शिक्षा दी जाती है।

२१५८. विकसित देशों की ये स्थिति है तो विकासशील भारत को क्या करना? विकास की बात यदि करना है तो शिक्षा की बात करो।

२१५९. वृक्ष हमेशा ऊर्ध्वगामी होता है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है। इसी प्रकार शिक्षा का स्वरूप भी ऊर्ध्वगामी हो।

२१६०. साधन के बारे में हमारा आग्रह नहीं है कम्प्यूटर ने भी संस्कृत भाषा को सर्वश्रेष्ठ माना है।

२१६१. हमारी शिक्षा संस्थाएँ विश्व विद्यालय तक पहुँचती हैं लेकिन कॉलेज जो हैं वो विश्व विद्यालय तक नहीं पहुँचते।

२१६२. विश्व विद्यालय में हर तरह की शिक्षाएँ हैं, विज्ञान में ये नहीं है, बच्चों का अधूरापन रहता है।

२१६३. जब तक ग्रेजुएशन नहीं होता तब तक शिक्षा का विभाजन नहीं होना चाहिए। हर तरह की शिक्षा उन्हें मिलनी चाहिए।

२१६४. अधिकार प्राप्त हो फिर आप किसी भी तरफ चले जायेँ। लेकिन विज्ञान आ गया फिर वह किसी भी तरफ नहीं जा पाता।

२१६५. जो होशियार है उसको क्या होशियार करना जिसको कुछ नहीं आता उसको हमें तैयार करना चाहिए ये हमारा उद्देश्य है।

२१६६. जो हँस रहा है वह आपके ऊपर हँसेगा उसे हँसाने की जरूरत नहीं लेकिन जो रो रहा है उसे हँसाने की आवश्यकता है।

२१६७. नियमावली कट्टरता की प्रतीक नहीं यह कण्डीशन परिस्थिति के साथ बनाई जाती है।

२१६८. कण्डीशन यदि फैल हो गया तो क्या रहा? प्राणवायु का भी कण्डीशन मात्रा अनुपात रहता है, उससे बाहर होने पर खराब हो जाती है।

२१६९. विज्ञान की शिक्षा के लिए मेरा निषेध नहीं है लेकिन अच्छी तरह से सारी शिक्षाएँ देकर आगे बढ़ाइये। आगे जाकर वह फेल नहीं होगा।

२१७०. नीचे एक तना मजबूत बनाओ फिर शाखाओं की बात करो। बच्चों का तना मजबूत नहीं हो पाता है हम विभिन्न भाषाओं को रख देते हैं।
२१७१. शिक्षक के अन्दर विद्यार्थी की भूख जागृत करने की कला होनी चाहिए। वह आपसे भी आगे निकलेगा।
२१७२. आज शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का प्रवेश हुआ है इसलिए ये व्यवसायीकरण हो गया है।
२१७३. आज प्रजानीति का उपयोग नहीं होने से राजनीति शिक्षा में आ गई।
२१७४. अर्थ के लिए नहीं शिक्षा परमार्थ के लिए होनी चाहिए।
२१७५. विज्ञान शिक्षा नहीं विधा (प्रक्रिया) है।
२१७६. जिस भाषा में परलोक के बारे में कोई साधन सामग्री का विश्लेषण नहीं है उसकी बात यहाँ मत करो।
२१७७. आय का स्रोत मात्र यहीं नहीं परलोक में भी ये आय को संचय करके जायें अर्थात् भटके नहीं परलोक में भी अच्छे संस्कारों को लेकर जाये।
२१७८. व्यवसायीकरण के कारण अर्थनीति की ओर शिक्षा चली गई।
२१७९. शहरीकरण के कारण नियमावली टूट रही है।
२१८०. बच्चों से आप निराश हो जाओ तो अपने आप वह सीधा हो जायेगा लेकिन हम दया करके उसे वरदान नहीं अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।
२१८१. बाँध बाँधा जाता है तो जितना-जितना पानी का संग्रह ज्यादा होता है तो ऊपर हाइट बढ़ाना बंद कर देते हैं ताकि पानी का घनत्व पृथ्वी के ऊपर फैल जाता है।
२१८२. शिक्षा के क्षेत्र में भी वेट बढ़े नहीं क्षेत्र बढ़ता चला जाये ताकि अनुशासन के नियम ढीले न हो अर्थात् नियमावली से हटकर कोई काम नहीं हो चाहे वह किनारे पर भी हो लेकिन नियमित हो।
२१८३. आगे बढ़ने में भाषा ही काम में आती है। लिखने से नहीं बोलने से ही भाषा का प्रभाव पड़ता है।
२१८४. जैसे आप अन्न खाते हैं, पानी पीते हैं, वह प्राण का रूप धारण कर लेता है वैसे ही जो कुछ आचरण है वह भाषानुसार हो जाता है, वैसा ही उसका रहन-सहन, खान-पान, चाल-ढाल आदि-आदि हो जाती है।
२१८५. शिक्षा बाहर या भीतर की कोई भी हो जिससे हमारा जीवन उन्नत हो, दया-करुणा-प्रेम से जीवन को ओत-प्रोत कर दे वह शिक्षा सही है।
२१८६. आज तो हमें बच्चों को डॉक्टर इंजीनियर बनाना है इसकी होड़ है, नीति न्याय से कोई मतलब नहीं।

२१८७. भाषा के बिना विद्या नहीं आती है यह ठीक है लेकिन भाषा मात्र ही नहीं भाषा के साथ भाव रूप हाथ मिलेगा तब तालियाँ बजेंगी।

२१८८. भावों से सुख शांति की स्थापना कर सकते हैं। हमें अपने भीतर भावों को पैदा करना होगा दूसरी भाषा के माध्यम से हममें वह भाव नहीं आ पायेगा।

२१८९. शिक्षा के माध्यम से किसी एक निश्चित लक्ष्य तक विद्यार्थी को पहुँचाना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए।

२१९०. रत्नों का प्रभाव शरीर पर जिस प्रकार से पड़ता है उसी प्रकार रत्नों के प्रभाव की तरह जीवन में शिक्षा का भी प्रभाव पड़ता है।

२१९०. शिक्षा में वही सब कुछ दिया जाता है वही संस्कार दिया जाता है जो जीवन भर उसके काम आये।

२१९१. संस्कारित शिक्षा जो होती है वह हमेशा सामाजिक व दार्शनिक विचारों को सर मस्तिष्क तक ले जाने में सक्षम होती है। आज दार्शनिक व सामाजिक आधार ही नहीं रहा सब चौपट हो गये हैं।

२१९२. सुसंस्कारित शिक्षा का प्रचार-प्रसार करिये इसे अर्थमय न बनायें।

२१९३. जीवन बनाने के साथ-साथ जीवन सुरक्षित करेगी संस्कारित शिक्षा। ज्यादा न सुनकर प्रयोग चालू करो।

२१९४. आज शिक्षा व चिकित्सा इन दोनों क्षेत्रों में प्रयोग न होने से इन दोनों की रीढ़ ही टूट सी गई है।

२१९५. शिक्षा और चिकित्सा का जोड़ा है यह तभी सही हो जब शिक्षा में शिक्षा के साथ, अध्ययन के साथ प्रयोग को महत्त्व दिया जायेगा।

२१९६. शिक्षा व संस्कार का प्रयोग यदि करते हैं तो अगले जीवन में भी वह काम करेगा।

२१९७. जिस प्रकार कृषक विधिवत कार्य करता है तो फसल लहलहा उठती है। उसी प्रकार केवल बौद्धिक आयाम का नाम शिक्षा नहीं उसका विधिवत् प्रयोग भी होना आवश्यक है।

२१९८. आजकल की शिक्षा-गुंथा आटा बाहर रखा हुआ है जिस पर पपड़ी जम गई है उसके जैसी है। ऐसे आटे की लोई निकाल कर रोटी बनायेंगे तो अच्छे-अच्छे पाक शास्त्री भी फेल हो जायेंगे।

२१९९. मात्र रुचि के अनुरूप भी शिक्षा नहीं देना चाहिए। जैसे कोई मीठा-मीठा ही खाना चाहता है दूसरी वस्तु देने पर भूख नहीं है ऐसा कह देता है और मीठा दे दो तो खा लेता है। ऐसा करने से लीवर कमजोर हो जायेगा।

२२००. शिक्षा आदि चरण में ही क्यों दी जाती है? क्योंकि बाद में मान्यता नहीं रहती, मनाना रहता है। मानता है बालक तभी तक शिक्षा है। तर्क के बाद मानने के लिए आधार चाहिए वह

मानता तो है किन्तु देर से।

२२०१. जैसे ठोका-ठाकी किये बिना मृदंग, तबला आदि में स्वर नहीं फूटते रंग नहीं आता। इसमें शिल्पी के हाथ की करामात है तर्जनी, मध्यमा, हथेली का प्रयोग आवश्यक है उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रयोग आवश्यक है।

२२०२. शिखर तक पहुँचना, ऊँचाइयों को छूना आदि-आदि सब प्रयोग से ही होता है।

२२०३. संगीत में सराबोर होना संस्कार व प्रयोग के माध्यम से होता है लेकिन आज का संगीत तो सराबोर तो नहीं बोर करता है।

२२०४. बेनटेक्स के गहने देखने में सोने स्वर्ण जैसे लगते हैं लेकिन उन आभरणों की कीमत एक हजार भी नहीं है। इसी प्रकार विदेशी शिक्षा आर्टिफिशिल गहनों जैसी है उसकी कीमत भी उतनी ही है।

२२०५. विदेश अर्थात् विशेष स्तर के देश में रहने वाले। विदेशी शिक्षा देखने में स्टेण्डर्ड जैसी लगती है लेकिन संस्कार विहीन होने से उसका कोई मूल्य नहीं है।

२२०६. विदेशी शिक्षा से अपने आपको और अपनी संतानों को भी दूर रखिये। विशेष रूप से परिश्रम करिये, प्रयोग करिये और सबको भी समझा दीजिये।

२२०७. अंग्रेजी भाषा से बालक खुश्क तो होगा लेकिन खुश नहीं होगा क्योंकि निगेटिव शब्द हैं।

२२०८. शिक्षा का यदि लक्ष्य निर्धारित नहीं है तो समझ लो भटक रहे हो।

२२०९. आज दर्शन नहीं है इसलिए निर्धारित शिक्षा है हम इसे शिक्षा रूप संज्ञा दे नहीं सकते आज दर्शन नहीं प्रदर्शन है। प्रदर्शन उथला होता है दर्शन गहराता है।

२२१०. बच्चों को बहुत पढ़ना होता है उससे स्मृति ठंडी हो जाती है। सुनने से स्मृति बढ़ती है, सुनने में एकाग्रता ज्यादा होती है किन्तु आज पढ़ने और पढ़ाने की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि स्मृति की आवश्यकता नहीं है।

२२११. आज की अंग्रेजी शिक्षा हमारे लिए अभिशाप बनती जा रही है। कुछ काल और व्यतीत होने पर पिता-माँ, भाई-बहिन कौन हैं यह भी बता नहीं सकेगा।

२२१२. आज अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देकर आप अपनी संतान की अपने सामने-सामने ही बुद्धि भ्रष्ट कर देंगे।

२२१३. प्रयोगहीन, संस्कारहीन विदेशी शिक्षा से दूर रहना चाहिए।

२२१४. अंग्रेजी भाषा में न साहित्य है, न शब्द हैं, न ही आचरण है फिर आप लोग अपने बच्चों को क्या पढ़ाना चाह रहे हैं? विद्या का उद्देश्य अंग्रेजी भाषा में फलीभूत नहीं होगा।

२२१५. अंग्रेजी भाषा केवल नौकरी के लिए पढ़ा रहे हो तो इसका मतलब है शिक्षा के उद्देश्य का सही ज्ञान आपको नहीं हुआ।

२२१६. शिक्षा, विद्या अर्जन के बाद अभिमान, परिग्रह, कषाय आदि घटती जाती है, घटना चाहिए तभी सही शिक्षा है।

२२१७. शिक्षा के प्रयोग से कषाय घटेगी और उम्र बढ़ेगी।

२२१८. कषाय भिड़न्त जितनी होगी उतना ही उसने शिक्षा का महत्त्व नहीं समझा यह मानना होगा। रोये-धोये, भिड़े ऐसी शिक्षा क्या शिक्षा है?

२२१९. जिस समय जो योग्य था वह नहीं दिया तो काहे की शिक्षा? वह तो शब्द मात्र है।

२२२०. शिक्षा के क्षेत्र में लेखन ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। अध्यापन व प्रयोग को ही महत्त्वपूर्ण मानता हूँ।

२२२१. प्रयोग चालू करें, शिक्षा को आप जीवित जाने। जो सोया है उसे जगा देती है यह शिक्षा है, ये पक्का है।

२२२२. पहले गुरुकुल होते थे और पेड़ के नीचे बैठकर अध्ययन-अध्यापन, प्रयोग हो जाता था। महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि-आदि नहीं थे।

२२२३. आज बच्चों की पीठ में बस्ता लदे रहते हैं। बच्चे हों, विद्यार्थी हों, यात्री हों सभी पीठ पर लादे घूम रहे हैं। आपकी शिक्षा में बोझ है बच्चों की पीठ पर किन्तु बोध नहीं।

२२२४. पृष्ठों के माध्यम से, शब्दों की परिगणना के माध्यम से आपका अर्थ गौरव नहीं बनेगा। कम शब्दों में भी अर्थ गौरव ज्यादा हो सकता है।

२२२५. आज पढ़ना भी मात्र नौकरी के लिए कर रहे हैं। एक बार में अर्थ निकल गया तो संतुष्ट हो जाते हैं। जबकि बार-बार पढ़े तो और-और रहस्य मिलेगा।

२२२६. इंग्लिश का आइ बनाते हैं इसमें एक रेखा खींची और दोनों ओर से आड़ी रेखा खींचकर रेखा को सीमित कर दिया अर्थात् उसमें विकास नहीं, उन्नति रुक गई। यदि टी बना है तो उसमें रेखा खींचकर ऊपर से मात्र बंद किया मतलब उद्देश्य निश्चित है, विशालता है। आई में विशालता नहीं।

२२२७. शिक्षा का उद्देश्य विस्तृत/ विकसित होना चाहिए वह आई में नहीं हुआ, टी में फैल गया दोनों तरफ।

२२२८. आज आप क्या पढ़ा रहे हैं? क्या दे रहे हैं? क्या खर्च कर रहे हैं ? कितना खर्च कर रहे हैं? इससे क्या मिलेगा? ये भी पता नहीं। आज पैरों का, हाथों का उपयोग नहीं हो रहा है। बैठे-बैठे मात्र पढ़ने से हेल्थ, वेल्थ ओर यहाँ तक की करेंट भी समाप्त।

२२२९. आप गाड़ी चलाते हैं, बुद्धि से चलाते हैं कि मात्र पैरों से। मात्र पैरों से चलाना आचरण नहीं किन्तु ऐसी विद्या जो आचरण/ चारित्र की परिचायक है वही सही विद्या है।

२२३०. आज शिक्षा का स्तर इतना बढ़ गया है कि पढ़ा लिखा होकर भी असभ्य वातावरण में जी रहा

है।

२२३१. आज युग बहुत तीव्रता से आगे बढ़ रहा है। अंग्रेजी की होड़ में प्रभु गायब, हर व्यक्ति का व्यक्तित्व समाप्ति की ओर है जिस लाइन, जिस पद्धति से चल रहा है उसे देखकर तो नहीं लगता कुछ बचेगा।

२२३२. बुद्धि के माध्यम से समझें और पैरों से आचरण की ओर जायें। पैरों से यदि आचरण की ओर कदम नहीं बढ़ेंगे तो मात्र बुद्धि से कुछ नहीं होने वाला, कुछ हाथ नहीं लगेगा ऐसी शिक्षा से।

२२३३. जैसे भूख से अधिक खाने पर अजीर्ण हो जाता है अर्थात् अन्न भी विष का रूप ले लेता है, जानलेवा हो जाता है उसी प्रकार आज की बुद्धि, आज की शिक्षा प्राण लेवा बन रही है।

२२३४. अब गाँधी जी आदि पुरुषों को मात्र १५ अगस्त तथा २६ जनवरी के दिन ही याद किया जाता है। इसी प्रकार हिन्दी को मात्र हिन्द दिवस के दिन याद करेंगे।

२२३५. पहले थोड़ा सा सिर पर हाथ फेरते ही दिमाग में बात आ जाती थी लेकिन अब तो ठोकने के बाद भी कुछ नहीं आता।

२२३६. पहले जो शिक्षा थी उसमें लिखना कम होता था प्रयोग ज्यादा था। दो बार याद करो अभ्यास करोगे तो पच जायेगा तथा अभ्यास नहीं करने पर बच जाता है।

२२३७. अनभ्यासे विषं विद्या, अजीर्णे भोजनं विषं ऐसा कहा है।

२२३८. बहुत ज्यादा पढ़ने की आवश्यकता नहीं, गिनने की आवश्यकता नहीं, गुनने की आवश्यकता है। बुद्धि का उपयोग कीजिये।

२२३९. आज ऐसे-ऐसे विद्यालय हैं जहाँ विद्या नहीं मिलती अलग से प्रशिक्षण, ट्यूशन-इन ट्यूशन चले हैं जैसे विद्यालयों में जो आगे दिया जाने वाला है वह पहले ही दे देते हैं।

२२४०. जैसे आहार में सौंफ, इलायची, लौंग आदि-आदि शुरू में दे दो ऐसा है क्या? नहीं रोटी-पानी, दाल आदि-आदि सब में से जिसे पूर्व में देना है, उसे पूर्व में तथा बाद में जो देने लायक है, वह बाद में देना नहीं तो हानिकारक हो जायेगा।

२२४१. ज्यादा पढ़-पढ़ करके बुद्धि का प्रयोग यंत्र बनाने में नहीं करना, पैरों का प्रयोग करिये।

२२४२. रोबोट यंत्र क्या है? जैसा कहो वैसा सब कुछ करता जाता है। यंत्र चलाने वाला ही विस्मृत हो जाये गलत बटन दब जाये तो बटन दबाने वाले को ही दोनों हाथों से दबोच ले ऐसा ही आज हो रहा है। वह यंत्र रोक करके कभी कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर पायेगा, इससे उसे कुछ लेना-देना नहीं है।

२२४३. जैसे डॉक्टर रोग देखकर दवाई देता है, उसको उल्टी न हो जाये, दवाई गले उतर जाये ताकि ठीक हो जाये। उसी प्रकार ऐसी शिक्षा, ऐसा वक्तव्य दें कि उसके जीवनपर्यंत काम आ सके। यह प्रयोगात्मक शिक्षा जल्दी से ग्राह्य होती है।

२२४४. आज टीचिंग के स्थान पर प्रयोग रख दिया यानि १० प्रतिशत ही प्रयोग किया जा रहा है जो कार्यकारी नहीं। प्रयोग में पूरे नंबर मिलते हैं। प्रयोग के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है, अध्ययन का समय तो निर्धारित है।

२२४५. कोई भी विषय को पढ़ने में, पढ़कर समझने में घंटों लगते हैं और उसी को दृश्य या झाँकियों के माध्यम से साकार देखने से एक मिनट में ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

२२४६. झाँकियाँ क्या हैं? विचारों की आकृति हैं। ऐसी प्रस्तुति हो कि सामने वाला देखकर ही बोध को प्राप्त हो जाये। क्योंकि सामने वाले दर्शक के पास पूरा इतिहास पढ़ने का तो टाइम तो है ही नहीं। जो आप बताना चाह रहे हैं वह उसके जीवन में उतर जाये उसके पल्ले पड़ जाये, गले उतर जाये वहीं सही शिक्षा है।

२२४७. अनपढ़ व्यक्ति प्रयोग कर करके बहुत कुछ सीख जाता है। और आज प्रयोग के अभाव में पिछड़ते जा रहे हैं।

२२४८. गम्य दुर्गम्य/अगम्य वस्तु तक हमारी दुबली-पतली बुद्धि भी जिससे पहुँचती है उसी का नाम तो शिक्षा है। दुबली-पतली भले हो लेकिन पकड़ती तो है कुछ न कुछ। काया छोटी है लेकिन बुद्धि छोटी नहीं, चोटी की है फिर भी चोटी नहीं होती। चोटी की बुद्धि है यानी वह बुद्धि छोटी नहीं है वो दुबली पतली नहीं है वो बहुत आगे की है।

२२४९. शिक्षा का आधार क्या है? सामाजिक और दर्शन।

२२५०. आज शिक्षा में सामाजिक ज्ञान समाप्त कर रहे हैं और दर्शन को तो बिल्कुल देखना ही नहीं चाहते। साइंस वाले दूरदर्शन से देख रहे हैं हम दर्शन के प्रेमी हैं और आप लोग दूरदर्शन के आदि हो गये हैं, दर्शन को तो दूर रख दिया है।

२२५१. दूरदर्शन देखते-देखते, सुनते-सुनते चश्मा लग जाता है, उतरता ही नहीं धागा बांधना पड़ता है और कहता है गाँधी छाप है। आज तो आपके बच्चे का जीवन प्रारम्भ ही दूरदर्शन से है।

२२५२. भैया दूरदृष्टि रखो। दूरदृष्टि रखने से अपने आपके भविष्य के बारे में और अतीत के बारे में ज्ञान प्रारम्भ होता है।

२२५३. जब हम आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तब की बात है। एक छात्र का नाम व सरनेम था रामचन्द्र पांडुरंग कर मर कर। इसको अंग्रेजी में अनुवादित किया तो-राममून पांडु कलर डू। डू इस प्रकार इंग्लिश का नाम हो गया। इतना परिवर्तन विपरीत दिशा में हो गया यह गलत है।

२२५४. पथ में चलते-चलते थोड़ा साइड होकर पुनः रास्ते पर आना तो ठीक है लेकिन बिल्कुल विपरीत में चली गई है आज की शिक्षा पद्धति। फिर भी जागृत नहीं हो रहे हैं।

२२५५. सब शब्दों का अनुवाद, भावानुवाद हो सकता है लेकिन व्यक्ति या देश के नाम का कोई दूसरा भावानुवाद नहीं होता है।

२२५६. अध्यापन और प्रयोग के द्वारा निश्चित आदर्श तक पहुँचाना ही शिक्षा है। आजकल प्रयोग नहीं हो रहा है।

२२५७. पहले परीक्षा नहीं प्रयोग होते थे। आज तो पाठ्यक्रम ही गलत-गलत दिया जा रहा है।

२२५८. हुण्डावसर्पिणी काल में वृद्धि बुराइयों की तथा ह्रास अच्छाईयों का होता जायेगा।

२२५९. न्याय का पक्ष वहीं लेता है जिसकी शिक्षा अच्छी होती है। कहीं न कहीं अटकाव होता है तो भटकाव हो जाता है।

२२६०. मर्यादा का भंग बड़ों से, गुरुओं से, शिक्षकों से गलती होती है तो नीति ही उनके कान पकड़ती है इसलिए शिक्षा ही सबसे बड़ी माँ है। मर्यादा का भंग नहीं होना चाहिए, कर्तव्य का पालन करते जायें।

२२६१. संकेत और शिक्षा के माध्यम से जो पूर्वजों ने दिया हे वह हमारी निधि है। उसे सुरक्षित रखिये।

२२६२. जिसमें आत्मा का अनुसंधान हो वही सही शिक्षा है। आत्मा की निधि का ज्ञान सही शिक्षा से होगा।

२२६३. अच्छे भावों के साथ, अच्छे क्षेत्र पर, अच्छे व्यक्तियों के बीच शिक्षा प्राप्त करने के लिए बच्चों को रखेंगे तो एक अच्छा नागरिक बनेगा वह बच्चा।

२२६४. पहले तो आत्मा के विकास के लिए परमार्थ के विकास के लिए शिक्षा होती थी। आजकल अर्थ का बोल बोला है।

२२६५. स्वर्गों में आज तक विश्वविद्यालय नहीं खुले। क्यों? केवली वहाँ जाते नहीं। वे स्वर्गवासी भोगविलासी हैं। भोगभूमि भी नहीं जाते हैं केवली भगवान। यहाँ की भूमि में ही केवली भगवान् विचरण करते हैं इसलिए कर्मभूमि की धरती ही शिक्षा का केन्द्र है।

२२६६. यहाँ कर्मभूमि की शिक्षा की स्वर्गों में भी आरती उतारी जाता है आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त के बाद शिक्षा प्रारम्भ हो जाती हैं।

२२६७. एकमात्र संकेत और शिक्षा ही हमें जागृत करने के साधन हैं इनके द्वारा संकेतों की गहराई तक पहुँचते हैं। अहिंसा करुणा वात्सल्य की शिक्षा को जान सकते हैं। अन्य कोई शिक्षा का मूल्य नहीं।

२२६८. जो हमें मिला है उसे सब तक पहुँचाने, बाँटने का आधार है तो वह है शिक्षा। शिक्षा आधार स्तंभ भी है।

२२६९. शिक्षण का कार्य दूसरों के लिए कर रहे हैं ऐसा नहीं, स्वयं के लिए आनंददायी और गहराई में पहुँचने का, डुबकी लगाने का उपक्रम है। तैराक की तरह वह स्वयं अनुभव कर सकता है।

२२७०. विद्यालयों में ही शिक्षण हो ऐसा नहीं किन्तु यह शिक्षक का कर्तव्य है कि उसको किस ढंग

से कब, कहाँ, कैसे प्रदर्शित करना है इसकी कला होना चाहिए। वक्तव्य का अर्थ कुछ भी कहें ऐसा नहीं किन्तु कहने योग्य को कहना वक्तव्य है।

२२७१. शिक्षा से बढ़कर के कोई भी वस्तु नहीं है। चाहे देवगति हो, तिर्यंचगति हो, मनुष्य गति हो सबमें प्रशिक्षण चलता है।

२२७२. नारकीय प्रशिक्षित रहते हैं वो वेदना प्रशिक्षित कर देती हैं कि ऐसा किया इसलिए ऐसा हुआ है।

२२७३. रावण को पहले समझ में नहीं आई थी लेकिन नरकों में अवधिज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान होने से सब बात समझ में आ गई। सारे विषय अपने आप अलग हो जाते है जब सम्यग्ज्ञान होता है।

२२७४. आज की पीढ़ी को विषयों से विरक्ति हो, विषयों से दूर हो इस प्रकार का शिक्षण देना चाहिए। ये मुख्य है हाँ फिर तो आगे उन्नति की ओर वह बढ़ता जायेगा।

२२७५. मन को आप काबू में रखो, आपको शिक्षा बहुत कीमती होगी यदि मन को आधीन कर लिया तो। ध्यान रखो सबसे ज्यादा कमजोर और अनिष्टकारी कार्य हो सकता है तो वो मन के माध्यम से यही शिक्षा सभी ग्रन्थों में दी है।

२२७६. पुरुष के लिए नारी विषय है, नारी के लिए पुरुष विषय है इसलिए दोनों एक-दूसरे से बचें क्योंकि दोनों के योग से कषाय होगी तथा दोनों के नहीं मिलने से हित होगा यह शिक्षा दी है ग्रन्थों में।

२२७७. यदि स्त्री-पुरुष का मिलना है तो दो मिल गये, विवाह/पाणिग्रहण हो गया और गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लें फिर और किसी से नहीं मिलना यह वर्ण व्यवस्था बताई हैं। ये सब क्या है? शिक्षा है। भूख लगे तो दे दो नहीं तो बिल्कुल नहीं देना।

२२७८. पहले शिक्षा आर्यिका-आर्यिकाओं को तथा बालिकाओं को देती थी तथा श्रमण-श्रमण को तथा बालकों देते थे। देओ और अपना-अपना निर्वाह करो और जब समवसरण लगे तो सब मिल जाओ।

२२७९. आज अव्यवस्थाएँ हो रही हैं जिससे कई समस्याएँ सामने आ रही हैं। आज यह विदेशी शिक्षा प्रणाली के कारण कन्या व छात्रशाला एक हो गई है।

२२८०. पहले छात्र-छात्राओं के अलग-अलग विद्यालय होते थे, दक्षिण में भी यहीं व्यवस्था थी।

२२८१. सबसे ज्यादा अमेरिका में सामाजिक अव्यवस्थाएँ फैल रही हैं उनका कारण इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली ही है।

२२८२. पहले ब्रह्मचर्याश्रम में गुरुकुल में सब शिक्षा दी जाती थी फिर अध्ययन पूर्ण कर घर आते थे। अब किसी एक को चुनना, कौन चुने? माता-पिता निर्णय करते थे, स्वयंवर प्रथा थी क्षत्रियों में। आज तो माता-पिता रोते हैं रोते क्यों हैं? माता-पिता ने स्वयं शिक्षा नहीं दी बच्चों को,

इसी का यह परिणाम है। विदेशी शिक्षा का यह परिणाम है।

२२८३. ध्यान रखो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा का उल्लंघन करने वाला हमेशा-हमेशा ताड़ित होगा। जिस समय जो कहा है, मर्यादा-सीमा में करो। भूख लगे तभी खाओ सुबह नाश्ता में गरिष्ठ दे दिया तो भोजन क्या करेगा?

२२८४. आप दूसरों को शिक्षा देने की बात करते हो, पहले स्वयं शिक्षित हो जाओ। हमारी क्या-क्या कमजोरियाँ हैं क्या-क्या नहीं यह देखें सोचें। इसमें औपचारिकता नहीं करना मुझे औपचारिकता अच्छी नहीं लगती है।

२२८५. पहले जमाने में छात्र-छात्राओं के विद्यालय अलग-अलग होते थे तथा अलग-अलग बैठते थे। यदि मिले हुए स्कूल होते थे तो भी अलग-अलग बैठते थे। लेकिन आज तो एक छात्र फिर छात्रा फिर छात्र ऐसे बैठते हैं ये कौन सा सुधार आया है शिक्षा के माध्यम से? ये शिक्षा पद्धति कहाँ तक बिगाड़ेगी पता नहीं।

२२८६. गणित आदि के सूत्र जो हैं उसे विद्या कहा है और हित-अहित की बातें जो समझाई जाती हैं उसे शिक्षा कहा है।

२२८७. पहले नीति वाक्य हितोपदेश के रूप में, शिक्षा के क्षेत्र में दी जाती थी।

२२८८. हितोपदेश का अर्थ क्या? दूसरे का हित करने वाली शिक्षा जिस उपदेश में हो वह हितोपदेश है। अहित किससे होता है? हिंसा, झूठ, चोरी से ज्यादा परिग्रह लादने से होता है। प्रायः करके शिक्षा में हित की ही बातें कही जाती हैं।

२२८९. भाषा वही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है जिस भाषा में विशेष रूप से साहित्य का सृजन हो, अतुल विज्ञान, शिक्षा-पद्धति समृद्ध हो, देश की उन्नति, मानव समाज के विषय में विशेष आदर्श प्रस्तुत किये हों वह भाषा अपने आप हो समृद्ध, महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

२२९०. मनुष्यों के लिए विद्यालय खोलते हैं लेकिन पशुओं के लिए विद्यालय नहीं खोलते पशु से मनुष्य शिक्षा ले लेते हैं।

२२९१. पक्षियों के पास एक साल का इकट्ठा माल रहता है क्या? नहीं, फिर उसे पशु क्यों कहते हैं? यह दो पैर का कौन सा पशु है मानव के रूप में? वे पशु तो रात में खाते भी नहीं है, जब तक सूर्य नारायण उदित नहीं होता तब तक वे खाते भी नहीं और बोलते भी नहीं हैं सभ्य पशु हैं वे आज तो मनुष्य दिन में नहीं रात में खाते हैं।

२२९२. आज तो मनुष्यों की यह नई पीढ़ी कहती है कि सामाजिक बन्धन को तोड़ो किन्तु यह बंधन नहीं व्यवस्था है।

२२९३. जैसे गैया गाय को खूँटी से बाँध देते हैं ताकि इधर-उधर कहीं चली न जाये, भटक न जाये और वह भी इस बंधन को स्वीकार करती है। बिना आवाज किये ही सार में आकर खड़ी हो

जायेगी। समय ही आवाज है ये शिक्षा उन्हें कहाँ से मिली? यह बड़ा विचित्र सा लगता है।

२२९४. अमेरिका में हिन्दी भाषा के शिक्षण के लिए ४०० करोड़ की व्यवस्था की है। यहाँ न रोड़ न करोड़ की आवश्यकता है कन्या स्वयं सरस्वती होती है और जहाँ सरस्वती है वहाँ लक्ष्मी अपने आप आ जाती है।

२२९५. दक्षिण में कभी भी लक्ष्मी पूजन नहीं होती है लेकिन बसंत पंचमी के दिन स्लेट बत्ती लेकर सरस्वती का चित्र बनाकर लाई फूला चढ़ाते थे। भव-भावांतर तक अर्थात् जब तक मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक यह संस्कार काम करेंगे।

२२९६. आज निर्देशन ओर गाईडेन्स की पद्धति आ जाने से शिक्षा पद्धति में भी गड़बड़ी आ गई है।

२२९७. सेल्फ स्टडी भी कब? जब पूर्ण अध्ययन हो जाये तब वह तभी शोध कर पायेगा। होमवर्क तो कर सकता है।

२२९८. प्राचीन काल में गुरुकुलों में एक ही गुरुजी होते थे एक कक्षा के सभी विषय वे ही पढ़ाते थे। सभी विषयों को पढ़ाने में दक्ष होते थे वह, आजकल तो ट्यूशन से पढ़-पढ़कर आते हैं और पास हो जाते हैं। आज शिक्षण प्रणाली जो होना चाहिए वह नहीं है।

२२९९. शिक्षा देने वाले में सहनशीलता होना चाहिए, मात्सर्य-ईर्ष्याभाव नहीं होना चाहिए किन्तु एक-दूसरे के पूरक होना चाहिए।

२३००. कुछ देश ऐसे हैं जहाँ प्रातः सम्बन्ध होते हैं शाम को छूट जाते हैं, शाम को होते हैं सुबह छूट जाते हैं इनमें कोई घनिष्ठता/मैत्री आदि नहीं रहती इसके बारे में भी अध्ययन कर लेना चाहिए। इसके बारे में भी शिक्षा दी जाती है ली जाती है। इधर-उधर की बातें शिक्षा में नहीं की जाती हैं। आज की शिक्षा में ये कोई बिंदु नहीं।

२३०१. शिक्षा क्या है? यह पुस्तक मेरे पास आई थी उसमें देखा तो कोई महत्त्वपूर्ण बिन्दु नहीं थे। महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं-संस्कृति और सिद्धान्त।

२३०२. संस्कार का कार्य प्रारम्भ दशा में बीज रूप होता है फिर फूलता-फलता बढ़ता है, सबको छाया देता है। ऐसे ही संस्कार के बीज शिक्षा के साथ फेंकते जाओ वह सहस्रगुणा फलित होता है।

२३०३. आज अंग्रेजी में शिक्षा होने से घरों में बच्चे अंग्रेजी में बोलते हैं, हिन्दी भाषा का बोल चाल बंद होता जा रहा है ऐसे में आगे की पीढ़ी तो संस्कृति व भाषा ही भूल जायेगी।

२३०४. वस्तु तत्त्व के पास जाने के लिए हमारे पास भाषा के अलावा कोई साधन नहीं।

२३०५. पुराने दस्तावेज जो हैं वह उन्हीं के हस्ताक्षर रूप में रखो। हस्ताक्षर सुरक्षित नहीं रहेंगे तो संस्कृति सुरक्षित नहीं रहेगी।

२३०६. हिन्दी में ही हस्ताक्षर होना चाहिए।

२३०७. भूत-व्यन्तर भी उसी भाषा में बात करते हैं जिस भाषा से पूर्व में करते थे।

२३०८. जितना आप अन्य भाषा का विस्तार करेंगे मूल हिन्दी भाषा समाप्त हो जायेगा। जैसे दूध में जितना पानी मिलाओगे उतना दूध का वास्तविक रूप दूर हो रहा है ऐसा समझ लो।

२३०९. निश्चित दिशा, सही दिशा में कार्य करेंगे तभी उन्नति हो सकती है। नहीं तो नहीं।

२३१०. भारतीय इतिहास पढ़कर वस्तु स्थिति समझिए तथा विदेशी संस्कृति का समर्थ न करिए।

२३११. आज शिक्षा के लिए विदेश भेज रहे हैं, पैसा खर्च कर रहे हैं ओर वह बेटा विदेश में ही नागरिकता धारण कर लेता है तथा माता-पिता से भी कहता है-आप भी यहीं पर आ जाओ ये क्या है?

स्वाध्याय

२३१२. तत्त्व के बारे में जो सुना है गुरु के मुख से, उसको पुनः पुनः चिन्तन में लाना यह स्वाध्याय माना जाता है।

२३१३. स्वाध्याय सिर्फ पढ़ा-लिखा ही नहीं, जो पढ़ा लिखा नहीं है, वह भी स्वाध्याय कर सकता है।

२३१४. हमें अध्ययन के साथ-साथ चिन्तन करना चाहिए, लेकिन आज तो चिन्तन के लिए मौका ही नहीं है।

२३१५. संवर और निर्जरा का स्थान बढ़ायें तो स्वाध्याय सार्थक है। अन्यथा वह व्यर्थ है।

२३१६. आज स्वाध्याय तो बहुत करते हैं लेकिन संयम और विवेक शून्य है। मैं उसे स्वाध्याय नहीं मानता।

२३१७. संयोग-वियोग में जो समता परिणाम बनाये रखता है तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता में हर्ष-विषाद नहीं करता ऐसा संयमी व्यक्ति ही सच्चा स्वाध्याय करने वाला है।

२३१८. जो चौबीसों घण्टे अपने आवश्यकों में मन को लगाये रखता है, उसका स्वाध्याय तो निरंतर चलता ही रहता है।

२३१९. वास्तविक स्वाध्याय तो अपनी प्रत्येक क्रिया के प्रति सजग रहने में है। 'स्व' का निकट से अध्ययन करने में है।

२३२०. स्वाध्याय में किसी भी मत को लेकर के कभी आग्रह नहीं करना चाहिए।

२३२१. अपने मन के अनुकूल आ जाता है तो उसके लिए खुश हो जाना और अपने मन के अनुकूल नहीं आता है, तो खुश नहीं होना ये स्वाध्याय का कोई परिणाम नहीं माना जाता है।

२३२२. स्वाध्याय से कर्मों की निर्जरा तथा श्रमण संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

२३२३. निर्जरा के लिए स्वाध्याय, उससे अधिक निर्जरा के लिए अध्यापन बताया।

२३२४. अनुप्रेक्षा और आम्नायरूप स्वाध्याय से चिंतन होना चाहिए अन्यथा विषय चला जायेगा।

२३२५. पशु चर लेते हैं फिर चर्वण करते उसमें वे रस का भी आनन्द लेते हैं।

२३२६. स्वाध्याय का तीसरा अंग अनुप्रेक्षा आज अकाल जैसा ग्रस्त है, उसकी और कोई देखता ही नहीं जो वैराग्य में बहुत कार्यकारी है।

संयम

२३२७. जैसे सड़क पर चलने वाले हर यात्री की सड़क के नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में चलने वाले के लिए नियम-संयम का पालन अनिवार्य है।

२३२८. संयम के द्वारा प्रतिक्षण असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती रहती है।

२३२९. जिसने संयम की ओर कदम बढ़ाये उसके लिए बिना माँगे ऐसा अपूर्व पुण्य का संचय होने लगता है जो असंयमी के लिए कभी संभव नहीं।

२३३०. संयम वह है जिसके द्वारा अनंतकाल से बंधे संस्कार भी समाप्त हो जाते हैं।

२३३१. संयमी व्यक्ति ही कर्म के उदय रूपी थपेड़े झेल पाता है।

२३३२. जिसके भीतर संयम के प्रति रुचि है वह तो संयमी के दर्शन मात्र से ही अपने कल्याण के पथ को अंगीकार कर लेता है।

२३३३. संयम ऐसा होना चाहिए जो जीवन में सुगंधी पैदा कर दे।

२३३४. संयम के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन में आदि से लेकर अन्त तक पुष्पवृष्टि के द्वारा अभिषिक्त होता रहता है।

२३३५. संयमी व्यक्ति के जीवन में कभी विषाद या विकलांगता या दीनता- हीनता नहीं आती। वह तो राजाओं से बढ़कर अर्थात् महाराजा बनकर निश्चिंतता को पा लेता है।

२३३६. संयमी व्यक्ति हमेशा खुश रहता है ध्यान रखना सुख नहीं रहता खुश रहता है।

२३३७. संयमी का चंचल खुश रहते है जीवन भर खुश रहता है। सभी खुद महकता है और उस खुशहाली का कारण उत्तम संयम ही है।

२३३८. जीवन में संयम के साथ सुगंध तभी आती है जब हम संयम को प्रदर्शित नहीं करते बल्कि अंतरंग में प्रकाशित करते हैं। संयम वह है जिसके द्वारा जीवन स्वतंत्र और स्वावलंबी हो जाता है।

२३३९. संयम दर्शन की वस्तु है उसे प्रदर्शन की वस्तु नहीं बनाना।

२३४०. संयोग-वियोग में जो समता परिणाम बनाये रखता है तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता में हर्ष-विषाद नहीं करता ऐसा संयमी व्यक्ति ही सच्चा स्वाध्याय करने वाला होता है।

२३४१. संयम के मार्ग पर चले तो स्वर्ग चरणों में होगा।

२३४२. समय का सदुपयोग करना संयमी का विशेष गुण है।

२३४३. संयम पूर्वक प्रत्येक घड़ी असंख्यात गुणी निर्जरा करते हुए समय का सदुपयोग करना ही कल्याणकारी है और इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

२३४४. हमें संयम की भूमिका नहीं भूलना चाहिए। करोड़ जिह्वा की कथा से व्यथा का अंत नहीं होता किन्तु संयम वैराग्य की एक कथा से सार समझ में आ जाता है असार संसार की वास्तविकता प्रकट हो जाती है।

२३४५. आपको यदि अपना सर्वांगीण विकास करना है तो बगैर प्रतीक्षा किये एक के बाद एक कदम संयम के साथ आगे बढ़ो।

२३४६. असंयमी से कभी भी संयमी को शिक्षा लेने की भावना भी नहीं करना चाहिए।

२३४७. जिन्होंने अपने जीवन में संयम की कोई गंध भी नहीं सूँघी और वहाँ पर आप संयम लेकर के जाओ और कुछ सीखो पढ़ो तो क्या होगा उसका? उसको अभिमान होगा।

२३४८. आप असंयमी को तो नमोऽस्तु करोगे नहीं विनय करेंगे नहीं तो काय की शिक्षा लेना?लेकिन आज विनय के बिना जो शिक्षा ली जा रही है उसी के परिणाम सामने आ रहे हैं।

२३४९. स्पर्धा भी यदि करना है तो संयम की करो, ये सबसे उत्तम विवेक का काम है। तत्त्वज्ञान का लाभ है।

२३५०. जो निराकुल अवस्था को प्राप्त करना चाहता है, वह संयम अवश्य ही हाथ में लेता है संयम साधन है निराकुल अवस्था को प्राप्त करने के लिए।

२३५१. इस हाथ आप संयम धारण करो और उस हाथ सुख प्राप्त करो ऐसा है संयम। संयम सुख का झरना है।

२३५२. याद रखें, यदि कोई चुल्लू के बराबर संयम से डर रहा है तो इसका मतलब है उसने अभी सागर पिया ही नहीं है।

२३५३. संयम के आते ही निर्जरा चालू हो जाती है।

२३५४. जैसे सड़क पर चलने वाले हर यात्री को सड़क के नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में चलने वाले के लिए नियम-संयम का पालन अनिवार्य होता है।

२३५५. संयमी का पूरा जीवन ही उपदेशमय हो जाता है।

२३५६. जैसे गाड़ी सीखने के उपरान्त भी संयम और सावधानी की बड़ी आवश्यकता है, ऐसे ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो जानने के उपरान्त भी संयम की बड़ी आवश्यकता है।

२३५७. आत्मा का विकास संयम के बिना संभव नहीं है।

२३५८. संयम वह सहारा है जिससे आत्मा ऊर्ध्वगामी होती है। पुष्ट और सन्तुष्ट होती है।

२३५९. संयम को ग्रहण कर लेने वाले की दृष्टि में इन्द्रिय के विषय हेय मालूम पड़ने लगते हैं।

२३६०. सम्यग्दृष्टि संयम को सहज स्वीकार करता है। इसलिए वह सब कुछ छोड़कर भी आनन्दित होता है।

२३६१. हमेशा संयम का ध्यान रखना। असंयमी के बीच बैठकर भी असंयम का व्यवहार नहीं करना।

२३६२. संयम से व्यक्ति का स्वयं बचाव होता है और दूसरे का बचाव भी हो जाता है।

२३६३. जिसकी संयम में रुचि गहरी है वह स्वप्न में भी अपने को संयमी ही देखता है।

२३६४. संयम के माध्यम से ही आत्मानुभूति होती है। संयम के माध्यम से ही हमारी यात्रा मंजिल की ओर प्रारम्भ होती है और मंजिल तक पहुँचाती हैं।

२३६५. यात्रा पद तो संयम का ही है। देशसंयम और सकल संयम ही पथ बनाते हैं क्योंकि चलने वाले से ही पथ का निर्माण होता है बैठा हुआ व्यक्ति पथ का निर्माण नहीं कर सकता।

२३६६. असंयम के संस्कार अनादि काल से है तभी तो आज तक आप कभी भी भूल के भी स्वप्न में दीक्षित नहीं हुए होंगे। कभी मुनि महाराज बनने का स्वप्न नहीं देखा होगा। हाँ महाराजों को आहार देने का स्वप्न अवश्य देखा होगा।

२३६७. जिसका मन अभी दिन में भी भगवान् की पूजा, भक्ति और संयम की ओर नहीं लगता वह रात्रि में स्वप्न में भगवान् की पूजा करते हुए या संयम पूर्वक आचरण करते हुए स्वयं को कैसे देख पायेगा?

२३६८. बंधुओ अगर अपना आत्म कल्याण करना हो तो संयम कदम-कदम पर अपेक्षित है।

२३६९. संयम का एक अर्थ इन्द्रिय और मन पर लगाम लगाना भी है। और असंयम का अर्थ बे-लगाम होना है।

२३७०. बिन ब्रेक की गाड़ी और बिना लगाम का घोड़ा जैसे अपनी मंजिल पर नहीं पहुँचता उसी प्रकार असंयम के साथ जीवन बिताने वाले को मंजिल नहीं मिलती।

२३७१. संयमरूपी तटों के माध्यम से हम अपने जीवन की धारा को मंजिल तक ले जाने में सक्षम होते हैं।

२३७२. कर्म के वेग और बोझ को सहने की क्षमता असंयमी के पास नहीं है वह तो जब चाहे तब जैसे कर्म का उदय आया वैसा कर लेता है।

२३७३. जो मन पर लगाम लगाने का आत्म पुरुषार्थ करता है वही संयमी हो पाता है और वही कर्म के उदय को, उसके आवेग को झेल पाता है।

२३७४. आप अपने जीवन को ऊपर उठाना चाहते हो तो संयम की छाँव में आओ। उसी की सेवा करो उसी को जीवन में आधार बनाओ बाकी कषाय को बाहर निकालने की कोशिश करो।

२३७५. धर्म का अंकुश कषाय पर रखा जा सकता है संयम के माध्यम से।

२३७६. ज्ञेय पर कंट्रोल की आवश्यकता नहीं है, पर ज्ञाता पर कंट्रोल की जरूरत है। ज्ञान पर कंट्रोल टेढ़ी खीर है।

२३७७. संयम का अर्थ है प्राण और इन्द्रियों को कंट्रोल में रखना।

२३७८. दया का मतलब प्राणी संयम और दमन का मतलब इन्द्रिय संयम है।

२३७९. बाहर की ओर जो शक्ति जा रही है, उसको रोकना संयम है।

२३८०. द्रव्येन्द्रिय पर तो अज्ञानी भी कंट्रोल कर लेता है, पर भावेन्द्रिय पर कंट्रोल करने वाला ज्ञानी ही होता है।

२३८१. द्रव्य संयम दूसरों पर कंट्रोल और भाव संयम स्वयं पर कंट्रोल है। द्रव्य संयम में मान रहता है, भाव संयम में मान नहीं रहता।

२३८२. द्रव्य संयम एक प्रकार से ऊपर का फोटो है और भाव संयम अन्दर का एक्सरा है। वह अन्दर की कमी बताता है।

२३८३. संयम लब्धि स्थान में मरण नहीं है संयमासंयम में भी मरण नहीं है संयम की यह विशेषता है।

२३८४. जिस समय मरण होता है उस समय संयम नहीं होता।

२३८५. भावों में संयम रखने से पाप को पुण्य रूप हम परिवर्तित कर सकते हैं।

२३८६. कर्म के उदय को भूलोगे तो असंयम में आ जाओगे।

२३८७. यदि किसी को बोध की बात आप करना चाहते हैं तो संयम के बिना यह संभव नहीं, अनुकंपा/वात्सल्य के बिना ये संभव नहीं, उसके पास जो व्यक्तित्व है उसको पहचाने बिना संभव नहीं।

२३८८. सम्यग्दर्शन को सुचारु रखने संयम का आधार श्रेष्ठ है।

२३८९. अनंत सुख को प्राप्त करने संयम को हम जीवन बना सकते हैं।

२३९०. कर्म ही एक मात्र तंत्र हो ऐसा नहीं है भावों के माध्यम से संयम के साथ हम उसे परिवर्तित कर सकते हैं।

२३९१. संयम की ओर आकृष्ट होंगे तो श्रुतज्ञान अद्भुत-अद्भुत होगा।

२३९२. संयमी एक दूसरे के पूरक बनकर आगे बढ़ते जायेंगे तो किसी को कोई सुरक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

२३९३. असंयमी को भी संयम की ओर बढ़ने का उपदेश दिया जाता है किन्तु संयमी के साथ असंयमी भी साथ रहने लगे तो गड़बड़।

२३९४. संयम का अर्थ ही है आपकी परीक्षा।

२३९५. संयमासंयम आते ही यशस्कीर्ति प्रकृति का बंध शुरू हो जाता है यशकीर्ति तो हो पर यशस्कीर्ति में मन न हो तभी तुम्हारी परीक्षा है। वीतरागता क्या है यह तभी परीक्षा हो जायेगी।

२३९६. वीतरागता और समता में भी अंतर है तीनलोक की संपदा होने पर भी अपना पराया न मानकर वस्तु स्थिति मात्र है वही समता है वीतरागी।

२३९७. औदारिक शरीर के आधार से संयम पलता है यदि उसी को ही परिमाण नहीं देंगे तो संयम कैसे

पलेगा? यह शरीर संयम का साधन है तो इस शरीर में काम के सर्प कीड़े आदि रहते हैं। यदि काम रूपी सर्प बलिष्ठ होता है तो वो निश्चित रूप से काटता है।

२३९८. शरीर का इतना ही साथ देना चाहिए जो हमारे अंदर बैठे काम रूपी सर्प आदि हमें काट नहीं सकें उनसे बचने के लिए हमें वैसा आहार करना चाहिए।

२३९९. गुरुओं से पूछे बिना जो अपने मन से काम करता है, असंयमियों से सलाह लेता है तो असंयम के भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

२४००. हमने संयम से वैराग्य चाहा भोग मिले, ये तो संयम की सजा हो गई। ऐसा नहीं समझना चाहिए किन्तु वहाँ पर भी चैत्य वंदना क्षेत्रों में तीर्थ वंदना नन्दीश्वर, पंचमेरु आदि की वंदना का सहज सुलभ योग बनता है उसमें झुकाव ज्यादा रहता है पूर्व संयमी का, भोगों की अपेक्षा।

२४०१. इन्द्रिय विषयों की उपेक्षा बिना उपेक्षा संयम नहीं आ सकता।

२४०२. पंचेन्द्रिय विषय विष हैं इसलिए संयम की ओर कदम जाना महत्त्वपूर्ण है।

२४०३. संयमी को असंयमी से कुछ चाह नहीं रखना चाहिए। असंयमी से चाह रखने पर संयम का महत्त्व कम होता है।

२४०४. संयम की विराधना न करते हुए चलते हैं वे अतिथि हैं।

२४०५. संयम में बंधे रहो यही कल्याण का रास्ता है। बाकी बंधन संसार के ही कारण हैं।

२४०६. शील संयम के साथ ज्ञान का कोई विरोध नहीं है बल्कि मैत्री है, क्योंकि शील के बिना पंचेन्द्रिय के विषय ज्ञान को नष्ट कर देंगे। ज्ञान की रक्षा ज्ञान के द्वारा नहीं होती बल्कि शील संयम के द्वारा होती है।

२४०७. जिनके पास शील है वह सुशील माना जाता है उसका ही मनुष्य जीवन सार्थक माना जाता है।

२४०८. हमें अपने संयम के द्वारा कर्मों की बाढ़ को संयमित करना है।

२४०९. ज्ञाता दृष्टा बनना ही सबसे बड़ा संयम है।

२४१०. संयम से साधना में सफलता मिलती है।

२४११. जहाँ संयम नहीं वहाँ अशांति है।

२४१२. बगैर संयम का जीवन कागज के फूल की तरह जिसमें सुगंध नहीं होती।

२४१३. संयम मनुष्य जीवन को संतुलित बनाता है।

२४१४. जिसके द्वारा समाज का पतन हो रहा है, जिसके द्वारा शिक्षण का पतन हो रहा है, जिसके द्वारा भविष्य बिगड़ता जा रहा है, जिसके द्वारा साहित्य दीमक खाने लगा है जिन्हें पढ़ने वाला कोई नहीं ऐसा साहित्य सामने आ रहा है ऐसी चर्चा आती जा रही है कि इस स्थिति में हम संयम की बात नहीं करेंगे तो जीवन समाज का उत्थान कैसे होगा?

२४१५. दुनियादारी की बात सारे के सारे सुना रहे रेडियो, टी.वी., टेप रिकार्डर आ गये सब आया लेकिन सब कुछ असंयम के लिए संयम का कोई आविष्कार हो तो बता दीजिये।

२४१६. मुक्ति का पथ संयम की आराधना से पूर्णता को प्राप्त होता है।

२४१७. आत्मबोध के होने पर संयम बोझ नहीं हो सकता। जो संयम को बोझ मानते है उन्होंने आत्मा के वैभव को सही-सही नहीं समझा।

२४१८. संयमरूपी बन्धन कोई बन्धन नहीं होता वरन सांसारिक गति विधियों से मुक्त होने के लिए यह एक अनिवार्य साधन होता है। आपके विचारों की एवं आचरण की गाड़ी संयमरूपी पटरी पर ही चलना चाहिए। यदि गाड़ी नियम/संयम रूपी पटरी से नीचे उतर गई तो फिर आप चला नहीं सकेंगे।

२४१९. गृहस्थ को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि वह पटरी पर है या नहीं। अन्यथा बहुत सारे एक्सीडेंट होने की संभावनायें रहती हैं। अतः संयमरूपी पटरी पर सावधानी से चलें।

२४२०. पटरी से अर्थात् संयम एवं समय के बंधन से नीचे मत उतरिये।

२४२१. संयम ही मनुष्य जीवन की निकटवर्ती पर्याय है।

२४२२. जीवन का प्रारम्भ मनुष्य पर्याय में संयम अंगीकार करने पर ही होता है।

२४२३. संयम का पालन अहिंसा धर्म के लिए होता है।

२४२४. मनुष्य होकर संयम से डरना पागलपन है।

२४२५. सीता का नियम था कि मैं राम के अलावा किसी पर पुरुष से सम्बन्ध नहीं रखूँगी और रावण का नियम था कि स्त्री की इच्छा के बिना मैं उसे हाथ नहीं लगाऊँगा इस संयम के कारण दोनों बच गये।

२४२६. यथोचित संयम धारण करके ही जीवन का निर्वाह करना चाहिए, इस बात को ध्यान से सुनना, इसे रंग पंचमी के रंग के समान यूँ ही नहीं उड़ा देना।

२४२७. रावण ने असंयम को नहीं छोड़ा इसलिए परिवार को ही नहीं सभी के जीवन के लिए कंटकाकीर्ण बन गया। असंयम भाव कषाय के बिना नहीं हो सकता।

२४२८. संयम कदम के समान है। जैसे कदम के सहारे बिना, न चल सकते है, न बैठ सकते है और न खड़े हो सकते हैं, वैसे ही बिना संयम के जीवन चल नहीं सकता।

समता

२४२९. समता का अभ्यास करते रहना चाहिए। हम समता का अभ्यास करते हैं तो इसका प्रभाव दुनिया के ऊपर भी पड़ता है और धर्म की प्रभावना भी होती है।

२४३०. हमें जैसा जो मिले उसी में काम चला लेना चाहिए। वही चाहिए यह भावना नहीं करना चाहिए।

२४३१. हमारे सिर्फ शब्द नहीं होना चाहिए भाव में घुल मिल जाने का नाम ही उत्तम समता का धारक है।

२४३२. मुनि बने हो तो समता रखो, इसी में हमारी भाव सामयिक हो जाती है, इस प्रकार का चिंतन करते रहना चाहिए।

२४३३. समता गुण से उत्पन्न हुआ शुभ भाव जो है यह उत्तम सामयिक है।

२४३४. समता गुण के उत्पन्न होने से क्षमादि गुण भी उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे इस गुण को धारण करने वाला ही उत्तम सामयिक कर पाता है।

२४३५. जो व्यक्ति अपनी शक्ति को तप संयम गुणों में लगाता है वो ही सामयिक कर पाता है।

२४३६. सामने वाला हजार बार गलती करे तो भी समता से सहन करो, कर्म निर्जरा होती रहेगी। उपसर्ग मानकर सहन करो, यह तो अच्छा निमित्त है। पहले का ऋण चुक रहा है, सोचो और अपने आपको हल्का बना लो।

२४३७. समता रखने का हमेशा प्रयास करें।

२४३८. प्रत्येक पल समता के बीज बोते जाइये, यही मरण समाधि की तैयारी है।

२४३९. समता रूपी बगीचे में रहने वाला व्यक्ति भिन्न-भिन्न फूलों की महक लेता रहता है।

२४४०. हमेशा समता रखना चाहिए, अभी समता रहेगी तो समाधि के समय काम आयेगी।

२४४१. समता, विनय और नम्रता होना चाहिए।

२४४२. समता रूपी त्यौहार साधु के जीवन में हर पल रहता है, श्रावक के तीन सन्ध्याओं में।

२४४३. परीषह विजय करने वाला ही समता रख सकता है।

२४४४. समता की शरण आये बिना केवलज्ञान तीन काल में सम्भव नहीं।

२४४५. समता से भरा जैन धर्म का वृक्ष खड़ा है उसकी ओर देखिये।

२४४६. 'समता' का विलोम है 'तामस'। 'समता' जीवन का वरदान है और 'तामस' अभिशाप है।

२४४७. अनेकांत का हृदय है समता। सामने वाला जो कहता है उसे सहर्ष स्वीकार करो। आज बुद्धि का विकास तो है लेकिन समता का अभाव है।

२४४८. समता धारण करने का अर्थ दीनता नहीं है। काम चलाऊ नहीं है समता धारण करना तो ये हमारा स्वभाव है।

२४४९. छह प्रकार के बाहरी तपों के द्वारा जितनी कर्म निर्जरा नहीं होती है उससे भी हजार गुनी कर्म निर्जरा समता रखने में और साधर्मियों के द्वारा अपमान सहन करने की क्षमता में होती है।

२४५०. कम समय में ज्यादा निर्जरा करना चाहते हो जो समता रखो।

२४५१. सामयिक वो निर्जरा नहीं होती है जो उपसर्ग की अवधि में समता रखने से होती है।

२४५२. लौकिक रणांगन में यह तलवार और ढाल की आवश्यकता होती है किन्तु वैराग्य के क्षेत्र में

आप केवल समता के भाव लेकर बैठ जाओगे तब भी आपका रक्षण हो जायेगा।

२४५३. समता के समय जो प्रहार करने के लिए आये हैं वो भी अपने आप आत्म समर्पण करके चले जायेंगे। जब लड़ने के लिए योद्धा, प्रतियोद्धा या प्रतियोगी नहीं है तो फिर कौन लड़ेगा? कोई भी नहीं लड़ेगा।

२४५४. स्वाधीनता, सरलता और समता भाव को धारण करो क्योंकि यही आत्मा की निधि है। इसको नहीं अपनाने पर दुःख का कारण होता है।

२४५५. जहाँ समता है वहाँ किसी प्रकार का झगड़ा, संघर्ष, विसंवाद नहीं होगा, संवाद होगा।

२४५६. आज दुःख का अनुभव हो रहा है एक मात्र विषमता के कारण तथा समता के अभाव में।

२४५७. जब समता का प्रादुर्भाव होगा तब सौभाग्य का द्वार खुल जायेगा।

२४५८. तीन बार प्रतिक्रमण करते हैं, अपने आपको पापी कह रहे हैं, पर दूसरा कोई कह देता है तो बौखला जाते हैं, तब ही आध्यात्म का स्वाद ले सकोगे, तब ही आनन्द आयेगा जब किसी के पापी कहने पर समता रखोगे।

२४५९. हमारी वृत्ति समता की ओर रहना उसका रखना ही सामयिक है।

२४६०. २८ मूल गुणों में यदि दोष लग जाते हैं तो समता के साथ सामयिक करने से मूलगुणों में जो दोष हैं वो भी निर्दोषता को प्राप्त हो जाते हैं।

२४६१. इस समता को अपना स्वभाव बनाना चाहिए।

२४६२. समता के घट से हृदय भरा होना चाहिए लेकिन मन मर्कट समता को नष्ट करता है। इसलिए इस मन मर्कट को वश में करना है तो सामयिक रूपी समता के माध्यम से कर सकता है।

२४६३. जिस समय मन मरकट चंचल रहता है उस समय ये सामयिक आदि भी बिगाड़ देता है। इसलिए समता को अपना स्वभाव बनाने की कोशिश करना चाहिए।

२४६४. दिन भर तो बैठ के चर्चा करते रहे लेकिन सामयिक लेट करके करता है तो यह ठीक नहीं है।

२४६५. मूलगुणों की रक्षा के लिए कारण होती है सामयिक। इसलिए हमें सामयिक को अच्छे से करना चाहिए। ये कर्म निर्जरा के लिए कारण होती है।

२४६६. हम शारीरिक मानसिक शक्ति को विपरीत दिशा में लगा देते हैं इसलिए सामयिक में मन नहीं लगता है। उस शक्ति का सही प्रयोग करने पर वो सामयिक होती है।

सामयिक

२४६७. निर्जरा तत्त्व के द्वार खोलने के लिए सामयिक अच्छी चाबी है। मुनिराज के निर्जरा के द्वार परीषहादि से हमेशा खुले रहते हैं।

२४६८. श्रावक को आर्त रौद्र ध्यान से बचने का एक मात्र अवसर सामयिक ही है।

२४६९. सामयिक के समय समता रूपी पाटे पर बैठ जाओ परीषह रूपी करेंट का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

समतारूपी तड़ित चालक लगाने से बिजली परीषह से आत्मा को क्षति नहीं पहुँचेगी।

२४७०. सामयिक में उत्साह न होना ही उसका अनादर है।

२४७१. सामयिक सानन्द सम्पन्न करने के लिए भोजन गरिष्ठ नहीं लेना चाहिए।

२४७२. प्रत्येक क्रिया में उत्साह होना चाहिए, यदि लड़ाई में उत्साह है तो सामयिक में दस गुना उत्साह होना चाहिए।

२४७३. जो पाँच इन्द्रिय और मन के वश में नहीं है वो 'अवश' है और 'अवशी' के द्वारा किया गया कार्य आवश्यक कहलाता है। करने योग्य कहा जाता है।

२४७४. भरत चक्रवर्ती दिग्विजय करने भी गये तो भी तीनों समय सामयिक करते थे, आत्मा का चिन्तन करते थे। इसे कहते हैं गृद्धता का अभाव भोगों में अनासक्ति।

२४७५. मनुष्य आयु का बंध होने पर सम्यग्दर्शन भी साथ नहीं जायेगा यहीं छूटेगा अतः उसे सुरक्षित रखने के लिए तीनों समय एक दो घंटे सामयिक करो, स्वाध्याय करो।

२४७६. आप पिक्चर लगातार तीन घंटे बैठकर देख सकते हैं, पर सामयिक में नहीं, सामयिक में तो नींद भी आती है, पिक्चर में नहीं आती, ध्यान एक तरफ बना रहता है। इसका यही अर्थ है कि सामयिक में अविश्वास तथा पिक्चर में विश्वास है।

२४७७. ऐसा कार्य न करें जिससे सामयिकादि में कमी आ जाये।

२४७८. लाभ कम हानि ज्यादा हो ऐसे कार्य न करें।

२४७९. आत्मा की कथा/बात करके दूसरे को सन्तुष्ट करना सामयिक के काल में तो यह विकथा है।

२४८०. सामयिक के काल में स्वाध्याय नहीं करना। सामयिक के समय में आत्मा में रहकर आत्मा से बात करो।

संस्कार

२४८१. हिन्दी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

२४८२. वीतरागता की उपासना करने वाला, रत्नत्रय की आराधना करने वाला ही संस्कारवान है।

२४८३. घर की रक्षा के समान, इन जिनालयों की सुरक्षा के भी संस्कार अपने बच्चों में डालें।

२४८४. जैसे बच्चों के ऊपर अर्थ के संस्कार डालते हो वैसे ही परमार्थ के अच्छे संस्कार डालो।

२४८५. धर्म के संस्कार वहाँ पर भेजना चाहिए, वहाँ पर जा करके रखना चाहिए जहाँ पर सभी को प्रकाश मिल सके।

२४८६. जिस प्रकार प्रकाश में प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। अंधकार में उसका मूल्य और महत्त्व बढ़ जाता है। उसी प्रकार आज यदि आपका जीवन संस्कारित है, तो जो संस्कारहीन व्यक्ति हैं, उनको संस्कारित बनाने का प्रयास कर कीजिये। इसके द्वारा आपके तन, मन और धन का उपयोग अच्छा हो सकता है।

२४८७. प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह एक संस्कारित जीवन का निर्माण करे। इसी से धर्म आगे बढ़ सकता है। इसके माध्यम से स्व और पर दोनों का कल्याण होता है।

२४८८. शरीर के साथ जो धर्म के द्वारा संस्कारित आत्मा है उसका मूल्य है और उस संस्कारित आत्मा के कारण ही शरीर का भी मूल्य बढ़ जाता है।

२४८९. बच्चों को यदि माता-पिताओं के माध्यम से संस्कार नहीं मिलेंगे तो वह बच्चा घर को संभाल नहीं सकेगा।

२४९०. एक लेख में आया था विवाह न करो। क्यों? संतान होगी, उसका पालन-पोषण से परिवार बढ़ेगा तो सुख-दु:ख आयेंगे किन्तु बिना विवाह के भी बच्चे हो सकते हैं तो उन्हें छोड़ देंगे। सोचो! पशु भी ऐसे नहीं करते, जब तक पंख नहीं आते, उनके और आप पैर वालो क्या करते हो सोचो? कहाँ गये आपके संस्कार ?

२४९१. जब कुँए में ही भांग पड़ गई तो लोटा छानने से क्या होगा?

२४९२. आज ये पढ़ाया जाता है कि ब्रह्मचर्य कोई वस्तु नहीं वासना तो समय से जागृत होगी बस विवाह मत करो। अब आपके पास आत्मा को कसने के लिए कौन सा प्वाइंट है?

२४९३. शिक्षा पद्धति ऐसी होना चाहिए जिसमें संस्कार विकसित हों, नैतिक शिक्षा पर बल होना चाहिए ताकि मानवीय मूल्यों का विकास हो।

२४९४. देवगति में संस्कार देने की बात नहीं है। इस मनुष्य पर्याय में सम्यग्ज्ञान पूर्वक संस्कार डालना चाहिए तभी देवगति में जाकर समवसरण में जाने के भाव होंगे। यदि सम्यग्दृष्टि है तो दूसरे भव में संस्कार काम आ सकते हैं। मिथ्यादृष्टि तो सब भूलकर विषय कषायों में लग जाता है।

२४९५. अनादिकाल से आत्मा की दीवार पर धर्म का कोई रंग रोगन हुआ नहीं अब यदि आप नया धर्म का रंग लगाना चाहते हो तो पुराने संस्कारों को साफ करना होगा।

२४९६. जिस प्रकार कारीगर ईंट चूना आदि से मात्र मकान तैयार करता है किन्तु अन्य कोई उसे सुसज्जित करते हैं। इसी प्रकार माता-पिता तो बालक को जन्म मात्र देते हैं किन्तु गुरु उसे सद्संस्कारों से सुसज्जित कर देते हैं।

२४९७. अरिहंत भगवान् नवनीत के समान हैं, सिद्ध भगवान् घी के समान हैं तथा हम सभी दूध के समान हैं। इस दूध में धर्म संस्कारों की जामन डालकर जमाओ और फिर वैराग्य की मथानी से स्वयं का मंथन करो।

२४९८. ये ज्ञान और संयम के संस्कार थोड़े भी पर्याप्त हैं मुक्ति की प्राप्ति के लिए। बीज के समान योग्य वातावरण पाकर यह संस्कार एक दिन बहुत बड़े वट वृक्ष के रूप में प्रतिफलित होंगे।

२४९९. होटल का खाना और डिब्बे का दूध इन दोनों से आपके बच्चों पर धार्मिक संस्कार नहीं डल

सकते।

२५००. वीतरागी का संस्कार मिले तो राग वीतरागता में बदलेगा नियम से।

२५०१. हमें अपनी पीढ़ी में ऐसे ही संस्कार डालना चाहिए जिसके माध्यम से उनका आर्थिक विकास न होकर आत्मिक विकास हो।

२५०२. आत्मा की स्वतंत्रता के लिए संस्कारों का झंडा फहराएँ।

२५०३. रत्नत्रय के पवित्र संस्कारों के द्वारा पाप के संस्कारों से मुक्त होकर आत्मा शुद्ध बन सकती है।

२५०४. पवित्र संस्कारों के द्वारा ही पतित से पावन बना जा सकता है।

२५०५. जो व्यक्ति पापों से अपनी आत्मा को छुड़ाकर केवल विशुद्ध भावों के द्वारा संस्कारित करता है वही संसार से ऊपर उठ पाता है।

२५०६. संस्कारों से जीवन को आकार मिलता है।

२५०७. जो घर में भोजन न करके बाजार में खाता है उसके धन और धर्म दोनों के संस्कार चले जाते हैं।

२५०८. आज कितना भी धार्मिक वातावरण बना लिया जाता है फिर भी धर्म के संस्कार नहीं पड़ रहे हैं।

२५०९. हिंगड़े हींग के डिब्बे में से हिंगड़ा निकाल कर साफ कर दो और उसमें कस्तूरी रख दो तो वह हिंगड़ा भी अपना प्रभाव डालता है, उसी प्रकार आज बच्चों को कितने अच्छे संस्कार दो तो भी वह कुसंस्कार रूपी हिंगड़ा छूटता नहीं है।

२५१०. जिनवाणी की शरण से, गुरुओं के समागम से, सदाचरण से संस्कारित होकर जैसा वातावरण यहाँ है वैसा आप अपने ज्ञान से दूसरी जगह ले जा सकते हैं।

२५११. हाँ वातावरण अच्छा नहीं है, वहाँ भी यहाँ जैसा जीवनयापन कर सकते हैं, अपने पूर्व संस्कारों से। और वहाँ रहने वाले व्यक्तियों को भी जिनवाणी शरण गुरु समागम की चाह पैदा कर सकता है।

२५१२. रत्नत्रयरूपी संस्कार ही हमारे काम आयेंगे।

२५१३. मुक्त होने का एक ही रास्ता है हम आत्मा के ऊपर रत्नत्रय के संस्कार डालते चले जायें।

२५१४. संस्कार चश्मे के समान है जो आत्मा को देखने का साधन बन जाते हैं और आत्म विकास के लिए कारण होते हैं।

२५१५. रुचि और आस्थापूर्वक डाले गये संस्कार ही आगे काम आते हैं।

२५१६. मनुष्य भव अच्छे संस्कार डालने के लिए आषाढ़ के समय खेत में बीज डालने/बोने के समान हैं इसलिए मनुष्य जीवन के समय को व्यर्थ मत खोओ।

२५१७. संतान के ऊपर आपका सबसे बड़ा उपकार यही है कि उसके ऊपर अच्छे संस्कार डालो, उन्हें

धर्म मार्ग पर लगाओ।

२५१८. बच्चों पर आप मात्र पैसे कमाने के संस्कार डालोगे तो आप उन पर उपकार नहीं अपकार कर रहे हैं।

२५१९. धन कमाने के संस्कार डालने की आवश्यकता नहीं है, वे तो स्वयं आ जाते हैं। इन विषय भोगों के वातावरण में हमें बच्चों में धर्म के संस्कार डालना ही चाहिए।

संकल्प-विकल्प

२५२०. यदि संकल्प-विकल्प को तोड़ने का आपने संकल्प नहीं लिया तो आपको श्रुतज्ञान व संकल्प-विकल्प तोड़ देंगे...तुड़वाओ...तुड़वाना है तो। अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना... मुहावरा बोलते हैं ना आप लोग।

२५२१. इस संकल्प व विकल्प को जिसने इष्ट व अनिष्ट की कल्पना के लिए कारण माना उसको वह छोड़ देगा।

२५२२. दुनिया की ओर मत देखो संकल्प व विकल्प के स्रोत को देखो।

२५२३. संकल्प-विकल्प का स्रोत श्रुतज्ञान है।

२५२४. मन विकल्प का शस्त्र है।

२५२५. अपनी नींव ये डालों की हमें संकल्प विकल्प ज्यादा करना नहीं है। नहीं करना है तो...होंगे नहीं... नहीं समझे...।

२५२६. नींव अच्छी होनी चाहिए कच्ची नहीं। बार-बार उसको खोले ना.... उसकी रिपेरिंग नहीं होती है। दीवाल की तो रिपेरिंग हो सकती है नींव की आज तक रिपेरिंग किसी ने नहीं करवाई।

२५२७. आज संकल्प विकल्प के कारण विज्ञान घाटे में है। आज आठ वर्ष के बालक की दौड़-धूप ज्यादा है उसके मस्तिष्क में क्या-क्या भरा है? पता नहीं, हम नहीं कह सकते।

२५२८. पहले के लोग संतोषी होते थे इसका अर्थ यह है कि-हमें ज्यादा संकल्प और विकल्प नहीं करना चाहिए।

२५२९. पहले के लोग घाटे में नहीं, घाटे में आज का युग है। चाहे पढ़ा-लिखा हो...कुछ भी हो।

२५३०. आज जो संकल्प विकल्प होते हैं वो पहले नहीं होते थे। आज चाहे ७-८ वर्ष का बच्चा हो... वो भी इतने ही संकल्प विकल्प करता है, जितने कि ८० साल का बुड्ढा भी नहीं करता।

२५३१. विषय व कषायों की अपेक्षा से आज का लड़का भले आठ वर्ष का हो वह बड़े-बड़े कार्य कर देगा, हैरान कर देगा घर में और ८० साल के दादाजी संतोष के साथ बैठ करके वह आराम के साथ घर चला रहे हैं। उनको विकल्प है ही नहीं।

२५३२. संकल्प और विकल्पों को तोड़ने का जो संकल्प नहीं कर रहा है पुरुषार्थ नहीं कर रहा है वो बावला है। वो परीक्षा में तीन काल में नम्बर सही नहीं पा सकेगा।

२५३३. कुछ लोगों को निर्विकल्प रहना बीमारी सी लगती है इसलिए वे हमेशा किसी न किसी विकल्प में पड़े रहते हैं।

२५३४. संसार में यदि सबसे बड़ा कार्य है तो वह संकल्प-विकल्प नहीं करना।

२५३५. संकल्प-विकल्प से प्रशम भाव नहीं रहता विषम भाव बन जाता है।

२५३६. संकल्प-विकल्परूपी अग्नि ईंधन के अभाव में समाप्त हो जाती है फिर चित्त शांत हो जाता है। पर संपर्क रूपी ईंधन से बचो।

२५३७. योगीगण संकल्प-विकल्प से दूर होने के लिए वन का आश्रय ले लेते हैं।

२५३८. पुराण ग्रन्थों में पढ़ा है जो कोई भी विद्या सिद्ध करते हैं वे जंगल में ही करते हैं। मन की एकाग्रता के लिए एकांत आवश्यक है। संकल्प लेकर बैठ जाओ एकांत वहीं है।

२५३९. संकल्प-विकल्प ही संसाररूपी जंगल में पटक देते हैं।

२५४०. मन में ही विकल्पों का ताँता उत्पन्न होता हैं।

२५४१. आगे कौन क्या साथ देगा यह सोचने वालों आप घबराओ नहीं, आप घबराते क्यों हो? आपके साथ आपका संकल्प तो रहेगा। संकल्प के अलावा संसार में कोई साथ नहीं है।

२५४२. परिचय विकल्पों का घर है।

२५४३. उपयोग की खुराक मात्र संवेदन है, बुद्धि की खुराक विकल्प है।

२५४४. जो स्वागत के साथ विदाई की बात जानता है वह न स्वागत गान से हर्षित/प्रभावित होता है और न ही मृत्यु गीत से उदास/दुखित होता है।

२५४५. आकुलता नहीं करना यही मोक्षमार्ग है।

२५४६. जिसके पास वैराग्य की कमी है उसे आकुलता सताती है।

२५४७. आप यदि सुख चाहते हैं, कर्मों को काटना चाहते हैं से सर्वप्रथम संकल्प-विकल्प छोड़ दो क्योंकि अन्य कोई संसार में भटकाने वाला नहीं है।

२५४८. संकल्प विकल्प संसार वृद्धि के लिए कल्पवृक्ष हैं, कामधेनु हैं। जैसे कल्पना करने से वस्तु की प्राप्ति कल्पवृक्ष से हो जाती है, इसी प्रकार संकल्प-विकल्प करोगे तो निश्चितरूप से संसार का ही विकास होगा।

२५४९. आप लोगों का संसार से मुक्त होने का संकल्प है संसार से मुक्त होना चाहते हो तो संकल्प व विकल्प कम कर दो पहले पूर्ण समाप्त तो नहीं कर पाओगे।

२५५०. संकल्प विकल्प को कम करते जाना यही एक मात्र आत्मिक साधना मानी जाती है।

२५५१. संकल्प रखो विकल्प आये तो चाटा मारो।

२५५२. संकल्प की दुकान पर विकल्प नहीं आना चाहिए या तो संकल्प की दुकान खोलो या विकल्प की खोलो।

२५५३. संकल्प एक ही है उपसर्ग अलग-अलग है।
२५५४. संकल्प सम्यग्दर्शन का प्रतीक है। विकल्प मिथ्यादर्शन का प्रतीक है।
२५५५. क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी भूल जाता है क्योंकि उसने संकल्प किया नहीं।
२५५६. कोई भी दुकान हो माल एक ही रखना ट्रेडमार्क एक नम्बर का दो नम्बर का नहीं।
२५५७. ग्रहण करना और छोड़ना विकल्प का कारण है।
२५५८. संकल्प के लिए जागृति की आवश्यकता होती है तथा दिशा के चयन की।
२५५९. दुनिया में विकल्प नहीं है, विकल्पों के माध्यम से दुनिया होती है, जब विकल्प हमारे नहीं हो सकते तो हम विकल्प के कैसे हो सकते हैं ये ही अध्यात्म है। हम इस विकल्प में ही पड़कर अपना सारा समय खराब करते रहते हैं।

संग्रहित धन

२५६०. संग्रह धन का हो या किसी अन्य चीज का वह किसी काम का नहीं होता।
२५६१. जिस प्रकार नदियाँ लगातार प्रवाहित होकर अपने जल से जीव जन्तुओं की प्यास बुझाती हैं, उसी प्रकार समुद्र, झील या स्थिर जल पीने योग्य नहीं होता। इसी प्रकार धन का संग्रह भी खारा होकर किसी योग्य नहीं रहता।
२५६२. धन का प्रवाह होना चाहिए। इसे पर हित, धर्म, स्वास्थ्य, शिक्षा पर दान करना चाहिए। जिससे धन मीठा रहे और बढ़े।
२५६३. आज प्रचलन में जो धन तेरस है वो वास्तव में ध्यान तेरस है उसी को आज धन तेरस कहते हैं क्योंकि तेरस के दिन महावीर भगवान् ने योग निरोध किया था इसलिए ये ध्यान तेरस है।
२५६४. संग्रह वृत्ति पालकों में होती है, बालकों में नहीं।

सत्यधर्म

२५६५. झूठ नहीं बोलने का नाम सत्य है न कि सत्य बोलने का नाम सत्य है।
२५६६. आप असत्य बोलें या न बोलें जब तक सत्य का संकल्प नहीं लेते तब तक वह असत्य की कोटि में ही आता है।
२५६७. सत्य को प्राप्त करने के लिए चारों कषायों के ऊपर नियंत्रण रखना आवश्यक है।
२५६८. असत्य से बचने के लिए प्रमाद से भी बचना चाहिए। और बोलना जहाँ से प्रारम्भ होता है वहाँ पर निश्चित रूप से प्रमाद है।
२५६९. धर्मात्मा जब भीतर के परम आनंद को जानता है, उस समय वह सत्य का सही-सही पालन करता है। सत्य का पालन बाहर देखते हुए नहीं होता।
२५७०. ध्यान रखो दुनिया को देखने से सत्य सिद्ध नहीं होगा। सत्य का रक्षण नहीं कर सकेंगे, किन्तु परिणामों को देखने से ही सत्य का संरक्षण हो सकता है अन्यथा नहीं।

२५७१. कोई क्या कहेगा? इसके बारे में नहीं सोचना चाहिए। यदि सोच लें तो सत्य का पालन नहीं हो सकता।

२५७२. जो रागद्वेष के कारण मौन धारण कर लेते हैं, वह मौन नहीं माना जायेगा। हाँ यदि प्रायश्चित के रूप में मौन धारण कर लेते हैं तो वह मौन माना जाता है।

२५७३. भीतर की अभिव्यक्ति को रोकने के लिए मौन धारण करने के लिए बहुत सशक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

२५७४. कर्मों के उदय का प्रतिकार न करने की जो इच्छा/साधना होती है उसका नाम सत्य है।

२५७५. निमित्त के ऊपर टूटने वाला सत्य का पालन नहीं कर सकता। निमित्त की ओर दृष्टि रखी नहीं कि सत्य कथंचित् गायब हो गया।

२५७६. सत्य के लिए बहुत कठिनाई के साथ साधना करनी पड़ती है। सत्य के लिए सब कुछ न्यौछावर करना पड़ता है। मार्दव निजी (स्व की) चीज है। मान पर है, यह दूसरे को (पड़ोसी को) देखकर खड़ा होता है।

२५७७. निरभिमानता आत्मा का स्वभाव है। मान तो आत्मा को तोलने वाला तराजू है।

२५७८. जब धर्म अभ्यन्तर में उतरता है, तब आर्जवता ऋजुता का पालन होता है।

सम्यग्दर्शन

२५७९. सम्यग्दर्शन की प्रयोगशाला के लिए कोई स्थान नहीं। चाहिए इसके लिए तो हम जितना भीतर रहेंगे उतना निखार आयेगा। बिना व्यय के आय ही आय।

२५८०. यदि कोई इस प्रयोग शाला में आता है तो साधन सामग्री का कोई अभाव नहीं उसको अच्छी तरह खिला-पिलाकर पुष्ट करो।

२५८१. प्रतिकूलता में अनुकूलता चाहते हैं इसलिए निर्विचिकित्सा अंग नहीं पलता।

२५८२. जिस प्रकार माइक में करंट का महत्त्व है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन का महत्त्व है।

२५८३. जीर्णोद्धार उसका किया जाता है जिसकी नींव पक्की हो, दीवाल आदि में क्रेक आ जाये जब लेकिन नींव में ही यदि कमी आ जाये तो उसका जीर्णोद्धार ही नहीं होता। ऐसा ही आप लोगों को समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन के प्रौढ़/मजबूत होने पर ज्ञानचारित्र के फूल खिल सकते हैं।

२५८४. सम्यग्दर्शन की भूमिका बनाये रखना चाहते हो तो कषायों को आप घटाइये। जितनी घटा सकते हैं उतनी घटाइये।

२५८५. सम्यग्दर्शन के बिना आपके चारित्र की शुद्धि नहीं हो सकती है और चारित्र में विकास नहीं हो सकता है इसलिए हमें सम्यग्दर्शन को अच्छे से विशुद्ध बनाये रखना चाहिए।

२५८६. सम्यग्दर्शन के साथ जो चारित्र होता है वो कर्म निर्जरा निश्चित रूप से करता है।

२५८७. भीतरी रुचि के कारण से ही सम्यग्दर्शन होता है। एक पशु भी भीतरी रुचि के कारण

सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है और हम सम्यग्दर्शन का स्वरूप पढ़ते रहे फिर भी भीतरी रुचि नहीं हो पाती है इसलिए सम्यग्दर्शन से दूर रहते हैं।

२५८८. हमारे पास सम्यग्दर्शन है तो हम उसका सदुपयोग करते हैं तो हमारी कर्म निर्जरा होती जाती है और मोक्ष के लिए वो परम्परा से कारण होता है। हम यदि उसका दुरुपयोग करेंगे तो वो हमारे लिए कर्म निर्जरा का कारण नहीं होता है।

२५८९. उत्कृष्ट विशुद्धि हम प्राप्त कर सकते हैं तो सम्यग्दर्शन के माध्यम से ही कर सकते हैं।

सहनशीलता/गंभीरता

२५९०. गंभीर वह होता है जिसके अंदर गहराई रहती है, वह शांत रहता है लहरें नहीं उठती।

२५९१. गंभीर जो होता है उसके पास सहनशीलता होती है।

२५९२. आपत्तियों में जो अपनी परख कर लेता है वह संसार से पार हो जाता है।

२५९३. धैर्य/सहनशीलता, विश्वास है तो वह डूब नहीं सकता वह विमान में अवश्य बैठेगा।

२५९४. मानसिकता जिसकी अच्छी होती है वहाँ प्रकृति साथ देती है।

२५९५. जो आश्रयहीन हैं उन्हें आश्रय देना इसी में मानवता पनपती है।

२५९६. संवेदनशीलता, परोपकार, मित्रता, सहानुभूति ये आज मात्र कोष के शब्द रह गये हैं।

२५९७. गंभीरता को नापने धैर्यधृति की आवश्यकता है।

२५९८. एक दूसरे के पूरक बनकर कार्य करोगे तो वह सफल होगा।

२५९९. समय को ही धन मानकर चलो। मार्ग में थोड़ी कठिनाइयाँ आती हैं, होनी भी चाहिए। आती हैं कठिनाइयाँ तो सहन करो...सामना करो।

सल्लेखना

२६००. सल्लेखना कराने वाले के लिए आचार्यश्री जी द्वारा प्रदत्त कुछ विशेष बिन्दु–१. धर्म प्रिय हो। २. सिद्धान्त दृढ़ हो। ३. संवेगवान् हो। ४.पाँच पापों से डरने वाला हो। ५. धीरज रखने वाला हो। ६. सामने वाले का अभिप्राय समझता हो। ७. प्रत्यय के योग्य विश्वसनीय। ८. शास्त्र का जानकार भी हो इस प्रकार सल्लेखना कराने वाले को प्रशिक्षण दिया जाता है।

२६०१. चारित्र प्रिय हो यदि चारित्रमोह का तीव्र उदय है तो वह दृढ़ नहीं रह पाता। चारित्र में और असंयम का परिहार नहीं कर सकते।

२६०२. परीषह को सहन करने की क्षमता रखने वाला हो।

२६०३. परीषह से जो डर जाता है वह असंयम का परिहार नहीं कर पाता।

२६०४. अप्रासंगिकता छोड़कर चलने वाला हो, यह कट्टरता से छूटता है।

२६०५. योग्य-अयोग्य भोजन का ज्ञान रखता हो। इसमें कुशलता रखता हो।

२६०६. क्षपक के चित्त को संतुलित रखता हो।

२६०७. सल्लेखना के समय सिद्धान्त ग्रंथों का स्वाध्याय नहीं होता। वैराग्य पाठ आदि का स्वाध्याय होता है, क्योंकि सल्लेखना के समय पूरे संघ को विकल्प रहता है, इसलिए सल्लेखना के समय सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं होता।

२६०८. रोने वालों को वहाँ पर नहीं जाने देना चाहिए। ज्यादा वैय्यावृत्ति भी नहीं करना चाहिए। शब्दों के माध्यम से भी वैय्यावृत्ति कर सकते हैं।

२६०९. प्रमादी एवं असंयमी व्यक्ति को अंदर नहीं जाने दें। वहाँ पर कोई लिहाज नहीं रखना चाहिए।

२६१०. अभिमानी व्यक्ति को वहाँ पर नहीं रखना चाहिए। भाव प्रधान होता है समाधिमरण, इसलिए प्रशस्तता होना चाहिए।

२६११. क्षपक का धर्मध्यान बढ़ता चला जाये ऐसे भाव रखने चाहिए।

२६१२. जो सल्लेखना व्रत ले रहे हैं, उस व्रत के प्रति हमेशा उत्साह होना चाहिए।

२६१३. सल्लेखना के लिए स्वयं को ही कमर कसना होगी, दूसरे के भरोसे नहीं ली जाती सल्लेखना।

२६१४. सल्लेखना के समय रोगी के अनुरूप नहीं, रोग के अनुरूप दवाई दी जाती हैं।

२६१५. आत्मा की सेवा होती है सल्लेखना में।

२६१६. एक बार भोजन करने वाला सल्लेखना में यशस्वी होता है दूसरी भुक्ति तो होना ही नहीं चाहिए।

२६१७. सल्लेखना की साधना हर समय होनी चाहिए।

२६१८. मरण करना या काय सल्लेखना करना केवल सल्लेखना नहीं है इसमें पहले हमें कषाय की सल्लेखना कर लेना चाहिए फिर बाद में काय सल्लेखना होती है।

२६१९. सल्लेखना यदि आपको लेना है तो जिम्मेदारी वाले कार्य को पहले छोड़ना चाहिए।

२६२०. सल्लेखना के समय क्षपक जो दृढ़ होता है वो शरीर से कहता है मैं तेरे अधीन नहीं रहूँगा, मैं तो अपने संकल्प को क्षत्रिय के समान बनकर अपने संकल्प पर अडिग रहूँगा इसलिए तो कहा जाता है कि क्षत्रिय ही सल्लेखना कर सकता है।

२६२१. जब तक मस्तिष्क और शरीररूपी सम्पदा आपके पास विद्यमान रहती है, तब तक सल्लेखना की साधना करते रहना चाहिए।

२६२२. केवल भोजन का त्याग करना ही मात्र सल्लेखना नहीं इसके साथ-साथ किसी से राग-द्वेष नहीं रखेंगे।

२६२३. ध्यान में परिश्रम होता है, सल्लेखना/समाधि में परिश्रम नहीं होता। फल आ जाने पर सारे श्रम समाप्त हो जाते हैं, फूल आने तक श्रम है, तभी तक साधना है।

२६२४. इच्छा के बिना प्रत्येक समय निकलना ही सल्लेखना है।

२६२५. जीवन की सार्थकता व्रतियों की सल्लेखना में ही पूर्ण होती है और वह भी पूर्णरूप से निर्दोष

हो कठिन से कठिनतम होती है।

२६२६. यदि सम्यग्दृष्टि है और निर्दोष सल्लेखना करना चाहता है तो अपने अवशेष जीवन को अभी से उसमें लगा देना चाहिए।

२६२७. इधर उधर की बातें बंद करो और सल्लेखना की तैयारी में मन लगाओ।

२६२८. दो प्रकार की सल्लेखना है, काय सल्लेखना और कषाय सल्लेखना। काय सल्लेखना तो समय पर होगी लेकिन कषाय सल्लेखना करना अभी से अनिवार्य है। काय सल्लेखना तो सब करते हैं पर कषाय सल्लेखना नहीं करते हैं।

२६२९. यदि कषाय सल्लेखना नहीं है, बाकी सब है तो उसे हम सल्लेखना नहीं कह सकते। कषाय सल्लेखना हो जायेगी तो रागद्वेष रह नहीं पायेगा। जो इसमें सफल होता है उसे अन्य निर्देश देने की आवश्यकता नहीं है।

२६३०. जो कषाय सल्लेखना नहीं करेगा उसका अकल्याण होगा, कल्याण नहीं होगा। आज तक ऊपर-ऊपर बर्तन माँजा है, अब भीतर भी माँज लो।

२६३१. कषाय सल्लेखना पल जाये तो हम मान जायेंगे कि ये अपना कल्याण कर सकता है। इस सल्लेखना में ज्यादा नंबर कौन लेता है हम ये भी देखेंगे।

२६३२. माया सल्लेखना कैसे करें? माया कषाय की सल्लेखना करने के लिए माया को ढूढ़ो। माया कषाय जैसे कब दिखना चाहता है, कब छुपना चाहता है। मान लो झूठ बोल रहे हैं कि नहीं, बोले तो कितनी बार बोले झूठ? मन,वचन, काय की अपेक्षा से स्वयं की अपेक्षा से दूसरों की अपेक्षा से कितनी बार झूठ बोलें? ये बार-बार देखें। देखना है तो दूसरों की अच्छाई देखो फिर अपने में लाओ।

२६३३. चारित्रशुद्धि का नाम ही कषाय सल्लेखना है।

२६३४. पूज्यश्री गुणभद्राचार्य ने लिखा है-कि यदि बाह्य तप नहीं करता, घोर-घोर तप नहीं करता संहनन नहीं है तो कोई बात नहीं परन्तु यदि कषाय सल्लेखना नहीं करते तो ये कायरता है।

२६३५. जड़ काय की सल्लेखना की अपेक्षा कषाय सल्लेखना कर लो। शरीर की सल्लेखना कोई सल्लेखना ही नहीं है। सल्लेखना उसी का नाम है जब कभी भी आ जाये तैयार रहना चाहिए शर्त नहीं रखना। सल्लेखना के लिए हमेशा सतर्क रहना चाहिए।

२६३६. सौम्य भावों वाला ही सल्लेखना कर सकता है। लाखों रुपयों का मंदिर बनाकर फिर कलशारोहण कराना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्व सल्लेखना का है।

२६३७. कषाय सल्लेखना करो। कषाय सल्लेखना करोगे तो अन्त में काय सल्लेखना भी अच्छी तरह हो जायेगी।

२६३८. भीतर से कषाय सल्लेखना का भाव हमेशा रखना चाहिए।

२६३९. जिस समय कषाय की संभावना हो उस समय कषाय नहीं करना कषाय सल्लेखना है।
२६४०. कषाय सल्लेखना के साथ उपवास करना। जिससे कर्म निर्जरा होती है।
२६४१. कषाय सल्लेखना इस सूत्र को याद रखोगे तो आपको इससे आत्मसंतोष भी होगा।
२६४२. हर्ष और विषाद जो होते हैं उसका लेखन किया जाता है कृश किया जाता है, उसका नाम सल्लेखना है।
२६४३. कषाय सल्लेखना करने से ही सही साधक नजर आने लगेंगे। बाहरी चर्या के माध्यम से भीतरी स्रोत खुलते हैं, खुले ये जरूरी नहीं। उपवास मात्र करना कषाय सल्लेखना नहीं है।
२६४४. सल्लेखना की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। अनुभव की कमी है कि इसकी ओर दृष्टि ही नहीं है जबकि सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु यही है। जीवन का सार है, निखार है यह सल्लेखना।
२६४५. जिसने कषाय सल्लेखना कर ली उसके लिए शरीर सल्लेखना कोई चीज नहीं है। सल्लेखना के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए।
२६४६. जो यहाँ एक-एक समय में कषाय सल्लेखना करेगा वही अंतिम समय में करेगा।
२६४७. सल्लेखना उसी की अच्छी होती है जो आहार, जल आदि की मात्रा के बारे में समझता है। सल्लेखना के समय सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित चर्या होनी चाहिए।
२६४८. किसी भी प्रकार की चाह से रहित होकर समता रखने का नाम समाधि है।
२६४९. व्रत लेते ही सल्लेखना शुरू हो जाती है, कभी भी परीक्षा हो सकती है।
२६५०. सल्लेखना की तैयारी करो ऐसा कहना ही न पड़े, व्रतों का सार है सल्लेखना। तपने से ही उज्ज्वलता आती है।
२६५१. बारह व्रत फूल के समान हैं, सल्लेखना फल है।
२६५२. सल्लेखना नहीं हो पायी तो जीवन की साधना अधूरी मानी जाती है।
२६५३. कषाय सल्लेखना को जो नहीं करता उसी को काय के प्रति मोह हो जाता है।
२६५४. धर्म स्वाश्रित होता है जब स्वयं से व्रत पालन नहीं हो रहा हो तो पर के माध्यम से कहाँ तक पालन करोगे? सल्लेखना लेनी होती है। धर्म के लिए शरीर को छोड़ना सल्लेखना है।
२६५५. यदि जल्दी सल्लेखना लेता है तो असंयम का समर्थन हो जावेगा क्योंकि जल्दी मरण हो जावेगा तो देवो (असंयम) में उत्पन्न होगा।
२६५६. जो व्यक्ति जीवन को वर्गीकृत नहीं करता वह सल्लेखना तक नहीं पहुँच सकता।
२६५७. जन्म के बाद भोजन करना सिखाया जाता है और मरण के अन्त समय में भोजन छुड़वाया जाता है।
२६५८. मृत्यु जीवन का अंत नहीं। मृत्यु की मृत्यु ही वास्तव में जीवन है।
२६५९. समाधि तो उस दशा का नाम है जो हम आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त होते हैं।

२६६०. जो अतीत और अनागत को भूल जाता है वह निर्विकल्प समाधि वाला होता है। अतीत और अनागत से ऊपर उठने वाले के दर्शन बहुत कम होते हैं।

२६६१. जो कक्षा में है उसे परीक्षा को नहीं भूलना चाहिए। उसी प्रकार जो व्रती बन जाये और सल्लेखना से डर जाये तो यह ठीक नहीं है।

२६६२. अंतिम समय में दो प्रकार की सल्लेखना करना होता है कषाय और काय, शरीर के प्रति मोह नहीं रखना कषाय सल्लेखना है और जब शरीर कार्य नहीं करे तो उसे आहार पानी देना कम कर देना काय सल्लेखना है।

२६६३. सल्लेखना दी नहीं जाती है बुद्धिपूर्वक ली जाती है।

२६६४. काय और कषाय के कारणों का सम्यक् प्रकार से लेखन करना, कृश करना सल्लेखना है।

२६६५. सल्लेखना के माध्यम से अनंत संसार को कम से कम तीन भवों में बदल सकते हैं यह सल्लेखना की महत्ता है।

२६६६. सल्लेखना के समय छटपटाहट से नहीं डरना चाहिए, असंयम से डरना चाहिए।

२६६७. सात शील घर में रहकर भी पल सकते हैं, पर सल्लेखना के समय घर त्याग आवश्यक है।

२६६८. समाधि मरण जीवन की सफलता की कसौटी है।

२६६९. हर्ष विषाद से परे आत्म सत्ता की सतत अनुभूति ही सच्ची समाधि है।

२६७०. आदर्श मृत्यु को साधु समाधि कहते हैं। साधु का दूसरा अर्थ सज्जन से है। ऐसे आदर्श मरण को यदि हम एक बार भी प्राप्त करेंगे तो हमारा उद्धार हो सकता है।

२६७१. समाधि तभी होगी जब हमें अपनी सत्ता की शाश्वतता का भान हो जायेगा।

२६७२. साधु समाधि वही है जिसमें मौत को मौत के रूप में नहीं देखा जाता और जन्म को भी अपनी आत्मा का जन्म नहीं माना जाता। जहाँ न सुख का विकल्प है और न दुःख का।

२६७३. सल्लेखना दिखाने की नहीं करने की होती है।

२६७४. जिसकी उम्र है वो उम्र अवश्य समाप्त हो जाती है।

२६७५. जिसकी एज है उसकी इमेज अवश्य खराब हो जाती है।

२६७६. पुण्य के द्वारा रोग टल सकता है लेकिन मरण नहीं टल सकता है परन्तु मरण को टालने के लिए कोई भी इसके पास साधन नहीं है।

२६७७. काया से चिर परिचित सम्बन्ध बना लिया, मुँह मोड़ना मुश्किल है किन्तु छोड़ना अवश्य है, न चाहते हुए भी छोड़ना होगा।

२६७८. अनंत बार मरण का वरण करने के उपरांत भी मृत्यु से भयभीत है नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, थर-थर कांपने लगते हैं, असंख्य बार मरण प्राप्त किया उसी से डर रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आता।

२६७९. समाधि मरण का संकल्पी साहसी होता है, संकल्पपूर्वक सुनिश्चित घटना का निश्चिंतता के साथ सामना करता है।

२६८०. समाधि के लिए दया, दम और त्याग को अपनाना होगा। इसके बिना कोई सीधा और छोटा रास्ता नहीं है। यदि इसके बिना समाधि प्राप्त करने के लिए कोई शार्टकट ढूँढ़ने जाओगे तो समाधि के बदले आधि-व्याधियों में ही उलझ जाओगे।

२६८१. समाधि कोई हाथ में लाकर रख देने की चीज नहीं है वह तो साधना के द्वारा ही मिल सकती है।

२६८२. जितना दया का पालन करेंगे, उतना ही समाधि के निकट पहुँचते जायेंगे समाधि के द्वार पर लगे तालों को खोलने के लिए इन्हीं चाबियों की जरूरत है।

२६८३. सल्लेखना के समय पर जिस व्यक्ति के मुख से अरिहंत भगवान् का नाम निकलता है वह बहुत ही भाग्यशाली है।

२६८४. जिसके मुख से अरिहंत नाम भी नहीं निकलता है, उसका तो कर्म ही फूट गया, खोटा कर्म है।

२६८५. महान् बड़भागी होते हैं वे जो जीवनपर्यंत उपाध्याय परमेष्ठी का काम करते हैं और अंत में भी णमोकारमंत्र दूसरों को सुनाते जाते हैं बहुत भाग्य की बात है यह।

२६८६. अरिहंत, सिद्ध मुख से नहीं निकलता किन्तु कहते हैं हाय रे जल ले आओ, भीतर तो सभी कुछ जला जा रहा है।

२६८७. जीवन भर समयसार भी पढ़ो गोम्मटसार भी रट लो, प्रवचनसार के प्रवचन भी कर लो, लेकिन जब अन्त समय प्राण पखेरू उड़ने लग जाते हैं तो अरिहंत कहते नहीं पाये जाते, ऐसे भी कई उदाहरण हैं।

२६८८. भय के साथ यदि मरण करेंगे तो पुनः जन्म होगा और दुःख उठाना पड़ेगा इसलिए ये मरण का भय छोड़ देना चाहिए।

२६८९. भयों में मरण का भय ही सबसे बड़ा भय माना जाता है।

साधना

२६९०. हमेशा अपने मन, वचन, काय तीनों योगों की चंचलता या प्रवृत्तियों से विराम लेकर बार-बार अपने उपयोग को विश्राम में रखने का ध्येय होना चाहिए। यह बहुत बड़ी साधना है।

२६९१. पुण्य के फल मीठे हों, फिर भी वियोग बुद्धि हो, इसी का नाम साधना है।

२६९२. शरीर को सिर पर मत बैठाओ, उसको नीचे अपने अण्डर में रखने का संस्कार डालना चाहिए अन्यथा ये कभी अपनी साधना सहयोगी नहीं बन सकता। बिल्कुल जैसा आदेश दें वैसा ही ये करे ऐसी साधना हो। तीन घंटे सामयिक में बैठने को कह दो तो चुपचाप ये बैठ जाये।

इतना सीधा इसे बनाना चाहिए कि वो अपने पर हावी न हो जाये।

२६९३. कष्ट सहन करना चाहिए उस समय सही कर्मों की निर्जरा होती है। प्रतिकूलता में यदि न डिगे तो यह सबसे बड़ी साधना होती है, प्रतिकूलता में सहन करना चाहिए।

२६९४. मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से किसी को तकलीफ न हो ये ही साधना है।

२६९५. अपनी मानसिकता संभालना चाहिए यही साधना है।

२६९६. रत्नत्रय ही जीवन है, इसी की साधना करना है इसी की चर्चा करना है और कुछ नहीं करना।

२६९७. पूजा-प्रशंसा के शब्द सुनकर भी यदि जीवन में मान नहीं आता तो समझना बहुत बड़ी साधना है। मान को काठिन्य बोलते हैं मृदु का उल्टा। प्रशंसा सुनकर मान नहीं आना यह मानसिक साधना है, यह प्रौढ़ होती जाती है तो शारीरिक साधना अपने आप प्रौढ़ होती चली जाती है।

२६९८. जैस-मानसिक साधना प्रधानमंत्री है और शारीरिक साधना कलेक्टर जैसी है। प्रधानमंत्री आ गया तो वे सब भी आ ही जायेंगे।

२६९९. बुद्धि पूर्वक गलत नहीं सोचना, अशुभता की ओर जाने वाले मन को रोकना एक बहुत बड़ी साधना है। खाली बैठना बहुत कठिन है।

२७००. हमें ज्ञेय परायण नहीं ज्ञान परायण बनना है। ज्ञान परायण यानि ज्ञायक संवेदन की ओर जाना यही साधना का फल है।

२७०१. शरीर से अन्य काम तो लेना पर वासना को भूल जाना महान् साधना है।

२७०२. साधना करने से ही शास्त्रों में वर्णित बातें समझ में आयेंगी मात्र पढ़ने से नहीं।

२७०३. मन को गुलाम बनाना सबसे बड़ी साधना है।

२७०४. साधना में देखा-देखी मत करो देखकर करो।

२७०५. बाधाओं को सहन करने वाला निरंतर साधना करने वाला व्यक्ति ही अन्त में सफल होता है।

२७०६. कषायों को जीतना वस्तुतः साधना का एक मात्र फल है।

२७०७. जिस प्रकार युवावस्था की कमाई को मनुष्य वृद्धावस्था में आराम से भोगता है। उसी प्रकार युवावस्था की धर्म-साधना का उपयोग वृद्धावस्था में किया जाता है।

२७०८. छत्र-छाया उन्हीं को मिलती जिन्होंने संयम के माध्यम से साधना की।

२७०९. काया को कंचन बनाने का एकमात्र साधन साधना है।

२७१०. जिस तरह दुकान चलाने के लिए धन-दौलत, नौकर-चाकर आदि आवश्यक है इसी प्रकार वीतरागता अर्जित हेतु कुछ साधना की आवश्यकता होती है।

२७११. अनंत काल से प्रभु भीतर सोया है उसे साधना के बल पर एक बार जगा लें तो इस देह के बंधन से हम मुक्त हो सकते हैं।

२७१२. छोटी-छोटी बात का संकल्प लेकर भी हम अपने जीवन में साधना कर सकते हैं और आत्मा को पवित्र बना सकते हैं।

२७१३. साधर्मियों के वचनों को सुनने की साधना करना चाहिए।

२७१४. तेल डालना अलग और ग्रीस चिपकाना अलग होता है, गाड़ी को अधिक परिश्रम नहीं हो ऐसी गति से चलाना चाहिए सतत निरंतर। हमेशा-हमेशा सफलता का मुख देखती रहती हमारी साधना। यदि इस प्रकार अपनी गाड़ी को चलाते हैं।

२७१५. सफलता का कारण निरंतर साधना और परिश्रम है।

२७१६. भागादौड़ी छोड़कर एक गति पर आओ। हाइट जब रुक जाती है तो गति अच्छी आती है अर्थात् बल और आस्था बढ़ती जाती है।

२७१७. स्वार्थ को छोड़े बिना परमार्थ की साधना संभव हो नहीं सकती।

२७१८. जो शरीर को साधना का साधन बना देते हैं वे शरीर को सजा देते हैं, और जो शरीर को वासना का गुलाम बना देते हैं वे शरीर को सजाते हैं। अतः शरीर को साधना का साधन समझो वासना का नहीं।

२७१९. साध्य की प्राप्ति के लिए साधना आवश्यक है।

२७२०. जिन्होंने साधना में अपना चित्त लगाया है, उन्हें बाहरी साधन विचलित नहीं कर सकते हैं।

श्रुतज्ञान

२७२१ श्रुतपंचमी पर्व बहुत गर्मी में आता है लेकिन यह कूलर में रहने वालों के लिए नहीं जो कूलर और हीटर से ऊपर उठ जाता है, उसे श्रुतज्ञान होता है।

२७२२. जो अपने प्रयोजन को समझ लेता है वही तो श्रुतज्ञान है।

२७२३. पूरे भारतवर्ष से हिंसा का अभाव हो जाये, अहिंसा का वातावरण बन जाये बस वही श्रुतज्ञान है।

२७२४. जिसने पंचेन्द्रियों को वश में किया है उसे श्रुतज्ञान होता है।

२७२५. अपने आप पर नियंत्रण रखते ही ऋद्धि सिद्धि के माध्यम से अपने आप ऊपर उठ जाता है।

२७२६. प्रयोग नहीं करने के कारण हम धरती पर ही परिक्रमा करते रहते हैं धरती के आकर्षण के कारण।

२७२७. जिस किसी के लिए श्रुताराधना नहीं करानी चाहिए। उसकी पात्रता का भी अवश्य ध्यान रखें।

२७२८. यह व्यवसाय का साधन नहीं है, यह स्वाध्याय का साधन है।

२७२९. जिस प्रकार भारतीय संविधान की रक्षा की जाती है उसी के माध्यम से सारा देश चलने वाला होता है उसी प्रकार से हम आत्मतत्त्व को प्राप्त करने जा रहे हैं मोक्षमार्ग पर प्रवृत्त हो रहे हैं तो श्रुतदेवता के बारे में सोचो, उसका सविनय बहुमान होना चाहिए।

क्षमा, अनुराग

२७३०. जिस प्रकार सर्कस में पैर नहीं टिकते डाँवाडोल स्थिति रहती है, उसी प्रकार दु:ख के प्रसंग आने पर भी पाँव नहीं टिकते, ऐसा दु:ख का प्रसंग किसी को न आवे ऐसी भावना करना, यह क्षमा की चरम सीमा है, यह अनुकम्पा है।

२७३१. विषय कषाय को दबाओ, मोहरूपी डाट को हटाओ और वास्तविक क्षमा को धारण करो।

२७३२. क्षमा करने से आत्मा सन्तुष्ट होगा, चाहने से नहीं, हमारा बिगाड़ तब है, जब हम क्षमा नहीं करें।

२७३३. वैरियों के प्रति वात्सल्य प्रादुर्भूत करने के लिए क्षमा करो।

२७३४. क्षमा करना गुणस्थान को बढ़ाना है और क्षमा मांगना गुणस्थान को सुरक्षित रखना है।

२७३५. लड़ाई करने के लिए तो पहले से अनेक तैयारियां करनी पड़ती हैं, लेकिन प्रेम से मिलने पर कुछ नहीं करना पड़ता।

२७३६. अनुराग से ही समाज का कल्याण हो सकता है। यदि सभी मिलकर रहेंगे प्रेमपूर्वक तो समाज आगे बढ़ेगा। जिससे सभी का भला होगा।

२७३७. अनुराग के साथ सदैव अच्छाई, प्रेम और परोपकार आता है, वहीं द्वेष समाज को नष्ट करता है। विद्वेष समाज में विघटन का कारण बनता है।

२७३८. द्वेष की मात्रा कितनी भी कम क्यों न हो, उसका परिणाम अनुराग नहीं हो सकता। द्वेष को हटाने के लिए क्रोध, मान, माया और लोभ को हटाना ही पड़ता है।

२७३९. राग छोड़ो प्रेम करो तभी कल्याण होगा।

२७४०. वैर भाव जोड़ते समय पसीना नहीं आता पर छोड़ते समय आता है।

२७४१. राग-द्वेष कम करते समय लगता है, पुरानी बीमारी है जल्दी नहीं जायेगी।

क्षमा

२७४२. अनंत कषाय जहाँ चली गई वहाँ अनंत क्षमा आ जाती है।

२७४३. क्षमा मांगने से दूसरों को नहीं, स्वयं को लाभ होता है।

२७४४. कषायवान व्यक्ति क्षमाभाव नहीं रखता है लेकिन क्षमावान व्यक्ति अपने जीवन में कषायों की आहुति कर देता है।

२७४५. जो क्षमाभाव धारण करता है वह अपने तन-मन को बड़ा कर लेता है।

२७४६. जो व्यक्ति निर्मल भाव से क्षमाभाव धारण करता है तो उसके जीवन के सारे दाग धुल सकते हैं।

२४४७. हम जीवन में कई गलतियां कर लेते हैं लेकिन गलती महसूस हो जाने पर हमें क्षमा मांगने में पीछे नहीं हटना चाहिए

२७४८. वर्तमान में कोई क्षमा नहीं करना चाहता है और न ही वह निर्विकल्प होना चाहता है। हमें तो क्षमा माँगकर निर्विकल्प हो जाना चाहिए।

२७४९. अपने आपको क्षमा मांगकर हल्का बना लेना चाहिए। क्षमा का भाव मोक्षमार्ग में एक तरफ ही होता है, वह क्षमा करे या न करे हमें तो क्षमा मांग लेना चाहिए।

२७५०. धरती को भी क्षमा कहा गया है क्योंकि वह अपनी छाती में निर्मल जल भी रखती है और गंदाजल भी रखती है लेकिन परिणामों में गंदापन नहीं लाती है। हम भी ऐसा कार्य करें।

२७५१. क्षमा से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है।

२७५२. जहाँ क्षमा है वहाँ मुक्तिरमा नृत्य करती हुई आती है और डाल देती है वर माला गले में क्षमाधारी के।

२७५३. क्षमा माँगो नहीं, माँगना तो हमेशा खतरनाक है। क्षमा माँगने से बेड़ा पार होने वाला नहीं है। क्षमा करने से ही परमार्थ की सिद्धि हो सकती है।

२७५४. कहीं जाना नहीं क्षमा करने के लिए किसी जीव को। एक ही स्थान पर बैठ-बैठे क्षमा धारण करना है।

२७५५. माँगो मत क्षमा, क्षमा धारण करो, बहुत अंतर आ जायेगा जीवन में।

२७५६. पूर्ण क्षमा धारण करने के लिए घर छोड़ना पड़ेगा। घर में रहकर पूर्ण क्षमा का पालन बन नहीं सकता। आप तो पत्रों द्वारा क्षमा मांगते हैं।

२७५७. क्षमा भाव धारण करो, संसार के प्रासाद की नींव ढह जावेगी और मुक्ति मिल जायेगी।

२७५८. क्षमा नहीं है तो जीवन नहीं है याद रखो।

२७५९. प्रतिकूल वातावरण में भी अनुकूल वातावरण का अनुभव करना, क्षमा के बिना सम्भव नहीं है।

२७६०. क्षमा वह अलौकिक निधि है जो कभी समाप्त होती नहीं, जैसे भरत की निधि कभी समाप्त होती नहीं थी।

२७६१. क्षमा तो कुँए का जल है जो कभी सूख नहीं सकता क्योंकि वहाँ तो अक्षय स्तोत्र है जल का।

२७६२. श्रमण तो एक कुँआ है जिसमें क्षमा का अक्षय जल लबालब भरा रहता है।

२७६३. क्षमा छोड़ो नहीं कभी क्योंकि क्षमा अपनी वस्तु है।

२७६४. आनन्द तभी है जब राग-द्वेष का अभाव हो जाये। फिर तो आने वाला भी पिघल जाये नवनीत की भाँति। सारा क्रोध पिघल जायेगा क्षमा धारण कर लेने पर।

२७६५. क्षमा हमारा स्वाभाविक धर्म है। क्रोध तो विभाव है।

२७६६. जो व्यक्ति प्रतिदिन धीरे-धीरे अपने अंदर क्षमा धारण करने का प्रयास करता है उसी का जीवन अमृतमय है।

२७६७. अमृत वहीं है जहाँ क्रोध रूपी विष नहीं है।

२७६८. क्रोध कषाय को मिटाने के लिए कोई औषधि है तो क्षमा है। आप इसको पास रखेंगे तो तीन काल में घटना नहीं होगी।

२७६९. मैं उस साधक को नमस्कार करना चाहूँगा जिसके आश्रम में क्षमा झाड़ू लगाती हो।

२७७०. झाड़ू तो लगाना ही चाहिए नौकरानी के रूप में उत्तम क्षमा झाड़ू लगाती हो। अर्थात् वह हमेशा उस आत्मा के अन्दर किसी प्रकार के धूलि-कण चिपके नहीं इसलिए क्षमा हमेशा झाड़ू लगाती रहती है।

२७७१. यदि क्षमा है तो क्रोध अपना काम करें लेकिन वह जला नहीं सकता है।

२७७२. अनंतकाल का तपा हुआ उपयोग शांत करना है तो क्षमा के द्वारा कर सकते हैं।

२७७३. क्षमा धर्म जीवन में आ जाये तो दुनिया की कोई सामग्री लाद दो गुस्सा नहीं आ सकता है।

२७७४. आप क्षमावाणी मनाते हैं पर उनके साथ क्षमा मनाओ जिनके साथ वैर (द्वेष) है, मन की गाँठों को खोलो।

२७७५. क्षमा वहीं है जहाँ वैरी भी आ जाये तो मध्यस्थ भाव रहे।

२७७६. अपने अस्तित्व के साथ साथ अनंत जीवों का अस्तित्व स्वीकार करना ही क्षमा है।

ज्ञान

२७७७. अंधकार दो तरह का होता है एक अंधेरा बाहर और दूसरा अंधेरा आंतरिक होता है। बाहरी अंधेरा तो कृत्रिम संसाधनों से दूर हो जाता है, लेकिन आंतरिक अंधकार को दूर करने के लिए अज्ञानता को दूर करना आवश्यक है।

२७७८. अभिमान के वशीभूत मनुष्य अज्ञानी बना है, अभिमान पर नियंत्रण ही ज्ञान का मार्ग है।

२७७९. जो लोग स्वाध्याय तो करते हैं, पर उस ज्ञान का उपयोग संयम, विवेक आचरण के लिए नहीं करते तो ऐसा ज्ञान भी प्रशंसा के योग्य नहीं है।

२७८०. यदि जीवन में स्पर्धा भी करें तो स्पर्धा संयमित होना चाहिए। ज्ञान का यही सदुपयोग है इससे हम अकारण होने वाले विवादों से बच सकते हैं।

२७८१. हम शरीर को धोकर पुष्ट बनाना चाहते हैं लेकिन ज्ञान को पुष्ट नहीं बनाना चाहते जबकि ज्ञान आत्मा का गुण है।

२७८२. ज्ञानी का वही ज्ञान मान जाता है जो विषयों से एवं कषायों से बच जाता है। लेकिन जो विषय कषायों में लगा है वह ज्ञान किसी काम का नहीं।

२७८३. वह ज्ञान बेकार है जो क्रिया से रहित है।

२७८४. पापों से यदि मुक्ति नहीं मिलती है तो वह ज्ञान किस काम का है।

२७८५. आत्मज्ञान नहीं होता, जिस ज्ञान से वो ज्ञान नहीं है।

२७८६. यदि मन निरोध नहीं होता है तो वो तत्त्व ज्ञान नहीं है।

२७८७. अपने ज्ञान की धारा को ख्याति, पूजा, लाभ आदि की ओर मत लगाओ उसका उपयोग अपने आपके उपयोग में लगाओ यह सबसे बड़ा काम है।

२७८८. ज्ञान थोड़ा सा भी होता तो उसको अभिमान बहुत जल्दी होता है। जैसे कहा जाता है- अध जल गगरी झलकत जाये। भरी विचारी चुपकी जाये॥

२७८९. जो व्यक्ति ज्ञान रखता है, प्रमाद नहीं रखता, आवश्यकों में सतर्क रहता है, अनुकंपा भाव रखता है वह मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

२७९०. जिस ज्ञान के माध्यम से वैरी से वैरी भी क्यों न हो उसे भी मित्र के रूप में स्थापित कर देता है, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है और जो हमेशा-हमेशा के लिए वैरी बना दे तो उस ज्ञान को हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

२७९१. ज्ञेय चिपके, ज्ञान चिपकाता सो, स्मृति हो आई।

२७९२. ज्ञान को इतना संयत बनाओ, कि उससे कुछ ज्ञेय न चिपके। विस्मृति अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है। दुनिया स्मृति चाहती है, साधक को तो विस्मृति चाहिए। इसी में विश्राम है उपयोग का।

२७९३. किसी का ज्ञान होना अलग वस्तु है जबकि उसके प्रति सावधानी रखना अलग वस्तु है।

२७९४. संयत ज्ञान का नाम ही सावधानी है।

२७९५. ज्ञान भाषात्मक नहीं होता ज्ञान तो भावात्मक होता है। बहुभावाविद् होना सरल है लेकिन बहु भावात्मक ज्ञान होना बहुत कठिन है।

२७९६. एक-एक पंक्ति में थीसिस करके लिख दिया लेकिन उसका कोई महत्त्व नहीं। सब थीसिस भी ऐसी सी रह जायेंगी। अनुभव करो, अर्थ ज्ञान की ओर बढ़ो। द्वादशांग अपार होने के बाद भी पार तब मिलता है जब हम उसमें अंदर उतर जायें अन्यथा नहीं।

पढ़-पढ़ कर पंडित भया, ज्ञान हुआ अपार।
निज वस्तु की खबर नहीं, सब नकटी का शृंगार॥

आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज को यह दोहा बहुत अच्छा लगता था। जब वे यह दोहा प्रवचन में कहते थे तो सब हँस जाते थे। मैं तो हिन्दी ज्यादा नहीं जानता था तो नहीं समझने के कारण, भावभासना नहीं होने के कारण चुपचाप रह जाता था। मतलब शब्द ज्ञान का मूल्य तब है जब अर्थ का आभास हो। बड़े-बड़े कॉलेज तैयार हो रहे हैं, सम्यग्ज्ञान का किसी को अनुभव नहीं।

२७९७. तात्त्विक ज्ञान बढ़ाना चाहिए। तात्त्विक ज्ञान बढ़ाने से समस्या अपने आप समाधान हो जाती है। तत्त्वज्ञान अच्छा रखना चाहिए।

२७९८. ज्ञान सूखा नहीं होना चाहिए, आचरण सहित होना चाहिए।

२७९९. ज्ञान का फल अज्ञान की हानि व उपेक्षावृत्ति होना चाहिए। हम मात्र अज्ञान की हानि ही ज्ञान का कार्य मानते है जबकि उससे भी बढ़कर है उपेक्षावृत्ति होना, क्योंकि ज्ञान का जो फल है वहाँ तक पहुँचना चाहिए। उपेक्षा के क्षणों को बटोरने का प्रयास करो।

२८००. आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मन में एकाग्रता लाना चाहते हो तो इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में रागद्वेष मत करो।

२८०१. ज्ञान को चारित्र मांजता है। अर्थात् चारित्र के द्वारा ज्ञान शुद्ध होता है।

२८०२. श्रुतज्ञान गूंगा भी है और बोलता भी है लेकिन शेष ज्ञान सभी गूंगे के समान होते हैं। स्वस्थ ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है।

२८०३. विश्वासघात पहली चरित्र हीनता है।

२८०४. ज्ञान जब हृदयंगम होकर चरित्र में उतरता है तभी उपयोगी होता है, अन्यथा नहीं। अध्यात्म तो है ही किन्तु हमें सुख शान्ति प्राप्ति हेतु चरणानुयोग का ज्ञान भी आवश्यक है, क्योंकि उस अध्यात्म की प्राप्ति चरित्र के बिना तीन काल में संभव नहीं।

२८०५. वर्तमान पर्याय में हमें उस प्रकार जीना है, ताकि भविष्य उज्ज्वल हो। वर्तमान के ज्ञान से उत्तम कार्य करना है।

२८०६. जिनवाणी के माध्यम से अपना व्यवसाय नहीं चलाना क्योंकि जिसके द्वारा रत्नत्रय का लाभ होता है उसको तुम क्षणिक व्यवसाय हेतु बना रहे हो, यह ठीक नहीं।

२८०७. चार पुरुषार्थ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। तो अर्थ पुरुषार्थ करो और वित्त का अर्जन करो। जिनवाणी के माध्यम से तो रत्नत्रय की सेवा करो। रत्नत्रय को प्राप्त करने का व्यवसाय करो। इसी का नाम सम्यग्ज्ञान है।

२८०८. उस ज्ञान से क्या लाभ जिससे दूसरों के दु:ख को जानकर भी यदि करुणा के भाव नहीं आते।

२८०९. समीचीन ज्ञान वहीं है जो करुणा से सहित हो।

२८१०. ज्ञान दीपक के समान है जो स्वयं प्रकाशित होता है और दूसरों को प्रकाशित करता है।

२८११. जैसे-जैसे ज्ञान को विषयों की ओर ले जाते हैं, वैसे-वैसे ज्ञान फकीर होता चला जाता है, ज्ञान का ह्रास होता चला जाता है। यदि ज्ञान का ह्रास होता है तो आत्मा का ह्रास होने लगता है।

२८१२. जिसे अपने और पराये का बोध नहीं है उसका वह बोध वास्तव में बोध नहीं बोझ ही है।

२८१३. पहले करने योग्य कार्य क्या है, बाद का कार्य क्या है, इसका ज्ञान होना भी जरूरी है। स्टेंडर्ड पहले चाहते हैं लेकिन स्टेंडिंग तो हो पहले। खड़े होने की हिम्मत नहीं, हमें स्टेंडर्ड चाहिए। काहे का स्टेंडर्ड हुआ भैया?

२८१४. ज्ञान का प्रयोजन तो मान की हानि करना है, पर अब तो मान की हानि होने पर मानहानि का

कोर्ट में दावा होता है।

२८१५. श्रुतज्ञान आत्मा का स्वभाव नहीं है किन्तु आत्म स्वभाव पाने के लिए श्रुतज्ञान है।

२८१६. ज्ञानी मुनि ज्ञान में रमते हैं उलझते नहीं।

२८१७. ज्ञानी मुनि आत्मा में रमते है परन्तु एक स्थान पर जमते नहीं।

२८१८. तलस्पर्शी ज्ञान किसी ग्रन्थ को एकबार पढ़ने से नहीं किन्तु अनेक बार पढ़ने से होता है।

२८१९. ज्ञान कल्याण के लिए तब हो सकता है जब हम उस पथ पर चलने लगते हैं।

२८२०. श्रुतज्ञान छन्ने का काम करता है उससे अपने आपको छानो।

२८२१. दुनिया को छानते-छानते छन्ने वर्कशाप के क्लीनर के वस्त्र के समान हो गये हैं किन्तु छान नहीं पाते। छन्ने (ज्ञान) को हमेशा साफ रखना आवश्यक है।

२८२२. आपा-धापी में स्व-पर का ज्ञान समाप्त हो जाता है।

२८२३. आज पढ़-अनपढ़ दोनों आपा-धापी में लगे हैं यदि संन्यासी भी इसी में लग जायें तो आपा (आत्मा) को भूल जायेंगे।

२८२४. सम्यग्ज्ञान के द्वारा जो वस्तुतत्त्व को जान रहा है वहीं सुखी है, बाकी सब दुःखी ही दुःखी हैं।

२८२५. तत्त्वज्ञान है तो सुख है अन्यथा आपके दुःख को कोई मिटाने वाला नहीं है।

२८२६. यदि आप सुखी होना चाहते हैं तो तत्त्वज्ञान को अर्जित करिए।

२८२७. जीवों के कष्टों को देखने के उपरांत यदि दया नहीं आती है तो उस ज्ञान का कोई उपयोग नहीं वह एक प्रकार से कोरा/थोथा ज्ञान है।

२८२८. वह ज्ञान नहीं माना जाता है जिसके हृदय में थोड़ी सी उदारता नहीं है, अनुकम्पा नहीं है।

२८२९. ज्ञान की शोभा तो संयम है। ज्ञान की शोभा तो अहिंसा है।

२८३०. ज्ञान की शोभा तो क्षमा है। ज्ञान की शोभा तो कषाय का अभाव है।

२८३१. सही ज्ञान की प्रतिष्ठा वह है जिसके माध्यम से तत्त्वज्ञान से हीन व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान की ओर आकृष्ट हो जाये।

२८३२. ज्ञान के माध्यम से तो स्व-पर प्रकाशन हो जाता है लेकिन ज्ञान का मद करने से स्व का भी ज्ञान और पर का भी ज्ञान दोनों ही पतित हो जाते हैं।

२८३३. सम्यग्ज्ञान के साथ अक्षर का ज्ञान हो ये कोई नियम नहीं है। यदि कोई निरक्षर भी हो तो भी वह उस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

२८३४. सम्यग्ज्ञान के माध्यम से जिसके दुर्वचनों को सुनने की क्षमता आ गई, वो समझ लो औरों की अपेक्षा से उसकी असंख्यात गुणी निर्जरा ज्यादा होना प्रारम्भ हो जाती है।

२८३५. यदि किसी ने कुछ कह दिया तो क्या बात हो गई, यह सोचना चाहिए कि उसे भी चुकाना है और इसे भी चुकाना है। निंदा में भी शब्द है और स्तुति में भी शब्द है लेकिन व्यक्ति उल्टा

करता है इसको सम्यग्ज्ञान नहीं कहते हैं।

२८३६. सम्यग्ज्ञान को कभी पसीना नहीं आता है सम्यग्ज्ञानी का सीना कभी धुक-धुक नहीं करता है कि अब क्या होगा।

२८३७. सम्यग्ज्ञान के साथ सब विषय सरल होते हैं और अज्ञान के साथ सारे सारे सरल विषय भी डिफीकल्ट हो जाते हैं।

२८३८. ज्ञान-दर्शन चलते नहीं हैं, पर आदेश दे देते हैं। हेय की ओर गति न कर उपादेय की तरफ गति देते हैं।

२८३९. चारित्र (पैर) नहीं जानता कि उचित स्थान कौन सा? पैर गधे के समान हैं। ज्ञान और दर्शन के हाथ में उसकी लगाम है।

२८४०. ज्ञान दर्शन यात्री और चारित्र रेल (घोड़ा) इत्यादि वाहन है।

२८४१. आत्मा के पास श्रुत ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से यह धनी कहलाता है। जब यह श्रुतरूपी धन जघन्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो वह आत्मा दरिद्र हो जाता है।

२८४२. यदि वास्तव में ज्ञान को धन मानकर हम उसका संरक्षण और संवर्द्धन करें तो आत्मा की ख्याति बढ़ती चली जायेगी।

२८४३. मात्र उपदेश देने या सुनने से ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान को ऊर्ध्वगमन संयम के द्वारा मिलता है।

२८४४. कषाय को अपने अंडर में लेना और चारित्र के प्रति बहुमान ये तत्त्वज्ञान को स्पष्ट करना है।

२८४५. जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है वही ज्ञान है।

२८४६. ज्ञान को स्वस्थ करने की प्रक्रिया विकल्प नहीं करने से होती है। ये इसका फार्मूला है।

२८४७. श्रुतज्ञान का यदि विकास करना है तो भाव श्रुतज्ञान का विकास करिये। भावश्रुतज्ञान अक्षर श्रुतज्ञान के ऊपर डिपेंड है ही नहीं।

२८४८. जिसके पास एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं है तो भी चल जायेगा मोक्षमार्ग में...शिवभूति महाराज का क्या हुआ?

२८४९. ''निर्विकल्प होने में श्रुतज्ञान का विकास नहीं हो रहा'' ये फार्मूला हमेशा याद रखो और जो-जो इसमें लगे हुए हैं, उनको कृपा करके, करुणा करके, अनुकंपा करके समझा दो।

२८५०. चारित्र के साथ में यदि सम्यग्ज्ञान होता है तो वो भवांतर में भी काम में आ जाता है।

२८५१. ज्ञान रखने के लिए है ही नहीं, प्रवाह हो बाँध नहीं बाँधों।

२८५२. भावश्रुत का आप विकास करिये, अक्षर श्रुत का क्षयोपशम है उसका आप सदुपयोग करिये।

२८५३. भावश्रुत के माध्यम से अपना भला करिये और द्रव्यश्रुत के माध्यम से अपना व दूसरे का भी भला करिये।

२८५४. पहले कुरीतियाँ अज्ञान के कारण थीं, अब कुरीतियाँ ज्ञान के कारण चल रही हैं।

२८५५. कुरीतियाँ जितनी आ रही हैं, ये पढ़े-लिखे लोगों के समूह से आ रही हैं।
२८५६. व्यवस्थित ज्ञान का नाम विज्ञान है।
२८५७. ज्ञान जब संयत होता है तब ध्यान होता है।
२८५८. संयत ज्ञान का ही मूल्य है असंयत ज्ञान तो कहीं भी ले जा सकता है। ज्ञान के साथ संयतपना आवश्यक है।
२८५९. ध्यान में मन की एकाग्रता आवश्यक है ज्ञान में हम सुन तो लेते हैं लेकिन मन से नहीं सुनते हैं। यही ज्ञान और ध्यान में अंतर है।
२८६०. ज्ञान हमेशा गुरुकृपा से प्राप्त होता है, पढ़ने से नहीं।
२८६१. अनाकुलता रूप ज्ञान ही समीचीन ज्ञान है।
२८६२. जिसके पास ज्ञान कम है वह अधिक ज्ञानवानों की विनय करके पूंजी कमा लेता है। ये महान् है, इसके द्वारा भी प्रभावना हो रही है। अपने पास अध्ययन नहीं है तो विनय करने से कालांतर में आ जाता है।
२८६३. अज्ञानियों से प्रशंसा प्राप्त करने की अपेक्षा ज्ञानी से एक थप्पड़ खाना अच्छा है कम से कम गलती तो सुधरेगी।
२८६४. ज्ञान को हमेशा चारित्र की उन्नति में लगाना चाहिए यही उसका सदुपयोग है। पुण्य और पाप को एक मानने वाले ज्ञान का दुरुपयोग कर रहे हैं।
२८६५. ज्ञान को समय पर काम लेने वाला ही विवेकशील माना जाता है।
२८६६. जिससे मैत्री की स्थापना हो, विषयों से विराम प्राप्त हो जावे, श्रेयमार्ग पर लगा दे, रागद्वेष की निवृत्ति हो जावे उसे जिनशासन में ज्ञान कहा है।
२८६७. मद पैदा करने वाला ज्ञान नहीं हो सकता। जिस ज्ञान के कारण सामने गुणी दिखे ही नहीं वह ज्ञान किस काम का?
२८६८. ज्ञान का सदुपयोग न करने से मद उत्पन्न हो जाता है।
२८६९. ज्ञान का दुरुपयोग पापवर्धक होता है।
२८७०. अपने ज्ञान का उपयोग अपने विषय में ही करना चाहिए। दूसरे के अहित के बारे में सोचना अनर्थ है। उपयोग अंदर लगते ही सारी प्रतिकूलताएँ समाप्त हो जाती हैं।
२८७१. हमारे ज्ञान का सदुपयोग यही है कि हम रागद्वेष को कम करते चले जावें।
२८७२. ज्ञानामृत भोजन बनाओ और दूसरों को कराओ। ज्ञानामृत जो देता है उसका कभी कम नहीं पड़ता। इससे क्षयोपशम बढ़ता है एवं प्रभावना होती है।
२८७३. अस्थिर ज्ञान ही हमें हानिकारक है, इसलिए ज्ञान को स्थिर बनाओ।
२८७४. संयमी होकर असंयमी से क्या चाहोगे? अज्ञानी की प्रशंसा चाहने से अच्छा है ज्ञानी की डाँट

चाहना। ज्ञानियों से बोध मिलता है प्रेरणा मिलती है।

२८७५. सम्यग्ज्ञान वही है जो आत्मा की ओर ले जाता है आत्म सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है। विषयों से प्रभावित ज्ञान ईर्ष्या तुलना पैदा करावेगा।

२८७६. ज्ञान होने पर अमल में न आये तो कोई पद नहीं मिल सकता ।

२८७७. संवेग वैराग्य सहित ज्ञान ही आदर के योग्य होता है।

२८७८. उस ज्ञान को महत्त्व नहीं देना चाहिए जो पाप से न डरे।

ज्ञानी-अज्ञानी

२८७९. अज्ञ विज्ञ बने, विज्ञ बनकर अनभिज्ञ होकर आत्मज्ञ हो तभी सर्वज्ञ बनता है।

२८८०. गलती करने के बाद पश्चाताप करना अज्ञानता है और करते समय सम्हलना ज्ञानी का काम है।

२८८१. ज्ञानी जीव स्वाध्याय नहीं कर रहा है लेकिन प्रतिपल सजग रहता है, उसका श्रद्धान है कि निज अर्जित कर्म है। दुनिया के बीच में, भीड़ के बीच में रहते हुए भी वह प्रसन्न रहता है।

२८८२. ज्ञानी व अज्ञानी दोनों का विपाक (कर्म का उदय) चल रहा है। अज्ञानी की निमित्ताधीन दृष्टि हो जाती है तो कर्म का उदय भोगते हुए और पाप कर लेता है। लेकिन ज्ञानी स्वयं के कर्म-विपाक का चिंतन करता है, विपाक-विचय का चिन्तन करता है और कर्म के उदय में भी प्रशस्त पुण्य का बंध कर लेता है।

२८८३. ज्ञानी को इसलिए प्रोत्साहित किया जाता है कि उतने समय में वह दस और व्यक्तियों को तैयार कर लेगा।

२८८४. पर के बारे में अनभिज्ञ हो जाओ, विज्ञ हुए नहीं कि फँस गये। सबसे अज्ञात होंगे तभी आत्मा ज्ञात होगी।

२८८५. ज्ञानी के लिए बादलों का एक टुकड़ा संसार को असार जानने के लिए पर्याप्त है।

२८८६. ज्ञानी वह है जो अपने ऊपर विश्वास रखने वाला हो।

२८८७. रागद्वेष करना मेरा स्वभाव नहीं, इस प्रकार संसार जानने-देखने वाला हो। जो कभी रागद्वेष नहीं करता वहीं ज्ञानी है।

२८८८. जिसका मन मान कषाय से खाली है वही वास्तविक ज्ञानी है।

२८८९. सारी दुनिया एक तरफ चलती है तो ज्ञानी की वृत्ति एक तरफ चलती है।

२८९०. जिस ओर दुनिया आकृष्ट हो जाती है उस ओर ज्ञानी आकृष्ट नहीं होता है।

२८९१. पाँचों इन्द्रियों के विषयों से मन को हटाकर अपने आत्म-ध्यान में लगना ही ज्ञानीपने का लक्षण है।

२८९२. ज्ञानी का अर्थ चिंतन से भी नहीं और चिंता से भी नहीं, बल्कि चिंता से और चिंतन से दोनों

से ही मुक्त होकर के ज्ञानी, ज्ञेय-ज्ञायक भावों को अपने सामने रख करके चलता है। शांति की जो धारा होती है वह ज्ञानी के सामने हमेशा होती है।

२८९३. दुर्वचनों को सुनने से यदि कर्म की निर्जरा हो रही है। किन्तु अज्ञानी को यह सहन नहीं होता है। और ज्ञानी कहता है कि इससे हमारा माथा दु:खता नहीं है बल्कि माथा उठता है, कि कितनी क्षमता है मुझमें।

२८९४. ज्ञानी के लिए संवर निर्जरा के स्थानों को बढ़ाना चाहिए। यदि इस ओर दृष्टि नहीं रहती है तो स्वाध्याय करना किस काम का है।

२८९५. शरीर को आपा (अपना) मानना तो सबको आता है लेकिन शरीर से अपने आपको भिन्न जो मानता है वो परम ज्ञानी माना जाता है।

२८९६. हम रूढ़िवादी भले बनें पर मूढ़ी (मूढ़ता) नहीं बनें।

२८९७. श्रुत को सुरक्षित रखने के लिए उसका शुद्ध उच्चारण करना चाहिए। शुद्ध घोष करना चाहिए किन्तु आज यह नहीं हो रहा है।

२८९८. जो कषाय नहीं करता है जो विकथा में नहीं पड़ता है उसको ज्ञानी कहा है।

विशेष वाक्य

२८९९. ऋद्धि के द्वारा इस पूरे लोक को व्याप्त करने का अधिकार केवल पुरुष को ही होता है इसलिए इस लोक को नृलोक कहते हैं। ऋद्धि भी पुरुषवेद वालों को ही होगी। बिना आधार के युक्ति नहीं चलती है।

२९००. पहले बच्चों को कहा जाता था कि बेटा अनाप-शनाप नहीं खाना। अमृत भी हो तो नहीं खाना, क्योंकि खानपान से खानदान बिगड़ता है। लेकिन आज तो बड़े भी इससे नहीं बच पा रहे हैं।

२९०१. पंच कल्याणक महोत्सव मनोरंजन का नहीं निरंजन बनने का प्रतीक है।

२९०२. चेतन की कीमत करो। जीने के लिए अर्थ (पैसा) है, अर्थ के लिए जीवन नहीं। तीन चीजें हैं-१. अर्थ, २. व्यर्थ, ३. अनर्थ।१. अर्थ का अर्थ है जो प्रयोजनभूत है। २. व्यर्थ का अर्थ है जो प्रयोजनभूत न हो। जिसको करने के बाद भी कुछ हासिल नहीं होता। जैसे नीर का मंथन करने से हमें घृत की प्राप्ति नहीं होती तो हमारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। ३. अनर्थ का अर्थ विषय-कषायों के पीछे लगने वाला व्यक्ति अनर्थ करता है।

२९०३. अर्थ की लिप्सा ही हमसे अनर्थ करा देती है। कोई कितनी ही सम्पत्ति एकत्रित क्यों न कर ले, अपने वारिसों/संतानों के लिए पर वे उसका उपयोग तभी पर पायेंगे जब उनके पल्ले में पुण्य होगा।

२९०४. हमारी सारी जिन्दगी की भाग दौड़ बस जमीन और जायदाद की खातिर होती है।

२९०५. आज तक हम जमीन दोस्त रहे हैं जहाँ दो का अस्त होता है वह दोस्त होता है। जमीन दोस्त का अर्थ है मिट्टी से उत्पन्न हुआ और मिट्टी में मिल जाना।

२९०६. एक धीवर ने प्राण छोड़ दिये पर प्रण नहीं छोड़ा। परन्तु आज आप लोग प्राण और प्रण दोनों छोड़ने को तैयार हैं।

२९०७. एक सियार भी अपनी स्मृति के माध्यम से अपने भाव ताजा बनाये रख सकता है। उस मूक प्राणी ने प्रण नहीं तोड़ा भले ही प्राण छोड़ दिये लेकिन यह मनुष्य प्रण को नहीं, प्राणों को देखता है। उस मूक प्राणी ने हमें दिखाया कि सच्ची आस्था और निष्ठा ये है।

२९०८. पशु पक्षी मर्यादा में रहते हैं, परन्तु मनुष्य की आज कोई मर्यादा नहीं रही।

२९०९. तत्त्व की बात करने से वैरी का पारा भी ठण्डा हो जावेगा।

२९१०. तत्त्व चर्चा से कलह मिट जाती है, वातावरण शान्त हो जाता है।

२९११. आपके घर में महाराज जावें तो महाराज बालक हैं आप पालक हैं। और हमारे यहाँ आप आओगे तो हम पालक हैं आप बालक हैं। हमारे चौके में अन्तराय का काम नहीं।

२९१२. दानादि देना कर्तव्य है उसमें प्रदर्शन का सवाल नहीं होता।

२९१३. संतुष्टि एवं धैर्य के बिना कार्य पूर्ण सिद्ध नहीं होते।

२९१४. हम किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकते। केवलज्ञानी भी मिथ्यादृष्टि को सन्तुष्ट नहीं कर पाते।

२९१५. कुल, जाति, धन, ख्याति, ऐश्वर्य, रूप आदि स्वभाव नहीं है। उनके प्रति लगाव होने से अभिमान आता है और स्वाभिमान समाप्त हो जाता है।

२९१६. स्वाभिमान रखने से याचना परीषह सहन हो जाता है।

२९१७. मोह की नदी बहुत गहरी है तैराक भी डूब जाते हैं।

२९१८. आहारदान तब तक काम करता है जब भूख दुबारा न लगे पर जिनायतन में दिया दान अनन्त कालीन मिथ्यात्व का धो देता है।

२९१९. परिग्रह की जड़ों को निर्दयता के साथ उखाड़ना चाहिए, आलस्य नहीं करना।

२९२०. ज्ञान की भावना एवं आलस्य का त्याग स्वाध्याय है। अप्रमत्त हो जाना स्वाध्याय का फल है।

२९२१. जो आचरण से रहित है वह चरण तक ही रह सकता है। देवी-देवता भी ऐसे ही हैं वे आराध्य नहीं हो सकते।

२९२२. अनर्थों को याद करने से अनर्थों से बच सकते हैं।

२९२३. दूसरा हमारी निन्दा करे तो टेंशन नहीं करें, अपनी निन्दा स्वयं करें विशुद्धि बढ़ती है इससे। अपनी निन्दा तो आसानी से कर सकते हैं।

२९२४. पर निन्दा से असंख्यात गुणा बंध और अपनी निन्दा से असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होगी।

२९२५. उत्साह का अर्थ ये नहीं कि अंधाधुंध करते चले जाओ। विवेक सावधानी भी आवश्यक है। शुद्धाशुद्धि का ध्यान रखना चाहिए।

२९२६. प्रकृति को बदलने का प्रयास नहीं करो बल्कि उससे लड़ना सीखो।

२९२७. यह संसार बहुत बड़ा है, यहाँ पर सब कुछ है लेकिन हमें क्या करना है और कैसे रहना है? यदि इतना याद रख लिया जाये तो अपना कल्याण हो सकता है।

२९२८. अवशेष के माध्यम से ही विशेष बात समझ में आती है।

२९२९. जो अपने लिए कहा गया है उसमें रहना यह स्वस्थ मन है और अपनी भूमिका से ऊपर उठकर रहना यह अस्वस्थ मन है।

२९३०. मन की दृढ़ता के बिना काय और वचन की दृढ़ता नहीं आ सकती।

२९३१. संसारी प्राणी का दिमाग और दिल ही संसार में ज्यादा उत्पाद मचाते है।

२९३२. कर्म बंध और कर्म आस्रव के समय यदि हम सोच लेते हैं तो कर्म उदय के समय नहीं सोचना पड़ता।

२९३३. सर्वघाती प्रकृति का उदय हो और केवलज्ञान का अनुभव हो यह तीन काल में सम्भव नहीं है।

२९३४. आत्म विश्वास रखो अति विश्वास नहीं होना चाहिए।

२९३५. साधर्मी के साथ विसंवाद करने से महाव्रत सुरक्षित नहीं रह सकते हैं।

२९३६. जहाँ विसंवाद नहीं होता है वहाँ पर संवाद का प्रवाह अपने आप होने लगता है।

२९३७. श्रमण के लिए भीतर जाये तो समयसार और बाहर आये तो मूलाचार होना चाहिए।

२९३८. निषेध परख वस्तु का निषेध न करके विधान परख वस्तु को सामने रखें तो निषेध परख वस्तु अपने आप पीछे छूट जायेगी।

२९३९. माता-पिता जैसे अपने बच्चों का संरक्षण करते हैं वैसे ही आप मुनियों के उचित एवं शुद्ध आहार देकर उनका संरक्षण कर सकते हैं।

२९४०. ऐसा कोई कार्य करो जिससे अपने कल्याण करने वाला कोई प्रसाद मिल जाये।

२९४१. मन अपनी कीर्ति को तो तीन लोक में चाहता है पर अन्य की कीर्ति नहीं देखना चाहता है।

२९४२. मन को समझाने का काम जिसने कर लिया उसका बेड़ा पार हो जाता है। यह मन बहुत गड़बड़ कर सकता है।

२९४३. भिक्षावृत्ति में दयनीयता नहीं रहती है, भीख माँगने में दयनीयता रहती है। भिक्षावृत्ति में स्वाभिमान रहता है भीख मांगने में स्वाभिमान और मर्यादा नहीं रहती है।

२९४४. आदिनाथ भगवान् कितने वर्षों तक विषयों में रहे पर वे व्यसनी नहीं बने।

२९४५. तीर्थंकर-पद इन्द्रिय सुख की अभिलाषा को लिए हुए नहीं होता है।

२९४६. आस्तिक जो होगा वह निःशंक होगा, नास्तिक जो होगा वह बलवान तो हो सकता है पर डरपोक होगा।

२९४७. जो व्यक्ति न्याय का पक्ष लेता है, उसके पक्ष में सारा विश्व हो जाता है।

२९४८. पर से परे होने पर पार हो जाते हैं।

२९४९. चर्चाओं में समय की पाबंदी नहीं रखते और सामयिक घड़ी देखकर करते हैं ४८ मिनट हो गये कि नहीं।

२९५०. दुर्लभ क्षणों को अनर्थ में मत गँवाओ माला फेरो, स्तुति पाठ करो। अनर्थ से बचना भी बहुत ही प्रयोजनभूत है। पहले चक्की चलाते रहते थे स्तुति पढ़ते रहते थे, मन को भटकने नहीं देते थे।

२९५१. समय का सदुपयोग, ज्ञान का सदुपयोग करना बहुत कठिन है। धर्मामृत स्वयं पीवें दूसरे को पिलावे ऐसा कहा है। विकथाओं से बचें।

२९५२. प्रयोजनभूत को याद करने से मन की बीमारी दूर हो जाती हैं।

२९५३. पेट की आग इतनी गड़बड़ी पैदा नहीं करती, जितनी कि तृष्णा की आग करती है। दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णा बस धनवान।

२९५४. बुढ़ापा उस झाडू के समान है जिससे सारे दिन काम लेकर एक कौन में कचरे के पास रख दिया जाता है।

२९५५. धर्मध्यान में आवश्यकों में कमी न आवे, अच्छे से स्वाध्याय हो सके ऐसा भोजन ग्रहण करना चाहिए।

२९५६. आलोचना, प्रशंसा इन दोनों को सुनकर छोड़ दो हमेशा निर्विकल्पता रहेगी। किसी से आँख से आँख नहीं मिलाना यह भी निर्विकल्प होने का अच्छा साधन है। त्याग के साथ निर्विकल्पता भी आनी चाहिए।

२९५७. बुद्धि को बिगाड़ने वाले सारे पदार्थों के दान हिंसादान में आवेंगे। पहले अमृत दूध का दान होता था, आज चाय का दान देते हैं। पानी के पाऊच, चाय पैकेट यह संस्कृति ये सब दरिद्रता के प्रतीक हैं।

२९५८. मन और परवस्तु अपना विषय नहीं है, उसकी पूर्ति में समय मत गँवाओ। मनरूपी बन्दर को श्रुत स्कंध पर चढ़ा दो।

२९५९. आज फोन से काम चलता है इसलिए संतोष का अभाव है। पहले संतोषी रहते थे सम्प्रेषण से काम हो जाता था।

२९६०. व्रती होने के बाद संतोष में और घनत्व आ जाता है। तत्त्व ज्ञान होने के बाद वह स्थिर हो जाता है।

२९६१. मन पापों की ओर नहीं जाता तो मन हमेशा पवित्र बना रहता है।

२९६२. यहाँ आते हो तो छोटा सा व्रत मांगते हो और बाजार में जाते हो तो सबसे महंगी चीज चाहते हो। त्याग संसारी प्राणी को रुचता नहीं।

२९६३. बन्धन से मुक्त होना चाहते हो तो अपने से परिचय कर लो।

२९६४. अभ्यास और वैराग्य के बल पर मन को कंट्रोल में रखा जा सकता है।

२९६५. परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, पूरक बने।

२९६६. प्राकृतिक जो चीज होती है वह टिकाऊ होती है।

२९६७. श्रावक को प्रवृत्ति सुधारना है और साधु को प्रवृत्ति रोकना है।

२९६८. आरंभ और परिग्रह को नियंत्रण में रखने से श्रावक के साता का बंध होता रहता है और असाता रूपी बीमारी को श्रावक सामयिक के समय तीन बार बाहर निकालता है।

२९६९. शरीर को पुष्ट करने का प्रयास संसारी प्राणी हमेशा करता रहता है। अशुभता का भंडार है शरीर। बड़े-बड़े विद्वान् भी इसकी सेवा में लगे हुए हैं। शरीर की सेवा में सूख जाते हैं पर सुख नहीं मिल पाता।

२९७०. शरीर से जितना ममत्व रखोगे वह उतनी अधिक सेवा करवायेगा।

२९७१. भेद विज्ञान के बिना वैराग्य दृढ़ नहीं हो सकता। चक्रवर्ती का उदाहरण देते हो पर उन के जैसा भेद विज्ञान भी किया करो।

२९७२. कायशुद्धि को लेकर आप लोग मन अशुद्ध कर लेते हैं यह ठीक नहीं।

२९७३. खाने पीने से शरीर नहीं चमकता, नहीं तो पशु आदि तो हमेशा खाते पीते ही रहते हैं उनका भी शरीर चमकना चाहिए।

२९७४. शरीर स्वयं बड़ा कूटनीतिज्ञ है इसके सामने अच्छे-अच्छे कूटनीतिज्ञ भी फैल हो जाते हैं।

२९७५. अभ्यास एक ऐसी वस्तु है जिसके माध्यम से हम शरीररूपी मशीन को नियंत्रित कर सकते हैं।

२९७६. शरीर ऐसी फैक्टरी है जिसमें हमेशा मल का उत्पादन होता है इसलिए इस पर क्या अभिमान करना।

२९७७. ब्रह्मचारी को रूप का अभिमान नहीं करना चाहिए, शरीर से काम लेना चाहिए। शरीर में अपनत्व बुद्धि अपनाने से ही अभिमान जागृत होता है।

२९७८. हमारा शरीर खुली पुस्तक है हमेशा भावों का खेल चलता रहता है।

२९७९. श्रावक संसाररूपी गाड़ी को पूर्ण नहीं रोक पाता लेकिन थोड़ी स्पीड कम अवश्य कर लेता है। स्पीड कम करने से वह एक्सीडेण्ट से बच जाता है दुर्गति रूप दुर्घटना से बच जाता है।

२९८०. संसार में ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके मीत ही मीत हों। और ऐसा खेल नहीं है, जिसमें जीत

ही जीत हो।

२९८१. रागी वीतरागता में भी राग का अनुभव करता है। और वीतरागी राग में भी वीतरागता का अनुभव करता है।

२९८२. संसारी प्राणी का जानना देखना नहीं छूट सकता परन्तु भला बुरा छूट सकता है।

२९८३. आपके पास जोश है, रोष है, दोष है, कोष है पर होश नहीं है।

२९८४. दूसरों को मत देखो, अपने आपको देखो।

२९८५. जिसके बिना जो न रह सके उसका नाम आसक्ति है।

२९८६. विवेक के बिना त्याग के क्षेत्र में काम नहीं चलता। त्याग के क्षेत्र में दूसरे के भरोसे काम नहीं होता। दक्षिण में कहा जाता है– अपने हाथ किया गया कार्य नेक है।

२९८७. धर्म के, त्याग के क्षेत्र में, नौकरों से, बच्चों से काम नहीं लेना चाहिए तभी अणुव्रती महाव्रत की ओर बढ़ सकता है।

२९८८. मन यदि गाफिल हो गया तो कोई भी चर्या समीचीन नहीं कर सकते।

२९८९. मूर्च्छा से जीवन हठीला हो जाता है, मुझे तो वही चाहिए। मूर्च्छा मानसिकता को कुण्ठित कर देती है। मूर्च्छा से तनाव बढ़ता है, खून जलता है। मनोबल को शांत रखो ज्यादा खून खर्च तनाव से होता है।

२९९०. मूर्च्छा मन की मूर्च्छा है जिसके कारण विवेक गायब हो जाता है। मूर्च्छा में आयुकर्म की उदीरणा तीव्र गति से होती है।

२९९१. दुनिया असत्य की सेवा करती है सत्य की सेवा सम्यग्दृष्टि करता है असत्य बोलने से मैं बच जाऊँगा ऐसा सोचने वालो सत्य तो यह है कि आप मर नहीं सकते।

२९९२. संसारी प्राणी को संसार की गुलामी इसलिए करनी पड़ रही है क्योंकि वह दूसरे पर अधिकार जमाना चाहता है। दूसरे पर अधिकार जमाने का काम निम्न कोटि का काम है। पर को आधीन करने वाला संसार में पराधीन ही बना हुआ है।

२९९३. संसारी प्राणी को मन को दबाने की नहीं बल्कि दूसरे को दबाने की इच्छा होती है।

२९९४. ऐसा व्यापार करो जिससे मांसाहार का विरोध एवं शाकाहार का प्रचार हो।

२९९५. बुद्धि, संस्कृति समाज, राष्ट्र जिससे भ्रष्ट हों ऐसी वस्तुओं का व्यापार नहीं करना चाहिए। सात्विक व्यापार करना चाहिए लोभ नहीं करना चाहिए आज व्यवसाय पैसे के लोभ के कारण गंदा हो गया है।

२९९६. वस्तु स्वरूप ज्ञात होते ही अटेन्शन में आ जाता है, टेन्शन छूट जाता है।

२९९७. मोह को काटने का अमोघ शस्त्र है संकल्प। संकल्प से विकल्प भी कम हो जाते हैं। संकल्प से पूर्व बंधे कर्म हिलने लगते हैं।

२९९८. दूसरे के बारे में सोचने में ही मन लगता है तो लगाओ पर उसका भला सोचो।

२९९९. पर का राग अपनी आत्मा का अनादर है। और अपने आत्मा का अनादर करना सबसे बड़ा अपराध है।

३०००. नींव प्रथम मंगलाचरण है तो कलशारोहण अंतिम समापन है।

३००१. आप लोग स्थान की बात करते हैं मैं गुणस्थान और लब्धिस्थान की बात करता हूँ।

३००२. मेरे बारे में कौन क्या सोच रहा है यह सोचना सबसे बड़ी बीमारी है। इसमें शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए विकल्प ही होंगे।

३००३. विवाह धर्म परम्परा चलाने के लिए होता है। संतान होगी तो परम्परा होगी, उसमें धर्म संस्कार हो तो धर्म परम्परा है। इसलिए स्वदार संतोष कहा, वासना का तो नाम ही नहीं ये है भारतीय परम्परा।

३००४. अभी थोड़ा बचा खुचा है बचाये रखो, विदेश से प्रभावित नहीं होइये, आप अपने संस्कार से उन्हें प्रभावित करिये।

३००५. जो मिला है उसका यथोचित उपयोग करो यही चतुराई है।

३००६. अपव्यय से बचो ज्यादा कमाओ नहीं अपने आप प्रभावना होगी।

३००७. अपने गुणों में कमी लाकर दूसरे को नीचे दिखाने में क्या मिलता है? क्या करें निंदा रस छूटता नहीं है। उदाहरण–अपने को जीवन भर काना बनाना ठीक है, लेकिन दूसरे का अमंगल होना चाहिए।

३००८. रत्नत्रय और असंयम में अंतर एक बाह्य सम्पदा को अपने पैरों में रखता है और एक उसे अपने सर पर रखता है।

३००९. निगोद से मनुष्य होना दुर्लभ है लेकिन मनुष्य से निगोद होना दुर्लभ नहीं है एकेन्द्रिय जीव देव तो नहीं हो सकता, लेकिन देव एकेन्द्रिय हो सकता है देखा यह जगत् का स्वभाव।

३०१०. द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा जो कुछ मिला है, उसमें संतुष्ट रहना चाहिए और आगे का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

३०११. परीषहों को पीठ मत दिखाओ नहीं तो पिटाई हो जावेगी। परीषहों का हृदय खोल दो इसी से मार्ग खुलना है।

३०१२. आठ माताएँ साधु की रक्षा करती रहती हैं। अष्टप्रवचन मातृकायें माँ समझाती हैं ऐसा करो, ऐसा करो। घर में एक ही माता मिलती है और वह अन्त तक नहीं रहती।

३०१३. संसारी प्राणी सब कुछ अच्छा चाहता है लेकिन जिनसे मिलता है उन साधनों को नहीं चाहता। दु:ख के कारणों को कभी छोड़ता नहीं।

३०१४. जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति करने से बंध नहीं, बंध बंद होता है। ऐसी प्रकृतियों का बंध होता

है जो सारे बंधनों को काटने में समर्थ होती हैं।

३०१५. आज मन लगाने के लिए सबसे सरल तरीका है भगवान् की भक्ति।

३०१६. आज धन्यता का पाना दुर्लभ है, धन का पाना नहीं धन सहज प्राप्त हो जाता है किन्तु धन्यता का पाना अत्यधिक दुर्लभ है।

❑ ❑ ❑

विशेष

१. अनुप्रेक्षा का चिन्तन परीषहों के साथ होता है तो ही संवर निर्जरा का कारण होता है, अन्यथा नहीं।

२. साधक स्व के लिए प्रमाण होता है, अन्य के लिए नहीं।

३. माँगने से महत्त्व कम होता है, सहन करने से कर्म निर्जरा और संवर होता है। तिल तुष मात्र परिग्रह भी रौद्रध्यान है।

४. तुम किस-किस को हटाओगे? किस-किस को घर से निकालोगे? इसलिए स्वयं निकल जाओ। स्वयं हटना बहुत सरल है, इसलिए साधु संसार को नहीं हटाता स्वयं हट जाता है।

५. जब हम अपने को दूसरों का स्वामी मानते चले जाएंगे, तो अपनी रक्षा कभी नहीं कर पाएंगे।

६. मनुष्य नेतृत्व की भूख के कारण भटक जाता है, नेतृत्व की भूख को शान्त करने का कोई साधन नहीं है।

७. विषयों से रहित होने के पश्चात् ही कषाएँ शान्त होती हैं।

८. निर्भीकता के साथ बोलना तो बहुत सरल है, पर निरीहता के साथ चारित्र पालन करना बहुत कठिन है।

९. मौखिक उपदेश देने की अपेक्षा, आचरण से उपदेश देना कहीं अधिक प्रभावशाली होता है।

१०. साधना नैमित्तिक नहीं होनी चाहिए।

११. सहनशीलता सफलता प्राप्ति का बहुत बड़ा साधन है।

१२. हमेशा प्रमाद की भूमिका पकड़ने का प्रयास करना चाहिए।

१३. सत्य को सिद्ध करने का प्रयास नहीं करना ही सबसे उत्तम है, अन्यथा सत्य पर भी संदेह होने लगता है।

१४. ज्ञान की आराधना सामायिक की साधना के बिना अधूरी है।

१५. जो व्यक्ति निमित्त पर आरोप लगाएगा उसका मोक्षमार्ग डगमगा जायेगा।